



मित्र-संवाद : एक सांस्कृतिक अध्ययन

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ की
पी-एच०डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध - प्रबन्ध का
शोध - सार

निर्देशक :

डॉ० वेद प्रकाश

व्याख्याता, हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,

अलीगढ़

शोधार्थी :

विनय कांत मिश्र

हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

अलीगढ़

2002

अनुक्रम

भूमिका

अध्याय — एक

साहित्यिक विधा के रूप में पत्रों की क्षमता और स्थान

अध्याय — दो

हिन्दी में पत्र-साहित्य की परंपरा

उप अध्याय—एक

संस्कृत और हिन्दी काव्य में पत्रों के संदर्भ

(क) संस्कृत काव्य में पत्र

(ख) हिन्दी काव्य में पत्र

उप अध्याय—दो

हिन्दी गद्य में पत्र साहित्य की परंपरा

(क) हिन्दी गद्य में लिखित पत्र

(ख) जनपदीय भाषाओं में लिखित पत्र

(ग) भारतेन्दु कालीन पत्र साहित्य।

(घ) द्विवेदीकालीन पत्र साहित्य

(ङ.) छायावादकालीन पत्र साहित्य

(च) छायावातोत्तर कालीन पत्र साहित्य

(छ) स्वातंत्र्योत्तर पत्र साहित्य

(ज) 1980 के बाद प्रकाशित पत्र-साहित्य

(पत्र साहित्य का उत्कर्षकाल)

उप अध्याय—तीन

पत्रिकाओं में छपे प्रमुख साहित्यिक पत्र

अध्याय—तीन

मित्र-संवाद के पत्रों का विषय

उप अध्याय—एक

साहित्यिक

(1) प्राचीन मध्यकालीन साहित्यकार

(2) आधुनिक समकालीन साहित्यकार

उप अध्याय—दो

पारिवारिक

उप अध्याय—तीन
राजनैतिक

उप अध्याय—चार
आर्थिक

उप अध्याय—पाँच
प्रकृति

उप अध्याय—छः
साहित्येतर कलाएँ

अध्याय—चार
मित्र—संवाद के पत्रों की साहित्यिकता

उप अध्याय—एक
विचारधारा और साहित्य का अंतःसंबंध

उप अध्याय—दो
काव्य दृष्टि और मध्यकालीन काव्य का विश्लेषण

उप अध्याय—तीन
निराला, प्रगतिशील कविता और निराला

उप अध्याय—चार
गद्य साहित्य का विश्लेषण

उप अध्याय—पाँच
'मित्र—संवाद' का गद्य विधान

अध्याय—पाँच
'मित्र—संवाद' के पत्रों का महत्व

उपसंहार

अनुक्रमणिका

परिशिष्ट

शोध सार (Research Abstract)

प्रस्तुत शोध-प्रबंध 'मित्र संवाद' एक सांस्कृतिक अध्ययन' को कुल छः अध्यायों में विभक्त कर उनके माध्यम से रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल के 56 वर्षों की मित्रता पर विचार करने का प्रयास किया गया है। मित्र-वार्ता का माध्यम पत्र हैं। सन् 1935 से लेकर 1991 तक मित्रों का लगातार 'पत्र' व्यवहार होता रहा। चूँकि यहाँ पर पत्र दो तरफा हैं इसलिए 'संवाद' की योजना 'मित्र संवाद' की विशेषता है। 'संवाद' की उत्कृष्टता पत्रों के माध्यम से दिखलायी पड़ती है।

पत्र हमारे दैनंदिन जीवन का एक ऐसा आवश्यक और सशक्त माध्यम है, जिससे हमें किसी के मनोभावों और उसकी स्थितियों का आकलन प्राप्त होता है। साथ ही साथ पत्र लेखक के आसपास की परिस्थिति, घटनाओं और उसके कारण चित्त में उठे विचारों से हमारा सीधा-सवाद होता है। दो मित्रों का पत्र संवाद चित्रात्मक तथा स्वतःस्फूर्त होता है। सरलता, सक्षिप्तता, तथा आवेगात्मकता पत्रों का स्थायी गुण है। जिसके माध्यम से व्यक्ति के भीतरी सत्य का उद्घाटन होता है।

जब कोई लेखक अपने किसी मित्र लेखक के साथ पत्रों का आदान-प्रदान करता है तो उन पत्रों की केन्द्रीय विषय वस्तु साहित्य और साहित्य की वृत्तियाँ होती हैं, जिसके माध्यम से तत्कालीन साहित्यिक संदर्भों पर संवाद के अनेक धरातल तैयार होते हैं। ऐसे पत्र निहायत ही व्यक्तिगत होते हुए भी परिमाण में सार्वजनिकता का प्रतिबिम्ब छिपाये होते हैं। यही कारण है कि उन दोनों के अतिरिक्त कालांतर में जब अन्य लोग उन पत्रों के निकट जाते हैं तो उनकी संवेदना एक स्तर पर जाकर उन दोनों के निजी विचारों से तारतम्य स्थापित कर लेती है।

साहित्यकारों के पत्र एक विशेष अर्थ में गद्य रूपों के अर्थ को ही ध्वनित करते हैं। सर्जनात्मक भाषा प्रयोग के अभ्यस्त होने के कारण लेखकों व साहित्यकारों के पत्रों की भाषा भी सर्जनात्मक हो जाती है। लेखकों के पत्रों में उनकी स्वयं की रचना-प्रक्रिया का विश्लेषण रहता है, जो उनकी कृतियों को बेहतर ढंग से समझने में सहायक होता है।

एक तरह से पत्र दो व्यक्तियों के बीच सूचनाओं के आदान-प्रदान और संप्रेषण का माध्यम है। लेकिन यदि पत्र लिखने वालों में आत्मीयता हो तो पत्रों की औपचारिकता समाप्त हो जाती है। वहाँ पर पत्र अनौपचारिक हो जाते हैं। नितांत वैयक्तिक। अब प्रश्न यह उठता है कि यदि दो आत्मीय पत्र लिख रहे हैं तो हमारा उनसे क्या सरोकार हो सकता है? हमारा उनसे गहरा सरोकार है। जब पत्र लिखने वाले दोनों मित्र साहित्यिक प्रवृत्ति के हों तो हमारा

उनसे तादात्म्य हो सकता है। हम उनके निर्माण के दौरान आयी चीजों से 'सीख' ले सकते हैं। साहित्यकारों का निर्माण किस तरह से होता है? वह कहाँ से सीखता है? कहाँ से चीजों को उठाता है? अपने परिवेश से किस प्रकार उसकी अंतरंगता होती है? इन सभी चीजों पर हम तभी जान सकते हैं, जब कोई अनौपचारिक माध्यम हो।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में शुरू से ही कविता, कहानी, उपन्यास आदि रचनात्मक विधाओं का वर्चस्व रहा है। इन प्रचलित विधाओं के अलावा रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोर्टाज, जीवनी, यात्रा-वृत्तान्त आदि विधाओं का प्रारंभ भी छिट-पुट ढंग से यद्यपि आधुनिक काल के पूर्वार्द्ध में हो चुका था, किंतु धीरे-धीरे कालांतर में इन संक्षिप्त विधाओं की अलग पहचान तथा अस्मिता का गठन हुआ। पत्र साहित्य भी एक ऐसी ही संक्षिप्त साहित्यिक विधा है जो परोक्ष और अपरोक्ष दोनों ही रूपों में साहित्यिक अर्थवत्ता की तलाश के एक सशक्त माध्यम के रूप में स्थापित हुई। यद्यपि साहित्य में पत्रों की भूमिका का निर्धारण कथा-साहित्य में सूत्र के रूप में खूब हुआ, परंतु धीरे-धीरे पत्र साहित्य ने वर्तमान साहित्यिक अर्थवत्ता की तलाश के लिए गंभीर प्रयास किये हैं।

साहित्य की अन्यान्य विधाएँ सोची-समझी रणनीति के तहत लिखी जाती हैं, लेकिन दो आत्मीयों के पत्रों में कोई दुराव-छिपाव नहीं होता। यहाँ तो सिर्फ 'हृदय संवाद' होता है। इस हृदय संवाद के जरिए व्यक्ति अपने निजी जीवन पर 'अनौपचारिक' रूप से बात करता है। यदि किसी व्यक्ति या साहित्यकार के संपूर्ण जीवन को जानना व समझना है तो उसके द्वारा लिखे हुए पत्रों को तो पढ़ना ही चाहिए। चूँकि पत्र-साहित्य साहित्यकारों के साहित्य, जीवन को जानने व समझने का सर्वाधिक उपयुक्त तरीका है इसलिए साहित्य की अन्य विधाओं के बरक्स यह सबसे उपयुक्त विधा है।

ऐसा नहीं है कि दो साहित्यिक प्रवृत्ति के मित्र सिर्फ 'व्यक्तिगत' मुद्दों पर ही बातचीत करते हैं। कभी-कभी बातचीत का दौर समाज व समय की अन्यान्य गतिविधियों पर भी केन्द्रित हो जाता है। यह बातचीत 'संवेदनात्मक' और 'ज्ञानात्मक' होती है। 'संवेदनात्मक ज्ञान' और 'ज्ञानात्मक संवेदना' से उद्भूत रचे हुए पत्र कालांतर में पाठक को आकृष्ट करते हैं। पाठक को कुछ 'सीखने' के लिए उद्बुध करते हैं।

गालिब के जीवन को समझने के लिए उनके पत्रों को तो पढ़ना चाहिए। उन्होंने अपने पत्रों में ही अपने पूर्वजों की स्थिति का वर्णन किया है। मिर्जा गालिब उर्दू और फारसी भाषा के उच्च कोटि के कवि थे और इस पर उन्हें गर्व था। भारत में उनकी प्रसिद्धि का कारण कविता और गद्य हैं। गालिब के पत्रों का गद्य अद्भुत है। सरल। सहज संप्रेषित होने वाली भाषा है। उनके पत्र बड़े ही रुचिपूर्ण हैं। उनके पत्रों के अमूल्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं और 'उर्दू-ए-मुअल्ला' तो उर्दू साहित्य का एक बहुमूल्य रत्न है। इन पत्रों से मिर्जा नई शैली के पुरस्कर्ता साबित हुए। सार्वजनीनता का गुण गालिब के पत्रों की विशेषता है। सार्वजनिक,

सार्वभौमिक और सार्वकालिक होकर, पाठकों की संवेदना को उद्बुध करने वाले पत्र ही पत्र-साहित्य की कोटि में गणनीय होते हैं।

कार्लमार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स में भी पत्र-व्यवहार हुआ था। यह सामान्य पत्र व्यवहार न होकर विचारधारात्मक खजाना था। उनके पत्रों का वैज्ञानिक तथा राजनीतिक मूल्य अधिक है। 'द्वन्द्वात्मक' परिप्रेक्ष्य में ही मार्क्स तथा एंगेल्स के पत्र हैं। 'द्वन्द्वा' शब्द उनके पत्रों का सूत्र शब्द है। उनके पत्रों में इतिहास, प्रकृति, विज्ञान, राजनीति, अर्थशास्त्र, दर्शन पर, मजदूर वर्ग की नीति तथा कार्यनीति पर भौतिकवादी द्वन्द्ववाद को लागू करने पर विचार विमर्श है। असल में दोनों मित्रों की दिलचस्पी दुनिया-जहान की तमाम घटनाओं पर थी। एंगेल्स के उन पत्रों बहुत अधिक महत्व है, जिन्हें 'ऐतिहासिक भौतिकवाद के बारे में पत्र' का नाम ठीक ही मिला। मार्क्स तथा एंगेल्स के पत्र-व्यवहार युगीन सच्चाई को उजागर करने के साथ ही उन पर विचारधारात्मक सोच को व्याख्यायित करते हैं।

रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल के समक्ष बीते हुए युग के मार्क्स तथा एंगेल्स की मित्रता का उदाहरण मौजूद था। निश्चित रूप से आधुनिक हिन्दी में राम विलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल ने मार्क्स और एंगेल्स को जीने की कोशिश की। मार्क्स और एंगेल्स की मित्रता भी जीवन के अंतिम क्षण तक चली थी। आधुनिक युग में रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल की मित्रता स्थायी रही और भविष्य के लिए उदाहरण बन गई। रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल को आधुनिक हिन्दी समाज का मार्क्स और एंगेल्स कहा जा सकता है।

'मित्र संवाद' दोनों मित्रों की 56 वर्षों की मित्रता का ऐतिहासिक-साहित्यिक दस्तावेज है। पत्रों के माध्यम से दोनों एक-दूसरे की कारगुजारियों पर नजर रखते हैं। एक-दूसरे को सलाह देते हैं। एक-दूसरे से सीखते हैं। दुनिया-जहान की घटनाओं पर दृष्टि रखते हैं। पारिवारिक खुशियों को मिलकर बँटते हैं। दुख में एक-दूसरे की ढाढस बँधाते हैं। समाज में व्याप्त असमानताओं पर दुःखी होते हैं। अपने विचारों को तर्कपूर्ण ढंग से रखते हैं।

'मित्र संवाद' कई अर्थों में महत्वपूर्ण है। हिन्दी में पहली बार 'संवाद' बनने की स्थिति में इसी का स्थान है। गालिब के पत्रों के बाद उक्त पत्र ऐतिहासिक थाती हैं। सामाजिक सच तो गालिब के पत्रों में देखा जा सकता है। गालिब के पत्रों के बाद उक्त पत्र बोलचाल की भाषा में होने के परिणामस्वरूप 'संवाद' का स्वरूप ग्रहण करता है। 'मित्र संवाद' के पत्र 'जीवंत' भाषा में लिखे हुए पत्र हैं। जीवंत भाषा बोलचाल की भाषा होती है। जीवंत भाषा में गालिब के पत्र भी हैं। असल में 'मित्र संवाद' के पत्र गालिब की परंपरा को समृद्ध करते हैं। गालिब के पत्र उनके जीवन की व्याख्या हैं। रामविलास शर्मा के पत्र उनकी आलोचना और रचना को पुनर्व्याख्यायित करते हैं और केदारनाथ अग्रवाल के पत्र उनके संस्कारों को पुनर्रचित। पुनर्रचना और पुनर्व्याख्या मिलकर 'मित्र संवाद' को आधुनिक हिन्दी पत्र

साहित्य की महानतम रचना बना देती है। संपूर्ण हिन्दी साहित्य की परंपरा में ग़ालिब के पत्रों के बाद 'मित्र संवाद' के स्थान है।

प्रत्येक समाज का अपना अलग अस्तित्व है प्रत्येक समाज की अपनी अलग संस्कृति। संस्कृति वातावरण का संवरण है। मार्क्स कला का मनुष्य बनाने की प्रक्रिया का अंग मानते हैं। मार्क्स ने कहीं लिखा है, "मनुष्य की श्रम प्रक्रिया उसकी मानवता की बुनियादी प्रक्रिया है।" अगर हम मधुमक्खी के छत्ते या एक मकड़ी के जाल को ध्यान से देखें तो उसके बारीक बनावट पर वास्तु-शिल्पी भी आश्चर्य चकित होंगे। पर मानवीय निर्माण एवं जंतुओं के निर्माण में बुनियादी फर्क यह है कि जंतु हमेशा एक जैसे ही चीज का निर्माण करते हैं। परंतु मनुष्य के लिए किसी भी कलात्मक सृजन में तरह-तरह का परिवर्तन होता है।

मनुष्य कुछ भी बनाने के पहले उसका चित्र बनाता है। श्रम की प्रक्रिया में जो कुछ भी मौजूद होता है, वह पहले ही कलाकार की कल्पना में मौजूद होता है। प्रत्येक मानवीय-सृजन के पीछे एक प्रयोजन भी होता है और वह प्रयोजन उस धारणा को मूर्तरूप देने की प्रक्रिया का स्वरूप निर्धारित करता है। अर्थात् यह चीज क्यों बनती है? इससे ही निर्माण की प्रक्रिया शुरू होती है। इस प्रकार मनुष्य अपने प्रयोजन के अनुसार प्रकृति को जिस तरह निर्मित करता है, उसी से संस्कृति बनती है। मनुष्य प्रकृति में जीता है, परंतु संस्कृति को निर्मित करता है और सभ्यता को पुनर्निरूपित। राम विलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल का 'मित्र-संवाद' सांस्कृतिक निर्माण को पुनर्व्याख्यायित करते हुए 'सभ्यता समीक्षा' का उत्कृष्टतम स्वरूप ग्रहण कर लेता है।

सरल समाज में संस्कृति का रूप जनवादी था। संस्कृति का यह जनवादी रूप संपूर्ण समाज को एक साथ बिना किसी भेदभाव के समानता और समरसता के साथ लेकर चलता था। जैसे-जैसे समाज सरलता से जटिलता या मिश्रित स्वरूप में परिवर्तित होता गया वैसे-वैसे जीने की पद्धति परिवर्तित होती गई। इस प्रक्रिया में पुरानी संस्कृति के स्थान पर एक ऐसी संस्कृति निर्मित हुई जिसने मानव समाज को लोभी बना दिया।

कालांतर में व्यवस्था में परिवर्तन आया। इसका महत्व स्थापित हुआ। इसे उत्पादन की पद्धति में परिवर्तन के एक परिणाम के रूप में रेखांकित किया जा सकता है। सामान्यतः उत्पादन की पद्धति उत्पादन के संबंधों को जन्म देती है और सामाजिक वर्गों के निर्धारण में अहम भूमिका निभाती है। इस तथ्य को सामंतवादी समाज के पतन के बाद पूँजीवादी समाज की स्थापना के मददेनजर आसानी से परिलक्षित किया जा सकता है। पूँजीवादी समाज-व्यवस्था ने उत्पादन की पद्धति में परिवर्तन लाकर उत्पादन के नये संबंधों को जन्म दिया। इससे समाज मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित हुआ— 1. सर्वहारा और 2. बुर्जुवा।

मार्क्स और उनके अनुयायियों की मान्यता है कि मध्यम वर्ग एक ऐसा वर्ग है जो बुर्जुवा वर्ग की तरह बनना चाहता है और उसी वर्ग का अंग बनकर शोषित सर्वहारा वर्ग का

शोषण करना चाहता है। इससे दो परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई— अगर यह बुर्जुवा वर्ग में सम्मिलित होने में सफल हो जाता है तो निश्चित रूप से शोषक समाज का प्रतिनिधित्व कर सकता है, असफल होने की स्थिति में फिर से वह सर्वहारा वर्ग का सदस्य बनकर उसका प्रतिनिधित्व करेगा। पूँजीवाद के उदय ने संस्कृति के आकार और रूप में परिवर्तन ला दिया। संस्कृति एक गतिशील अवस्था का प्रतिनिधित्व करती है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो अपने पास आने वाले सभी तत्वों को अपनाकर अपनी सीमा का विस्तार कर लेती है। पूँजीवाद के आने से समाज में शोषण के तरीकों में बदलाव आया और उसे एक नया आयाम मिला। इससे मानव को एक यंत्र में तब्दील कर दिया।

साहित्य समाज को न केवल प्रतिबिम्बित करता है बल्कि कई मायनों में प्रतिबिम्बन से आगे की बात भी करता है। ऐसी स्थिति में साहित्य का समाज से अलग रह जाना नामुमकिन है। यदि देखा जाए तो साहित्यिक रचनाओं में सामंतवादी युग के शोषण की झलक स्पष्ट मिल जाएगी। इस तथ्य को कबीर की रचनाओं में देखा जा सकता है कि उस युग में आम जनता किस तरह सामंतवादी उत्पीड़न से त्राहि-त्राहि कर रही थी। उसी प्रकार पूँजीवादी समाज की रचनाओं पर दृष्टि डाली जाय तो निश्चित रूप से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि साहित्यिक रचनाएँ या तो शोषित समाज के स्वरूप को प्रदर्शित करती हैं या फिर कुलीन और अभिजात्य वर्ग की जीवन-पद्धतियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। एक ओर जहाँ रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल तथा अन्य प्रगतिशील साहित्यकारों ने आम जनता के क्रन्दन को अपने साहित्य में प्रकट किया है और उनके शोषण को दर्शाया है वहीं दूसरी तरफ वर्तमान में निर्मल वर्मा, शोभा डे जैसे रचनाकारों ने अपनी रचना में सिर्फ कुलीन वर्ग की तरजीह दी है और यह प्रदर्शित करने की कोशिश की है कि समाज का एक हिस्सा होकर भी यह वर्ग समाज से बहुत अलग है। जिसकी अपनी संस्कृति है। अगर देखा जाए तो इस प्रकार से दो तरह की रचनाएँ पूँजीवादी समाज में दो ध्रुवों की तरह स्थापित हो चुकी हैं।

पूँजीवादी समाज के उदय के परिणामस्वरूप कृषक समाज में भी बहुत परिवर्तन आया है। कृषि का अब हल बैल के अलावा पूरी तरह से मशीनीकरण हो गया है। इस मशीनीकरण ने पूरे कृषक समाज में क्रांति का उद्घोष कर दिया है। प्रश्न यह उठता है कि आखिर वे कौन से लोग हैं जिनका कृषि की आधुनिकतम मशीनों पर कब्जा है। असल में यह वही लोग हैं जो पूँजीवादी समाज में सामंतों की तरह संपन्न हैं और जिनके पास प्रचुर मात्रा में भूमि उपलब्ध है। कहने का अभिप्राय यह है कि शोषित कृषक समाज तमात परिवर्तनों के बाद भी आज शोषण की चक्की में पिसने को अभिशप्त है। आर्थिक मामलों में उसकी स्थिति ठीक पहले की तरह बनी हुई है। याकि बद से बदतर हो गई है। इसने केदार, नागार्जुन और त्रिलोचन जैसे कवियों और डॉ. रामविलास शर्मा और प्रेमचंद जैसे गद्यकारों को समाज की आह को साहित्य में चित्रित करने के लिए बेचैन किया है।

समाज का विकास, सभ्यता में परिलक्षित होता है। सभ्यता संस्कृति का भौतिक रूप है। संस्कृति में समाज के सभी दृश्य-अदृश्य तत्व समाहित हैं। दृश्य तत्व हैं मानव निर्मित वह सभी वस्तुएँ एवं आकृतियों जो इंद्रियों द्वारा अनुभवित हो सकें। जैसे घर इत्यादि। और अदृश्य तत्वों के अंतर्गत हम नियम, कानून, अंतर्संबंधों इत्यादि को शामिल कर सकते हैं। प्रकृति का संस्कृति से गहरा सरोकार है। मनुष्य की प्रकृति उसके संस्कृति की संवाहक है। संस्कृति व्यक्ति का संस्कार करती है और संस्कार के स्तर पर ही व्यक्ति महत्वपूर्ण हो जाता है। व्यक्ति बड़प्पन प्राप्त करता है। संस्कारित व्यक्ति का समाज में सम्मान होता है और लाग उसी से सीखने का कार्य करते हैं। 'मित्र संवाद' के मित्र अथवा निराला मण्डल के सभी सदस्य एक-दूसरे से सीखने को कार्य करते हैं। आज ऐसी संस्कृति कहाँ? आज जब एक-दूसरे को धर-दबोचने की अप-संस्कृति विकसित हो रही है तो ऐसे में 'मित्र संवाद' से सीख लेना चाहिए।

भक्ति कालीन कवियों की व्याख्या 'मित्र संवाद' के पत्रों में हैं। भक्तिकाल हिन्दी साहित्य के इतिहास में स्वर्ण युग माना जाता है। यह सही भी है, लेकिन स्वातंत्र्योत्तर भारत में 'भक्तिकाल और भक्तिकालीन' कवियों का गलत तरीके से इस्तेमाल हो रहा है। 'रामचरित मानस' की व्याख्या संघ वाले अपनी तरह से कर रहे हैं तो दलित साहित्यकार कबीर की व्याख्या दूसरी तरह से कर रहे हैं। कबीर में जबर्दस्त काव्य प्रतिभा थी। सूर कविता की परंपरा में प्रेम का क्रांतिकारी पक्ष लेकर उपस्थित होते हैं। तुलसी ग्रामीण जीवन से उद्भूत रचनाकार हैं। वे किसान जीवन के कवि हैं। समग्रता में तीनों गहरे अर्थों में समाज से साक्षात्कार करने वाले कवि हैं। ऐसा समाज जहाँ पर 'जनता' विस्तृत अर्थों में उपस्थित होती है।

भारतीय समाज एक ऐसा समाज है जो शुरू से ही कृषि प्रधान रह है। सर्वविदित तथ्य यह है कि यहाँ की आबादी का अधिकांश हिस्सा कृषि या कृषि की आय पर निर्भर है। किसान यहाँ का मुख्य पेशा है। अधिकांश भारतीय जनता स्वभावतः किसान है। किसानों की स्थिति स्वतंत्रता के पूर्व अच्छी नहीं थी। स्वतंत्र भारत में किसानों की भयावह स्थिति है। किसान मरने के लिए अभिशप्त है। कभी तो वह आत्महत्या कर लेता है और कभी समाज की 'पूँजी' पर कब्जा किये हुए लोगों के शोषण से मरता है। सरकार कई झूठे दावे कर सकती है लेकिन सच यही है कि किसानों का शोषण बढ़ा है। किसान गरीब हो गया है। उसने मजदूरी को अपना लिया है, यही भयावह सच है। जैसे-जैसे कृषि की यांत्रिक होड़ में कृषक समाज का एक बड़ा तबका पिछड़ने लगा, वह शहरों की ओर पलायन करने लगा। पलायन की यह प्रक्रिया लम्बी है। इस लम्बी प्रक्रिया के तहत गांवों की आबादी विस्थापित होकर शहरों में मजदूरों के रूपों में स्थापित होने लगी।

कृषक समाज और उसकी संस्कृति एक ऐसी चेतनाशील परिकल्पना-अवधारणा है जिसे छोड़कर न तो संपूर्ण हिन्दुस्तान की बात की जा सकती है और न ही भविष्य के किसी

स्वप्न के साकार होने की आकांक्षा। प्रगतिशील साहित्यकारों ने सर्वप्रथम इस तथ्य की ओर ध्यान दिया। साहित्य के संदर्भ में प्रेमचन्द के माध्यम से इस बात को हम आसानी से समझ सकते हैं। प्रेमचन्द पहले साहित्यकार हैं जिनके साहित्य के शुरुआती दौर में किसान जीवन समग्रता के साथ चित्रित है तो परवर्ती दौर में मजदूर जीवन। केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में ग्रामीण जीवन संपूर्णता के साथ विद्यमान है। रामविलास शर्मा प्रेमचन्द द्वारा बोई गई फसल को सींचते हैं। 'मित्र संवाद' का मूल उत्स तो किसान, मजदूर और सर्वहारा जीवन है। भारत की पारंपरिक संस्कृति का अक्षुण्ण रखने का बीड़ा दोनों मित्रों ने उठाया है।

'मित्र संवाद' का संवाद 1935 से शुरू होता है। 1936 में 'गोदान' की रचना प्रेमचन्द करते हैं। प्रेमचन्द गांव की कहानी कहने में तटस्थ कलाकार हैं। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार राम विलास शर्मा पत्र लिखने में तटस्थ रहते हैं। प्रेमचन्द के यहाँ गांव की कहानी अखंडित रूप से चलती रहती है। इस कहानी में एक सूत्रता है। 'मित्र संवाद' में भी ऐसा है। 'गोदान' का नायक होरी असफल है। नायक के असफल हो जाने से ही त्रासदी नहीं बनती बल्कि त्रासदी बनाने हेतु और कई चीजों भी आवश्यकता होती है। बार-बार प्रयत्न करने के बावजूद व्यक्ति असफल हो जाय तो वहाँ पर 'त्रासदी' उभरती है। त्रासदी वहाँ भी उभरती है जब किसी चीज के लिए प्रयत्न किया जाए जिसे प्राप्त करना असंभव हो। लेकिन क्या भारतीय किसान किसी ऐसी चीज के लिए प्रयत्न करता है जिसे प्राप्त करना असंभव है? वह तो दो वक्त की रोटी के लिए प्रयत्न करता है, फिर त्रासदी क्यों होती है? त्रासदी का कारण बाजारवाद है। आज समाज में बाजारवादी, उपभोक्तावादी संस्कृति का वर्चस्व है। आप को कहीं भी खरीद-फरोख्त मिल जाएगी। गोदान का होरी एक निम्नमध्यवर्गीय किसान है। होरी का पूरा परिवार अपना पसीना खेतों में बहाता है फिर भी उसे खाने के लिए कुछ नहीं बचता। वह अपने साधारण आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं कर पाता। यह उसकी असफलता है। इसका जिम्मेदार औपनिवेशिक कृषि तंत्र है। दरअसल प्रेमचन्द की समझ ऊँचे दर्जे की थी। ब्रिटिश तंत्र में खेती क्या थी; किसानों के पैरों की बेड़ी थी। वह उसके पेट भरने की चीज नहीं बल्कि कुछ और थी। यह भारतीय गरीब किसानों की त्रासदी थी। स्वतंत्र भारत में 'उदारीकरण' और 'बाजारवाद' किसानों को त्रासद् स्थिति में पहुँचाया है।

'मित्र संवाद' हमारे समाज की सांस्कृतिक आलोचना है। आलोचक हैं — रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल। जब रामविलास शर्मा मध्यकालीन कवि कबीर, सूर और तुलसी की चर्चा करते हैं तो उनके जेहन में 'भारत का गांव' होता है। गांव की चिंता, किसानों की चिंता, समाज के सर्वहारा वर्ग की चिंता 'मित्र संवाद' की प्रमुख चिंताएँ हैं। 'गोदान' में झूठे 'मरजाद' की रक्षा हेतु होरी ऋण लेता है, आज लोग झूठे शान की रक्षा हेतु ऋण लेते हैं। विवाह के अवसर पर धन-दौलत को खर्च करके तबाही को आमंत्रित करते हैं। यदि झूठे मरजाद की रक्षा, किसानों की चिंता है तो झूठी 'शान शौकत' विशाल मध्य वर्ग की चिंता है। सामंती समाज में मुख्य शब्द 'मरजाद' है तो 'पूँजीवाद समाज' में सबसे प्रधान शब्द 'शान-शौकत' है। क्या गांव, क्या शहर संपूर्ण भारतीय समाज ने अपनी 'मर्यादा' बना रखी है।

आज समाज से इस प्रकार की प्रवृत्ति और मानसिकता को समाप्त करने की जरूरत है। मिथ्या मर्यादा और झूठी शान-शौकत के पीछे असली मर्यादा और यथार्थ को गंवाने की जरूरत नहीं है।

‘मित्र संवाद’ में राम विलास शर्मा शुरू से आखीर तक केदार नाथ अग्रवाल को किसानों के लिए कविता लिखने को प्रेरित करते हैं। उन्हें सलाह देते हैं। उस सलाह पर केदार अमल भी करते हैं और शोषित, उत्पीड़ित और सर्वहारा समाज के लिए कविता लिखते हैं। दोनों मित्रों की चर्चा के दायरे में वही अधिक समय तक रहता है, जिसमें किसान जीवन की व्याख्या भी है। रामविलास शर्मा अपने व्यापक काव्य-चिंतन में स्थापित काव्य –सिद्धांतों का परिष्कार करते हुए उसे युगीन सवालों से टकराने के लिए तैयार करते हैं। युगीन सवालों के केन्द्र में किसान था। मजदूर था। शोषित जन-समाज था।

गांवों से विस्थापित होकर शहरों में स्थापित होने की होड़ ‘पत्र’ के महत्व को बनाए हुए है। कृषि-संस्कृति के संक्रमण के दौर से गुजरने के दौरान शहरों में काम की तलाश में आये मजदूर पत्रों के द्वारा ही गांव से जुड़ते हैं। अपनी स्मृतियों से जुड़ते हैं। गांव में रहने वाले संबंधियों से आत्मीयता प्रदर्शित कर पाते हैं। गांवों से शहरों में विस्थापित लोग येन-केन-प्रकारेण रोजी-रोटी की जुगत करते हुए पत्रों से अपनी वस्तुस्थिति का आभास अपनों को कराते हैं। यह बहुत ही सस्ता माध्यम है। पत्र एक तरह से शोषित, उत्पीड़ित वर्ग का संचार माध्यम है। बुर्जुवा वर्ग भले ही फोन पर बात कर ले लेकिन जब स्मृतियों से जुड़ाव की बात आती है, सगे संबंधियों, मित्रों को जन्मदिन की शुभकामनाएँ देनी होती हैं तब वह बंधाई संदेश ‘पत्र’ में ही व्यक्त करता है। इसलिए पत्रों की संस्कृति भारतीय अस्मिता और समाज के साथ जीवित रहेगी।

रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल दोनों ने समकालीन हिन्दी साहित्य को प्रभावित किया है और समकालीन एवं प्राचीन साहित्य से प्रभावित हुए हैं। दोनों ने समाजवादी विचारधारा में अटूट आस्था रही है। इन्होंने अपने समय के सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक, पारिवारिक और दैनन्दिन घटनाओं एवं गतिविधियों पर खुलकर विचार विमर्श किया है। बड़े से बड़ी अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं से लेकर छोटी-से-छोटी व्यक्तिगत घटनाओं, स्थितियों पर कभी-कभी संक्षेप में कभी विस्तार से दोनों मित्रों ने चर्चा की है। दोनों ने अपने समकालीन संस्कृत, अंग्रेजी, बांग्ला, उर्दू के साहित्यकारों की प्रशंसा व आलोचना की है। अनेक स्थल पर तो ऐसे पत्र उत्कृष्ट और आदर्श आलोचना का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इन पत्रों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण पत्र वे हैं, जहाँ इन साहित्यकारों के मतभेद मुखरित होते हैं, जैसे कीट्स और निराला या दिनकर-उर्वशी या तुलसीदास के विषय में दोनों के मतभेद।

‘मित्र संवाद’ आलोचना की उत्कृष्टता को फलक में समेटे नाटकों की सी रोचकता बनाये रखता है। नाटकों में पात्रों के संवाद के माध्यम से कथानक का विकास होता है। ‘मित्र

सवाद' दो मित्रों का 'हृदय-सवाद' का 'नाटक' है। इसके पत्रों में निबंधों की सी उत्कृष्टता है। कविता की सी लयात्मकता है और कहानी की सी मार्मिकता है।

युगीन परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ समाज का सच भी बदलता है। मानवीय आवश्यकताएँ परिवर्तन के साथ समाज का सच भी बदलता है। मानवीय आवश्यकताएँ परिवर्तित होती हैं। भावबोध बदलते हैं। मूल्य और प्रतिमान बदलते हैं। ऐसे में यह अनिवार्य हो जाता है कि रचनाकार और आलोचक अपेक्षाओं के अनुरूप निष्कर्ष और प्रतिमानों को पुनर्व्याख्यायित करे। नये सवाल और नई परिस्थितियों के समक्ष स्वयं को खड़ा करे। नये सवाल और नई परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से जो सच बयान होगा, वही समाज को व्याख्यायित करेगा और साहित्य को विश्लेषित भी करेगा। राम विलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल का कविता संबंधी विश्लेषण समकालीन कवियों के लिए दिशा-निर्धारक साबित हो सकता है।

राम विलास शर्मा की 'सिखावन कला' अद्भुत है। पत्रों के द्वारा सिर्फ केदार को ही नहीं सिखलाते बल्कि आगे के कवियों को भी सिखलाते हैं। तब जबकि कोई उनसे 'सीखना' चाहे। 'मित्र सवाद' कविता संबंधी बहस को आगे बढ़ाता है।

'मित्र सवाद' के मित्र अपनी-अपनी क्षेत्रीय अस्मिता और संस्कृति को लिए हुए हैं। उनके पत्रों में क्षेत्रीय बोली की प्रवृत्तियाँ और देशी रंग हैं। भाषा मुहावरेदार है, लोकोक्तियों का सहज संप्रेषण है। उनके गद्य का विधान आत्मीयता और अंतरंगता से प्रेरित है।

मार्क्सवादी साहित्य चिंतन की शुरुआत मार्क्स एवं एंगेल्स संबंधी विचारों से होती है। प्रायः मार्क्स और एंगेल्स की आत्मीयता की चर्चा की जाती है, जैसे दोनों एक ही हों। स्वयं मार्क्स ने भी इस प्रसंग में एंगेल्स को लिखा— "हम दोनों का एक साथ एक वचन के रूप में प्रयोग हो रहा है।" ध्यान देने की बात है कि मार्क्स कृत 'पूँजी (Das Capital)' का प्रथम खंड जीवन काल में ही प्रकाशित होता है, परंतु बाद के दोनों खंडों को संपादित कर प्रकाशित कराने का काम एंगेल्स ने किया। पुनः मार्क्स पर होने वाले आक्षेपों का भी जवाब एंगेल्स ने ही दिया। उन्होंने अधिकांश कृतियाँ एक साथ लिखीं। विचारों के इतिहास में वैचारिक मित्रता का ऐसा सुंदर उदाहरण कभी-कभी मिलता है। उन्नीसवीं सदी में मार्क्स और एंगेल्स की 'वैचारिक मित्रता' का उदाहरण मिलता है और बीसवीं सदी में विचारों की टोह लेने में राम विलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल सबसे आगे हैं। यहाँ दोनों की मित्रता आने वाले युग के लिए सांस्कृतिक घटना बन जाती है।

वैचारिक मित्रता के बावजूद, दोनों में वैयक्तिक स्तर पर कुछ वैचारिक भिन्नता भी थी। वास्तव में मार्क्स ने अगर एंगेल्स को इस ओर ध्यान दिलाया कि 'हम दोनों का एक साथ एक वचन' के रूप में प्रयोग हो रहा है, तो जाहिर है कि मार्क्स की मान्यता थी कि कहीं न कहीं हम दोनों में फर्क भी है। जहाँ तक साहित्य का सवाल है तो मार्क्स का साहित्य संबंधी

56 वर्षों के दौरान सभी घटनाओं पर दोनों मित्रों की दृष्टि रहती है। कहीं उन पर संक्षिप्त चर्चा है तो कहीं उन पर लम्बी बहस। जितनी भी चीजों का सरोकार समाज से होता है अथवा जितनी भी चीजें संस्कृति को प्रभावित कर सकती हैं, सभी पर दोनों मित्रों की बहस है। इन पर बहस के दौरान कहीं स्नेह है, कहीं प्रेम है तो कहीं तकरार, लेकिन संबंधों की प्रगाढ़ता उनमें बनी रहती है। यही चीज महत्वपूर्ण है। और इसी के कारण 'मित्र संवाद' कालजयी कृति साबित होती है।

आज साहित्यकारों में खेमेबाजी बढ़ी है। एक-दूसरे की छीछालेदर करने के लिए साहित्यकार उत्सुक रहते हैं। कौन कब किसका मित्र हो जाएगा और कब शत्रु, समझ से परे है। यदि आप मित्रता करें तो उसे जीवन भर निबाहें। सामने वाले को सम्मान दें। बातों को तर्कपरक ढंग से कहें, अपनी अलग गाड़ी मत हाकें। जिस भी साहित्यकार में उक्त चीजें होंगी, उसका सम्मान होगा। आज जब 'मित्रता' को निबाहने की प्रवृत्ति समाप्त होती जा रही है तो ऐसे में 'मित्र संवाद' को पढ़ने की सलाह देना बेमानी न होगा।

'मित्र संवाद' में संकलित पत्रों का सांस्कृतिक अध्ययन लगभग 56 वर्षों के भारतीय जीवन का जीवंत और प्रामाणिक सांस्कृतिक दस्तावेज है जिसका अध्ययन साहित्य में अनेक दृष्टियों से उपादेय है। यह अध्ययन साहित्य में राजनीति, अर्थशास्त्र, संगीत, मूर्तिकला, स्थापत्य और प्रकृति के साथ संयुक्त रूप में प्रस्तुत करता है। और इस दृष्टि से भी अधिक महत्वपूर्ण और विवेच्य बन जाता है।

ज्ञान एंगेल्स के साहित्यिक ज्ञान से व्यापक था। अतएव मार्क्स का दृष्टिकोण भी व्यापक था। मार्क्स यूनानी प्राचीन साहित्य से गहरे रूप से जुड़े थे और वे प्राचीन साहित्य के गहरे अध्येता थे। फलतः उनके विचारों में गहरी दार्शनिकता थी। जबकि एंगेल्स समकालीन साहित्य से अधिक जुड़े थे। अतएव उनमें राजनीतिक चेतना अधिक थी। आधुनिक युग में डॉ. रामविलास शर्मा का भी साहित्यिक ज्ञान अधिक व्यापक था। प्राचीन साहित्य से लेकर आधुनिक साहित्य तक सभी पर उनकी गहरी पकड़ थी। वह साहित्य के मर्मज्ञ थे जबकि केदारनाथ अग्रवाल का अध्ययन रामविलास शर्मा की तुलना में कम था, लेकिन केदार, रामविलास शर्मा से लगातार सीखते हैं। उन्हें मित्र से सीखने में कोई परहेज भी नहीं है। उनमें अकुंठ स्वर है। रामविलास शर्मा केदार की दिलचस्पी कविता की परंपरा के प्रति करते हैं। रामविलास शर्मा के विचारों में गहरी दार्शनिकता है और केदारनाथ अग्रवाल के स्वर में प्रगतिशीलता रची पगी होती है। रामविलास शर्मा भी अपने ज्ञान का आतंक मित्र पर नहीं जमाते। इसीलिए इन पत्रों में कही-कही केदार की बहस के तर्क और उनकी आलोचना-शक्ति विस्मित कर देने वाली है। वहाँ पर पाठक उनके निष्कर्षों को विश्वसनीय पाते हैं और उनसे सहमत होते हैं। ऐसे निष्कर्ष वे मित्र पर भरोसा किए बिना नहीं दे सकते थे। आज तो अधजल गगरी से छलकते हुए ज्ञान का आतंक न तो मित्रों को सीखने देता है और न ही छात्रों को। आज बस लोग ज्ञान के थोथे भंडार पर 'खीस निपोर' सकते हैं। बने रहिए 'टैलेण्टेड' कौन आपकी 'नोटिस' लेता है? जब तक व्यवहार में 'बडप्पन' नहीं होगा तब तक न तो कोई किसी से सीखना चाहता है और न ही कोई किसी को सिखा सकता है। तो व्यवहार में बडप्पन रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल के यहाँ है। साहित्य के इतने बड़े अध्येता, आलोचना की उत्कृष्टता के पर्याय और प्रगतिशील कविता की परंपरा के इन प्रमुख स्तंभों की मित्र संस्कृति में जो जिन्दादिली है, उससे हमें 'सीख' लेनी चाहिए। आपसी कटुता, वैमनस्यता को छोड़कर 'मित्र परक' संवाद का माहौल बनाना चाहिए।

आज का भारत 'संयुक्त परिवार' की परंपरा को खोता चला जा रहा है। सांस्कृतिक परंपरा तो यही कहती है कि हम लोगों के परिवारों के बीच एका हो, लेकिन पश्चिम की सभ्यता व संस्कृति से प्रभावित व उसमें आकंठ लोगों को इसकी चिंता कहाँ, उन्हें तो क्षणिक तुष्टि चाहिए। 'मित्र संवाद' परिवार की अवधारणा को बचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

आज का भारत सांप्रदायिक रूप से कुत्सित शक्तियों की चपेट में है। गुजरात की भयावहता ने हिन्दू-मुस्लिम समुदाय के बीच की खाई को चौड़ा किया है। 'मित्र संवाद' के मित्र स्वभावतः आलोचक और कवि हैं। दोनों की प्रकृति भिन्न लेकिन मित्रता सांसों के अंतिम क्षण तक चली। आज हम इनसे प्रेरणा ले सकते हैं। जब स्वभावतः दो रूचि के लोगों में मित्रता हो सकती है तो हम हिन्दू-मुस्लिम के झगड़े में क्यों फँसें? हम भी 'मित्र संवाद' से प्रेरणा पाकर एक-दूसरे के करीब आ सकते हैं।

56 वर्षों के दौरान सभी घटनाओं पर दोनों मित्रों की दृष्टि रहती है। कहीं उन पर संक्षिप्त चर्चा है तो कहीं उन पर लम्बी बहस। जितनी भी चीजों का सरोकार समाज से होता है अथवा जितनी भी चीजें संस्कृति को प्रभावित कर सकती हैं, सभी पर दोनों मित्रों की बहस है। इन पर बहस के दौरान कहीं स्नेह है, कहीं प्रेम है तो कहीं तकरार, लेकिन संबंधों की प्रगाढ़ता उनमें बनी रहती है। यही चीज महत्वपूर्ण है। और इसी के कारण 'मित्र संवाद' कालजयी कृति साबित होती है।

आज साहित्यकारों में खेमेबाजी बढ़ी है। एक-दूसरे की छीछालेदर करने के लिए साहित्यकार उत्सुक रहते हैं। कौन कब किसका मित्र हो जाएगा और कब शत्रु, समझ से परे है। यदि आप मित्रता करें तो उसे जीवन भर निबाहें। सामने वाले को सम्मान दें। बातों को तर्कपरक ढंग से कहें, अपनी अलग गाड़ी मत हाकें। जिस भी साहित्यकार में उक्त चीजें होंगी, उसका सम्मान होगा। आज जब 'मित्रता' को निबाहने की प्रवृत्ति समाप्त होती जा रही है तो ऐसे में 'मित्र संवाद' को पढ़ने की सलाह देना बेमानी न होगा।

'मित्र संवाद' में संकलित पत्रों का सांस्कृतिक अध्ययन लगभग 56 वर्षों के भारतीय जीवन का जीवंत और प्रामाणिक सांस्कृतिक दस्तावेज है जिसका अध्ययन साहित्य में अनेक दृष्टियों से उपादेय है। यह अध्ययन साहित्य में राजनीति, अर्थशास्त्र, संगीत, मूर्तिकला, स्थापत्य और प्रकृति के साथ संयुक्त रूप में प्रस्तुत करता है। और इस दृष्टि से भी अधिक महत्वपूर्ण और विवेच्य बन जाता है।



मित्र-संवाद : एक सांस्कृतिक अध्ययन

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ की
पी-एच०डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध - प्रबन्ध

निर्देशक :

डॉ० वेद प्रकाश

व्याख्याता, हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,

अलीगढ़

शोधार्थी :

विनय कांत मिश्र

हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

अलीगढ़

2002

THESIS



24 JUN 2005



T5981

डॉ० वेद प्रकाश



THESIS

व्याख्याता, हिन्दी विभाग
कला संकाय
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़-202002

Date
10.12.02

Certificate

Certified that the thesis entitled "**Mitra-Samvad: Eka Saṅkritic Adhyayan**", presented by **Mr. Vinay Kant Mishra** is an original work for **Ph.D. degree**. It is the result of Mr. Vinay Kant Mishra own efforts. Mr. Vinay Kant Mishra has fulfilled all the conditions laid in the ordinances of Aligarh Muslim University, Aligarh

Forwarded
by **Dr. Ved Prakash**
24/01/03
Chairman
Department of Hindi
Aligarh Muslim University
ALIGARH

Dr. Ved Prakash
Supervisor

**DEPARTMENT OF HINDI
FACULTY OF ARTS
ALIGARH MUSLIM UNIVERSITY
ALIGARH-202002**

THESIS

CHAIRMAN

Telex : 564-230 AMU IN
Phones : Off.-700920

700921 } Ext.
700922 } 342
343

Dated: 24.1.2003
Res. - (0571)

27-2866

This is to certify that Mr. Vinay Kant Mishra
(D.O.A. 25.1.2001) Research Scholar in Hindi has
submitted his Ph.D. Thesis on dated 24.1.2003 on
the Topic: "Mitra-Samvad: Eka Sanskritik Achyayan".

He was regular for two years from the date
of admission in the Department of Hindi and has
completed his Ph.D. Thesis under the supervision
of Dr. Ved Prakash, Department of Hindi, A.M.U.,
Aligarh.


(Prof. U.S. Srivastava)

भूमिका

आधुनिक हिन्दी साहित्य में शुरू से ही कविता, कहानी, उपन्यास आदि रचनात्मक विधाओं का वर्चस्व रहा है। इन प्रचलित विधाओं के अतिरिक्त संस्मरण, रिपोर्ताज, जीवनी, यात्रा-वृत्तांत आदि विधाओं का प्रारंभ भी छिट-पुट ढंग से आधुनिककाल के पूर्वार्द्ध में ही हो चुका था, पर धीरे-धीरे बाद में इन संक्षिप्त विधाओं की एक अलग पहचान तथा अस्मिता का गठन हुआ। पत्र साहित्य भी एक ऐसी ही संक्षिप्त साहित्यिक विधा है जो परोक्ष और अपरोक्ष दोनों ही रूपों में साहित्यिक अर्थवत्ता की तलाश के एक सशक्त माध्यम के रूप में स्थापित हुआ। यद्यपि साहित्य में पत्रों की भूमिका का निर्धारण कथा साहित्य में सूत्र के रूप में खूब हुआ, परंतु धीरे-धीरे पत्र साहित्य ने वर्तमान साहित्यिक अर्थवत्ता की तलाश के लिए गंभीर प्रयास किये हैं।

पत्र हमारे दैनन्दिन जीवन का एक ऐसा आवश्यक और सशक्त माध्यम है, जिससे हमें किसी के मनोभावों और उसकी स्थितियों का आकलन प्राप्त होता है। साथ ही साथ पत्र-लेखक के आस-पास की परिस्थितियों, घटनाओं और उसके कारण उसके चित्त में उठे विचारों से हमारा सीधा-सवाद होता है। दो मित्रों का पत्र संवाद चित्रात्मक तथा स्वतः स्फूर्त होता है। सरलता, संक्षिप्तता तथा आवेगात्मकता पत्रों का स्थायी गुण होता है, जिसके माध्यम से व्यक्ति के भीतरी सत्य का उद्घाटन होता है। कालांतर में व्यक्ति का वही आंतरिक सत्य उसकी शैली के रूप में विकसित हो चलता है।

जब कोई लेखक अपने किसी मित्र लेखक के साथ पत्रों का आदान-प्रदान करता है तो उन पत्रों की केन्द्रीय विषय वस्तु साहित्य और साहित्य की वृत्तियाँ होती हैं, जिसके माध्यम से तत्कालीन साहित्यिक सदंर्भों पर संवाद के अनेक धरातल तैयार होते हैं। ऐसे पत्र निहायत ही व्यक्तिगत होते हुए भी परिमाण में सार्वजनिकता का प्रतिबिम्बित छिपाये होते हैं। यही कारण है कि उन दोनों के अतिरिक्त कालांतर में जब अन्य लोग उन पत्रों के निकट जाते हैं तो उनकी संवेदना एक स्तर पर जाकर उन दोनों के निजी विचारों से तारतम्य स्थापित कर लेती है।

हिन्दी-साहित्य में ही नहीं दूसरी भारतीय तथा विश्व भाषाओं में भी साहित्यिक पत्रों के प्रकाशन का प्रचलन रहा है— जिससे उस समाज के साहित्य, समाज और उनके आसपास की घटनाओं को देख पाने और उनका मूल्यांकन करने की एक स्पष्ट दृष्टि भी प्राप्त होती है। उर्दू के प्रख्यात शायर गालिब के पत्रों के प्रकाशन को उदाहरण के रूप में रखा जा सकता है, जिसके माध्यम से गालिब की साहित्यिक-दृष्टि, उनकी साहित्यिक चिंताएं, उनके आसपास के समाज तथा उस वक्त के शासकों की शासन पद्धति के बारे में हमारी एक स्पष्ट दृष्टि का निर्धारण होता है। अब तो गालिब के पत्रों को पढ़कर उर्दू के अनेक विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि उनमें आधुनिक उपन्यास के अनेकों तत्व विद्यमान हैं। 'मित्र-संवाद' के साथ भी ऐसा ही है। 'मित्र संवाद' में भी आधुनिक उपन्यास के अनेकों तत्व विद्यमान हैं।

साहित्यकारों के पत्र एक विशेष अर्थ में गद्य रूपों के अर्थ को ही ध्वनित करते हैं। सर्जनात्मक भाषा-प्रयोग के अभ्यस्त होने के कारण लेखकों साहित्यकारों के पत्रों की भाषा भी सर्जनात्मक हो जाती है। लेखकों के पत्रों में उनकी स्वयं की रचना-प्रक्रिया का विश्लेषण रहता है, जो उनकी कृतियों को बेहतर ढंग से समझने में सहायक होता है। उर्दू अदब के विख्यात शायर मिर्जा गालिब ने अपने पत्रों में ही अपने पूर्वजों की स्थिति का वर्णन किया है। मिर्जा गालिब उर्दू और फारसी भाषा के उच्च कोटि के कवि थे और इस पर उन्हें गर्व था। भारत में उनकी प्रसिद्धि का कारण उर्दू कविता और उर्दू गद्य है। गालिब के पत्रों का गद्य अद्भुत है। सरल। सहज संप्रेषित होने वाली भाषा है। उनके पत्र बड़े ही रुचिपूर्ण हैं। उनके पत्रों के अमूल्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'उर्दू-ए-मुअल्ला' तो उर्दू साहित्य का एक बहुमूल्य रत्न है। मिर्जा गालिब अपने वंश में सर्वश्रेष्ठ थे। उनकी मित्रता में छोटे बड़े सभी लोग थे। श्रद्धालुओं और शिष्यों की उनके यहां बहुत अधिकता थी। इनमें शिक्षार्थियों के अलावा समाज के धनी वर्ग भी शामिल थे। आज के युग में ऐसी विचित्र मंडली दुर्लभ है। गालिब ने सभी को पत्र लिखे। यदि इन पत्रों को देखा जाए तो मिर्जा गालिब के आचार-विचार, रहन-सहन की पर्याप्त जानकारी मिलती है। इन पत्रों से मिर्जा नई शैली के पुरस्कर्ता साबित हुए। हिन्दी के साहित्यकारों में डॉ. राम विलास शर्मा भी सभी से मिलते थे। उनके भी पत्र लाजवाब होते थे। मिर्जा साहब हर एक पत्र का जवाब लिखना अपना फर्ज समझते थे। उनका बहुत सा समय दोस्तों के पत्रों के उत्तर देने में बीत जाता था। बीमारी और परेशानी की स्थिति में भी वह पत्रों का जवाब लिखते थे। सूचना और तकनीकी के युग में भी सन् 2000 तक, आखिरी साँस तक राम विलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल पत्र लिखते ही रहे। उन्होंने पत्रों की जीवन्तता को बनाये रखा।

मिर्जा के पत्रों से पारिवारिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति का चित्रण होता है। उनका खर्च बहुत अधिक था। इस पर भी उनके पत्र हैं। सभी सामाजिक घटनाओं को उन्होंने अपने पत्रों में बड़े ही सलीके के साथ उकेरा है। सार्वजनिकता का गुण गालिब के पत्रों की विशेषता है। सार्वजनिक होकर, पाठकों की संवेदना को उद्बुध करके ही पत्र साहित्य की कोटि में गणनीय होते हैं।

कार्लमार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स में भी पत्र-व्यवहार हुआ था। यह सामान्य पत्र-व्यवहार नहीं था बल्कि विचारधारात्मक खजाना था। उनके पत्रों का वैज्ञानिक तथा राजनीतिक मूल्य अधिक है। 'द्वन्द्वात्मक' परिप्रेक्ष्य में ही मार्क्स तथा एंगेल्स के पत्र हैं। 'द्वन्द्व' शब्द उनके पत्रों का सूत्र शब्द है। उनके पत्रों में इतिहास, प्रकृति, विज्ञान, राजनीतिक अर्थशास्त्र, दर्शन पर, मजदूर वर्ग की नीति तथा कार्यनीति पर भौतिकवादी द्वन्द्ववाद को लागू करने पर विचार विमर्श है। असल में दोनों मित्रों की दिलचस्पी दुनिया-जहान की तमाम घटनाओं पर थी। एंगेल्स के उन पत्रों का बहुत अधिक महत्व है, जिन्हें 'ऐतिहासिक भौतिकवाद के बारे में पत्र' का नाम ठीक ही मिला। मार्क्स तथा एंगेल्स के पत्र-व्यवहार युग की सच्चाई को उजागर करने के साथ ही उन पर विचारधारात्मक सोच को व्याख्यायित करते हैं। डॉ. राम विलास शर्मा और केदार नाथ अग्रवाल के समक्ष बीते युग के मार्क्स तथा एंगेल्स की मित्रता का उदाहरण मौजूद था। निश्चित रूप से आधुनिक हिन्दी में डॉ. राम

विलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल ने मार्क्स और एंगेल्स को जीने की कोशिश की। मार्क्स और एंगेल्स की मित्रता भी जीवन के अंतिम क्षण तक चली थी। आधुनिक युग में डॉ. राम विलास शर्मा और केदार नाथ अग्रवाल की मित्रता स्थायी रही और भविष्य के लिए उदाहरण साबित हुई। डॉ. राम विलास शर्मा और केदार नाथ अग्रवाल आधुनिक हिन्दी समाज के मार्क्स और एंगेल्स कहे जा सकते हैं।

‘मित्र सवाद’ डॉ. राम विलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल के परस्पर लिखे गये पत्रों का संकलन है। इसमें सन् 1935 से लेकर सन् 1991 तक लगभग 56 वर्षों के पत्रों का संकलन है। हिन्दी साहित्य में इतने दीर्घकाल तक एक-दूसरे को लिखे गये पत्रों का प्रकाशन एक अभूतपूर्व घटना है। डॉ. रामविलास शर्मा और केदार नाथ अग्रवाल दोनों ने अपने समकालीन हिन्दी साहित्य को प्रभावित किया है और समकालीन एवं प्राचीन साहित्य से प्रभावित हुए हैं। दोनों की समाजवादी विचारधारा में अटूट आस्था रही है। इन्होंने अपने समय के सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक, पारिवारिक और दैनन्दिन घटनाओं एवं गतिविधियों पर खुलकर विचार विमर्श किया है। बड़ी से बड़ी अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं से लेकर छोटी से छोटी व्यक्तिगत घटनाओं, स्थितियों पर कभी-कभी संक्षेप में कभी विस्तार से दोनों मित्रों ने चर्चा की है। दोनों ने अपने समकालीन संस्कृत, अंग्रेजी, बांग्ला, उर्दू के साहित्यकारों की प्रशंसा व आलोचना की है। अनेक स्थल पर उत्कृष्ट और आदर्श आलोचना का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इन पत्रों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण पत्र वे हैं जहाँ दोनों साहित्यकारों के मतभेद मुखरित होते हैं, जैसे कीट्स और निराला या दिनकर – उर्वशी या तुलसीदास के विषयों में दोनों के मतभेद।

‘मित्र सवाद’ आलोचना की उत्कृष्टता को फलक में समेटे नाटकों की सी रोचकता बनाए रखता है। नाटकों में पत्रों के संवाद के माध्यम से कथानक का विकास होता है। ‘मित्र संवाद’ दो मित्रों के ‘हृदय सवाद’ का नाटक है। इसके पत्रों में निबंधों की सी उत्कृष्टता है। कविता की सी काव्यात्मकता कहानी की सी मार्मिकता है।

‘मित्र सवाद’ में संकलित पत्रों का सांस्कृतिक अध्ययन लगभग 56 वर्षों के भारतीय जीवन का जीवंत और प्रामाणिक सांस्कृतिक दस्तावेज है जिसका अध्ययन साहित्य में अनेक दृष्टियों से उपादेय है। यह अध्ययन साहित्य में राजनीति अर्थशास्त्र, संगीत, मूर्तिकला, स्थापत्य और प्रकृति के साथ संयुक्त रूप में प्रस्तुत करता है और इस दृष्टि से भी अधिक महत्वपूर्ण और विवेच्य बन जाता है।

‘मित्र-सवाद’ कई अर्थों में महत्वपूर्ण है। हिन्दी में पहली बार ‘संवाद’ बनने की स्थिति में इसी का स्थान है। गालिब के पत्रों के बाद उक्त पत्र ऐतिहासिक थाती हैं। सामाजिक सच को गालिब के पत्रों में भी देखा जा सकता है। प्रत्येक समाज का अपना अलग अस्तित्व है और प्रत्येक समाज की अपनी अलग संस्कृति। संस्कृति वातावरण का संवरण है। सरल समाज में संस्कृति का रूप जनवादी था। संस्कृति का यह जनवादी रूप संपूर्ण समाज को एक साथ बिना किसी भेदभाव के समानता और समरसता के साथ लेकर चलता था। जैसे-जैसे समाज सरलता से जटिलता या मिश्रित स्वरूप में परिवर्तित होता गया

वैसे-वैसे जीने की पद्धति परिवर्तित होती गयी। इस प्रक्रिया में पुरानी संस्कृति के स्थान पर एक ऐसी संस्कृति निर्मित हुई जिसने मानव समाज को लोभी बना दिया।

कालांतर में व्यवस्था में परिवर्तन आया। इसका महत्व स्थापित हुआ। इसे उत्पादन की पद्धति में परिवर्तन के एक परिणाम के रूप में रेखांकित किया जा सकता है। सामान्यतः उत्पादन की पद्धति उत्पादन के संबंधों को जन्म देती है और सामाजिक वर्गों के निर्धारण में अहम भूमिका निभाती है। इस तथ्य को सामंतवादी समाज के पतन के बाद पूंजीवादी समाज की स्थापना के मद्देनजर आसानी से परिलक्षित किया जा सकता है। पूंजीवादी समाज व्यवस्था ने उत्पादन की पद्धति में परिवर्तन लाकर उत्पादन के नये संबंधों को जन्म दिया। इससे समाज मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित हुआ— 1. सर्वहारा और 2. बुजुर्वा।

माक्स और उनके अनुयायियों की मान्यता है कि मध्यमवर्ग एक ऐसा वर्ग है जो बुजुर्वा वर्ग की तरह बनना चाहता है और उसी वर्ग का अंग बनकर शोषित सर्वहारा वर्ग का शोषण करना चाहता है। इससे दो परिस्थितियां पैदा हुई — अगर यह वर्ग बुजुर्वा वर्ग में सम्मिलित होने में सफल हो जाता है तो निश्चित रूप से शोषक समाज का प्रतिनिधित्व कर सकता है, असफल होने की स्थिति में फिर से वह सर्वहारा वर्ग का सदस्य बनकर उसका प्रतिनिधित्व करेगा। पूंजीवाद के उदय ने संस्कृति के आकार और रूप में परिवर्तन ला दिया। संस्कृति एक गतिशील अवस्था का प्रतिनिधित्व करती है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो अपने पास आने वाले सभी तत्वों को अपनाकर अपनी सीमा का विस्तार कर लेती है।

साहित्य समाज को न केवल प्रतिबिम्बित करता है बल्कि कई मायनों में प्रतिबिम्बन से आगे की बात भी करता है। ऐसी स्थिति में साहित्य का समाज से अलग रह जाना नामुकिन है। यदि देखा जाए तो साहित्यिक रचनाओं में सामंतवादी युग के शोषण की झलक स्पष्ट दिखाई देती है। इस तथ्य को कबीर की रचनाओं में देखा जा सकता है। उस दौर में आम जनता सामंतवादी उत्पीड़न से त्राहि-त्राहि कर रही थी। उसी प्रकार पूंजीवादी समाज की रचनाओं पर दृष्टि डाली जाय तो निश्चित रूप से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि साहित्यिक रचनाएं या तो शोषित समाज के स्वरूप को प्रदर्शित करती हैं या फिर कुलीन और अभिजात्य वर्ग की जीवन पद्धतियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। एक तरफ जहां पर डॉ. राम विलास शर्मा और केदार नाथ अग्रवाल तथा अन्य प्रगतिशील साहित्यकारों ने आम जनता के क्रन्दन को अपने साहित्य में प्रकट किया और उनके शोषण को दर्शाया है वहीं दूसरी तरफ वर्तमान में निर्मल वर्मा, शोभा डे जैसे रचनाकारों ने अपनी अपनी रचना में सिर्फ कुलीन वर्ग को तवज्जो दी है और यह प्रदर्शित करने की कोशिश की है कि समाज का एक हिस्सा होकर भी यह वर्ग समाज से बहुत अलग है जिसकी अपनी संस्कृति है। अगर देखा जाए तो इस प्रकार की दो तरह की रचनाएं पूंजीवादी समाज में दो ध्रुवों की तरह स्थापित हो चुकी हैं।

पूंजीवाद के उदय से समाज में शोषण के तरीकों में बदलाव आया और उसे एक नया आयाम मिला। इस आयाम का सकारात्मक पहलू होने के साथ ही नकारात्मक पहलू भी है। वह इसलिए कि इसने मानव को एक यंत्र में तब्दील कर दिया है। मानव का एक ही

तरह काम करते मशीनीकरण हो चुका है। व्यक्ति आज कहीं भी जाता है तो उस मशीनीकरण का प्रभाव उसके मनोमस्तिष्क पर छाया रहता है। 'पूंजीवाद' ने मानवीय चेतनाओं को अपना गुलाम बनाकर मानव की रचनात्मक क्षमता पर कुठाराघात किया है।

पूंजीवादी समाज के विकास के परिणामस्वरूप कृषक समाज में भी बहुत परिवर्तन आया है। कृषि का अब हल-बैल के अलावा पूरी तरह से मशीनीकरण हो गया है। इस मशीनीकरण ने पूरे समाज कृषक समाज में क्रांति का उद्घोष कर दिया है। प्रश्न यह उठता है कि आखिर वे कौन से लोग हैं जिनका कृषि की अधुनातम मशीनों पर कब्जा है। असल में यह वही लोग हैं जो पूंजीवादी समाज में सामंतों की तरह संपन्न हैं और जिनके पास प्रचुर मात्रा में भूमि उपलब्ध है। कहने का अभिप्राय यह है कि शोषित कृषक समाज तमाम परिवर्तनों के बाद भी आज शोषण की चक्की में पिसने को अभिशप्त है। आर्थिक मामलों में उसकी स्थिति ठीक पहले की तरह बनी हुई है या कि बद से बदतर हो गयी है। इसने केदार, नागार्जुन और त्रिलोचन जैसे कवियों और डॉ. राम विलास शर्मा, प्रेमचन्द्र जैसे गद्यकारों को समाज की आह को साहित्य में उतारने के लिए बेचैन किया है।

भारतीय समाज एक ऐसा समाज है जो शुरू से ही कृषि प्रधान रहा है। सर्वविदित तथ्य यह है कि यहां की आबादी का अधिकांश हिस्सा कृषि या कृषि की आय पर निर्भर है। जैसे-जैसे कृषि की यांत्रिक होड़ में कृषक समाज का एक बड़ा तबका पिछड़ने लगा, वह शहरों की ओर पलायन करने लगा। पलायन की यह प्रक्रिया लम्बी है। इस लम्बी प्रक्रिया के तहत गांवों की आबादी 'विस्थापित' होकर शहरों में मजदूरों के रूप में स्थापित होने लगी।

कृषक समाज और उसकी संस्कृति एक ऐसी चेतनाशील परिकल्पना—'अवधारणा' है जिसे छोड़कर न तो संपूर्ण हिन्दुस्तान की बात की जा सकती है और न ही भविष्य के किसी स्वप्न के साकार होने की आकांक्षा ही प्रगतिशील साहित्यकारों ने सर्वप्रथम इस तथ्य की ओर ध्यान दिया। साहित्य के संदर्भ में प्रेम चन्द के माध्यम से इस बात को हम आसानी से समझ सकते हैं। प्रेमचंद पहले साहित्यकार हैं जिनके साहित्य के शुरुआती दौर में किसान जीवन समग्रता के साथ चित्रित है तो परवर्ती दौर में मजदूर जीवन। केदार नाथ अग्रवाल की कविताओं में ग्रामीण जीवन संपूर्णता के साथ विद्यमान है। डॉ. राम विलास शर्मा प्रेमचंद द्वारा बोई गई फसल को सींचते हैं। 'मित्र-संवाद' में भले ही दुनिया जहान पर बातचीत है पर मूल उत्स तो किसान और मजदूर जीवन ही है। भारत की पारंपरिक संस्कृति को अक्षुण्ण रखने का बीड़ा दोनों मित्रों ने उठाया है।

गांवों से 'विस्थापित' होकर शहरों में 'स्थापित' होने की होड़ 'पत्र' के महत्व को बनाए हुए है। कृषि-संस्कृति के संक्रमण के दौर से गुजरने के दौरान शहरों में काम की तलाश में आये मजदूर पत्रों के द्वारा ही गांव से जुड़ते हैं। अपनी स्मृतियों से जुड़ते हैं। गांव में रहने वाले संबंधियों से आत्मीयता प्रदर्शित कर पाते हैं। गांवों से शहरों में विस्थापित लोग येन-केन-प्रकारेण रोजी-रोटी की जुगत करते हुए पत्रों से अपनी वस्तुस्थिति का आभास अपनी को कराते हैं। यह बहुत ही सस्ता माध्यम है। पत्र एक तरह से शोषित, उत्पीड़ित वर्ग का संचार माध्यम है। बुर्जुवा वर्ग भले ही फोन पर बात कर ले लेकिन जब स्मृतियों से जुड़ाव की बात आती है, सगे संबंधियों, मित्रों को जन्मदिन की शुभकामनाएं देनी होती हैं तब वह बधाई संदेश

पत्र' मे ही व्यक्त करता है। तो इसलिए पत्रों की संस्कृति भारतीय अस्मिता और समाज के साथ जीवित रहेगी।

आज का भारत सांप्रदायिक रूप से कुत्सित शक्तियों की चपेट में है। गुजरात की भयावहता ने हिन्दू-मुस्लिम समुदाय के बीच की खाई को चौड़ा किया है। मित्र सवाद के मित्र स्वभावतः आलोचक और कवि है। दोनों की प्रकृति भिन्न है लेकिन मित्रता सांसों के अंतिम क्षण तक चली। आज हम इनसे प्रेरणा ले सकते हैं। जब स्वभावतः दो भिन्न रुचि के लोगों में मित्रता हो सकती है तो हम हिन्दू-मुस्लिम के झगड़े में क्यों फंसें? 'मित्र-संवाद' से प्रेरणा पाकर एक दूसरे के करीब आ सकते हैं।

आज का भारत संयुक्त परिवार की परंपरा को खोता चला जा रहा है। सांस्कृतिक परंपरा तो यही कहती है कि हम लोगों के परिवारों के बीच एका हो, लेकिन पश्चिम की सभ्यता व संस्कृति से प्रभावित व उसमें आकंठ लोगों को इसकी चिंता कहां? उन्हें तो क्षणिक तुष्टि चाहिए। 'मित्र-संवाद' परिवार की अवधारणा को बचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

उन्होंने बीसवीं सदी के लम्बे समय को देखा। नई सदी की दोनों मित्र प्रतीक्षा कर रहे थे। एक नये युग की टोह उनके साँसों को रोके हुए थी। वे नई सदी की पदचाप को सुन रहे थे। अब 'संवाद' बंद हो चुका था। आँखों से पिछली सदी के गणित को हल कर रहे थे। सन् 2000 के शुरुआती 5-6 महीनों के बाद दोनों मित्र इक्कीसवीं सदी के शुरुआती वर्ष के पूर्वार्द्ध को जीकर और पश्चात्य को ठगा सा छोड़कर चले जाते हैं। वे आज इस दुनिया में नहीं हैं। लेकिन उनकी महक आज भी हवा को सुगंधित कर रही है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध का पहला अध्याय 'साहित्यिक विधा के रूप में पत्रों की क्षमता और स्थान' है। कुछ लोग चौक सकते हैं कि क्षमता तो जीवित मनुष्यों में ही होती है। पाती आधा नहीं बल्कि पूर्ण मिलन है। जहाँ पूर्ण मिलन होगा, वहाँ तो जीवन संभव है। इस अध्याय में यही कोशिश है कि पत्रों को मनुष्य के समान जीवित कर दिया जाए।

दूसरा अध्याय 'हिन्दी में पत्र-साहित्य की परंपरा' है। पत्र लिखने की शुरुआत किस तरह हुई और वर्तमान परिवेश में कैसे यह विधा के रूप में स्थापित हो गई, इसका विश्लेषण इस अध्याय में हुआ है। पत्रों की परंपरा का अवगाहन है।

तीसरा अध्याय 'मित्र-संवाद के पत्रों के विषय' है। इस संवाद के विषय का संबंध समाज से गहरे रूप में जुड़ा हुआ है। समाज के विकास में सभ्यता व संस्कृति का महत्वपूर्ण योगदान होता है। परिवार के प्रभावित होने पर संपूर्ण समाज प्रभावित होता है। दोनों मित्रों की निगाह दुनिया जहाँ की घटनाओं को परत-दर-परत स्पष्ट करती है।

चौथा अध्याय 'मित्र-संवाद के पत्रों की साहित्यिकता' है। साहित्यिकता संवेदनात्मक होती है। बिना संवेदना के साहित्यिक विमर्श हो ही नहीं सकता। इसके बिना तो समाजशास्त्र और इतिहास की रचना संभव है। तो दोनों मित्रों की संवेदना के दायरे में जितनी चीजें हैं, उन्हीं की सुगंधग्राहक इस अध्याय में मिलेगी।

पाँचवा अध्याय 'मित्र-संवाद के पत्रों का महत्व' है। इस संवाद के जितने भी पत्र हैं, वे अपनी सरलता, संक्षिप्तता और उत्कृष्टता में बेजोड़ हैं। किसी भी रचनाकार का मूल्यांकन समग्रता में होना चाहिए। 'मित्र संवाद' में संकलित पत्रों के अलावा दूसरी कृतियों में छपे केदार नाथ अग्रवाल और राम विलास शर्मा के पत्रों को भी दिखलाया गया है।

उपसंहार में सभी अध्यायों को मूल्यांकित करने की कोशिश की गई है। डॉ. राम विलास शर्मा केदार नाथ अग्रवाल का बड़प्पन कितना अभिभूतकारी था। मित्रता की ओर उसे मृत्युपर्यन्त निभाया। ऐसा आज कम देखने को मिलता है। नहीं के बराबर। दोनों मित्रों की मित्रता निर्मल, निश्छल और पवित्र है। हमें दोनों मित्रों से प्रेरणा लेनी चाहिए। एक स्तर पर दोनों मित्र समाज के साहित्यिक विमर्श में प्रतीक पुरुष हो जाते हैं। जब इस प्रकार की मित्रता होगी तभी सामाजिक, सांस्कृतिक विकास संभव है, वरना समाज की क्षति तय है।

प्रस्तुत विषय पर साक्षात्कार के लिए डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी जी ने समय दिया। इतने बड़े विद्वान का इतनी सहजता से मिलना मेरे लिए अभूतपूर्व अनुभव था। मैं उनके प्रति आभारी हूँ।

डॉ. वेद प्रकाश सर ने मुझे समय-समय पर विषय की गंभीरता से अवगत कराया। उनका सुझाव मुझे मिलता रहा। उन्होंने विषय की रोचकता को शुरू से अंत तक बनाये रखा। इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

प्रस्तुत शोध का यदि समय पर पूरा हो जाना है तो इसका पूरा श्रेय श्री जसवीर त्यागी जी को जाता है। जसवीर सर का पूरा 'स्नेह' व सहयोग मिला। उन्होंने मेरी हर परेशानी को अपनी परेशानी समझा। मेरे लिए हमेशा खड़े रहे। शोध के दौरान आयी दिक्कतों को उन्होंने बड़े सलीके के साथ निपटाया। मुझे निरंतर सुझाव देते रहे। उनके सुझावों से मेरा बहुत लाभ हुआ है। इसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देने की धृष्टता नहीं कर सकता।

डॉ. ओम प्रकाश सिंह जी से विचार-विमर्श का बहुत अधिक लाभ मिला है। जब भी कभी उनकी आवश्यकता हुई तो उन्होंने मुझे मना नहीं किया। बल्कि मेरे विषय को सुलझाते रहे। मेरे दिमागी तनाव को दूर करते रहे, ढाढस बंधाते रहे और काम के प्रति प्रोत्साहित करते रहे।

डॉ. रामविलास शर्मा के सुपुत्र डॉ. विजय मोहन शर्मा जी ने मुझे दोनों मित्रों के पत्र उपलब्ध कराये। उन्होंने डॉ. रामविलास शर्मा के जीवन और साहित्य संबंधित अनेक पहलुओं को बड़े अनौपचारिक तरीके से बतलाया इसके लिए मैं उनका शुक्रगुजार हूँ।

अब तक मेरे निर्माण में जितने भी गुरुजनों का योगदान रहा है; मैं उनका ऋणी हूँ। इस 'गुरु-ऋण' को चाहकर भी चुकाया नहीं जा सकता।

एम.ए. में अध्ययन के दौरान मेरी अम्मा की मृत्यु मेरे जीवन की सबसे बड़ी दुर्घटना थी। मेरी बहुत क्षति हुई। वैसे भी मृत्यु जीवन का सच है। एक ऐसा सच जिसे चाहकर भी झुठलाया नहीं जा सकता है। शोध-प्रबंध के पूरा होने तक सिर्फ उनकी स्मृतियाँ शेष हैं। उनके तीन पत्र भी मेरे नाम हैं। मेरे अध्ययन से ही संबंधित वे सारे पत्र हैं। यदि आज वे जीवित होतीं तो बहुत

खुश होती। पापा ने कभी भी मुझे आर्थिक पक्ष को लेकर परेशान नहीं होने दिया। ऐसे में पापा का योगदान सर्वाधिक सच है। सबधों के दायरे में आने वाले सभी लोगों का मुझे भरपूर स्नेह व सहयोग मिला है।

पी-एचडी में अध्ययन के दौरान डॉ० रमेश रावत, डॉ० नीरज, श्री अजय बिसारिया, श्री आशुतोष कुमार, डॉ० इफ्त असगर, डॉ० तसनीम सुहैल आदि अध्यापकों से विचार-विमर्श का बहुत लाभ मिला है।

शोध के दौरान सीमा, विवेक कात, आशुतोष पाण्डेय, मनोरजन कुमार, साबिर, नदीम, कामिल, राजेश, परितोष भैया, अजीत कुमार मिश्र, अजीत, सजय सेठ आदि अन्यान्य मित्रों का अपनत्व मुझे आकृष्ट करता रहा। वर्तमान दौर में जब व्यवसायिकता चरम पर है तो ऐसे में विक्रम का मित्रवत् टाइप करना काफी अच्छा लगा। उनकी मेहनत ने मुझे अधिक परेशान नहीं किया।

मैंने शोध प्रबन्ध के सामग्री सकलन का कार्य मौलाना आजाद लाइब्रेरी, अलीगढ़, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली की लाइब्रेरी, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली की लाइब्रेरी, राजधानी कॉलेज, दिल्ली की लाइब्रेरी, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली की लाइब्रेरी से किया।

अतः अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष प्रो० उदय शंकर श्रीवास्तव जी ने इस शोध-प्रबन्ध को प्रस्तुत करने की अनुमति दी, मैं उनके प्रति हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ।

सन् 2002

विनय कांत मिश्र
हिन्दी विभाग,
कला सकाय,
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़, उ प्र

अनुक्रम

भूमिका

अध्याय — एक

साहित्यिक विधा के रूप में पत्रों की क्षमता और स्थान

अध्याय — दो

हिन्दी में पत्र-साहित्य की परंपरा

उप अध्याय—एक

संस्कृत और हिन्दी काव्य में पत्रों के संदर्भ

(क) संस्कृत काव्य में पत्र

(ख) हिन्दी काव्य में पत्र

उप अध्याय—दो

हिन्दी गद्य में पत्र साहित्य की परंपरा

(क) हिन्दी गद्य में लिखित पत्र

(ख) जनपदीय भाषाओं में लिखित पत्र

(ग) भारतेन्दु कालीन पत्र साहित्य ।

(घ) द्विवेदीकालीन पत्र साहित्य

(ङ) छायावादकालीन पत्र साहित्य

(च) छायावातोत्तर कालीन पत्र साहित्य

(छ) स्वातंत्र्योत्तर पत्र साहित्य

(ज) 1980 के बाद प्रकाशित पत्र-साहित्य

(पत्र साहित्य का उत्कर्षकाल)

उप अध्याय—तीन

पत्रिकाओं में छपे प्रमुख साहित्यिक पत्र

अध्याय—तीन

मित्र-संवाद के पत्रों का विषय

उप अध्याय—एक

साहित्यिक

(1) प्राचीन मध्यकालीन साहित्यकार

(2) आधुनिक समकालीन साहित्यकार

उप अध्याय—दो

पारिवारिक

उप अध्याय—तीन
राजनैतिक

उप अध्याय—चार
आर्थिक

उप अध्याय—पाँच
प्रकृति

उप अध्याय—छः
साहित्येतर कलाएँ

अध्याय—चार
मित्र—संवाद के पत्रों की साहित्यिकता

उप अध्याय—एक
विचारधारा और साहित्य का अंतःसंबंध

उप अध्याय—दो
काव्य दृष्टि और मध्यकालीन काव्य का विश्लेषण

उप अध्याय—तीन
निराला, प्रगतिशील कविता और नई कविता

उप अध्याय—चार
गद्य साहित्य का विश्लेषण

उप अध्याय—पाँच
'मित्र—संवाद' का गद्य विधान

अध्याय—पाँच
'मित्र—संवाद' के पत्रों का महत्व

उपसंहार

अनुक्रमणिका

परिशिष्ट

अध्याय – एक

साहित्यिक विधा के रूप में
पत्रों की क्षमता और स्थान

अध्याय — एक

साहित्यिक विधा के रूप में पत्रों की क्षमता और स्थान

भारतेन्दु युग में अनेक नवीन विधाओं का उद्भव हुआ अथवा पुरानी विधाओं का नवीनीकरण हुआ। नवीन विधाओं का जन्म तत्कालीन स्वाधीनता की चेतना का परिणाम था। भारत स्वतंत्र होने के साथ ही अभिव्यक्ति के नये-नये माध्यम तलाशने लगा। भारत को 1947 में आजादी मिली। कानूनी रूप से भारत की स्वयं की सत्ता और सविधान लागू हुए। हम स्वाधीन तो 1947 में हुए लेकिन साहित्य का जनतंत्रीकरण भारतेन्दु से ही प्रारंभ हो जाता है क्योंकि इच्छित यथार्थ साहित्य में ही आ सकता था। निबंध, नाटक, उपन्यास, कहानी, यात्रा-संस्मरण, डायरी, पत्र इत्यादि सभी विधाओं का जन्म हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि में सहायक होता है। डॉ. नित्यानंद तिवारी लिखते हैं— शिक्षा, संस्कार, रुचि और व्यक्तिगत विशेषता के कारण रचनाकार अपने वक्तव्य की अभिव्यक्ति के लिए प्रचलित विधाओं में से किसी को चुन लेता है। कई बार वह अपनी पसंद की विधा को भी अपर्याप्त पाता है इसलिए उसे तोड़ता और विकसित करता है। कभी-कभी अपने वक्तव्य को व्यक्त करने के लिए नया प्रयोग भी करता है। प्रयोग की इस प्रक्रिया में नई विधा अस्तित्व में आ जाती है। किन्तु नई विधा का विकास या पुरानी विधाओं के रूप में परिवर्तन पूरी तरह रचनाकार के प्रयोग पर निर्भर नहीं है। असल में उसकी प्रतिभा युगीन वास्तविकता और समूह चित्त को आत्मसात् कर लेती है। नई विधाओं के उद्भव और पूर्व प्रचलित विधाओं में परिवर्तन तब होता है जब ऐतिहासिक कारणों से आए जीवन में बदलाव और रचनाकार की प्रतिभा का मेल बैठ जाता है।¹ कारण स्पष्ट है कि इसके मूल में बदलती हुई मानसिकता थी और पत्र साहित्य भी इस बदलती हुई मानसिकता का परिणाम था।

साहित्य के जनतंत्रीकरण की प्रक्रिया में पत्र, साहित्य की स्वतंत्र विधा के रूप में सशक्त हुआ। आधुनिक युग में चित्तवृत्ति बदली। कविता की परंपरा के समानांतर साहित्य जगत में अन्याय विधाओं की भी प्रतिष्ठा हुई। आज लगभग 100 वर्ष बीत चुके हैं। अब तक कई विधाओं का प्रणयन हो चुका है। सबकी समृद्ध परंपरा भी मिलती है। सौ वर्षों का समय कम नहीं होता। इन्हीं 100 वर्षों में रूस में समाजवाद आया और एक तरह से वह असफल भी हो गया। सौ वर्षों के दौरान दुनिया ने दो विश्वयुद्ध देखे। पिछले सौ वर्षों में गांधी जैसे महामानव ने जन्म लिया। हिटलर की तानाशाही से विश्व आक्रांत हुआ। पिछले सौ वर्षों में ही साहित्य की नई-नई विधाओं का जन्म हुआ। गद्य कवीना निकसवदन्ति' वाली कहावत आधुनिक युग में चरितार्थ हुई। गद्य के समृद्ध होने के कारण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आधुनिक काल को 'गद्य-काल' भी कहते हैं। रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं, "संस्कृत में जहाँ कहा गया है कि गद्य रचना कवियों के लिए भी कसौटी है तो वहाँ भाव शायद रहा होगा कि चित्तन तो व्यवस्थित गद्य में ही किया जा सकता है। और व्यवस्थित चित्तन कवि के लिए कठिन कर्म सदैव रहा है, अतः गद्य लिखना कवियों के लिए कसौटी भी है और चुनौती भी। यहाँ इस समूची व्याख्या में यह अतर्निहित है कि गद्य मुख्यतः बोलने के लिए है, और उसे लिखना अपनी कुछ निजी समस्याएँ खड़ी करना है, यह भी संकेत है कि भाव-प्रवणता कविता की विशेषता है तो चित्तनशीलता गद्य की। और कविता के अनुभव का आस्वाद विशिष्ट जन समुदाय के लिए है जबकि गद्य के मूल जनतांत्रिक स्वरूप की

और संकेत करती है। आचार्य रामचन्द्रशुक्ल ने अपने इतिहास लेखन में आधुनिक काल को गद्य काल कहा था। यह रोचक विडंबना है कि हिन्दी साहित्य के संदर्भ में इस नामकरण के औचित्य का एक प्रमुख कारक जनतंत्र इतिहासकार के बाद उदित होता है।² वस्तुतः यह गद्य की विस्तृत पहुँच है। गद्य की भाषा साधारण जन समाज से सहज संप्रेषित होती है। किसानों से, मजदूरों से, वे सीधी भाषा में साक्षात्कार करते हैं। गद्य-जीवन के सहज बोलचाल की भाषा है। भाषा का अनिवार्य संबंध बोलचाल से था, फिर क्रमशः गद्य बोलचाल के लिए रहा और कविता विशेष अवसरों व उत्सवों की भाषा बन गई। मंच पर कविता जमने लगी और व्यापक जनसमुदाय में गद्य तथा दो आत्मीयों में पत्र। नितांत वैयक्तिक।

डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया के अनुसार, "किसी भी व्यक्ति/साहित्यकार का सहजरूप उसके द्वारा लिखे गये पत्रों में देखा जा सकता है। किसी भी बात को, संदेश को एक व्यक्ति के पास से दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाने का माध्यम पत्र है फिर वह चाहे कितनी दूर रहता हो। पत्र वह लिखित संदेश है जो किसी दूसरे आदमी अथवा विरोधी व्यक्ति के पास किसी माध्यम से भेजा जाता है। व्यक्ति के महत्व के अनुसार पत्र भी महत्वपूर्ण हो जाता है। कभी-कभी पत्र के महत्व के कारण पत्र लेखक ही नहीं पत्र पाने वाला भी धन्य हो उठता है। प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों के पत्र साहित्य की अक्षय निधि बन जाते हैं। यही कारण है कि अब साहित्य की नवीन विधाओं में 'पत्र साहित्य' विशिष्ट अंग बन गया है।³ ऐसा नहीं है कि प्राचीन काल में प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों की कमी थी, उनकी बहुतायत थी। लेकिन पत्र ने मुद्रण कला के परिणामस्वरूप आधुनिक स्वरूप ग्रहण किया। दरअसल आधुनिक युग में गद्य के आविर्भाव के मूल में मुद्रण कला है। प्रेस की स्थापना और विकास के साथ ही साथ गद्य की नई-नई विधाओं का आविर्भाव हुआ और विकास भी। रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं— "आधुनिक काल में गद्य के आविर्भाव के पीछे मुद्रण कला का आरंभ एक बाहरी कारक है, वस्तुतः तो आधुनिक युग की वर्द्धमान बौद्धिक और विश्लेषण मूलक वृत्ति गद्य के विकास का अधिक बुनियादी कारण है। इस दृष्टि से आचार्य शुक्ल का आधुनिक काल को 'गद्य-काल' कहना सिर्फ बाह्य प्रयोग के आधार पर ही नहीं आंतरिक वृत्ति के आधार पर उतना ही उपयुक्त है, यद्यपि कि नामकर्ता पहले संकेतित जनतांत्रिक वृत्ति की ही तरह स्वयं इस दूसरे काल के प्रति बहुत सजग नहीं जान पड़ता। बौद्धिक दृष्टिकोण और जनतंत्र के प्रति ललक मिलकर हिन्दी भाषी जन के मन में, जैसे कि अन्य कई भारतीय भाषा क्षेत्रों के मन में, राष्ट्रीयता की प्रबल भावना उद्दीप्त करते हैं। राष्ट्रीयता की इस भावना के संचार के लिए भी गद्य की आवश्यकता आधुनिक काल में उभरकर सामने आई।"⁴ स्वतंत्रता की लड़ाई में भारत का किसान लड़ा था। शोषण की चक्की में पिस रही जनता के मन का प्रगटीकरण था — 'स्वतंत्रता आंदोलन'। लोग एक-दूसरे से बोलचाल की भाषा में ही जुड़ सकते थे। लोगों का भावनात्मक स्तर पर जुड़ाव हुआ। फलस्वरूप गद्य की भाषा, स्वतंत्रता की भाषा का पर्याय बन गई। आवश्यकता के फलस्वरूप गद्य की भाषा का आविर्भाव हुआ और शनैः शनैः उसने श्रेष्ठता का स्वरूप अख्तिायार कर लिया। रामस्वरूप चतुर्वेदी का मत है कि "गद्य का श्रेष्ठ रूप वह है जहाँ वह अपने लिए है, किसी अन्य माध्यम के हित में उसका उपयोग नहीं किया जा रहा। पर हुआ ऐसा बहुत कम है। प्रायः तो महत्वपूर्ण होते हुए भी गद्य, सामान्य जन की तरह, पिछले समय से उपेक्षित रहा है। हमारे साहित्य में उसकी स्थिति बहुत कुछ नकारात्मक विभावन की है। कविता स्वतः संपूर्ण या कि संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न रही है। कविता में कुछ और नहीं लिखा गया, कविता स्वयं लिखी जाती रही है। गद्य का दर्जा वैसा नहीं रहा। गद्य में उपन्यास, कहानी,

नाटक, निबंध, समीक्षा और कुछ हट कर पत्रकारिता के रूप चलते हैं, पर इनसे स्वतंत्र और निरपेक्ष गद्य को स्वीकार नहीं किया गया।⁵ कुछ प्रायः उपेक्षित रहे या किसी की चर्चा हुई भी तो बहुत कम। डायरी, रिपोर्टाज, संस्मरण और पत्रों पर चर्चा कम हुई है। इनकी परंपरा उतनी समृद्ध नहीं रही है, फिर भी जितनी है, सशक्त है।

साहित्यिक विधाओं का संबंध उनकी संस्कृति से होता है। दोनों का संबंध इतना घनिष्ठ होता है कि एक वे अभाव में दूसरे की कल्पना भी नहीं की जा सकती। "संस्कृति मनुष्य की आत्मचेतना का प्रदर्शन नहीं, उस सामूहिक मनीषा की उत्पत्ति है, जो व्यक्ति को एक स्तर पर दूसरे व्यक्ति से और दूसरे स्तर पर विश्व से जोड़ती है।"⁶ आगे निर्मल वर्मा लिखते हैं, "संस्कृति का यह भारतीय स्वरूप पश्चिम की सांस्कृतिक धारा से नितांत भिन्न है। यूरोपीय संस्कृति का आविर्भाव ही व्यक्ति की विकसित आत्मचेतना द्वारा संभव हो पाया है। इस आधार पर अकेले व्यक्ति ने यथार्थ का एक निजी, स्वायत्त दर्शन सृजित किया है— एक ऐसा दर्शन जिसकी जड़ें, उसके व्यक्तिगत अनुभव में निहित हैं। दूसरे शब्दों में पश्चिमी संस्कृति का प्रादुर्भाव एक ऐसी खंडित चेतना में हुआ है, जहाँ मनुष्य अपने को प्रकृति, विश्व और दूसरे मनुष्य से बिल्कुल अलग पाता है और उसे अनुभव होता है कि इस अलगाव और विभाजन को महज धार्मिक आस्था या परंपरा द्वारा नहीं पाटा जा सकता। मध्य-युग के बाद यूरोपीय व्यक्ति को पहली बार यह महसूस हुआ कि धर्म और परंपरा उसे सहारा और सांत्वना तो दे सकते हैं, किन्तु उसके अन्दरूनी मर्म की गहरी पतों में नहीं पैठ सकते, जहाँ वह संपूर्ण रूप से स्वतंत्र है और अपनी स्वतंत्रता में संपूर्ण रूप से अकेला है। अतः यूरोप में वैयक्तिक चेतना और धार्मिक विश्वासों के बीच एक चौड़ी खाई खुलती गई, अपनी चेतना में मनुष्य अकेला और निस्सहाय पड़ता गया; जबकि दूसरी तरफ धर्म जीवन-धारा से कटकर केवल चर्च की एकाधिकार 'संपत्ति' बन कर रह गया, जिसके सामने व्यक्ति घुटने टेककर अपनी पीड़ा से छुटकारा तो पा सकता था, किन्तु इस धरती पर सम्पूर्ण जीवन की उपलब्धि नहीं।"⁷ धरती पर सम्पूर्ण जीवन की उपलब्धि तो एक समेकित समाज में ही संभव है। वैयक्तिकता की हद को पारकर व्यक्ति समाज की सहयोगात्मक इकाई के रूप में कार्य करेगा तभी समाज और व्यक्ति दोनों की उपलब्धि है।

संस्कृति की जड़ें परंपरा में गहरे रूप में धँसी होती हैं। "समाज की जड़ें अतीत में होती हैं, वह वर्तमान में जीता है और भविष्य उसके लिए चिंता और प्रावधान का विषय होता है। परंपराएँ अतीत को वर्तमान और वर्तमान को भविष्य से जोड़ती हैं। उनके माध्यम से सामाजिक जीवन को निरंतरता मिलती है और उसका स्वरूप निर्धारित होता है। परंपराएँ हर समाज और उसके भिन्न समुदायों और समूहों की आत्म-छवि का अविभाज्य अंग होती हैं और जीवन के अनेक क्षेत्रों में उनका दिशा निर्देश करती हैं। परंपराओं का मूल्य केवल प्रतीकात्मक नहीं होता उनसे महत्वपूर्ण प्रकार्य जुड़े होते हैं— वे समाज के समाकलन में सहायक होती हैं और उसे आस्था का आधार देकर जीवन के लक्ष्य और मूल्य निर्धारित करती हैं। दुनिया में शायद ही कोई ऐसा समाज हो जो पूरी तरह से अपनी परंपराओं से कटा हो।"⁸ परंपरा किसी भी समाज या देश के विकास के लिए कितनी सार्थक है इसकी निर्भरता इस बात पर है कि उसके आधार प्रतिमान मानदंड क्या हैं? यदि इसका संबंध सभी जातीय-अस्मिता से है तो इसकी प्रासंगिकता एवं सार्थकता असंदिग्ध है। परंपराओं का महत्व इस वैज्ञानिक युग में भी कम नहीं हुआ है— क्योंकि विश्व के किसी भी देश के जातीय आंदोलनों के उभार में परंपरा की विशेष भूमिका होती है। हम यह भी कह सकते हैं कि जब इन परंपराओं पर आघात या उसके अंत की कोशिश की जाती है

तो इसकी प्रतिक्रिया में जातीय आंदोलन उभरते हैं। वेद, पुराण आदि के आधार पर हम अपनी परंपरा को विकसित करते हैं लेकिन यह ध्यान देने योग्य है कि क्या वेद, उपनिषद आदि में अपने समय के यथार्थ अंकन हैं अथवा क्या उसमें समाज के सभी पक्षों का यथार्थ अंकन है। रेडफील्ड मिल्टन सिंगर ने 'महान' और 'लघु' परंपराओं की अवधारणाएँ विकसित की हैं। "राबर्ट और उनके अंतःसंबंधों के आधार पर भारत की जटिल सांस्कृतिक प्रक्रियाओं को समझने के प्रयत्नों को प्रोत्साहित किया है। दार्शनिक चिंतन के आधार पर प्राचीन भारत के मनीषियों ने मूल्यों और आदर्श समाज-व्यवस्था की जो परिकल्पना विकसित की है, वही महान परंपरा का आधार है। इसके प्रतिमानों को साक्षर समाज के एक बड़े भाग ने आंशिक रूप से अपनाया। समकालीन संप्रेषण के साधनों ने इनका प्रसार किया और उसके कुछ अंश क्षेत्रीय और स्थानीय संस्कृतियों ने भी आत्मसात किये। जीवन-दर्शन, मूल्यों और सामाजिक व्यवस्था में इस तरह, कुछ एकरूपता आयी, किंतु इससे जातीय, स्थानीय और क्षेत्रीय संस्कृतियाँ अभिभूत नहीं हुई, उन्होंने अपनी अस्मिता की रक्षा की और अपने विशेषता सूचक चिन्हों को बचाए रखा। लोकाचार और लौकिक परंपराएँ बलवती सिद्ध हुई। उनके लघु परंपराओं के अनेक तत्व महान परंपरा में प्रतिष्ठित हुए। जो परंपरा विकसित हुई, उसमें दोनों के तत्व थे।"⁹ परंपराओं का महत्व सिर्फ सामाजिक नहीं होता वरन् उसका संबंध समाज के साहित्य से भी होता है। किसी भी साहित्यिक विधा की अपनी परंपरा होती है। एक निरंतरता उस विधा को सशक्त बनाती है।

यदि पत्रों की निरंतरता को बरकरार रखा जाए तो भारतेन्दु युग से लेकर आज तक के ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक विकास या ह्रास का दिग्दर्शन हो जाएगा। जिस तरह कविता, कहानी, निबंध, उपन्यास आदि साहित्यिक विधाओं में तत्कालीन समाज परिलक्षित होता है उसी प्रकार पत्रों में व्यक्तियों की दृष्टि सामाजिक-सांस्कृतिक घटनाओं का जीवन्त दस्तावेज होती है। "पत्रों के माध्यम से लेखक का निजी जीवन ही उद्घाटित नहीं होता वरन् बहुत सी साहित्यिक गुंथियाँ सुलझती हैं, साथ ही साहित्य की प्रवृत्तियाँ स्पष्ट होती हैं। जीवन के किसी भी क्षेत्र में राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक आदि ख्याति प्राप्त व्यक्ति के पत्र पठनीय होते हैं और उनका संग्रह किया जाता है। पत्रों के संग्रहकर्ता वरिष्ठ साहित्यकार पं. बनारसी दास चतुर्वेदी का कथन है— 'जीवन चरित्रों में पत्रों का बड़ा महत्व है। शरीर में रक्त-मांस का जो स्थान है, वही स्थान जीवन चरित्रों में छोटे-छोटे किस्से कहानियों तथा पत्रों का है।'"¹⁰

"गद्य-साहित्य की विभिन्न विधाओं में अपनी वैयक्तिकता, अनौपचारिकता, हार्दिकता आदि विशेषताओं के कारण, पत्र को विशेष महत्व प्राप्त है। यद्यपि पत्र-लेखन मनुष्य के लिए सहज और अनिवार्य क्रिया है, किंतु जब किसी व्यक्ति के पत्र उसके व्यक्तित्व की गरिमा के कारण मानव समाज को प्रभावित करते हैं, तब वे महत्वपूर्ण हो उठते हैं। ऐसे ही पत्र प्रकाश में आकर साहित्य की स्थायी सम्पत्ति बन जाते हैं।"¹¹

"हमारे व्यक्तिगत संबंधों की नींव पत्राचार सुदृढ़ करता है। आत्मीय जनों से वार्तालाप और पत्र-व्यवहार करने से हमें अपूर्व आनंद की अनुभूति होती है। जिस प्रकार हरे-भरे पत्रों अर्थात् पत्तों के बिना तरुवर शुष्क और नीरस लगता है, उसी प्रकार स्वजनों के प्रेम पूर्ण पत्रों के बिना जीवन सूना-सूना और खोया-खोया सा जान पड़ता है। जीवन की निपट एकान्तता को दूर करने तथा सुहृद मित्रों के सान्निध्य का सुख-लाभ करने के लिए एक मात्र उपाय पत्र लेखन ही

है।¹² रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं, “साहित्यकारों के जीवन क्रम में पत्र ऐसा गद्य है जो साहित्य की तरह लिखा नहीं जाता, पर साहित्य का अंग हो जाता है।”¹³

वियोगी हरि, रामशंकर द्विवेदी के नाम 22.3.1968 को लिखे पत्र में विचार व्यक्त करते हैं, पत्रों में अजेय शक्ति होती है, यदि हम अपना हृदय उनमें उड़ेल सकें। जितने भी भाई मुझे मिले वे सभी पत्रों की देन हैं। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के चरणों की धूलि भी पत्रों की ही बदलती मिली।¹⁴ कमल पुजाणी लिखते हैं, “सम्वेदनशील व्यक्तियों के पत्र केवल कागज के टुकड़े नहीं होते, उनमें भावनाओं का स्पन्दन होता है हृदय की धड़कने होती है। गुरुदेव टैगोर की ‘छिन्न पत्रावली’ में जैसा उनका हृदय धड़कता है, वैसा ‘गोरा’ में नहीं।”¹⁵

डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी गालिब के पत्रों का महत्व तो बताते ही हैं साथ ही पत्रों की साहित्यिकता को रेखांकित करते हुए लिखते हैं “गालिब के लिए ‘पाती आधा मिलन’ नहीं, मिलन है। लिखते हैं, मैं इस तन्हाई में सिर्फ खुतूत के भरोसे जीता हूँ याने जिसका खता आया मैंने जाना कि वो शख्स तशरीफ लाया। उनके पत्रों में दृश्यता भरी होती है। वह पत्र क्या लिखते हैं, बातें करते हैं। पत्र की विधा की सीमाएँ तोड़कर। मानो वह शख्स उनके सामने है और वह बतिया रहे हैं। वह पत्र शुरू करते हुए देश की सीमाएँ लाघकर सीधे उस व्यक्ति के पास पहुँचते हैं जिसे पत्र लिख रहे हैं, सर्जना की तरह एक मायालोक रचते हैं—

कोई जरा युसूफ मिर्जा को बुलाइयो। लो साहब वे आये। मियों मैंने कल खत तुमको भेजा है, मगर तुम्हारे एक सवाल का जवाब रह गया है। अब सुन लो।

चूँकि पत्र लेखक लिख नहीं रहा है, बातें कर रहा है इसलिए ‘सुन लो’। ‘पढ़ लो’ नहीं।

इसके ज्यादा उदाहरण देने की जरूरत नहीं। गालिब का लगभग प्रत्येक पत्र इसका उदाहरण है।

पत्र को साहित्यिक विधा माना जा सकता है। इसका सबसे अकाट्य तर्क गालिब के पत्र है। गालिब के पत्र बहुत दूर तक गालिब की कविता की व्याख्या भी हैं। जो लोग रचना और रचनाकार के जीवन की अतःसूत्रता को नकारते हैं उन्हें गालिब की कविता और उनके पत्रों को ध्यान से पढ़ना चाहिए। अतःसूत्रता स्वीकार करने वालों को तो और ज्यादा।¹⁶ पत्रों में रचनाकार का व्यक्तित्व परिलक्षित होता है।

कमल पुजाणी लिखते हैं, “वैयक्तिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक आदि अनेक दृष्टियों से पत्रों का बहुत बड़ा महत्व है कवि या साहित्यकार जिन उद्गारों को अपनी कविताओं और निबन्धों में व्यक्त नहीं करते या कर पाते, उन्हें वे अपनी चिट्ठियों में अवश्य प्रकट करते हैं, इस प्रकार पत्र एक निर्मल दर्पण है, जिसमें लेखक का वास्तविक व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित होता है।”¹⁷ अशोक वाजपेयी लिखते हैं, “आधुनिक साहित्य का इतिहास और विकास पूरी तरह समझा ही नहीं जा सकता जब तक हम लेखकों के आपसी, आत्मीय और अनौपचारिक सवाद को हिसाब में न लें। कौन जानेगा कि अमृतलाल नागर अपने एक पत्र में ऐसा विनोद—गद्य लिख सकते थे तुम्हारे रेडियो भूषण हो जाने की बात प्रायः यथासमय सुन ली थी। यो उन्नति करते हुए एक दिन अवश्य ही भारतभूषण बन जाओगे।” या कि अमृतराय का यह स्वीकार कि उनकी कहानी

समय क्यों रोज की याद दिलाती है, यह मैं खुद समझ नहीं पाता, मगर दिलाती है इसमें सदेह नहीं। लिखते समय तो नहीं शायद यह कहानी पूरी करने पर जब मैंने पहली बार उसको पढ़ा था तब मुझे भी 'रोज' की याद आयी थी। 'किसे पता है कि भारत जी का उपन्यास लौटते लहरो की बासुरी पर जैनेन्द्र कुमार ने अपने एक पत्र में कहा था कि 'कला की इस उत्तीर्णता पर भारतभूषण अग्रवाल मेरी ईर्ष्या के पात्र हो सकते हैं?' रघुवीर सहाय ने, भारत जी की इस सलाह पर कितना अमल किया, यह पता नहीं 'दिल्ली में नौकरी मिली है, धीरज रखोगे तो प्रेयसियाँ भी मिलेगी— और अंत में पत्नी भी। लेकिन पत्नी दूढ़ोगे तो प्रेयसी भी शायद न मिले। धर्मवीर भारती के प्रसिद्ध उपन्यास 'सूरज का सातवा घोड़ा' के बारे में भारत जी की इस अटकल को कभी किसी ने हिसाब में लिया है नहीं मुझे मालूम नहीं' उपन्यास के नाम का तार सप्तक से हो न हो एक सबध है। अर्थात् उसमें सम्मिलित सात कवियों में छह प्रगतिवादी या प्रगतिशील होने के कारण उन दिनों आपकी अश्रद्धा के ही पात्र थे, अंत में मरियल घोड़े हैं, और सातवें घोड़े अज्ञेय है जो सपने भेजते हैं और सूर्य को दलदल से निकालते हैं उस उपन्यास में प्रगतिवादियों के कठमुल्लापन पर प्रहार है। यह तो हम पहले से ही जानते थे। खाओ—बदन बनाओ और निष्कर्षवादी कहानियों के हामी माणिक मुल्ला डॉ रामविलास शर्मा के आशिक अवतार है यह भी पहचान लिया था, पर शीर्षक में 'तार सप्तक' की ओर इशारा है यह अभी समझ में आया है। मैथिलीशरण गुप्त, जैनेन्द्र कुमार, अज्ञेय, मुक्तिबोध, शमशेर, अशक आदि से लेकर यह पत्राचार लगभग साठ लेखकों को समेटता है और एक पठनीय दस्तावेज है। उसमें कई लेखकों की अपनी या दूसरों या किसी कृति के बारे में ऐसी टिप्पणियाँ हैं जो न केवल तत्कालीन परिवेश को स्पष्ट करती हैं बल्कि अर्थ और विश्लेषण, समझ और संवेदना की नई संभावनाएँ भी खोलती हैं¹⁸ लेकिन कुछ चिट्ठियाँ ऐसी होती हैं, जिन्हें जाचना बहुत उबाऊ और तकलीफदेह होता है। डायरी और चिट्ठियाँ साहित्य की बहुमूल्य धरोहर हैं। अनेक बड़े साहित्यकारों राजनेताओं और क्रांतिकारियों ने अपना दर्शन अपनी व्यथा और अपने विचारों को डायरियों या चिट्ठियों के जरिए संप्रेषित किया है। इनकी किताबें भी नहीं हैं।¹⁹ फिर भी वे महत्वपूर्ण हैं। वे चिट्ठियाँ कभी पुरानी नहीं पड़ती। युग बदलता है। संवेदना बदलती है। लेकिन संवेदना का दस्तावेज पत्र होते हैं। दस्तावेज के साथ ही साथ स्मृतियों का सहज संग्रहण भी पत्रों में होता है। वही स्मृतियाँ पत्रों को तरोंताजा बनाये रखती हैं। पत्र पर धूल लगने के बाद भी संवेदना के स्तर पर मनुष्य की काल्पनिकता को यथार्थता से वाकिफ कराती है।

आज के वर्तमान परिवेश में डाक शुल्क बहुत अधिक हो गया है। पोस्टकार्ड आज भी अपेक्षतया सस्ता है। वैसे भी डाक सेवा की अनियमितता से फोन—फैक्स की संस्कृति को बढ़ावा मिला है। हाय हैलो की उधेड़बुन में प्रिय, आदरणीय, श्रद्धेय, महामहिम शब्दों का सुनना कम हुआ है। हमारे यहाँ डाकसेवा की अनियमितता ने पत्रों की संस्कृति को प्रभावित किया है। रमेश दत्त दुबे लिखते हैं इन दिनों डाक सेवा से परेशान हूँ। स्थानीय डाकघर में पच्चीस पैसे से ऊपर के टिकिट नहीं है। मुझे आठ रुपये के टिकिट लगाने थे। पूरा लिफाफा भर गया तब भी तीन टिकिट बचे। हर प्रतिष्ठान के बारे में अनेक सच, अनेक किवदंतियाँ होती हैं— जैसे शिक्षक गरीब होता है भले ही वह विश्वविद्यालय में पढ़ाकर सिर्फ एक पीरियड पढ़ाकर बीस—पच्चीस हजार रुपये वेतन ले रहा हो। डाकघर के बारे में भी अनेक किवदंतियाँ प्रचलित हैं। जैसे, वहाँ काम होता देखकर लगता है कि इन्हें धीमी गति से काम करने की तकरीबन एक बरस की कठोर ट्रेनिंग वगैरह दी गई है। पोस्ट ऑफिस से पैसा निकालने या जमा करने के लिए कम से कम

एक पूरे दिन का अवकाश जरूरी होता है। अगर आपको विदेश चिट्ठी भेजनी हो तो डाक दर डाकघर के बाहर होटल या पान की गुमटी पर पूछनी पड़ेगी।²⁰ रमेशदत्त दुबे को शिक्षकों के विषय में गलतफहमी है। विश्वविद्यालय में शिक्षक मात्र एक पीरियड पढ़ाये अथवा दो— पढ़ाता तो है। मेहनत करता है। छात्रों को गढ़ता है। शिक्षक गरीब हो अथवा अमीर किन्तु वह 'बुद्धि' से हमेशा समृद्ध होता है। उनकी किंवदन्ती के विषय में समझ आपत्तिजनक है। फिर डाकघर और डाकदर से तुलना भी ठीक नहीं है। 'पोस्टमैन' चिट्ठी को इधर-उधर कर देता है, लेकिन जिम्मेदार शिक्षक जो ज्ञान देता है, वह छात्रों के व्यक्तित्व निर्माण में हमेशा सहायक होता है।

रमेश दत्त दुबे पुनः लिखते हैं, "जहाँ डाकघर की यह ख्याति है, वहीं हमारे यहाँ जिस चिट्ठीदसा कहा जाता है, उसकी महिमा के गीत 'चिटिया हो तो हर कोई बांचे' से लेकर 'चिट्ठी आयी है' तक गाए जाते हैं। चिट्ठीदसा ज्यों ही अपने जिम्मे की चिट्ठियों का थैला अपने कंधे पर लटकाता है, लगता है जैसे यज्ञ हेतु सन्नद्ध हुआ है। यज्ञ का अर्थ आखिर यही तो किया गया है कि आपकी आत्मा में कर्म और कर्म में आत्मा इस तरह से घुलती-मिलती रहे कि ब्रह्माण्ड के रहस्य इस तरह खुलें कि आप सही पते पर पहुँच जाएँ। चिट्ठियों पर पता जिस तरह लिखा जाता है, उसे खोजना ब्रह्म को खोजना ही है। कहते हैं कि विदेश के किसी बच्चे ने 'मि. गांधी— इंडिया' लिखकर चिट्ठी डाली थी और वह ब्रिटिश राज के सेंसर के तमाम अवरोधों के बावजूद उन तक पहुँच गई थी। डाकिया, पोस्टमैन, हरकारा, चिट्ठीदसा को हमारे यहाँ चिट्ठीदसा कहते हैं। डाकिया तो खैर मुझे डाकू की तर्ज का लगता है लेकिन यह चिट्ठीदसा शब्द भी असमंजस में पटकता है। लगता है, मालिक और दास की बात करना प्रतिक्रियावादी हो जाना है। यह एक विडंबना ही है शब्दों को देशकाल, संस्कृति और सभ्यता से काटकर सिर्फ मेनिफेस्टो या शब्दकोषों में टटोलकर फतवा जारी कर दिया जाता है। इस त्रासदी को महात्मा गांधी ने सबसे ज्यादा भुगता है। 'सत्य के प्रयोग' में जब जनता के लिए 'प्रजा' शब्द आता है तो यह भूलकर कि गुजराती में जन-आम-जन को प्रजा कहा जाता है, गांधी की भाषा पर सामतवाद की छाया को देखा-परखा जाता है। गांधी ने दलितों के लिए एक अद्भुत-आत्म-सम्मान और गौरव का शब्द दिया है और वह शब्द हमारी परंपरा के जाति विरोधी सघर्ष की आग से तपकर निखरा है। आज उसी शब्द का एक कुंठित अर्थ निकाला जा रहा है। गांधी के लिए भाषा या शब्द किताबों-शब्दकोशों से नहीं, आत्मा से आते थे। उन्हीं का एक दिलचस्प प्रसंग है। गांधी जी ने महादेव भाई देसाई से कुछ चिट्ठियों का उत्तर लिख देने के लिए कहा। महादेव भाई के एक शब्द पर बापू ठिठक गए— (मैं वह शब्द भूल रहा हूँ— मान लीजिए पानी की जगह जल लिखा गया था) — 'महादेव, तुमने जल क्यों लिखा? "पानी के दस पर्यायवाची है बापू, कोई भी लिख दूँ, क्या फर्क पड़ता है। 'नहीं महादेव, जल तो मैं कभी बोलता ही नहीं, न ही यह शब्द मेरी आत्मा में है, फिर मैं जल क्यों लिखूंगा'। 'बापू महात्मा गांधी' की आत्मा का संवाद पत्रोत्तर पाने वाली की आत्मा से जोड़ते थे। प्रेम में 'नैनन-नैनन-सों' संवाद हो जाता है लेकिन पत्र में तो आत्मा ही आत्मा से संवाद करती है। वहाँ शब्द अर्थ में नहीं— ध्वनियों, अंतर्ध्वनियों में सुना जाता है। कार्ल मार्क्स का एक पत्र है— पिता के नाम और उनके विश्व विद्यालयीन जीवन का यही एक पत्र बचा है। इस पत्र के पुनश्च मैं मार्क्स लिखते हैं, "मेरी प्यारी शानदार ऐनी को मेरा प्यार दीजिए। मैं उसका पत्र एक दर्जन बार पढ़ चुका हूँ और हर बार मुझे उसमें नई चीज मिलती है।' पत्र हमारे संवेगों-संवेदनों में निबसते हैं। और हर

क्षण—हर—पल कहीं—भी—कभी भी हम उन्हें पढते रहते हैं।²¹ पत्रों का तादात्म्य हमारी मानसिकता से होता है। वह हमें झिंझोडते रहते हैं।

‘राम चरित मानस’ जैसा महाकाव्य रचने वाले तुलसीदास अपने समूचे लिखान में कितने विनम्र है, लेकिन राम का दास होने में यह विनम्रता न जाने कहाँ चली जाती है: ‘तुलसी सरनाम गुलाम हौ राम को।’ जब तुलसी जैसा रीढ़वान और आत्मगौरव का कवि अपने को दास—‘सरनाम गुलाम’ मानता है तो ऐसे दासत्व में कोई तो अर्थ — आत्मसम्मान का अर्थ होना चाहिए। रामदास, भगवानदास जैसे दासों से हमारा पुरा—पडोस ही नहीं, पूरा एक काल— भक्तिकाल अटा पडा है। सूरदास, रैदास, मलूकदास, कुंभनदास.... जरा इस दासत्व के स्वाभिमान को देखिए— कुंभनदास का एक पद है— ‘संतन को कहा सीकरी सों काम/आवत जात पनहियों टूटी, बिसर गयो हरि नाम।’ जहाँ दासों से भरा भक्तिकाल—जाति—वर्ग और कट्टरता से निर्णायक लड़ाई लडा हो, जहाँ हमारे जीवनानुभव में गांधी का साक्ष्य हो, वहाँ दास होने में क्या बुराई है, इसलिए हमारे यहाँ पोस्टमैन चिट्ठीदसा है। मनुष्य और समाज को धारण करने वाले मूल्यों का संवहन और प्रसारण धर्म है तो मनुष्य और समाज को धारण करने वाले पत्रों का संवहन और प्रसारण करने वाला चिट्ठीदसा है। दरवाजे—दरवाजे डाली गई उसकी चिट्ठियाँ महाजल प्लावन में भी अक्षत तैरती रहेंगी। वे चाहे हमारे—आपके द्वारा लिखी गई हों, चाहे बापू के पत्र हों या चंद हसीनो के खुतूत, गालिब के खत हों या ‘मित्र—संवाद’ में रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल के पत्र। मनुष्य के जीवन के साक्ष्य सिर्फ पत्र ही होंगे क्योंकि ‘शोक—पत्र’ तो लोक विश्वास के अनुसार पढने के तुरंत बाद फाड दिये जाते हैं।²² रमेश दत्त दुबे की दृष्टि पत्रों की उपयोगिता व महत्ता को व्याख्यायित करती है।

पत्रों का संग्रह तैयार करना दुष्कर है। इसमें मेहनत की बहुत जरूरत होती है। नन्द किशोर नवल लिखते हैं, “पत्रों का संग्रह तैयार करना एक कठिन काम है। उन्हें एकत्र करना, उनकी छंटाई करना, उन्हें क्रमबद्ध करना, उनमें पाद—टिप्पणियाँ डालना और उनकी साफ—सुथरी फ़्रेस कापी तैयार करना वस्तुतः एक थकाने वाला काम है। लेकिन चूँकि पत्र साहित्य की अत्यंत ललित विधा है, इसलिए वह काम करने योग्य है। पत्रों का महत्व तथ्य की दृष्टि से तो होता ही है, उनका असली महत्व सौंदर्य की दृष्टि से होता है। अच्छे साहित्यिक पत्रों में प्रायः उच्चकोटि की साहित्यिक सृजनशीलता और सौंदर्य देखने को मिलता है। यदि किसी साहित्य में अच्छे साहित्यिक पत्रों के संकलन न हों, तो मानना चाहिए कि उसका एक कोना सूना है।²³”

जयदेव तनेजा लिखते हैं; “साहित्यकारों के पत्र उनके जीवन और समय के प्रामाणिक दस्तावेज होते हैं। मनोविश्लेषण की दृष्टि से देखें तो पत्र के मूल्य कथ्य के साथ—साथ इस बात का भी अपना महत्व होता है कि लेखक ने किस भाषा (अंग्रेजी/हिन्दी) का प्रयोग किया है? किन शब्दों को चुना और उन्हें कौन—सा क्रम दिया? वह पत्र कब, कहाँ से और किसे लिखा गया? ये तमाम बातें तो हम प्रकाशित पत्रों के माध्यम से प्रायः सहजता और प्रामाणिकता के साथ जान सकते हैं। परंतु पत्र लेखक की हस्त लिपि, हस्ताक्षर और लिखकर काटे गए शब्दों के अलावा इन बातों का भी विशिष्ट महत्व होता है कि लेखक ने पत्र पोस्टकार्ड, पिकचर पोस्टकार्ड, अतर्दशीय पत्र, छपे पैड या सादे कागज — किस पर लिखा है? उसने पत्र के लिए किस आकार—प्रकार और रूप—रंग के कागज को चुना और स्याही का रंग क्या है? शब्द छोटे, बड़े, बारीक या मोटे हैं? इन तमाम तथ्यों के सूक्ष्म गहन विश्लेषण से पत्र—लेखक के बारे में कई

रोचक, गम्भीर, उत्तेजक और अप्रत्याशित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं?"²⁴ पत्रों में सम्बोधनों का भी महत्व है।

कमलेश अवस्थी देवीशंकर अवस्थी को लिखती है, "वे कहते हैं— जिसे हमने संग्रहीत करना कहा है, वह काम सचमुच बड़ा दुस्साहस सिद्ध हुआ है। हिन्दी प्रदेश की विशालता, व्यवस्थित सग्रहालयों—पुस्तकालयों का अभाव, पत्र-पत्रिकाओं की अनुपलब्धि आदि क्या कम कठिनाइयाँ थी। इनके अतिरिक्त हमें ढेरों पत्र व्यवहार करना पड़ा। किसी विशेष कार्यवश किया गया पत्र-व्यवहार कैसा दुष्कर कार्य है, इसे भुक्तभोगी ही जानते हैं।"²⁵

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने एक पत्र में पत्र साहित्य के महत्व को इस प्रकार प्रतिपादित किया है—

‘मुझे तो डाक का रोग है। पत्रों से रस चूसता हूँ। मेरी समझ में किसी व्यक्ति की भारी भरकम साहित्यिक कृति आधी के समान है। उसके साहित्यिक पत्र उन झोकों के समान हैं जो धीरे से आते—जाते रहते हैं और वायु की थोड़ी मात्रा साथ ले जाने पर भी सांस बनकर जीवन देते हैं। अन्न की उत्पत्ति और मेघों की उत्पत्ति के लिए अंधड़ भी चाहिए यह मन्द वायु जो फरहरी है, उसका भी कुछ अनूठा आनंद है।’²⁶

इसी प्रकार प. हरिशंकर शर्मा ने ‘आजकल’ (अप्रैल 1954) के अंक में पत्र के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा—

“यो सब चिट्ठियाँ, चाहे वे कलात्मक न हों, हृदय की भाषा में होने के कारण महत्वपूर्ण और उपयोगी होती हैं। इनसे निःसन्देह किसी का भाव, प्रभाव और व्यक्तित्व जानने में बड़ी सहायता मिलती है।

“पत्र लेखन भी एक कला है। हिन्दी में कई शताब्दियों पहले के पत्र भी यत्र-तत्र मिल जाते हैं। इधर कई ऐसे संकलन प्रकाशित हो चुके हैं जिनसे तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का ज्ञान होता है।”²⁷ जहाँ कैलाश चन्द्र भाटिया पत्र को एक कला मानते हैं, वहीं राम दरश मिश्र को इस पर आपत्ति है, “पत्र को कला मानने से एक दिक्कत यह हो जायेगी कि पत्र की दुनिया में हम उन्हीं पत्रों को शामिल कर पायेंगे जो साहित्य और कला पर विमर्श करते हों या जिनकी शैली कलात्मक हो। किंतु पत्र में मामूली से मामूली आदमी भी अपना सुख-दुख, अपनी इच्छाएँ, आकांक्षाएँ व्यक्त करता है। पढ़े लिखे लोग और बड़े साहित्यकार भी जब अपने किसी आत्मीय को पत्र लिखते हैं तो उनमें प्रायः उनके निजी दुःख-सुख और समस्याएँ होती हैं, तो यह मानना कि पत्र लिखना एक कला है, उसकी सहजता, निश्छलता और अंतरंगता को बांधना है। हाँ कई बार पत्र शैली में लेखक साहित्य और कला के प्रश्नों पर विचार करते हैं इस कोटि के पत्रों को कला के अंतर्गत शामिल किया जा सकता है। वैसे पत्र अपने स्वभाव में बहुत अनौपचारिक और खुले हुए अभिव्यक्ति का माध्यम है। यह बात दूसरी है कि पढ़ा लिखा और साहित्यकार व्यक्ति सुख-दुख की आम बातों को भी सलीके से रखता है और कम पढ़ा-लिखा आदमी या साहित्य कला के अनुशासन से अपरिचित व्यक्ति सीधे अपनी बात करता है। जिसमें दोहराव भी होता है। समय का अभाव भी होता है। मुझे नहीं लगता कि पत्र को एक साहित्यिक विधा के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। हाँ। साहित्य और कला की अभिव्यक्तियाँ पत्र के माध्यम से भी

होती है।²⁸ एक ओर तो मिश्र जी साहित्यिक विधा के रूप में पत्र को नहीं मानते। दूसरी तरफ साहित्य और कला की अभिव्यक्ति को पत्रों में स्थान देते हैं। मान लीजिए पत्र साहित्यिक विधा नहीं है तो साहित्य और कला की अभिव्यक्ति पत्र के माध्यम से कैसे हो सकती है? निश्चित रूप से पत्र-लेखन कला है और पत्र साहित्यिक विधा। साहित्य और कला का पत्रों में प्रकटीकरण उसे साहित्य की अन्य विधाओं से सम्बद्ध करता है। रचनात्मक स्तर पर पत्र साहित्य का जुड़ाव निबन्ध कहानी कला, कविता से होता है। यदि एक साहित्यकार पत्र में किसी मेले का वर्णन कर दे तो वह निबन्ध विधा से सम्बद्ध हो जायेगी। पत्रों में लेखक आत्मीयता से स्वच्छन्द होकर बातचीत कर सकता है।

कैलाशचन्द्र भाटिया लिखते हैं, “डॉ. कमल पुजाणी ने बड़ौदा विश्वविद्यालय से सन् 1981 में हिन्दी का पत्र साहित्य’ विषय पर शोध उपाधि प्राप्त की है जो सन 1983 में प्रकाशित हो चुकी है। यह स्वीकृति ही इस विधा को प्रतिष्ठित करने में पर्याप्त है।”²⁹ कमल पुजाणी के शोध ने इस विधा को आलोचनात्मक स्तर पर भी सशक्त बनाया।

आधुनिक युग में पत्र-लेखन का बहुत महत्व है। पत्र-लेखन का सबध हर व्यक्ति से है क्योंकि जिदगी में उसे कही न कही पत्र लिखना ही पड़ता है। भावना, विचार, विरोध, समर्थन शिकायत आवेदन सूचनाएँ और सदेश के संप्रेषण का यह विश्वसनीय और सर्वाधिक सस्ता तथा सुलभ माध्यम है। अंतरंग सबधों में आई दरार को पाटने या अपने आत्मीय को नयी सूचनाओं और वस्तुस्थितियों से अवगत कराने का लोकप्रिय माध्यम पत्र ही है। यद्यपि सूचना और तकनीकी के जबरदस्त विकास के कारण सदेशों का आदान-प्रदान बहुत तेजी से होने लगा है, फिर भी पत्र लेखन में कोई कमी नहीं आई है। पत्र दो व्यक्तियों, दो समुदायों, संस्थाओं, समाज, सरकार और देशों के बीच सबध स्थापित करने, उनसे जुड़ने, अपनी जरूरतों के लिए अनुरोध, शिकायत या विरोध प्रदर्शन या ऐसे ही अन्य मामलों में एक कड़ी का काम करते हैं। पत्र लेखन एक भाषिक कला है इसीलिए तो इसे साहित्य में एक गद्य विधा के रूप में समादर दिया गया है। यही कारण है कि भाषा का सामान्य ज्ञान हर पत्र लेखन के लिए अपेक्षित है। महादेवी वर्मा की ‘गुगिया’ की तरह अनेक अनपढ़ और पत्र लिखने में असमर्थ लोग इसीलिए ऐसे व्यक्ति की तलाश में रहते हैं जो उनकी भावनाओं को उनकी अपेक्षा के अनुरूप लिख सकें। चाहे औपचारिक पत्र हो या अनौपचारिक, शासकीय हो या कोई और — सभी तरह के पत्रों में सक्षिप्तता, पूर्णता, स्पष्टता, शिष्टता का क्रमवार अंकन होना जरूरी है। अंतरंग और अनौपचारिक पत्रों में कुछ देर के लिए हम भले ही भावना में बह जाएँ, मगर औपचारिक या अन्य पत्रों में इसकी गुंजाइश न के बराबर होती है।³⁰

हरिवंश तरुण लिखते हैं, पत्र लेखन एक कला है जो इस कला में जितना अधिक कुशल है वह उतना ही सफल और प्रभावकारी है। अब तो पत्र लेखन साहित्य में भी स्थान पा गया है। इन पत्रों में लेखक के विषयगत तथा साहित्यिक प्रसंगगत विचारों की सुन्दर अभिव्यक्ति तो होती है उनमें विचारों का सहज प्रवाह भी होता है। अब तो पत्रों द्वारा जटिल राजनैतिक समस्याओं के समाधान भी उपस्थित किये जाने लगे हैं— राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर।³¹ पत्रों का साहित्य के विकास में अभूतपूर्व योगदान है। साहित्यिक विकास के साथ ही साथ राजनैतिक उलझाव को भी पत्र सुलझाता है। एक अनकहे सच को उद्घाटित करने का भी कार्य पत्र द्वारा ही संभव है।

पत्रों की भाषा सरल होनी चाहिए। हरिवंश तरुण लिखते हैं; “एक अच्छे पत्र में भाषा की सहजता प्रथम आवश्यकता है। अंतरंग भावनाओं की कलात्मक एवं सुन्दर अभिव्यक्ति इसकी दूसरी विशेषता है। दर असल पत्र लेखक पत्र में अपना हृदय खोलता है। पत्र लेखन में लेखक के मनोभाव, दृष्टिकोण, आचरण, संस्कार तथा चरित्र सभी का उद्घाटन होता है। अतः कहा जा सकता है कि पत्र में लेखक का व्यक्तित्व ही उभरकर आ जाता है। इस स्थिति में पत्र-लेखन में सावधानी एवं जागरूकता की आवश्यकता है।”³² जब हरिवंश तरुण इस तरह की बातें करते हैं तब उनके जेहन में पत्रों की विभिन्न कोटियाँ हैं, लेकिन जब पत्र-व्यवहार दो आत्मीयों में हो और उन्हें इसे किसी के पढ़ने का भय न हो तो लेखक बड़े उन्मुक्त तरीके से इस पर बेबाक बयानी करता है। क्योंकि पत्र लेखक यह जानता है कि इसे तो हम दोनों के अलावा कोई तीसरा पढ़ेगा ही नहीं।

“पत्र दो व्यक्तियों के बीच एक संचार सेतु है, विचारों-भावों के आदान-प्रदान का बहुत ही प्रभावकारी माध्यम है। इसके द्वारा दो व्यक्ति एक-दूसरे के निकट आते हैं। यह मित्रता का एक बहुत ही सशक्त जरिया है। आजकल पत्र-मित्र की परिपाटी भी काफी लोकप्रिय है।”³³

डॉ. रामविलास शर्मा, ‘कवियों के पत्र’ में लिखते हैं, “इस संग्रह में मुख्यतः उन हिन्दी कवियों के पत्र हैं जो प्रगतिशील धारा से जुड़े हुए थे या उसके बहुत निकट थे। कुछ के तो एक-दो पत्र ही हैं और कुछ के पाँच-सात, बीस-पच्चीस, चालीस-पचास तक हैं। इन पत्रों का संबंध साहित्य से है। कौन क्या लिख रहा है और उसमें मेरा कैसे सहयोग या असहयोग हो सकता है, इसकी चर्चा इन पत्रों में है। बहुत से पत्र ऐसे हैं जिनमें व्यक्तिगत संबंधों की प्रधानता है। ये पत्र भी हिन्दी साहित्य के इतिहास के लिए महत्वपूर्ण हैं। साहित्य के इतिहास की पुस्तकों में इस तरह के संबंधों की चर्चा कम ही होती है। परंतु जिस तरह के परिवेश में कवि तथा अन्य साहित्यकार रचना करते हैं, उनमें ये व्यक्तिगत संबंध भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यदि कवि अपने परिवेश से आश्वस्त हो तो उसकी रचनाशीलता बढ़ती है। साथ ही आस-पास के साहित्यकारों से संबंध अच्छे न हों तो इसका प्रभाव भी उसकी रचनाशीलता पर पड़ता है। ये पत्र हिन्दी साहित्य की धरोहर हैं, यह मानकर मैं इनकी रक्षा करता आया हूँ।”³⁴ वस्तुतः साहित्यकारों के पत्र हिन्दी साहित्य के इतिहास को समझने में सहायक होते हैं। साथ ही कभी-कभी नई बहस को भी उठाने में साहित्यिक पत्र सहायक होते हैं। रवि भूषण ‘रामविलास शर्मा का महत्व’ में लिखते हैं, “रामविलास शर्मा ने पत्र साहित्य को साहित्य की कोटि में शामिल किया और आलोचना का विस्तार किया। ‘मित्र संवाद’ उनके और केदारनाथ अग्रवाल के पत्रों का संकलन है और ‘तीन महारथियों के पत्र’ में बनारसी दास चतुर्वेदी, वृन्दावन लाल वर्मा और किशोरीदास वाजपेयी द्वारा रामविलास जी को लिखे गये पत्र हैं।”³⁵ जहाँ रवि भूषण रामविलास जी को इसका श्रेय देते हैं वहीं डॉ. कालीचरण ‘स्नेही’ लिखते हैं, “हिन्दी में पत्रों को साहित्य के रूप में मान्यता एवं स्वीकृति प्रदान करने का श्रेय बाबू गुलाबराय को है। उन्होंने ही सबसे पहले अपने ‘काव्य के रूप’ शीर्षक समालोचना-ग्रंथ में काव्य के विभिन्न रूपों का विभाजन करते हुए उपन्यास, कहानी, जीवनी, निबंध आदि गद्य रूपों में पत्र को भी स्थान दिया है। ‘पत्र साहित्य’ का शास्त्रीय निरूपण करते हुए बाबू जी ने उक्त ग्रंथ के श्रव्य काव्य अन्य विधाएँ; शीर्षक के अंतर्गत पत्र के महत्व को इस रूप में अभिव्यक्त किया है—

पत्र व्यक्ति द्वारा लिखे जाते हैं और वे व्यक्ति के लिए ही होते हैं किन्तु वे जन साधारण के लाभ या मनोरंजन की भी वस्तु हो सकते हैं। उनमें साहित्य की सब विधाओं की अपेक्षा व्यक्तित्व की झलक अधिक रहती है³⁶ बाबू गुलाब राय ने पत्रों की आधार शिला रखी और रामविलास शर्मा ने पत्र साहित्य को सशक्त करने का बीड़ा उठाया। दोनों ने हिन्दी पत्र-साहित्य की श्री वृद्धि में सहायता पहुंचायी।

पत्र का व्युत्पत्ति बतलाते हुए कालीचरण 'रुनेही' लिखते हैं, "पत्र, संस्कृत भाषा का शब्द है। यह पत धातु में ष्ट्वन् प्रत्यय जोड़ने से व्युत्पन्न हुआ है।। 'पत्' धातु का अर्थ गिरना, गिर पड़ना नीचे आना, उतरना आदि है। इस प्रकार 'पत्र' शब्द की व्युत्पत्ति के आधार पर इसका अर्थ होगा। जो गिरता है, नीचे आता है, वह अर्थात् वृक्ष का पत्ता है। प्राचीन काल में प्रेस अथवा मुद्रणालय नहीं थे। उस समय ऋषि-मुनि अपने विचार ताल पत्रों, भोज पत्रों आदि पर लिखते थे। अतः पत्र शब्द का प्रयोग 'लेखनाधार द्रव्य' के अर्थ में होने लगा। कागज का आविष्कार होने के पहले सदेश समाचार आदि वृक्षों के पत्तों पर ही लिखकर भेजे जाते थे। इसी साहचर्य और अभ्यासवश लेखयुक्त कागज, ताम्रपत्र आदि को भी लोग 'पत्र' कहने लगे। कागज भी पत्तियों से ही बनता था इसीलिए वह भी 'पत्र' कहलाया। हिन्दी का 'पन्ना' शब्द भी संस्कृत के पर्णक से विकसित है। यथा - स-पर्णक-प्रा प्रणअ - पण्णा - पन्ना आज भी बोलचाल में "कागज पत्र" या कागज पत्तर" शब्द संयुक्त और यौगिक रूप में व्यवहृत होता है। इस प्रकार "पत्र" शब्द के अर्थ विकास की कहानी बड़ी रोचक और रम्य है।"³⁷

डॉ० कमल पुजाणी ने 'हिन्दी का पत्र-साहित्य' में 'पत्र' शब्द की व्युत्पत्ति का गहन विवेचन प्रस्तुत किया है। उन्होंने 'पत्र' शब्द को हिन्दी का तत्सम शब्द स्वीकार करते हुए संस्कृत साहित्य में इसके अति प्राचीन प्रयोगों की खोजपूर्ण सूची का उल्लेख किया है। उन्होंने ऋग्वेद, श्रीमद्भगवत गीता अभिज्ञान शाकुन्तलम्, भामिनी विलास, पंचतंत्र तथा कौटिल्य अर्थशास्त्रम् में पत्र शब्द के प्रयोग का उल्लेख क्रमशः इस प्रकार किया है- 'ऋग्वेद' के सातवें मण्डल में शतपत्र शब्द का प्रयोग किया गया है- "स हि शुचि शत पत्र स शुन्ध्युर्हिरण्य वासीरिषर स्वषा ।" यहाँ 'शतपत्र' से तात्पर्य वृहस्पति के अनेक वाहनो से है, अर्थात् 'पत्र' शब्द यहाँ 'वाहन' के अर्थ में व्यवहृत है। 'श्रीमद्भगवत गीता' के नवें अध्याय के छब्बीसवें श्लोक 'पत्र पुष्प फल तोय यो मे भक्त्या प्रयच्छति' में महाकवि कालिदास के प्रसिद्ध नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तल' में राजा दुष्यन्त के कथन - 'यत् प्रत्यवेक्षित पौर कार्य भायेण तन् पत्र मारोप्य दीपताम्' में तथा पण्डितराज जगन्नाथ कृत 'भामिनी विलास' के प्रथम विलास के सत्तानवें श्लोक - 'धन्ते भर कुसुम पत्र फलावनीनाम्' में 'पत्र' शब्द का प्रयोग 'पत्ता' (वृक्षावयव विशेष) के अर्थ में किया गया है। पंच तंत्र के मित्रभेद में कहा गया है कि विवाद में लिखा पट्टी या कागज-पत्र का प्रमाण देखा जाता है। यदि कागज पत्र नहीं तो साक्षियों को प्रमाण माना जाता है। आधुनिक अर्थ में पत्र शब्द का कदाचित् सबसे प्रथम प्रयोग कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में मिलता है। इस ग्रंथ के राजप्रविधि शीर्षक प्रकरण में कहा गया है कि राजा को पाचवें प्रहर में मन्त्रि परिषद् के साथ पत्र द्वारा मन्त्रणा करना चाहिए पचमे मन्त्रिपरिषदा पत्र सम्प्रेषणेन मन्त्रयेत्।"³⁸

आजकल पत्र शब्द से आधार और आधेय दोनों ही अर्थ द्योतित हैं। प्राचीन काल में पत्र के स्थान पर कई स्थानों पर 'लेख' शब्द भी प्रयुक्त हुआ है। हिन्दी में 'पत्र' से बने यौगिक शब्द भी प्रचलन में हैं यथा पत्र भग 'पत्रलता' 'पत्रपाल' दानपात्र, प्रमाण पत्र तथा पत्रद्रुम आदि। पत्र

शब्द का प्रयोग अब विस्तृत अर्थों में होने लगा है। हिन्दी में आज 'पत्र' शब्द का प्रयोग स्वजन, परिजनो, इष्ट मित्रो आदि को डाक द्वारा भेजे जाने वाले पत्रों और दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक आदि पत्रों के लिए भी होने लगा है। अखबारों, मैगजीनों के साथ 'पत्र' शब्द जोड़ देने के कारण संभवतः यह होगा कि 'पत्र' अर्थात् 'लेटर' किसी बात को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक या एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने का माध्यम है।³⁹ इसी अर्थ साम्य के कारण ही कदाचित् 'पत्र साहित्य' शब्द का प्रयोग 'पत्रकारिता' के संदर्भ में किया जाता है। "हिन्दी में डाक द्वारा भेजे जाने वाले पत्र के लिए सामान्यतः 'चिट्ठी' शब्द का प्रयोग होता है। ब्रज भाषा, अवधी, भोजपुरी आदि विभाषाओं में 'पत्र' के लिए 'पाती' और 'पतिया' शब्द अधिक प्रचलित हैं। कबीर, सूर, तुलसी, मीरा, बिहारी, पद्माकर आदि प्राचीन कवियों ने अपने काव्य में पत्र के स्थान पर इन्हीं शब्द रूपों का प्रयोग किया है।"⁴⁰

पत्र लेखन, साहित्य की एक सशक्त, रोचक और स्पृहणीय शब्द शिल्पकला है। विश्व में अनेक महान पत्र लेखक हुए हैं, जिनके पत्र उनके साहित्य से कम दिलचस्प या महत्वपूर्ण नहीं हैं।⁴¹ गालिब के पत्र इसका सबसे बड़ा उदाहरण हैं। गालिब के पत्र उनकी शायरी से किसी भी मायने में कम नहीं हैं। 'मित्र सवाद' के पत्र भी केदारनाथ अग्रवाल और रामविलास शर्मा के व्यक्तित्व को समझने में अधिक सहायक हैं। कमल पुजाणी के अनुसार, "पत्र-साहित्य पारस्परिक मैत्री-भावना या वार्तालाप की ध्वनि से युक्त, स्वतः पूर्ण, प्रकाशन के लिए अनभिप्रेत किन्तु सार्वजनीन उपयोगिता के कारण प्रकाशित होने वाला ऐसा साहित्य रूप है जिसमें लेखक के वास्तविक व्यक्तित्व के साथ भाव ग्राहक के व्यक्तित्व और समकालीन घटनाओं की स्पष्ट झलक मिलती है।"⁴²

हिन्दी में विभिन्न क्षेत्रों के प्रसिद्ध व्यक्तियों के पत्रों को संग्रहीत कर प्रकाशित करने की प्रवृत्ति का शुभारम्भ आधुनिक युग में ही हुआ है, परन्तु प्रियजन के पास पत्र लिखकर संदेश भेजने की परंपरा अति प्राचीन काल से चली आ रही है।⁴³ पत्रों आदि का वर्णन तो कविताओं में मिलता है। लेकिन हम उसे स्वतंत्र विधा के रूप में स्वीकार नहीं कर सकते। अन्य आधुनिक विधाओं की तरह ही पत्र साहित्य भी आधुनिक युग की महत्वपूर्ण देन है। पत्रों की संख्या तो पर्याप्त मात्रा में है लेकिन एक ही स्थल पर पत्रों का संग्रह कम मिलता है। फिर भी जितने पत्र उपलब्ध हैं और जिनका संग्रह हुआ है, वे बेजोड़ हैं। युग के अतर्द्धन्धों का चित्रण उपलब्ध पत्र-साहित्य में बखूबी हुआ है। रचनात्मक स्तर पर उनका जुड़ाव साहित्य की अन्य सभी विधाओं से होता है। अमूमन साहित्यकार अपने परिवेश को अपने निकट मित्रों-सहयोगियों के समक्ष उद्घाटित करता है। अपने मित्र के समक्ष पत्र-लेखक हृदय खोलकर रख देता है। कोई दुराव-छिपाव नहीं। डायरी लेखक के समान पत्र-लेखक को भी समीक्षा और आलोचना का भय नहीं होता है। पत्रों की प्राप्यता पर मुकुंद द्विवेदी का विचार है कि "हिन्दी में सबसे कम उपलब्ध साहित्य पत्र ही है। जीवन में पत्रों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। जो व्यक्ति समीप नहीं होते, उनसे बातचीत करने का माध्यम पत्र ही है। व्यक्तिगत पत्रों का महत्व वर्तमान युग में भी है।"⁴⁴ दो व्यक्तियों के बीच परस्पर जो विचार-विनिमय, सूचनाओं का आदान-प्रदान अथवा स्वतः की अभिव्यक्ति होती है उसे पत्र कहते हैं।

घोर वस्तुनिष्ठ सरकारी तथा घोर अतरंग प्रेम-पत्र के अतिरिक्त मित्रों, साहित्यकारों राजनीतिज्ञों और अपने संबंधियों के लिए पत्र अपना-अपना महत्व रखते हैं। पत्र पाने की

आकांक्षा सभी में होती है। कोई नियुक्ति पत्र की प्रतीक्षा करता है और कोई राष्ट्रपति या राज्यपाल से सत्ता नियामक बनने के लिए 'गठ बंधन' करता है तो कोई प्रेमी-प्रेमिका के पत्र न हस्तगत होने पर डाक-विभाग को कोसता है। इन पत्रों में भावातिरेक के समय ऐसी सरसता, कोमलता, उदारता, आत्माभिव्यक्ति एवं जानकारी अभिव्यक्त हो जाती है कि समयान्तराल के बाद इनका साहित्यिक महत्व दिखलायी पड़ने लगता है।

पत्र गद्य व पद्य दोनों में लिखे जाते हैं। संस्कृत का समस्त संदेश काव्य पत्र साहित्य का गुण रखता है। कालिदास की शकुन्तला, सूर की गोपियाँ व रीतिकालीन कवियों की नायिका सभी अपने प्रेमियों को पत्र लिखने बैठती हैं। महाकवि कालिदास के यक्ष ने अपनी प्रेयसी के लिए मेघ को जो संदेश दिया है, वह भी मौखिक पत्र ही है। इस प्रकार के मौखिक पत्र अनेक संदेश वाहकों द्वारा ले जाये गये हैं। ये पत्र सामान्य मनुष्य से लेकर ईश्वर तक के लिए लिखे जाते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने अपने आराध्य की सेवा में प्रार्थना-पत्र (विनय-पत्रिका) लिखा था। अपनी मनोकामना के लिए राजस्थान के 'बालाजी के मंदिर' में आज भी प्रार्थना पत्र श्रद्धालु डालते हैं।

साहित्यकारों व राजनेताओं के पत्रों में युगीन समस्याओं का वर्णन तथा किसी क्षेत्र के महान व्यक्तियों के जीवन चरित की झाँकी देखने को मिलती है। अतः इनका साहित्यिक व राजनीतिक या ऐतिहासिक महत्व बढ़ जाता है। पत्रों के प्रकाशन योग्य होने के लिए उसमें सत्यता, सरलता और सादगी का होना भी वांछनीय है। पत्र के माध्यम से दो व्यक्ति अपने हृदय की बात कहते हैं, जिसमें कभी किसी विषय का विवेचन होता है और कभी कोई उपदेश या शिक्षा या सलाह दी जाती है। यहीं पत्र-साहित्य, साहित्य की अन्य विधाओं के साथ गहराई से जुड़ जाता है। पत्रों में व्यक्त कविता, कहानी, उपन्यास को हम पत्र-साहित्य की अमूल्य धरोहर के रूप में ही स्वीकार करते हैं। तमाम पत्रों में लेखकों ने आलोचना का जीवन्त दस्तावेज प्रस्तुत किया है तो कवियों ने कविता के प्रतिमान स्थापित किये हैं। कवि केदारनाथ अग्रवाल के पत्रों में उत्कृष्ट कविताई के दर्शन होते हैं तो रामविलास शर्मा के पत्रों में आलोचना के मानद प्रतिमान। 'मित्र-संवाद' तो पत्रों की गुण व क्षमता को समेटे हुए 'संवाद' अर्थात् बातचीत का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। ऐसे कई पत्र हैं जिनमें आलोचना, कविता, कहानी के गुण अन्तर्निहित रहते हैं। बावजूद इसके कि लेखक या रचनाकार सायास इन सबको रचना में नहीं उकेरता फिर भी युग की सत्यता से रचनाकार लेखक का सीधा साक्षात्कार तो हो ही जाता है। फिर तत्कालीन समय में क्या-क्या लिखा जा रहा है, कविता की धारा किधर की ओर प्रवाहित है, कहानी नयी किस तरह हो रही है, निबंधों का बंधना कहां तक साहित्य को ऊर्जस्वित कर रहा है, नाटकों में नाटकीयता कहाँ है? इन सभी बातों पर साहित्यिक पत्रों में चर्चा होती है। रचनात्मक स्तर पर पत्र-लेखक सभी विधाओं की सूक्ष्मता से पड़ताल करता है और नहीं उत्कृष्टता का चरम निदर्शन होता है।

पत्र-लेखक व पाने वाले के मध्य मैत्रीपूर्ण संबंध होने के कारण पत्र में रोचकता, हार्दिकता एवं निजीपन होता है। पत्र को प्रभावी बनाने के लिए सजीव भाषा के साथ स्वाभाविकता का होना भी अपेक्षित है। पत्र लेखक की अपनी शैली होती है। कभी-कभी पत्र-लेखक 'गद्य-काव्य' लिखता प्रतीत होता है।

पत्र-साहित्य को पढ़कर जहाँ अनेक क्षेत्रों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है, वहीं पत्र लेखक की मानसिक अवस्था व हृदयगत भावनाओं का ज्ञान भी मिलता है। यही कारण है कि साहित्यकारों के पत्र संकलित करके प्रकाशित किये जाते हैं। पत्र में दो हृदयों के मध्य एकांत में स्वच्छन्दतापूर्वक वार्तालाप का अवसर होता है, जिसमें बनावट, भय, औपचारिकता, संकोच आदि की सीमाएँ शिथिल हो जाती हैं। अवसर मिलने पर अपने आक्रोश, आशंका, उलाहना अथवा प्रेम की अभिव्यक्ति होती है। जिस समय व्यक्तिगत पत्र लिखा जाता है, उस समय उसके प्रकाशन का भय भी नहीं होता, अतः सच्चाई सामने आ जाती है। पत्र-लेखन में प्रमुखता लेखक की होती है, अतः उसमें आत्मीयता एवं निजीपन बना रहता है। "इन पत्रों में व्यक्ति औपचारिकता छोड़कर अपने आपको खुलकर अभिव्यक्त करता है; अपने सुख-दुःख को अपनी परेशानियों को बिना किसी लाग-लपेट के व्यक्त करता है। पर इस संदर्भ में विचारणीय बात यह है कि ये पत्र किसे लिखे गये हैं और पत्र लेखक के साथ उस व्यक्ति का कैसा संबंध है? संबंधों की घनिष्ठता पत्रों को सहज खुलापन प्रदान करती है। किसी रचनाशील साहित्यकार के पत्रों की बात कुछ और होती है। साहित्यकार का पूरा व्यक्तित्व निश्छल और सहज रूपों में पत्रों में उभरकर सामने आता है। साहित्यकार के व्यक्तिगत पत्र उसके व्यक्तित्व को ही नहीं अपितु उसकी साहित्यिक सर्जनात्मकता को भी उजागर करने में सहायक होते हैं। पत्रों की संवेदना, वार्तालाप की संवेदना से अधिक गहन और तीक्ष्ण होती है। बातचीत के दौरान दो पक्षों की वार्ता में बीच-बीच में व्यवधान भी पड़ता है। पत्र-लेखन में यह व्यवधान आड़े नहीं आता है। यहाँ पर पत्र-लेखक का सारा ध्यान पत्र की तरफ रहता है; अतएव पत्र में जो मुक्त अभिव्यक्ति होती है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। औपचारिक पत्रों में स्वाभाविकता बड़ी मुश्किल से आ पाती है। औपचारिक पत्रों में पत्र-लेखक की अपनी सीमा होती है, इन पत्रों में पत्र-लेखक सहज नहीं हो पाता है। व्यक्तिगत पत्र इससे मुक्त होते हैं और उनमें एक खुलापन दिखाई देता है। पर यह खुलापन भी उम्र के साथ-साथ धीरे-धीरे कम होता जाता है। नवयुवक पत्र-लेखक और प्रौढ़ पत्र लेखक की मानसिक भावभूमि में अंतर दिखाई देता है। किसी भी नवयुवक के पत्रों और किसी प्रौढ़ या वृद्ध व्यक्ति के पत्रों की तुलना करके यह बात देखी जा सकती है। ज्यों-ज्यों व्यक्ति की उम्र बढ़ती है, उसके पत्रों की भाषा एवं भावों में भी प्रौढ़ता दिखाई देने लगती है। प्रौढ़ व्यक्ति के पत्रों में अधिक संयम का परिचय मिलता है। जिस प्रकार आत्मकथ्य लिखते समय लेखक अपनी कमजोरियों को, अपने जीवन के गोपनीय तथ्यों को, अपने अहं को कहीं-न-कहीं छिपा लेता है, कुछ वैसी ही स्थिति प्रौढ़ पत्र लेखक की भी होती है।"⁴⁵ इस विस्तृत उद्धरण द्वारा पत्रों की दशा व दिशा निर्धारित होती है।

एक अच्छे पत्र की कुछ विशेषताएँ होती हैं। प्रथम तो वह पत्र पाठक को तत्कालीन समस्याओं अथवा परिवेश की जानकारी देने वाला हो। उससे पाठक को कुछ ज्ञान प्राप्त हो। दूसरे उसमें साहित्यिक गुण, रोचकता एवं स्वाभाविकता हो। तीसरे पत्र लेखक की निजी अभिव्यक्ति होने के कारण उसके व्यक्तित्व व कृतित्व की झाँकी भी अपेक्षित है। पत्र साहित्य की विधा तभी बन सकती है, जब उनमें भावाद्वेग की अभिव्यक्ति परिलक्षित हुई हो, अतः भावना की उपेक्षा पत्र में नहीं की जा सकती। भावना की उपेक्षा साहित्य की अन्य विधाओं में भी नहीं की जा सकती। दरअसल भावना के स्तर पर ही साहित्य, साहित्य होता है। वरना वह मात्र ऐतिहासिक दस्तावेज हो जाता है। भावना, संवेदना प्रधान होती है। साहित्य संवेदना का प्रकट रूप है। पत्रों में संवेदना का नितांत वैयक्तिक स्वरूप उद्घाटित होता है। एक-दूसरे की स्थिति

से परिचय एक का दूसरे के लिए बेचैन हो उठना, रोजमर्रा की घटनाओं पर कल्पना के पर लगाकर उसे लिखना, पत्रों में महत्वपूर्ण है। कल्पना हमेशा यथार्थपरक होती है। कल्पना का अर्थ ही होता है— 'सृजन करना'। पत्रों में साहित्यकार सामाजिक-सांस्कृतिक पहलू को उद्घाटित करता है। शैली की दृष्टि से लेखक चाहे उपदेश की औषधि अपनाये अथवा शिक्षा की ताड़ना दे अथवा व्यंग्य विनोद की चुटकी ले, उसका अपना ढंग होता है। यही पत्रों की क्षमता को अन्य विधाओं के बरक्स सशक्त करता है। "किसी युग विशेष की साहित्यिक गतिविधियों की जानकारी के लिए तत्कालीन समाचार पत्र तथा वैयक्तिक पत्र साहित्य विशेष महत्वपूर्ण होते हैं। द्विवेदी जी का पत्र-साहित्य अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है, पर यहाँ नमूने के तौर पर 'भाषा-संशोधन' की दृष्टि से ही कुछ प्रकाश डाला जा रहा है क्योंकि द्विवेदी युग 'परिष्कार युग' के नाम से विख्यात है। भाषा-संशोधन की दृष्टि से आचार्य द्विवेदी की 'सरस्वती' के लिए तैयार की गई पांडुलिपियाँ महत्वपूर्ण हैं जिनकी ओर स्वयं आचार्य द्विवेदी ने श्यामसुन्दर दास जी को एक पत्र में संकेत किया था मेरे समय की 'सरस्वती' की 17 वर्ष की हस्तलिखित कापियाँ मेरे पास हैं। किसी समय भविष्य में वे शायद मूल्यवान समझी जाएँ। उनको देखने से पता लगेगा कि आजकल के हिन्दी के धुरधर लेखक किस तरह राह पर लाये गये थे। वे सभी दे डालूँगा। सभा चाहे तो जिल्द बाँधकर रख छोड़े। (सन् 1923)"⁴⁶

पत्रों के माध्यम से साहित्य की सामाजिक समझ विकसित होती है। कभी-कभार जब गद्य की अन्य विधाएँ सामाजिक समस्याओं को सुलझाने में अशक्त होती हैं तब पत्रों के माध्यम से युगीन संस्कृति को आसानी से समझाया जा सकता है। आधुनिक अर्थों में पत्र-लेखन की शुरुआत मुद्रण कला के आविष्कार के साथ भारतेन्दु युग से होती है। विज्ञान और टेक्नॉलॉजी के विकास का परिणाम है— पत्र साहित्य'। पत्र लिखने और पाती बाँचने की परंपरा अब धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है। विज्ञान और तकनीकी युग आज चरम पर है। अभी पत्रों के सुव्यवस्थित रूप में महज सौ वर्ष ही बीते हैं। फोन-फैक्स ने पत्रों को प्रभावित किया है। एक तरह से पत्र कम होते जा रहे हैं। संवेदना अभिव्यक्ति के नये-नये धरातलों की तलाश करती है। पत्र अब कागज पर नहीं, कंप्यूटर पर लिखे जा रहे हैं। संवेदना वही है, अभिव्यक्ति के माध्यम नये हैं। पाती बाँचने की परंपरा भले ही विलुप्त हो जाए लेकिन पत्र लिखने की परंपरा कभी नहीं मरेगी। अभिव्यक्ति के नये-नये माध्यम की तलाश भले ही कर ली गई हो किन्तु विशाल हिन्दी प्रदेश जो कि स्वभावतः किसान-संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है, पत्र लिखने से नहीं कतराएगा। हिन्दी विशाल जन-समुदाय की भाषा है। विशाल जन समुदाय 'पूँजीपति' नहीं है। कुछ लोगों का ही पूँजी पर कब्जा है। शेष भारतीय हिन्दी जनता शोषित, पीड़ित है। फोन कुछ सुविधाभोगी वर्ग के लिए है। हिन्दी का साहित्यकार, साहित्य की जनतात्रिक परंपरा का रक्षक है। जनतंत्र में पत्र लिखने की परंपरा ने अभी दम नहीं तोड़ा है। अधिकांश गरीब जनता को दो वक्त की रोटी भी मयस्सर नहीं होती तो वह 'टेक्नॉलाजी' का प्रयोग कैसे करेगी? जब तक साहित्य की प्रगतिशील चेतना के पक्षधर लेखक हैं तब तक पत्र भी लिखे जाएंगे और उनके पाठक भी अच्छी खासी संख्या में होंगे। रामचन्द्र वर्मा शास्त्री लिखते हैं, "साहित्य की इस नव विधा ने स्वल्प समय में ही समुचित विकास किया है। आज हिन्दी में यह बात स्वीकार की जाने लगी है कि किसी व्यक्ति और उसके जीवन को समझने के लिए उसके पत्र अत्यंत महत्वपूर्ण सूत्र हैं। यही कारण है कि आज प्रमुख लेखकों नेताओं तथा अन्य विभूतियों के पत्रों के संकलन का कार्य प्रगति पर है।"⁴⁷

इस प्रकार इस विधा का भविष्य उज्ज्वल है। लगातार पत्रों का सग्रह संपूर्ण आधुनिक युग को समझने के लिए नई दिशा प्रस्तुत करता है।

जसवीर त्यागी के एक प्रश्न "मीडिया ने साहित्य को काफी हद तक प्रभावित किया है। क्या आप नहीं सोचते कि दूर संचार प्रणाली ने लोगों का पत्र-लेखन परंपरा से पीछे हटाया है?" के जवाब में राम दरश मिश्र कहते हैं, "दूर संचार प्रणाली के कारण उन पत्रों में कमी आयी है जो समाचार जानने के लिए या समाचार भेजने के लिए लिखे जाते थे। अब तो लोग देश-विदेशों में स्थित अपने लोगों को फोन करके तुरंत जानकारी प्राप्त कर लेते हैं, लेकिन वे पत्र जो विचारपूर्ण या संवेदनात्मक होते थे जिनमें केवल जानकारी ही नहीं बल्कि लेखक का व्यक्तित्व भी निहित होता था ऐसे पत्रों के लेखक का स्थान दूर संचार माध्यम नहीं ले सकता। अभी भी साहित्यकार साहित्यकारों को, पाठक साहित्यकारों को, लेखक पत्र-पत्रिकाओं को चिट्ठीया बड़ी शिद्दत से लिखते हैं। इतना ही नहीं, आम आदमी भी अपने घर-परिवार को चिट्ठीया लिखता है। शादी-ब्याह के निमंत्रण पत्र तो डाक से ही आते हैं और मैं देखता हूँ कि हमारे यहाँ आने वाले डाकियों को बोझ कम नहीं हुआ है। इसलिए मुझे लगता है कि दूर संचार माध्यमों के बावजूद चिट्ठीया लिखी जाती है। मैं स्वयं अपने बारे में कह सकता हूँ कि मेरे पास रोज पत्र आते हैं। पत्र लिखने और पाने से एक आत्मीय सतोष प्राप्त होता है। चिट्ठीया धरोहर भी है। दूर संचार माध्यमों पर बात आई-गई हो जाती है, उनसे रचनात्मक तृप्ति नहीं मिलती।"⁴⁸ रचनात्मक तृप्ति तो पत्र लिखने से ही होती है।

राम स्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं, "अन्य नये गद्य रूपों में पत्र-डायरी जर्नल आत्माभिव्यक्ति के अधिकतर वैयक्तिक तथा असजग माध्यम हैं, जबकि 'इटरव्यू' पूरी तरह से सार्वजनिक और सजग। पत्र सबसे अधिक व्यक्तिगत और निस्संकोच लेखन होता है, और इस दृष्टि से पत्र लेखक के व्यक्तित्व का सर्वाधिक यथार्थ प्रतिफलन कहा जा सकता है। महान व्यक्तियों के छोटे-मोटे सुख-दुःख, राग-द्वेष वहाँ उजागर होते हैं सामान्य साधारण भाषा में, और यों वे पाठक के निकट सर्वाधिक आत्मीय बन जाते हैं। पत्रों के स्वतंत्र सकलन प्रकाशित हुए हैं, उन्हें जीवनियों के परिशिष्ट के रूप में रखा गया है, और कई बार पत्रों के कालक्रमानुसार सकलन से पत्र-लेखक की समूची जीवनी ही पुनर्रचित हुई है। पत्रों का यह तीसरे ढंग का उपयोग सबसे अधिक कलात्मक और नाटकीय होता है।"⁴⁹ पत्रों से सिर्फ पत्र-लेखक की समूची जीवनी ही पुनर्रचित नहीं होती बल्कि सांस्कृतिक संरचना भी पुनर्रचित होती है।

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के बाद भारतेन्दु का आविर्भाव हिन्दी साहित्य के लिए वरदान साबित हुआ। उन्होंने अल्पायु में जिस कर्म की सिद्धि की, उसे कोई अन्य साहित्यकार कदाचित् सौ वर्षों में भी न कर पाता। भारतेन्दु का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य हिन्दी भाषा का संस्कार करना था। भारतेन्दु ने खड़ी बोली गद्य को परिमार्जित करके उसमें माधुर्य तथा स्पष्टता का समावेश किया और इस प्रकार उसे साहित्य की समर्थ भाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया। उनसे पूर्व खड़ी बोली गद्य का रूप व्यवस्थित नहीं था। लल्लूलाल, सदलमिश्र, इशा अल्लाखों, सदासुख लाल, शिव प्रसाद सितारे हिन्द तथा राजा लक्ष्मण सिंह जैसे लेखक अपने-अपने तरीके से इसका प्रयोग कर रहे थे। भारतेन्दु ने सर्वप्रथम विभिन्नताओं को समाप्त कर गद्य के सर्वमान्य रूप को निर्धारित एवं सुव्यवस्थित किया। भारतेन्दु ने युग की भावनाओं को वाणी प्रदान कर तत्कालीन साहित्यकारों का मार्गदर्शन किया। भारतेन्दु युगीन साहित्यकारों की सबसे बड़ी विशेषता यह थी

कि उनका समग्र जीवन भारतीय जनजीवन से जुड़ा था, वे प्राचीन और नवीन के संधिस्थल पर खड़े थे। यही कारण है कि उन्होंने अपने देश को जो कुछ दिया, उसमें पश्चिम के प्रकाश और पूर्व की दीप्ति का, प्राचीन भारत की आस्था और नवीन भारत की तार्किकता का अद्भुत समन्वय था। राम स्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं, "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (1850-1885) के साथ आचार्य रामचन्द्रशुक्ल द्वारा अपने इतिहास में आधुनिक काल का 'गद्यकाल' (1850 ई.) नामकरण पूरी सार्थकता पाता है। भारतेन्दु ने गद्य के प्रायः सभी तरह के उपयोग और काव्य-रूप एक साथ आरम्भ कर दिए और यों गद्य का पूरा संभव विस्तार किया। जीवनीकारों ने उल्लेख किया है कि पत्र-व्यवहार के लिए भारतेन्दु ने सप्ताह के सात दिनों में प्रत्येक दिन कागज का एक अलग रंग निर्धारित कर रखा था— रविवार को गुलाबी, सोमवार को सफेद से लेकर शनिवार को नीला रंग। कह सकते हैं कि इसी तरह भारतेन्दु ने गद्य के विविध रंग हैं— नाटक का जीवंत संवादपरक गद्य, उपन्यास का अंकनपरक, पत्रकारिता-निबंध, जीवनी-वृत्तांत यात्रावृत्त का वर्णनात्मक वैचारिक, और आलोचना का चिंतनपरक गद्य। फिर इनसे भिन्न गद्य-स्तर हैं पत्रों और जर्नल का जो अधिकतर अपनी प्रकृति में अनौपचारिक है।"⁵⁰ जिस प्रकार कागज के रंग ने भारतेन्दु के गद्य के विविध रंग को प्रस्तुत किया उसी प्रकार पत्र साहित्य के विविध रंग को नवीन कलेवर प्रदान करते हैं। यथार्थ को उद्घाटित करते हैं।

डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं, "यथार्थ असीम है। लेखन-विषय के रूप में वर्तमानता कभी चुकेगी नहीं। वर्तमानता निरंतर विकसनशील है। वर्तमान अपनी अन्तर्संबंधता में पहचाना जाता है। हमारे वर्तमान में कितनी समस्याएँ हैं, इन समस्याओं की कितनी पतें हैं? उनके ऐतिहासिक, आर्थिक, सांस्कृतिक कारण और दबाव हैं? विभिन्न वर्गों और वर्गों ही नहीं, एक-एक व्यक्ति पर इन सब का अलग-अलग, समान और असमान प्रभाव है। असंख्य व्यक्तियों द्वारा साक्षात् अनुभूत किया जाता हुआ यह युग अपनी समस्याओं, समस्याओं की पतों में जीवंत और अखंड है। अखंड यानी परस्पर संबंधित। मार्क्स ने कहा था— प्रत्येक वस्तु अन्य प्रत्येक वस्तु से जुड़ी है। वर्तमानता की अखंडता कोई अरूप अलौकिक तत्व नहीं वह हमारे सामने है, हम पर चोट करती हुई— हमें ललकारती हुई। हमारे साथ उसे देशवासी झेल रहे हैं। संस्कृति, अतीत, गौरव, पुराण-गाथा, मिथक सब वर्तमान पर घटित हो रहे हैं। वर्तमान का चक्र इन्हें काट-छोट, खराद रहा है। क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं से खुद वर्तमान भी बन रहा है और मिटता हुआ भविष्य में ढल भी रहा है। इन मूल्यों की कसौटी यह है कि समाज और व्यक्ति के ऐतिहासिक वर्तमान में कितने सहायक या बाधक हैं।"⁵¹ समाज और व्यक्ति के ऐतिहासिक वर्तमान को समझने में साहित्यकारों के पत्र सहायक होते हैं। अतीत किन-किन राहों से गुजरकर वर्तमान की जटिलताओं से सम्बद्ध हुआ? साहित्यकार या लेखकों के जीवन में यथार्थ तौर पर क्या घटित हो रहा था? साहित्य की सेवा-सुश्रूषा के अलावा निजी जीवन की चिंताओं से वे किस कदर घात-प्रतिघात कर रहे थे? इन सबका लेखा जोखा रचनाकारों के पत्रों से लिया जा सकता है। पत्र साहित्यिक दस्तावेज के साथ ही साथ सांस्कृतिक दस्तावेज भी होते हैं। पत्र की संस्कृति के साथ समाज की संस्कृति गहरे रूप में जुड़ी होती है। गालिब के पत्रों से उनके घर की स्थिति को देखा जा सकता है— 'आसमों एक घंटा बरसे तो घर दिन भर'।⁵² एक तरह यह सिर्फ गालिब के घर की स्थिति नहीं है बल्कि शोषित जन समाज की यथार्थपरक सच्चाई है। जहाँ लोगों की छत टपक रही थी। लोग अतीत में कठिन जीवन जी रहे थे। इस प्रकार पत्रों की संस्कृति युग की संवेदना को बड़ी सूक्ष्मता के साथ उद्घाटित करती है।

पत्रों की क्षमता से इतना ही अभिप्राय है कि 'पाती आधा मिलन' नहीं मिलन⁵³ है। जब पाती आधा मिलन नहीं है बल्कि वह मिलन है तब पाती की सजीवता भी असंदिग्ध है। इसी स्तर पर आकर के पाती (पत्र) संवाद का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल के यहाँ भी 'पत्र' पूरा मिलन है, जिसमें छप्पन वर्षों की युगीन संस्कृति के दर्शन होते हैं। पूरा का पूरा युग पत्रों में छलक पड़ता है। पत्रों की संस्कृति 'मित्र संवाद' में संवाद की संस्कृति के रूप में उत्कृष्टता के नये धरातल को तराशती है।

संदर्भ

- ¹ डॉ नित्यानन्द तिवारी – साहित्य का स्वरूप, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1985, भाद्र 1907, पृ. स 10।
- ² राम स्वरूप चतुर्वेदी– हिन्दी गद्य: विन्यास और विकास, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद संस्करण, 1996, पृ स 11।
- ³ डॉ कैलाश चन्द्र भाटिया, रचना भाटिया– साहित्य में गद्य की नई विविध विधाएँ, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1996, पृ. स.104।
- ⁴ राम स्वरूप चतुर्वेदी– हिन्दी गद्य: विन्यास और विकास, पृ. सं 12।
- ⁵ वही, पृ स 14।
- ⁶ निर्मल वर्मा, स. नन्द किशोर आचार्य, पत्थर और बहता पानी– संस्कृति, चिंतन, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, प्रथम संस्करण, 2000, पृ. स.11।
- ⁷ वही, पृ स 11।
- ⁸ श्यामा चरण दुबे– समय और संस्कृति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1996, पृ स 20।
- ⁹ वही, पृ स 26।
- ¹⁰ डॉ कैलाश चन्द्र भाटिया, रचना भाटिया– साहित्य में गद्य की नई विविध विधाएँ, पृ स.104।
- ¹¹ संपादक डॉ हरवश लाल शर्मा: हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास (चतुर्दश भाग) (वि 2 27) पृ. स 507।
- ¹² डॉ कमल पुजाणी– हिन्दी पत्र साहित्य, 1983 (शोध प्रबंध) कृष्णा ब्रदर्स, महात्मागांधी मार्ग अजमेर, राजस्थान, पृ स 1–2।
- ¹³ रामस्वरूप चतुर्वेदी– हिन्दी गद्य विन्यास और विकास, पृ. स.176।
- ¹⁴ डॉ कमल पुजाणी– हिन्दी का पत्र साहित्य, पृ. स.2।
- ¹⁵ वही पृ स 2।
- ¹⁶ आजकल, दिसंबर 1997, डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी, गिरनी थी हमपे..., संपादक, प्रतापसिंह बिष्ट, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, पृ. स.11।
- ¹⁷ कमल पुजाणी– हिन्दी का पत्र साहित्य, पृ. सं.7।
- ¹⁸ अशोक वाजपेयी– जनसत्ता (कभी–कभार), संपादक– प्रभात जोशी, नई दिल्ली, 9 सितंबर 2001।
- ¹⁹ अजीत कुमार द्विवेदी– “चिट्ठीयों” हो तो हर कोई बांचे...”, हिन्दुस्तान, दैनिक समाचार पत्र, संपादक– मृणाल पाण्डेय, 10 फरवरी 2002।
- ²⁰ रमेश दत्त दुबे – ‘चिट्ठीरसा और चिट्ठीदसा’, 9 मार्च 2002, जनसत्ता, संपादक प्रभात जोशी।
- ²¹ वही।
- ²² वही।
- ²³ नन्द किशोर नवल– मैं पढ़ा जा चुका पत्र, आधार प्रकाशन, पंचकुला, हरियाणा, प्रथम संस्करण, पृ स 9।
- ²⁴ संपादक– जयदेव तनेजा – राकेश और परिवेश. पत्रों में, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पहला संस्करण, 1995, पृ स 13–14।
- ²⁵ संपादक डॉ कमलेश अवस्थी – हमको लिख्यो है कहों, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2001 पृ स 29–29।
- ²⁶ डॉ कैलाश चन्द्र भाटिया, रचना भाटिया – साहित्य में गद्य की नई विविध विधाएँ, पृ. स.105।

-
- ⁷⁷ वही पृ स 105।
- ⁷⁸ डॉ राम दरश मिश्र से श्री जसवीर त्यागी की बातचीत से उद्धृत (अप्रकाशित)।
डॉ कैलाश चन्द्र भाटिया रचना भाटिया—, साहित्य मे गद्य की नई विविध विधाएँ, पृ स 111।
चन्द्रदेव यादव— पत्र—लेखन का महत्व — 'राष्ट्रीय सहारा दैनिक समाचार पत्र, दिनांक 8 अप्रैल 2002 प्रधान संपादक जयव्रत राम।
- ⁸¹ डॉ हरिवंश तरुण— मानक हिन्दी व्याकरण और रचना, प्रकाशन संस्थान, दरियागंज, नई दिल्ली संस्करण 2001 पृ स 320।
- ⁹ वही पृ स 320।
- ¹³ वही पृ स 320।
- ¹⁴ डॉ रामविलास शर्मा— कवियों के पत्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2001, पृ स 7।
- ⁹ रवि भूषण— तद्भव अंक-4 लखनऊ, अक्टूबर 2000 संपादक अखिलेश, पृ स 137।
डॉ कालीचरण स्नेही — प बनारसी दास चतुर्वेदी व्यक्तित्व और कृतित्व, (शोध—प्रबंध), आराधना ब्रदर्स कानपुर प्रथम संस्करण, 1993, पृ स 204।
- ⁷ वही पृ स 201।
- ⁹ डॉ कमल पुजाणी— हिन्दी का पत्र—साहित्य, पृ स 9।
- ⁹ डॉ कालीचरण स्नेही — प बनारसीदास चतुर्वेदी व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ स 202।
- ¹³ डॉ कमल पुजाणी— हिन्दी का पत्र साहित्य, पृ स 9।
- ⁴ डॉ कालीचरण स्नेही — प बनारसीदास चतुर्वेदी व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ स 202।
- ⁴⁷ डॉ कमल पुजाणी— हिन्दी का पत्र साहित्य, पृ स 18।
- ⁴³ वही पृ स 48।
- ¹¹ संपादक— मुकुंद द्विवेदी— हजारी प्रसाद द्विवेदी पत्र (प्रथम खंड) पृ स 7।
- ¹⁵ वही पृ स 7।
- ⁴⁶ डॉ कैलाश चन्द्र भाटिया— साहित्य मे गद्य की नई विविध विधाएँ, पृ स 106।
- ⁴⁷ डॉ रामचन्द्र वर्मा शास्त्री— हिन्दी साहित्य प्रवृत्तियाँ एवं विकास, अनीता प्रकाशन, चहोवालान दिल्ली, संस्करण 1992—1993 पृ स 187।
- ⁴⁸ डॉ राम दरश मिश्र से श्री जसवीर त्यागी की बातचीत से उद्धृत (अप्रकाशित)।
- ¹⁹ रामस्वरूप चतुर्वेदी— हिन्दी गद्य विन्यास और विकास, पृ स 176।
वही पृ स 73।
- ¹ डॉ विश्वनाथ त्रिपाठी— देश के इस दौर में, पृ स 12।
- ⁹⁷ वही पृ स 12।
- ⁹³ आजकल— डॉ विश्वनाथ त्रिपाठी— गिरनी थी हमपे पृ स 11।

अध्याय – दो

हिन्दी में पत्र-साहित्य की परंपरा

उप अध्याय—एक

संस्कृत और हिन्दी काव्य में पत्र-संदर्भ

क. संस्कृत काव्य में पत्र

ख. हिन्दी काव्य में पत्र

उप अध्याय—दो

हिन्दी गद्य में पत्र साहित्य की परंपरा

क. जनपदीय भाषाओं में लिखित पत्र साहित्य

ख. भारतेन्दु कालीन पत्र साहित्य

ग. द्विवेदी कालीन पत्र साहित्य

घ. छायावाद कालीन पत्र साहित्य

ङ. छायावादोत्तर कालीन पत्र साहित्य

च. स्वातंत्र्योत्तर पत्र साहित्य

छ. 1980 के बाद प्रकाशित पत्र साहित्य

(पत्र साहित्य का उत्कर्ष काल)

उप अध्याय—तीन

पत्रिकाओं में छपे हुए प्रमुख साहित्यिक पत्र

अध्याय – दो

हिन्दी में पत्र-साहित्य की परंपरा

वर्तमान दौर सूचना और जनसंचार के क्रांति का दौर है। नित नये-नये माध्यम सूचनाओं को प्रेषित करने के लिए आ रहे हैं। ऐसे में पत्रों ने अपना स्थान सुरक्षित रखा है। हिन्दी में पत्रों की अत्यंत समृद्ध परंपरा नहीं रही है फिर भी जितने पत्र हैं, साहित्यिकता की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। साहित्यिकता सवेदनात्मक होती है, विवरणात्मक नहीं। हिन्दी भाषा या किसी भी भाषा का विकास विश्व की अन्यान्य भाषाओं के लेन देन से ही होता है। आदान-प्रदान का दौर चलता रहता है। भाषाएँ और उनके साहित्य विकसित, परिष्कृत और समृद्ध होते रहते हैं। पत्र साहित्य के साथ भी कुछ ऐसा ही है। भारत में आत्मनिवेदनात्मक पत्र-साहित्य की परंपरा प्राचीन है लेकिन उसका नवीनीकरण दुनिया के अन्य भाषाओं के साहित्य के साहचर्य में हुआ।

उप अध्याय—एक

संस्कृत और हिन्दी काव्य में पत्र-संदर्भ

मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं, 'साहित्यिक आंदोलनों, दृष्टिकोण संबंधी संघर्षों और रचना संबंधी नवीन प्रयासों की अभिव्यक्ति केवल प्रौढ़ कृतियों में ही नहीं होती, बहसों, घोषणापत्रों, पत्रों, और डायरियों में भी होती है। एक युग की कला सवेदना, वैचारिक संघर्ष और मूल्य दृष्टि को समझने में इनसे भी मदद मिलती है।' वस्तुतः साहित्य की किसी भी विधा में युग की प्रतिध्वनि पा सकते हैं। 'कवितावली' में मध्यकालीन युग बोल रहा है तो आधुनिक काल की रचनाओं में आधुनिक मनुष्य की सवेदना निखरती है। 'कवितावली' की पंक्ति है— "खेती न किसान को भिखारी को न भीख बनि जीविका विहीन लोग सीधमान सोच बस/कहै एक एकन सो कहों जाई का करी।' उस युग का सच था। आज का सच भी 'जीविकाविहीन युवक है। किसी प्रगतिशील कवि को ले वर्णन यथार्थपरक मिल जाएगा।

(क) संस्कृत काव्य में पत्र

संस्कृत के कवियों के यहाँ भी युग का सच प्रतिध्वनित होता है। उनके यहाँ पत्रों का उल्लेख है। डॉ. कमल पुजाणी ने अपने शोध-प्रबंध में 'पत्र-लेखन की प्राचीनता' पर बड़ी ही मूल्यवान् जानकारी दी है। उन्होंने संस्कृत में 'पत्र-लेखन' के प्राचीनतम रूप को उद्घाटित करते हुए लिखा है— संस्कृत साहित्य में महान कवि कालिदास के ग्रंथों में प्राचीनतम पत्र लेखन के अनेक संदर्भ मिलते हैं। कालिदास भारतीय वाङ्मय के गौरवपूर्ण कीर्ति स्तम्भ हैं। उनकी कृतियों में स्थान-स्थान पर निर्दिष्ट पत्र-लेखन प्रक्रिया से तत्कालीन पत्र लेखन पद्धति और सामग्री पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। उन्होंने अपने प्रसिद्ध 'महाकाव्य' 'कुमार सभवं' के प्रथम सर्ग में लिखा है कि हिमालय प्रदेश की विधाधर सुन्दरियों भूर्ज-पत्रों पर धातुरस (सिन्दूर अथवा गेरू) से अपने प्रेमियों के पास पत्र लिखा करती थी, जिनके अक्षर हाथी की सूँड पर मिलने वाले बिन्दुओं के समान सुन्दर होते थे।

“न्यस्ताक्षरा धातुरसेन यत्र भूर्जन्वयः कुंजर बिन्दु शोणाः ।

व्रजन्ति विद्याधर सुन्दरी णाम नंगलेख क्रिययोपयोगम् ।।

कालिदास की ही लोकप्रिय नाट्यकृति ‘अभिज्ञान शाकुन्तलम्’ में मदन लेख (प्रेम पत्र) का उल्लेख है। महाकवि बाण की प्रसिद्ध गद्यकृति ‘कादम्बरी’ में भी ऋषि कुमार पुण्डरीक द्वारा तमाल वृक्ष के पत्ते पर महाश्वेता के नाम लिखी गई प्रणय पत्रिका का सुन्दर वर्णन किया गया है।

पत्राचार का महत्व प्राचीनकाल से स्वीकार्य है पर यातायात के साधन अधिक न सरल थे, अतः उन दिनों प्रियजनों तक संदेश पत्र भेजने के लिए हंसों, कबूतरों, तोतों आदि का सहारा लिया जाता था। महाभारत के ‘नलोपाख्यान’ के अध्ययन से ज्ञात होता है कि नल और दयमन्ती का पत्र-व्यवहार हंस के माध्यम से ही हुआ था। ‘चौद’ के पत्र विशेषांक में पत्र लेखन की प्राचीनता प्रदर्शित करने के लिए दयमन्ती और हंस का एक सुन्दर चित्र दिया गया है। प्राचीनकाल में पक्षियों के अतिरिक्त राहगीरों, घुडसवारों, विप्रों आदि के द्वारा भी पत्र भेजे जाते थे।

‘श्रीमद्भागवत्’ में उल्लेख है कि रूक्मिणी ने श्री कृष्ण के पास अपना प्रणय पत्र एक विप्र के द्वारा भेजा था। दूतों के द्वारा संदेश भेजने के कारण प्राचीनकाल में इसे ‘दूतकाव्य’ भी कहा करते थे।

डॉ. कमल पुंजाणी ने प्राचीन डाक व्यवस्था की रोचक जानकारी प्रस्तुत की है। उन्होंने लिखा है— “डाकियों के सेवा-सूत्र से पत्रों के वितरण की पद्धति मध्ययुगीन भारत में सबसे पहले शेरशाहसूरी (1486-1575) ने चलाई थी। किन्तु आधुनिक भारत में आधुनिक ढंग की डाक-तार व्यवस्था जारी करने का श्रेय लाई डलहौजी को है। उसने पोस्टकार्ड चलाया और आधुनिक ढंग के डाक घरों का निर्माण किया।”² कई पडावों को पार कर डाक-व्यवस्था आज के स्वरूप को ग्रहण कर सकी है।

(ख) हिन्दी काव्य में पत्र

“हिन्दी पत्र लेखन का सकेत सूत्र प्राचीन काव्य में उपलब्ध है। प्राचीन काल में पद्य की प्रधानता थी, पत्र भी पद्य में लिखे जाते थे।”³ पत्र लेखन की दृष्टि से रासो ग्रंथ उल्लेखनीय है। पत्र लेखन की चर्चा ‘पृथ्वीराज रासो’ के ‘पद्मावती समय’ सर्ग में उपलब्ध है। इसमें तोते के द्वारा आठ पहर में दिल्ली जाकर ‘पृथ्वीराज’ को पत्र पहुँचाने का उल्लेख है।⁴

उपलब्ध लोक-साहित्य में प्रेमिकाओं द्वारा अपने प्रेमियों के पास पत्र भेजने का उल्लेख है। “जैसे उडजा-उडजा रे सुआ गंगाराम खबरियाँ लइये गोरी धना की। एक प्रेमिका अपने खत में आग्रह करती हुई कहती है— ‘खतु लेजा गंगाराम हमारे गौने कौ’। लोक साहित्य के लिए समर्पित विद्वान देवेन्द्र सत्यार्थी ने ‘बाजत आवे ढोल’ पुस्तक में अनेक भाषाओं के लोकगीत सकलित किये हैं, जिनमें पत्रों का उल्लेख बहुतायत से है। डॉ. कमल पुंजाणी ने हिन्दी ग्रंथों में पत्र-लेखन के सूत्र को खोजने का प्रयास किया है। उन्होंने कई ग्रंथों से उदाहरण देकर इसकी पुष्टि भी की है। यथा कबीरदास को कभी पत्र लिखने की आवश्यकता ही महसूस नहीं हुई, क्योंकि उनके प्रियतम तो उनके तन-मन में ही समाये हुए थे। महाकवि जायसी की नागमती

प्रिय को संदेश भेजते समय जीव जंतुओं तथा पशु-पक्षियों के प्रति अपनी सहानुभूति भी व्यक्त करती है। एक पक्षी उसका विरह संदेश, रत्नसेन के पास ले भी गया— "लेइ सो संदेश विहंगम चला। उठी आगि सगरौं सिंघला।"⁵

गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' में 'राम-विवाह प्रसंग' में पत्र का वर्णन इस तरह किया है—

"करि प्रनामु तिन्ह पाती दीन्ही। मुदित महीप आपु उठि लीन्ही।

वारि विलोचन वॉचत पाती। पुलक गात आई भरि छाति।।

राम लखनि उरकर वर चीठी। रहि गए कहत न खाटी—मीठी।

पुनि धरि धीर पत्रिका बॉची। हरषी सभा बात सुनि सॉची।

पूछत अति सनेह सकुचाई। तात कहौ ते पाती आई।"⁶

गोस्वामी तुलसीदास जी की 'विनय पत्रिका' भी पत्रिका है। वहाँ तो गोस्वामी जी की इच्छा है कि मेरी विनय पत्रिका को केवल राम ही पढ़ें—

"विनय पत्रिकादीन की बापु। आप ही बॉचो।"⁷

"महाकवि सूरदास के 'भ्रमरगीत' में श्रीकृष्ण द्वारा ब्रजवासियों तथा गोपियों के पास भेजे गए पत्रों के उल्लेख भी मिलते हैं। कृष्ण की पाती कभी-कभी तो विरह की 'काती' ही हो जाया करती है— इसीलिए — "कोउ ब्रज बॉचत नाहि न पाती। कत लिखि लिखि पठवत नन्द नन्दन कठिन विरह की काती।"⁸

"बाबू वृन्दावनदास के अनुसार विनय पत्रिका तथा सूर विनय पत्रिका पत्र विधा के ही रूप है।"⁹ बाबू वृन्दावन दास अथवा अन्यान्य विद्वान भले ही इन पत्रों को साहित्यिक विधा मानें किंतु आधुनिक अर्थों में इन पत्रों को महत्व नहीं है। आप देखिए तो पायेंगे कि सारे पत्रों में अनिश्चितता की स्थिति बनी हुई है। पाती, खत अथवा पत्र तो लिखने वाला भेज रहा है लेकिन उधर से पत्र आयेगा, जवाब आयेगा; इसकी निश्चितता संदिग्ध है। पत्र-साहित्य तो आत्मीयता का पर्याय है। प्रश्नों उत्तरों का सिलसिलेवार संग्रह है। कविता में पत्रों के भेजने का उल्लेख एक बात है और स्वतंत्र रूप में पत्रों का लिखना दूसरी बात है। गोस्वामी जी की विनय पत्रिका की तो पत्रिका है, इसमें संदेह नहीं लेकिन पत्र अलौकिक सत्ता के समक्ष लिख गया है। पत्र एक तरफा है और दूसरे की कोई प्रत्यक्ष सत्ता नहीं है। दूसरी ओर से पत्रों का जवाब भी नहीं मिलता। सूर के यहाँ भी वर्णन अलौकिक सत्ता का ही है। आप कवियों के उल्लिखित पत्र व्यवहार देखिए तो पायेंगे कि कहानी की गति को बनाये रखने के लिए ही पत्रों का उपयोग होता है। दो मित्र पत्र नहीं लिख रहे हैं बल्कि तीसरा उनके पाती का उल्लेख कर रहा है। तीसरा अर्थात् रचनाकार। पत्रों से युगीन संस्कृति का बोध होता है जबकि कविताओं में व्यक्त पत्र तो नाममात्र के हैं उनसे पत्रों का सांस्कृतिक, सामाजिक महत्व व्याख्यायित न होकर कवि के परिवेश

का महत्व उद्घाटित होता है। विनय पत्रिका निश्चित रूप से आत्मीयता और निवेदनपूर्वक रची गयी रचना है लेकिन यह एक अर्जी है। जिरह है।

उप अध्याय—दो

हिन्दी गद्य में पत्र साहित्य की परंपरा

(क) जनपदीय भाषाओं में लिखित पत्र—साहित्य

गद्य में पत्र लेखन की परंपरा बहुत प्राचीन नहीं है। इसका स्वरूप जनपदीय बोलियों में उद्घाटित होता है। जिस प्रकार गद्य का विकास खड़ी बोली गद्य से नहीं माना जा सकता उसी प्रकार पत्र साहित्य का विकास सिर्फ खड़ी बोली के पत्रों से नहीं माना जा सकता बल्कि उसमें अन्यान्य जनपदीय उपभाषाओं का योगदान है। डॉ. कमल पुजाणी ने “हिन्दी की उपभाषाओं में राजस्थानी गद्य को सर्वाधिक प्राचीन माना है।”¹⁰

डॉ. कोतमिरे के मतानुसार — ‘हिन्दी साहित्य के वीरगाथा—काल में राजस्थान, भारत की संस्कृति एवं साहित्य का केन्द्र होने के कारण यहाँ प्राचीनतम पत्राभिलेख सुरक्षित हैं। प्राचीनतम हिन्दी गद्य के रूप में महाराजा पृथ्वीराज और राजा समरसी से संबंध कुछ आज्ञा पत्र हिन्दी की अनेक पुस्तकों में उद्धृत किये गए हैं। राजस्थानी—गद्य में पत्राभिलेख की प्रामाणिक सामग्री का सकलन कविराज श्यामलदास कृत ‘वीर विनोद’ शीर्षक ग्रंथ में किया गया है। शिवाजी की औरंगजेब के दरबार में ‘आगरा की यात्रा’ शीर्षक पुस्तक में राजस्थानी में लिखे गये 68 पत्र संकलित हैं। इन पत्रों का संपादन डॉ. जदुनाथ सरकार तथा डॉ. रघुवीर सिंह ने किया है। इन पत्रों में आगरे में शिवाजी की बादशाह औरंगजेब के साथ मुलाकात और वहाँ शाही कैद से उनके भाग निकलने का सुन्दर और सजीव भाषा में वर्णन किया गया है। अधिकतर पत्र आम्बर के दीवन कल्याणदास को ही संबोधित हैं। बालुशाह द्वारा 20 मई 1666 ई. को लिखे गये एक पत्र का प्रारम्भिक अंश उद्धृत करते हैं— “सिद्धि श्री सरवोपमा जोगी सग ही श्री कल्याणदास जी जोगी लिषत बलु केन्य जुहार बाच्य। औछा का समाचार भला छै। थरका सदा भला चाहिये। अपरच राजी सवाजी का वापाती साहजीनौ मील्यो का समाचार तपशील बार आगौ लिषी भेज्या या स मालुम हुवा होसी।”¹¹

ब्रजभाषा में लिखे पत्रों की संख्या अधिक नहीं है। 16वीं शताब्दी में राधावल्लभ संप्रदाय के श्रीहित हरिवंश जी द्वारा जूनागढ़ के दीवान को लिखी दो ‘श्रीमुख पत्रियों’ का उल्लेख अवश्य मिलता है। एक पत्री इस प्रकार है। “श्रीमुख पत्री लिखित। श्री सकल गुण सम्पन्न रसरीति बहावनि चिरजीव मेरे प्राननि के प्राण नीढलदार जोग लिखित श्री वृन्दावन रजोपसेवी श्री हरिवंश जोरी सुमिरन बचनौ। जोरी सुमिरन मत रहौ। जोरी जो है सुख बरसत तुम कुसम स्वरूप है। तिहारे हस्ताक्षर बारम्बार आवत है। सुख अमृत स्वरूप है। बौचत आनन्द उमडि चलै है।”¹²

कालान्तर में भोजपुरी, मैथिली, अवधी, बुन्देली, तथा मराठी की पत्र शैलियों का जन्म हुआ। स. 1783 चैत्र बदि” को सवाई जय सिंह के नाम महाराज छत्रसाल का एक खड़ी बोली (बुन्देली मिश्रित) गद्य का पत्र यहाँ उद्धृत है—

“श्री कृस्नोजयति।

श्री महाराजाधिराज श्री महाराज श्री राजा सवाई जैसिंह जू देव येते श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा छत्रसाल जू देव के बाचनै आपर उहाँ के स्माचार भले चाहिजै इहाँ के स्माचार भले है आपर पाती आई हकीकति जानी।

“डॉ. कमल पंजाणी के आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को शांति निकेतन विधाभवन से ‘पत्रकौमुदी’ की एक हस्त लिखित प्रति प्राप्त होने का उल्लेख करते हुए लिखा है कि उसमें पत्र लेखन के नियमों की सौदाहरण चर्चा के साथ ही पौंच हिन्दी पत्रों के नमूने भी दिए गए हैं। 200 वर्ष पुराने खड़ी बोली के पत्रों के नमूने ‘विशाल भारत’ अप्रैल 1940, पृष्ठ 266–267 पर प्रकाशित हुए थे। उनमें विशुद्ध संस्कृत शैली का बाहुल्य बताया गया है।

“ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रारंभिक शासन काल में नागरी अक्षरों में लिखित 160 पत्रों राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली में सुरक्षित हैं। ... इनमें कंपनी सरकार के शासकों, देशी नरेशों, नवाबों, जमींदारों, कानूनगो आदि के पत्रों के अतिरिक्त सरकारी घोषणाएँ, इशतहार, सनदें, परवाने, इकरारनामे, अदालती बयान आदि कागज पत्र भी सम्मिलित हैं। ... डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय तथा डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने इनमें से 145 पत्र, ‘प्राचीन हिन्दी पत्र संग्रह’ पुस्तक में संकलित किये हैं। डॉ. वार्ष्णेय ने ही अपने शोध-प्रबंध – ‘आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका’ में फोर्ट विलियम कॉलेज के पंडितों श्री लल्लूलाल जी और योगध्यान मिश्र के कुछ पत्र उद्धृत किये हैं। सन् सत्तावन के क्रांतिकारियों झोंसी की रानी, तात्या टोपे, राजा मर्दन सिंह, राजा बख्त अली आदि से संबंधित कुछ पत्र प. गौरीशंकर द्विवेदी ने ‘नया संसार’ में प्रकाशित किए हैं।

“इन पत्रों में तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था तथा सन् सत्तावन की क्रांति के अनेक अज्ञात सूत्र पत्रों में मिल जाते हैं। हिन्दी गद्य में पत्र लेखन की सबसे प्राचीन परंपरा राजस्थानी में उपलब्ध है। महाराजा छत्रसाल द्वारा बुन्देली में लिखे गये पत्र अत्यंत रोचक एवं मधुर हैं। भोजपुरी, मैथिली आदि पूर्वी हिन्दी की बोलियों का गद्य प्रायः कागज पत्रों के रूप में ही मिलता है। प्राचीन पत्रों में साहित्यिकता का अभाव है, पर देश की सांस्कृतिक तथा राजनैतिक झलक उनमें अवश्य मिलती है।”¹³ कमल पुंजाणी ने लिखा है, “हिन्दी भाषा के रूपात्मक विकास की दृष्टि से भी ये पत्र अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। सारांशतः हिन्दी पत्र साहित्य के अध्ययन में प्राचीन पत्र धारा का अपना विशिष्ट स्थान है।”¹⁴ साहित्य की परंपरा आस-पास के अनुभवों से समृद्ध होती है। मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं, “रचनाशीलता केवल दूसरी रचनाओं से या साहित्य परंपरा से ही प्रभावित नहीं होती, वह रचनाओं से अधिक अपने आस-पास के जीवन से प्रभावित होती है, इसलिए रचना के परिवेश का विश्लेषण ऐतिहासिक अंतर्दृष्टि की मदद से करना होगा।”¹⁵ ऐतिहासिक अंतर्दृष्टि को समझने में पत्र महत्वपूर्ण होते हैं।

अंग्रेजी राज की भारत में स्थापना के बाद भारतीय जीवन-पद्धति एवं विचार धारात्मक परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप और गठन में भी परिवर्तन हुआ। “आधुनिक ढंग की डाक-व्यवस्था के कारण अब पत्रों को लाने ले जाने में मध्यस्थ की आवश्यकता न रही, जिसके कारण पत्र अब आत्मीय वातावरण का रूप धारण करने लगे। आधुनिक युग में प्रेस की सुविधा से पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन आरंभ हो जाने से साहित्य के प्रति लोगों का रुझान बढ़ने लगा। लेखक, संपादक तथा पाठक के बीच पत्रों ने सेतु का काम किया। अब दैनिक, साप्ताहिक,

मासिक आदि पत्र-पत्रिकाओं में अन्य सामग्री के साथ-साथ प्रसिद्ध साहित्यकारों, राजनायकों, समाज सेवियों के पत्र प्रकाशित होने लगे।¹⁶

(ख) भारतेन्दु कालीन पत्र-साहित्य

हिन्दी भाषा के रूपात्मक विकास की दृष्टि से भारतेन्दु युग के पूर्व प्राप्त पत्र भले ही महत्वपूर्ण हैं, लेकिन पत्र-साहित्य की शुरुआत सुव्यवस्थित एवं वैज्ञानिक दृष्टि से हिन्दी में भारतेन्दु के समय से ही होती है। इस युग के पत्र लेखकों में बाल मुकुन्द गुप्त तथा विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' प्रमुख हैं। बालमुकुन्द गुप्त के पत्र 'शिवशम्भु का चिट्ठा' शीर्षक से 'भारतमित्र' में कौशिक जी के पत्र 'दुबे जी की चिट्ठी' शीर्षक से 'चौद' में प्रकाशित हुए। बालमुकुन्द गुप्त के तत्कालीन वायसराय लार्ड कर्जन के नाम लिखे गए 'शिवशम्भु के चिट्ठे' ने तत्कालीन पाठकों में तहलका मचा दिया था। इन पत्रों में देश के सर्वोच्च शासक वायसराय की बड़ी तीखी आलोचना की गयी है। भारत मित्र 11 अप्रैल 1930 में छपे पत्र के कुछ अंश हैं— "(शिवशम्भु के चिट्ठे और खत बनाम लार्ड कर्जन-1)" — भाई लार्ड! लडकपन में इस बूढ़े भंगड को बुलबुल का बड़ा चाव था। गाँव में कितने ही शौकीन बुलबुलबाज थे। वह बुलबुलें पकड़ते थे, पालते थे और लड़ाते थे, बालक शिवशम्भु शर्मा बुलबुलें लड़ाने का चाव नहीं रखता था। केवल एक बुलबुल को हाथ पर बिठाकर ही प्रसन्न होना चाहता था। पर ब्राह्मण कुमार को बुलबुल कैसे मिले? पिता को यह भय है कि बालक को बुलबुल दी तो वह मार देगा, हत्या होगी। अथवा उसके हाथ से बिल्ली छीन ली तो पाप होगा। बहुत अनुरोध से यदि पिता ने किसी मित्र की बुलबुल किसी दिन ला भी दी तो वह एक घण्टे से अधिक नहीं रहने पाती थी। वह भी पिता की निगरानी में।

"चीज वह बनना चाहिए जिसका कुछ देर कयाम हो। माता-पिता की याद आते ही बालक शिवशम्भु का सुखस्वप्न भंग हो गया। दरबार समाप्त होते ही वह दरबार-भवन, वह एम्फीथियेटर तोड़कर रख देने की वस्तु हो गया। उधर बनाना, इधर उखाड़ना पड़ा। नुमायशी चीजों का यही परिणाम है। उनका तितलियों का सा जीवन होता है। माई-लार्ड! आपने कछाड़के चायवाले साहबों की दावत खाकर कहा था कि यह लोग यहाँ नित्य हैं और हम लोग कुछ दिन के लिए। आपके वह 'कुछ दिन' बीत गये। अवधि पूरी हो गयी। अब यदि कुछ दिन और मिले तो वह किसी पुराने पुण्य के बल से समझिये। उन्हीं की आशा पर शिवशम्भु शर्मा यह चिट्ठा आपके नाम भेज रहा है, जिससे इन मांगे दिनों में तो एक बार आपको अपने कर्तव्य का खयाल हो।

"यह मूर्तियाँ किस प्रकार के स्मृति चिन्ह हैं? इस दरिद्रदेश के बहुत से धन की एक ढेरी है, जो किसी काम नहीं आ सकती। एक बार जाकर देखने से ही विदित होता है कि वह कुछ विशेष पक्षियों के कुछ देर विश्राम लेने के अड्डे से बढकर कुछ नहीं है। माई लार्ड! आपकी मूर्ति की वहाँ क्या शोभा होगी? आइयें मूर्तियाँ दिखावें। वह देखिए एक मूर्ति है, जो किले के मैदान में नहीं है, पर भारतवासियों के हृदय में बनी हुई है। पहचानिए इस वीर पुरुष ने मैदान की मूर्ति से इस देश के करोड़ों गरीबों के हृदय में मूर्ति बनवाना अच्छा समझा। यह लार्ड रिपन की मूर्ति है। और देखिए एक स्मृतिमन्दिर यह आपके पचास लाख के संगमर्मर वाले से अधिक मजबूत और सैकड़ों गुना कीमती है। यह स्वर्गीया विक्टोरिया महारानी का सन् 1858 का घोषणा

पत्र है। आपकी यादगार भी यहीं बन सकती है, यदि इन दो यादगारों की आपके जी में कुछ इज्जत हो।

“मतलब समाप्त हो गया। जो लिखना था, वह लिख गया। अब खुलासा बात यह है कि एक बार ‘शो’ और ड्यूटी का मुकाबिला कीजिए। ‘शो’ को ‘शो’ ही समझिये। ‘शो’ ड्यूटी नहीं है। माई लार्ड! आपके दिल्ली दरबार की याद कुछ दिन बाद उतनी ही रह जावेगी जितनी शिव शम्भू शर्मा के सिर में बालकपन उस सुखस्वप्न की है।”¹⁷

इस प्रकार कर्जन पर कुठाराघात करते हुए बालमुकुन्द गुप्त के पत्र ‘भारतमित्र’ में छपे। 26 नवंबर 1904 ई. में ‘श्रीमान का स्वागत’ में बालमुकुन्द लिखते हैं, “बहुत बातें हैं। सबको भारतवासी अपने छोटे दिमागों में नहीं ला सकते। कौन जानता है कि श्रीमान लार्ड कर्जन के दिमाग में कैसे-कैसे आली खयाल भरे हुए हैं। आपने स्वयं फरमाया था कि बहुत बातों में हिन्दुस्थानी अंग्रेजों का मुकाबिला नहीं कर सकते। फिर लार्ड कर्जन तो इंग्लैण्ड के रत्न हैं। उनके दिमाग की बराबरी कर गुस्ताखी करने की यहाँ के लोगों को यह बूढ़ा भंगड कभी सलाह नहीं दे सकता। श्रीमान कैसे आली दिमाग शासक हैं, यह बात उनके उन लगातार कई व्याख्यानों से टपक पड़ती है, जो श्रीमान् ने विलायत में दिये थे और जिनमें विलायतवासियों को यह समझाने की चेष्टा की थी कि हिन्दुस्थान क्या वस्तु है? आपने साफ दिखा दिया था कि विलायतवासी यह नहीं समझ सकते कि हिन्दुस्थान क्या है! हिन्दुस्तान को श्रीमान स्वयं ही समझे हैं। विलायत वाले समझते तो क्या समझते? विलायत में उतना बड़ा हाथी कहाँ जिस पर वह चवर छत्र लगाकर चढ़े थे? फिर कैसे समझा सकते कि वह किस उच्च श्रेणी के शासक हैं? यदि कोई ऐसा उपाय निकल सकता, जिससे वह एक बार भारत को विलायत तक खींच ले जा सकते तो विलायत वालों को समझ सकते कि भारत क्या है और श्रीमान का शासन क्या? आश्चर्य नहीं, भविष्य में ऐसा कुछ उपाय निकल आवे। क्योंकि विज्ञान अभी बहुत कुछ करेगा।

“भारतवासी जरा भय न करें, उन्हें लार्ड कर्जन के शासन में कुछ करना न पड़ेगा। आनन्द ही आनन्द है। चैन से भंग पियो और मौज उड़ाओ। नजीर खूब कह गया है।

“कूंडी के नकारे पे खुतकेका लगा डंका।

नित भंग पीके प्यारे दिन रात बजा डंका।।

पर एक प्याला इस बूढ़े ब्राह्मण को देना भूल न जाना।”¹⁸

एक और पत्र 17 सितंबर सन् 1904 ई. में ‘भारत मित्र’ में ही ‘वैसराय का कर्तव्य (3)’ नाम से छपा। उसमें लिखा है, “शिवशम्भू को कोई नहीं जानता। जो जानते हैं, वह संसार में एकदम अनजान हैं। उन्हें कोई जानकर भी जानना नहीं चाहता। जानने की चीज शिवशम्भू के पास कुछ नहीं है। उसके कोई उपाधि नहीं, राजदरबार में उसकी पूछ नहीं। हकिमों से हाथ मिलाने की उसकी हैसियत नहीं, उनकी हाँ में हाँ मिलाने की उसे ताव नहीं। वह एक कपर्दक शून्य घमण्डी ब्राह्मण है। हे राजप्रतिनिधि! क्या उसकी दो चार बातें सुनिएगा?

“आपने बम्बई में कहा है कि भारतभूमि को मैं किस्सा कहानी की भूमि नहीं, कर्तव्य भूमि समझता हूँ। उसी कर्तव्य के पालन के लिए आपको ऐसे कठिन समय में भी दूसरी बार भारत में आना पड़ा। माई लार्ड! इस कर्तव्य भूमि को हम लोग कर्मभूमि कहते हैं। आप कर्तव्य-पालन

करने आये हैं और हम कर्मों का भोग भोगने। आपके कर्तव्य—पालन की अवधि है, हमारे कर्मभोग की अवधि नहीं। आप कर्तव्य—पालन करके कुछ दिन पीछे चले जावेंगे। हमें कर्म के भोग भोगते—भोगते यहीं समाप्त होना होगा और न जाने फिर भी कब तक वह भोग समाप्त होगा। जब थोड़े दिन के लिए आपका इस भूमि से स्नेह है तो हम लोगों का कितना भारी स्नेह होना चाहिए, यह अनुमान कीजिए। क्योंकि हमारा इस भूमि से जीने—मरने का साथ है।”¹⁹

‘पीछे मत फेंकिये—4’ 17 दिसम्बर सन् 1904 में विचारों की कड़ी ‘भारत मित्र’ में बनी। “माई लार्ड! सौ साल पूरे होने में अभी कई महीने की कसर है। उस समय ईस्ट इंडिया कम्पनी ने लार्ड कार्नवालिसको दूसरी बार इस देश का गवर्नर जनरल बनाकर भेजा था। तब से अब तक आप ही को भारतवर्ष का फिर से शासक बनकर आने का अवसर मिला है। सौ वर्ष पहले के उस समय की ओर एक बार दृष्टि कीजिए। तब में और अब में कितना अंतर हो गया है, क्या से क्या हो गया है? जागता हुआ रंक अति चिंता का मारा सोजावे और स्वप्न में अपने को राजा देखे, द्वार पर हाथी झूमते देखे अथवा अलिफलैला के अबुलहसन की भौंति कई तरल युवक प्याले पर प्याला उड़ाता घर में बेहोश हो और जागने पर आंखें मलते—मलते अपने को बगदाद का खलीफा देखे, आलीशान सजे महल की शोभा उसे चक्कर में डाल दे, सुन्दरी दासियों के जेवर और कामदार वस्त्रों की चमक उसकी आंखों में चकाचौंध लगा दे तथा सुन्दर बाजों और गीतों की मधुर ध्वनि उसके कानों में अमृत ढालने लगे, तब भी उसे शायद आश्चर्य न हो जितना सौ साल पहले की भारत में अंगरेजी राज्य की दशा को आजकल की दशा के साथ मिलाने से हो सकता है।”²⁰

इसी पत्र में पुनः बालमुकुन्द गुप्त लिखते हैं, “प्रजा की चाहे कैसी ही दशा हो, पर खजाने में रुपये उबले पड़ते हैं। इसके लिए चारों ओर से आपकी बड़ाई होती है। साख इस समय की गवर्नमेण्ट की इतनी है कि विलायत में या भारत में एक बार ‘हूँ’ करते ही रूपयों की वर्षा होने लगती है।”²¹ तब से लेकर स्वतंत्र भारत के इतिहास और समाज की स्थिति बदली नहीं है। 25 फरवरी सन् 1905 में बालमुकुन्द गुप्त लिखते हैं, “माई लार्ड! इस देश की दो चीजों में अजब तासीर है। एक यहाँ के जलवायु की और दूसरे यहाँ के नमक की, जो उसी जलवायु से उत्पन्न होता है। नीरस से नीरस शरीर में यहाँ का जलवायु नमकीनी ला देता है। मजा यह कि उसे उस नमीकीनी खबर तक नहीं होती। एक फारिस का कवि कहता है कि हिन्दुस्थान में एक हरी पत्ती एक बेनमक नहीं है, मानो यह देश नमक से सींचा गया है। किंतु शिव शम्भू शर्मा का विचार उस कवि से भी कुछ आगे है। वह समझता है कि यह देश नमक की एक महाखानि है, इसमें जो पड़ गया वही नमक बन गया। श्रीमान चाहें तो सांभर झील के तट पर खड़े होकर देख सकते हैं, जो कुछ उसमें गिर जाता, वही नमक बन जाता है। यहाँ की जलवायु से अलग खड़े होकर कितनों ही ने बड़ी—बड़ी अटकलें लगाई और लम्बे चौड़े मनसूबे बाँधे पर यहाँ की जलवायु का असर होते ही वह सब काफूर हो गये।”²² इसी पत्र में लेखक पुनः लिखता है, “माई लार्ड! जब आपने अपने शासक होने के विचार को भूलकर इस देश की प्रजा के हृदय में चोट पहुँचाई है तो दो—एक बातें पूछ लेने में शायद कुछ गुस्ताखी न होगी! सुनिये, विजित और विजेता में बड़ा अंतर है। जो भारतवर्ष हजार साल से विदेशीय विजेताओं के पोंवों में लोट रहा है, क्या उसकी प्रजा की सत्यप्रियता विजेता इंग्लैण्ड के लोगों की सत्यप्रियता का मुकाबिला कर सकती है? यह देश भी यदि विलायत की भौंति स्वाधीन होता और यहाँ के लोग ही यहाँ के राजा होते तब यदि अपने देश के लोगों को यहाँ के लोगों से अधिक सच्चा साबित कर सकते

तो आपकी कुछ अवश्य बहादुरी होती। स्मरण करिये, उन दिनों को कि जब अंग्रेजों के देश पर विदेशियों का अधिकार था। उस समय आपके स्वदेशियों की नैतिक दशा कैसी थी, उसका विचार तो कीजिए। यह वह देश है कि हजार साल पराये पॉव के नीचे रहकर भी एकदम सत्यता से च्युत नहीं हुआ है। यदि आपका युरोप या इंग्लैण्ड दस साल भी पराधीन हो जाते तो आपको मालूम पड़े कि श्रीमान के स्वदेशीय कैसे सत्यवादी और नीतिपरायण जो देश कर्मवादी है, वह क्या असत्यवादी हो सकता है? आपके स्वदेशीय यहाँ बड़ी-बड़ी इमारतों में रहते हैं, जैसे रूचि हो, वैसे पदार्थ भोग सकते हैं। भारत आपके लिए भोग्यभूमि है। किन्तु इस देश के लाखों आदमी, इसी देश में पैदा होकर आवारा कुत्तों की भोंति भटक-भटकर मरते हैं। उनको दो हाथ भूमि बैठने को नहीं, पेटभरकर खाने को नहीं, मैले चिथड़े पहनकर उमरें बिता देते हैं और एक दिन कही पडकर चुपचाप प्राण दे देते हैं। हाल की इस सर्दी में कितनों ही के प्राण जहाँ-तहाँ निकल गये। इस प्रकार क्लेश पाकर मरने पर भी क्या कभी वह लोग कहते हैं कि पापी राजा है, इससे हमारी यह दुर्गति है? ²³ चिता कितनी वाजिब है। आज भी गरीब जनता शोषण व दमन की चक्की में पिस रही है। स्थिति ज्यादा बदली नहीं है।

एक पत्र 'विदाई संभाषण' में 2 दिसम्बर 1905 ई. को बालमुकुन्द गुप्त लिखते हैं, "भाई लार्ड! अत को आपके शासन का इस देश में अंत हो गया।" ²⁴ इस प्रकार बालमुकुन्द गुप्त शिवशम्भू के छद्म नाम से भारत की तत्पुगीन सच्चाई और वायसराय कर्जन पर करारा प्रहार करते हैं। संवेदनात्मक धरातल पर पत्रों से हमारा तादात्म्य सहज हो जाता है। अंग्रेजों की कारगुजारियों पर शिवशम्भू के चिट्ठे प्रकाश डालते हैं।

'शिवशम्भू के चिट्ठे' के अलावा 'शाइस्ताखों का खत' नाम से बालमुकुन्द गुप्त का पत्र 'भारत मित्र' में 25 नवंबर सन् 1905 ई. को छपा। 'फुलर साहब के नाम' छपा यह पत्र इस प्रकार है, "भाई फुलरजंग! दो सौ सवा दो सौ साल के बाद तुमने फिर एक बार नवाबी जमाने को ताजा किया है, इसके लिए मैं तुम्हारा शुक्रिया किस जुबान से अदा करूँ। मैंने तो समझा था कि हम लोगों की बदनाम नवाबी हुकूमत की दुनिया में फिर कभी इज्जत न होगी। उस पर अमल दरामद तो क्या उसका नाम भी अगर कोई लेगा तो गाली देने के लिए। मेरा ही नहीं, मेरे बाद भी जो नवाब हुए उन सबका यही खयाल है। मगर अब देखता हूँ कि जमाने का इनकलाब एक बार फिर से हम लोगों के कारनामों को ताजा करना चाहता है। ... तुम बंगाल के हिन्दुओं को धमकाते हो कि उनके लिए फिर शाइस्ताखों का जमाना ला दिया जायेगा। भई वल्लह! मैंने जबसे यह खबर अपने दोस्त नवाब अबुदुल्लदी खों से सुनी है तब से हँसते-हँसते मेरे पेट में बल पड जाते हैं। अकेला मैं ही नहीं हँसा, बल्कि जितने मुझसे पहले और पीछे के नवाब यहाँ बहिश्त में मौजूद हैं सब एक बार हँसे। यहाँ तक कि हमारे सिका सूरत बादशाह औरंगजेब भी जो उस दुनिया में कभी न हँसे थे। इस वक्त अपनी हँसी को रोक न सके। हँसी इस बात की थी कि बेसमझे ही तुमने मेरे जमाने का नाम लिया है। मालूम होता है कि तुम्हें इल्म तवारीख से बहुत कम मस है। अगर तुम्हें मालूम होता कि मेरा जमाना बंगालियों के बनिस्बत तुम फरंगियों के लिए ज्यादा मुसीबत का था, तो शायद उसका नाम भी न लेते। तुमको मालूम होना चाहिए कि यहाँ बहिश्त में भी अंग्रेजी अखबार पढ़े जाते हैं। मेरे जमाने में तो तुम लोगों की गिटपिट बोली को खयाल ही में कौन लाता था, पर मैंने मालूम किया है कि मेरे बाद भी उसकी कुछ कदर न थी।" ²⁵ बालमुकुन्द गुप्त का यह पत्र वर्तमान दौर में भी सांप्रदायिक एकता के मिसाल का सबब बन सकता है। इसी पत्र में आगे बालमुकुन्द गुप्त ने लिखा है, "तुमने बिगड कर कहा है कि तुम

बंगालियों को पॉंच सौ साल पीछे फेंक दोगे। अगर ऐसा हो, तो भी बंगाली बुरे न रहेंगे। उस वक्त बंगाल में एक ऐसे और राजा का राज था, जिसने हिन्दुओं के लिए मन्दिर और मुसलमानों के लिए मस्जिदें बनवाई थीं और उस राजा के मर जाने पर हिन्दू उसकी लाश को जलाना और मुसलमान गाड़ना चाहते थे। वह जमाना तुम्हारे जैसा हाकिम क्यों आने देगा? तुम तो हिन्दू-मुसलमानों को लड़ाकर हुकूमत करने को बहादुरी समझते हो और इस वक्त मुसलमानों के साथ बड़ी मुहब्बत जाहिर कर रहे हो। मगर तुम लोगों की मुहब्बत कलकत्ते में उस लाठके बनाने से ही समझदार मुसलमान समझ गये, जो तुम्हारा एक चलता अफसर सिराजुद्दौला का मुँह काला करने के लिए एक कयासी वकूए की यादगारी तौर पर बना गया है। मुसलमानों से तुम्हारी जैसी मुहब्बत है, उसे वह लाठ पुकार-पुकार कर कह रही है।”²⁶ हाकिम तो आज भी हिन्दू-मुसलमानों की एका बर्दाश्त नहीं कर सकते। 6 दिसम्बर 1992 की घटना के बाद हिन्दू-मुसलमानों की एकता पर धर्म की राजनीति द्वारा कुठाराघात हुआ। गुजरात में सांप्रदायिक दंगा तो मानो विभाजन का दौर 1947 ई. को वर्तमान में खींच लाया था। ‘त्राहि-त्राहि माम् त्राहि माम्’ की चीख-पुकार से गुजरात जल उठा। स्वतंत्र भारत के इतिहास में काले अध्याय का नया संस्करण प्रकाशित हुआ। एक अन्य पत्र में बालमुकुन्द गुप्त लिखते हैं, “आठ मन के चावलों की जगह तुम खुश्कसाली और कहते छोड़कर जाते हो। हथियारों की आजादी की जगह दस आदमियों का मिलकर निकलना, मजलिसें करना और ‘वन्देमातरम्’ कहना बन्द किये जाते हो। अरे यार! इतना तो सोचा होता कि पिंजरे में भी चिड़िया बोल सकती है। कैद में भी जबान कैद नहीं होती। तुमने गजब किया लोगों का मुँह तक सी दिया था।”²⁷

9 मार्च सन् 1907 ई. को, ‘सर सय्यद अहमद का खत’ नाम से बालमुकुन्द गुप्त का एक और खत ‘भारत मित्र’ में प्रकाशित हुआ था। उनका खत अलीगढ़ कालिज के लड़कों के नाम है। “मेरे प्यारों, मेरी आँखों के तारों, मेरी कौम के नौनिहालो! जिन्दगी में मैंने इज्जत नामवरी बहुत कुछ हासिल की, मगर यह कहूँगा और मेरा यह कहना बिल्कुल सच है कि तुम्हारी बेहतरी की तदबीर ही मैंने अपनी उमर पूरी कर दी। तुम लोगों की तरक्की और बेहबूदी के खयाल ही को मैं अपनी जिन्दगी का हासिल समझता रहा। होश सम्हालने के दिन से अखीर दम तक इस कौम मरहूम का मरासिया ही मेरी जुबान पर जारी था। लाख-लाख शुक्र की जगह है कि मेरी मेहनत बेकार न गई। तुम्हारे लिए मैं जो कुछ चाहता था, उसमें से बहुत कुछ पूरा हुआ और तुम्हें एक अच्छी हालत में देख लेने के बाद मैंने खुदा को जान सौंपी...।

“तुम कभी न समझना कि मैं अंग्रेजों की खुशामद किया करता था, या खुशामद के किसी कौम की तरक्की का जीना समझा करता। बल्कि मैंने सदा अंग्रेजों से बराबरी का बरताव किया है। कितने ही बड़े-बड़े अंग्रेज अफसर मेरे दोस्त रहे हैं, मैंने सदा उनसे दोस्ताना और बेतकल्लुफाना गुप्तगू की है। कभी उनकी अफसरी या हाकिमी का रोब मानकर उनसे बरताव नहीं किया। खुदा की इनायत से सय्यद महमूद की तबीयत में मुझसे भी ज्यादा आजादी थी और साथ ही उसने मगर बी इल्मों में भी फजीलत हासिल की थी जिससे उस आजादी की चमक दमक और भी बढ़ गयी थी। यही वजह थी कि मैंने महमूद को जीतेजी अपना कायममुकाम और तुम्हारे कालिज का सेक्रेटरी मुकर्रर किया था। अगर वह होता तो आज तुम लोगों की आजादी और इज्जत एक मामूली हिन्दुस्थानी कान्सटेबल की हिमायत में ठोकर न खाती फिरती और तुम्हें कालिज से निकालकर कान्सटेबलों को कालिज के अहाते में न ला खड़ा किया जाता।”²⁸ आज भी पुलिसिया बर्बरता कैम्पस का है। आये दिन कान्सटेबलों, पुलिसिया तंत्र का खौफ

साम्प्रदायिक सौहार्द को नष्ट करता है, आहत करता है। इस प्रकार उस समय का खत आज भी कितना सार्थक है। साहित्य वही है जो काल का अतिक्रमण करे। इस अर्थ में भारतेन्दु कालीन पत्र साहित्य की श्रेणी में है। उल्लेखनीय है कि इस काल में पत्र-साहित्य का प्रकाशन पत्र-पत्रिकाओं तक ही सीमित रहा है, उसे पुस्तक-संग्रह का रूप नहीं मिला। "पत्रिकाओं द्वारा बहुमुखी विकास प्रक्रिया में अनेक विधाओं का जन्म ही हुआ, जिन्हें रेखाचित्र भी एक हैं, पर निबंध की सीमा रेखा को छूता हुआ एक नया साहित्यिक रूप है। इतिहासकारों ने 'मर्यादा' (सन् 1968 ई) में प्रकाशित बनारसीदास चतुर्वेदी के 'औरंगजेब' शीर्षक रेखाचित्र को हिन्दी का प्रथम रेखाचित्र माना है। पर किसी भी विधा का विकास समय की जटिल प्रक्रिया के भीतर से होता है। वास्तव में रेखाचित्र का लक्षण भारतमित्र में प्रकाशित बालमुकुंद गुप्त के शिवशम्भु का चिट्ठा में ही स्पष्ट होने लगा था।"²⁹ इस प्रकार एक विधा दूसरी विधा से गहरे रूप में जुड़ी होती है।

(ग) द्विवेदीकालीन पत्र-साहित्य

पत्रों को संग्रहीत कर पुस्तकाकार प्रकाशित करने का प्रचलन द्विवेदी युग में हुआ। डॉ. नगेन्द्र ने इसकी पुष्टि में लिखा है, "द्विवेदी युग में नाटक, उपन्यास, प्रभृति मुख्य गद्य विधाओं के अतिरिक्त कुछ अन्य गद्य रूपों, जीवनी, यात्रावृत्त, संस्मरण और पत्र साहित्य के विकास-परिष्कार की ओर भी ध्यान दिया गया। इनमें से अंतिम तीन का प्रवर्तन ही इस युग में हुआ।"³⁰ हिन्दी का प्रथम पत्र संग्रह आर्यसमाजी लेखकों की देन है। महाशय मुंशीराम (श्रद्धानंद) द्वारा संपादित 'ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार भाग-1' इस परंपरा की प्रथम कड़ी है। यह पत्र संग्रह 1910 ई. में यत्रालय गुरुकुल कागड़ी से प्रकाशित हुआ था।"³¹ यह द्विवेदी युग ही नहीं समूचे हिन्दी साहित्य में प्रकाशित पहला पत्र-संग्रह है। डॉ. हरवंशलाल शर्मा के शब्दों में — "जब हम पत्र साहित्य के इतिहास पर दृष्टि प्रक्षेप करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि किसी पत्र संग्रह को सर्वप्रथम प्रकाशित रूप में लाने का श्रेय स्व. मुंशीराम जी (स्वामी श्रद्धानंद) को है। स्वामी जी ने आज से लगभग 64 वर्ष पूर्व संभवतः 1904 में स्वामी दयानंद सरस्वती संबंधी पत्रों का एक संग्रह प्रकाशित किया था।"³² द्विवेदी युग में दूसरा प्रकाशित पत्र संग्रह दयानन्द का पत्र-व्यवहार है। इसके संपादक प. भगवत्दत्त थे।"³³ इस के बाद काफी वर्षों तक पत्र प्रकाशन का कार्य नहीं हो सका। "किसी युग विशेष की साहित्यिक गतिविधियों की जानकारी के लिए तत्कालीन समाचार-पत्र तथा वैयक्तिक पत्र-साहित्य विशेष महत्वपूर्ण होते हैं। द्विवेदी जी का पत्र साहित्य अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है, पर यहाँ नमूने के तौर पर 'भाषा-संशोधन' की दृष्टि से ही कुछ प्रकाश डाला जा रहा है क्योंकि द्विवेदी युग 'परिष्कार युग' के नाम से विख्यात है। भाषा-संशोधन की दृष्टि से आचार्य द्विवेदी की 'सरस्वती' के लिए तैयार की गई पांडुलिपियाँ महत्वपूर्ण हैं जिनकी ओर स्वयं आचार्य द्विवेदी ने श्यामसुन्दर दास जी को एक पत्र में संकेत किया था,

"मेरे समय की 'सरस्वती' की 17 वर्ष की हस्तलिखित कापियाँ मेरे पास हैं। किसी समय भविष्य में वे शायद मूल्यवान समझी जाएँ। उनको देखने से पता लगेगा कि आजकल के हिन्दी धुरधर लेखक किस तरह राह पर लाए गये थे। वे सभी दे डालूँगा। सभा चाहे तो जित्द बँधकर रख छोड़े। (सन् 1923 ई.)

"द्विवेदी जी के पत्रों से भाषा संशोधन के अतिरिक्त तत्कालीन गतिविधियाँ, नोकझोंक, आलोचना-प्रत्यालोचना, सरस्वती की समस्या, लेखकों की स्थिति आदि समस्याओं पर प्रकाश

पडता है। महाकवि शंकर की कविताओं के प्रति उनमें प्रेम था अतएव पद्मसिंह शर्मा को लिखे अनेक पत्रों में उनके संबंध में अनेक सूचनाएँ बिखरी पड़ी हैं। उर्दू साहित्य के आप कितने अधिक प्रेमी थे इसका ज्ञान भी इन पत्रों को पढ़कर ही होता है। द्विवेदी जी जीवन पर्यन्त आर्थिक कष्ट में रहे। इसकी सूचना उनके एक पत्र में स्पष्ट रूप से मिलती हैं।³⁴

(घ) छायावाद कालीन पत्र-साहित्य

“सन् 1931 में गीता प्रेस गोरखपुर से परमार्थ पत्रावली भाग-1 प्रकाशित हुई। इसके बाद पत्रों के संग्रहों के प्रकाशन की श्रृंखला आरंभ हो गई। 1931 में ही प्रेमचन्द द्वारा अनुदित ‘पिता के पत्र पुत्री के नाम’, “शांति प्रिय आत्माराम द्वारा अनुदित ‘आलमगीर के पत्र’ (1931), आचार्य चतुरसेन शास्त्री द्वारा अनुदित ‘गदर के पत्र’ (1934) आदि उल्लेख्य हैं।”³⁵ “ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार’ भाग-2 1935 में प्रकाशित हुआ।”³⁶ ‘पिता के पत्र पुत्री के नाम’ जवाहरलाल नेहरू द्वारा लिखित पत्रों का संकलन है। इन पत्रों को नेहरू ने अपनी बेटी इंदिरा गांधी को लिखा था। ‘आलमगीर के पत्र’ ऐतिहासिक पत्रों का संग्रह है।

(ङ.) छायावातोत्तर कालीन पत्र-साहित्य

छायावाद के बाद पत्रों का संग्रह विपुल मात्रा में प्रकाशित हुआ। सूची निम्नलिखित है। यह सूची डॉ. कालीचरण ‘स्नेही’ की पुस्तक ‘पं. बनारसीदास चतुर्वेदी व्यक्तित्व और कृतित्व’ से ली गयी है—

1. श्री सूर्यबली सिंह सम्पादित ‘मनोहर पत्र’, (1938)।
2. भदन्तानन्द कौशल्यायन कृत ‘मिक्षु के पत्र’, (1940)।
3. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा कृत ‘यूरोप के पत्र’, (2000 वि.)।
4. रामनाथ सुमन कृत ‘भाई के पत्र’, (1944)।
5. एक अभागा ग्रेज्युएट ‘कमला के पत्र’, (1946)।

च. स्वातंत्र्योत्तर पत्र साहित्य

1. धन्यकुमार जैन अनु. ‘रूसी की चिट्ठी’, (1947) मूल रवीन्द्रनाथ टैगोर की पुस्तक ‘रसार चिट्ठी’ का अनुवाद।
2. सुरेश चन्द्र शर्मा अनु. ‘मित्र के नाम पत्र’, (1947)।
3. सत्याश्रम वर्धा से ‘अनमोल पत्र’, (1950)।
4. नवजीवन प्रकाशन मंदिर अहमदाबाद से ‘बापू के पत्र’।
5. नवजीवन प्रकाशन मंदिर अहमदाबाद से ‘बापू के पत्र आश्रम की बहिनों के नाम’ (1950)।
6. नवजीवन प्रकाशन मंदिर अहमदाबाद से ‘बापू के पत्र मीराँ के नाम’ (1951)।
7. श्रीरामजी लाल बघौतिया के ‘उपमन्यु के पत्र’, (1951)।
8. श्री बेढब बनारसी के ‘महत्त्व के गुमनाम के पत्र’, (1952)।
9. श्रीबैजनाथ सिंह विनोद सम्पादित ‘द्विवेदी पत्रावली’, (1954)।

- 10 श्रीमती विमला कपूर द्वारा 'अजाने देशों में', (1955)।
- 11 श्री बनारसीदास चतुर्वेदी तथा हरिशंकर शर्मा के सम्पादन में 'पद्मसिंह शर्मा के पत्र', (1956)।
- 12 श्री बैजनाथ सिंह विनोद सम्पादित 'द्विवेदी युगीन साहित्यकारों के पत्र', (1958)।
- 13 प किशोरी दास वाजपेयी संपादित 'साहित्यको के पत्र', (1958)।
- 14 डॉ धीरेन्द्र वर्मा तथा डॉ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय सम्पादित 'प्राचीन पत्र संग्रह', (1959)।
- 15 प वियोगी हरि संपादित 'बडो के प्रेरणादायक कुछ पत्र', (1960)।
- 16 श्री अमृतराय और मदन गोपाल द्वारा सम्पादित 'चिट्ठी पत्री भाग 1-2', (1962)।
- 17 प कमलापति त्रिपाठी लिखित 'बन्दी की चेतना', (दि. सं. 1962)।
- 18 श्री रामकृष्ण बजाज द्वारा संपादित 'विनोबा के पत्र', (1962)।
- 19 काका कालेलकर द्वारा संपादित 'बापू के पत्र', (1963)।
- 20 श्री रामकृष्ण बजाज द्वारा संपादित 'पत्र-व्यवहार भाग-4', (1963)।
- 21 श्रीमती कौशल्या अश्वक लिखित 'शैली रंगे पत्र', (1963)।
- 22 डॉ जगदीश चन्द्र जैन लिखित 'पत्र व्यवहार भाग-5', (1964)।
- 23 उग्र जी ने 'फाइल और प्रोफाइल', (1970)।
- 24 बच्चन जी ने 'बच्चन के नाम पत्र के सौ पत्र', (1970)।
- 25 डॉ जीवन प्रकाश जोशी का 'बच्चन पत्रों में' (1970)।
- 26 श्री जानकी बल्लभ शास्त्री द्वारा संपादित 'निराला के पत्र', (1971)।
- 27 बच्चन द्वारा संपादित 'पंत के दौ सौ पत्र', (1971)।
- 28 बाबू वृन्दावनदास द्वारा संपादित 'डॉ बनारसी दास चतुर्वेदी के पत्र', (1971)।
- 29 श्री निरकार देव सेवक संपादक 'बच्चन के पत्र', (1972)।
- 30 सस्ता साहित्य मण्डल द्वारा प्रकाशित 'स्वतंत्र भारत की झलक', (1973)। (इसमें प्रथम राष्ट्रपति डॉ राजेन्द्र प्रसाद और डॉ. ज्ञानवती दरबार के बीच हुआ पत्र-व्यवहार संग्रहीत हैं)
- 31 बाबू वृन्दावनदास द्वारा संपादित, 'डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र', (1974)।
- 32 मुहम्मद युनूस लिखित 'कैदी के खत', (1974)।
- 33 श्री रत्नशंकर प्रसाद तथा डॉ. गिरीश चन्द्र त्रिपाठी द्वारा संपादित 'प्रसाद के नाम पत्र', (1976)।
- 34 डॉ रामविलास शर्मा द्वारा संपादित, 'निराला की साहित्य साधना भाग-3', (1976)।
- 35 श्री मधुरेश द्वारा संपादित 'यशपाल के पत्र', (1977)।
- 36 श्री रमण शांडिल्य द्वारा संपादित 'बाबू वृन्दावन दास के पत्र', (1978)।
- 37 अमृता प्रीतम द्वारा लिखित 'दस्तावेज', (1978)।³⁷

उपर्युक्त पत्र प्रकाशन की दृष्टि से भले ही सन् 1936 के बाद पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हुए हो, लेकिन उपयोगिता की दृष्टि से विभिन्न युगीन सच को अपने भीतर समेटे हुए हैं। कुछ पर थोड़ी चर्चा अनावश्यक न होगी।

प्रेम चन्द के पत्रों का संग्रह 'चिट्ठी-पत्री' (दो भाग में) अमृतराय और मदन गोपाल ने संपादित किया। प्रथम संस्करण 1962 में प्रकाशित हुआ। प्रथम भाग 'जमाना' संपादक मुंशी दयानारायण निगम के साथ मुंशी जी की चिट्ठी-पत्री का सिलसिला 1905 में शुरू हुआ; एक पत्र के सम्पादक और एक नये लेखक के पारस्परिक संबंध-सूत्र के रूप में धीरे-धीरे उसने गहरी आत्मीयता का रूप ले लिया, जो मरते दम तक चली।³⁸ मुंशी दयानारायण निगम के साथ प्रेमचंद का गहरा ताल्लुक था। मुंशी प्रेमचंद की मृत्यु 1936 में हुई और मुंशी दयानारायण निगम 1943 के प्रारंभ में इस दुनिया से कूच कर गये। दोनों लोगों की मित्रता लगभग इकतीस वर्षों तक रही। दोनों में गहरी मित्रता थी। केदारनाथ अग्रवाल और रामविलास शर्मा में भी खूब आत्मीयता थी। दोनों मृत्युपर्यन्त एक-दूसरे के होकर रहे।

'चिट्ठी-पत्री' की भूमिका भाग-एक में अमृतराय लिखते हैं, "मुंशी जी की चिट्ठी पत्री का एक और खण्ड भी छप रहा है, लेकिन इन चिट्ठियों को मैंने बाकी सब चिट्ठियों के साथ देना ठीक नहीं समझा— इसीलिए कि इनमें एक ऐसी पूर्णता है, एक जिन्दगी की ऐसी पूरी कहानी, जिसे दूसरे पत्रों के साथ गडमड करना इन्हें भीड़ में खो देने के बराबर होता।"³⁹ भाग एक दोनों के आत्मीय संबंध का जीवन्त दस्तावेज है। प्रेम संबंधी दिक्कतों का बयान भी पत्रों में है। यदि, सभी पत्रों को क्रमबद्ध व सुव्यवस्थित तरीके से पढ़ा जाय तो प्रेमचंद की तस्वीर साफ हो जाती है।

चिट्ठी-पत्री का दूसरा भाग भी दिलचस्प है। इनमें जैनेन्द्र कुमार, चंद्रगुप्त विद्यालंकार, सुदर्शन, इन्द्रनाथ मदान, केशोराम सब्बरवाल, पं. श्रीराम शर्मा आदि के साथ प्रेमचन्द के पत्र-व्यवहार की झलक है। अमृतराय लिखते हैं, "मुंशीजी को खुद भी चिट्ठियाँ संभालकर रखने की आदत न थी। जवाब देते ही फाड़कर फेंक देते थे। तो भी न जाने कैसे और क्यों, उनके कागजों में बहुत सी ऊल-जलूल बेकार चिट्ठियों के ढेर से दस-पाँच अच्छी चिट्ठियाँ भी मिल गयीं — आचार्य नरेन्द्रदेव की, जो उन्होंने पंडित जवाहरलाल नेहरू की किताब 'लेटर्स फ्रॉम ए फादर' के हिन्दी अनुवाद के सिलसिले में मुंशीजी को लिखी थीं, पंडित अमरनाथ झा की, जो उन्होंने 'रंगभूमि' पढ़कर 1925 में देहरादून से लिखी थी; पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी की, जो उन्होंने मुंशी जी को आमंत्रित करते हुए शांति निकेतन से लिखी थी, मौलवी अब्दुल हक की, जो उन्होंने अपनी किसी किताब के लिए मुंशी जी से काशी पर कोई लेख लिखवाने के सिलसिले में लिखी थी, जनाब अब्दुल माजिद साहब दरियाबादी की, जो उन्होंने 'चौगाने हस्ती' पढ़कर मुंशीजी को लिखी थी, ख्वाजा गुलामुस्सैमदैन की, जो उन्होंने मुंशी जी के साहित्य के प्रति अपना अनुराग व्यक्त करते हुए लिखी थी और जिसमें उन्होंने मुंशीजी से अपील की थी कि उर्दू को छोड़ें नहीं, अशफाक हुसैन और सुदर्शन की जो उन्होंने मुंशीजी को बंबई की फिल्मी दुनिया से नाता तोड़कर आने पर लिखी थीं, फिराक गोरखपुरी की जो खुद उनको बहुत खूबसूरती से उजागर करती है... पढ़ने वालों को इनमें दिलचस्पी होगी, इस खयाल से इस फुटकर चिट्ठियों को भी शामिल कर लिया गया है।"⁴⁰ सिर्फ दिलचस्पी ही नहीं पढ़ने वालों को उस युग का सच भी मालूम होता है।

"द्विवेदीकाल के साहित्यकारों के कई संकलन प्रकाशित हो चुके हैं जिनका श्रेय श्री बैजनाथ सिंह 'विनोबा' को है।—

1. द्विवेदी पत्रावली (1954), भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
2. द्विवेदी युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र (1958 ई.)

‘हिन्दुस्तानी एकेडमी’, इलाहाबाद के प्रथम संग्रह के आमुख में डॉ. राजबली पांडेय द्वारा ‘पत्र लेखन कला’ पर बहुत उपयोगी सामग्री है। लेखन का दावा है कि उन्हें 1167 पत्र देखने के मिले। जिनमें से 72 पत्र प्रकाशित थे। सभी पत्र साहित्यिक और सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। दूसरे संग्रह में अन्य साहित्यकारों— जनार्दन झा, कामता प्रसाद गुरु, श्यामसुन्दर दास, श्रीराम शर्मा, बनारसीदास, हरीभाऊ उपाध्याय आदि को लिखे पत्र संकलित हैं। हिन्दी साहित्य के विकास को समझने के लिए इन संकलनों का विशेष महत्व है।

“संकलन के विषय में हिन्दुस्तानी एकेडमी के तत्कालीन सचिव और सुप्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा है— “आचार्य द्विवेदी जी तथा उनके समकालीन लेखकों के व्यक्तित्व का परिचय साधारणतया हमें उनकी रचनाओं द्वारा प्राप्त होता है, किन्तु वह परिचय अधूरा है। उनके वैयक्तिक पत्र इस अधूरी जानकारी को पूरा करते हैं। इन पत्रों से हमें यह भी ज्ञात होता है कि हमारे साहित्य निर्माताओं ने देश के संकट काल से किस अदम्य उत्साह, उत्कट विश्वास और कठोर साधना से हिन्दी भाषा और साहित्य की निःस्वार्थ सेवा की थी।”⁴¹

“द्विवेदी युग के दूसरे समर्थ साहित्यकार तथा समीक्षक पं. पद्मसिंह शर्मा रहे हैं। आपके द्वारा लिखे गये पत्रों का संग्रह पं. बनारसी दास चतुर्वेदी तथा पं. हरिशंकर शर्मा द्वारा संपादित आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली से सन् 1956 में प्रकाशित किया गया था। उनके पत्रों का विशेष रूप से सन् 1905 से 1913 तक के पत्रों का काफी बड़ा भाग नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी में है। पत्र-साहित्य का दूसरा पक्ष भी है जो इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है, संजोया हुआ वह पत्र-साहित्य जो आचार्य पद्मसिंह शर्मा को लिखा गया था। लगभग 200 व्यक्तियों ने समय-समय पर आचार्य जी को पत्र लिखे। यह अलभ्य पत्र-साहित्य पद्मसिंह शर्मा की पुस्तकों के साथ आज क. मु. हिन्दी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय में सुरक्षित हैं। इस संग्रह में से ही पर्याप्त सामग्री कालक्रमानुसार विद्यापीठ के मुख पत्र ‘भारतीय साहित्य’ में सन् 1959 से प्रकाशित की जा रही है। उनको लिखे गये पत्रों से उनका पांडित्यमय एवं गरिमामय व्यक्तित्व परिलक्षित होता है। अगर मूल पत्र के साथ पत्र का भी उत्तर भी पढ़ा जाए तो और भी अधिक आनंद की अनुभूति होती है। कवि अकबर इलाहाबादी ने अपने एक पत्र में पंडित जी के इन्हीं गुणों का उल्लेख करते हुए लिखा था, आपकी काबिलियत और सुखनजहमी ने मुझे आपका आशिक बना दिया है। मेरे लिए दुआ फरमाया कीजिए। शर्मा जी को लिखे पत्रों से तत्कालीन हिन्दी भाषा और साहित्य की अनेक समस्याओं पर प्रभाव पड़ा है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के पत्रों का भी काफी बड़ा भाग है जो उन्होंने सन् 1905 में लिखे थे।”⁴² इन पत्रों के माध्यम से बीसवीं शताब्दी के शुरुआती दौर का इतिहास उद्घाटित होता है। पं. पद्मसिंह शर्मा हिन्दी के साथ-साथ अरबी-फारसी तथा संस्कृत के भी प्रकाण्ड विद्वान थे, यह तथ्य उनको लिखे गये पत्रों से सिद्ध होता है।

“सन् 1926 के पत्र में पं. बनारसी दास चतुर्वेदी ने लिखा, ‘सन् 1915 में इस आलोचना ने जो सान्त्वना दी उसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। इस प्रकार आपने समय-समय पर मुझे उत्साह दिया है उसके लिए मैं आपका ऋणि हूँ। आगे इस पत्र में लिखा है, “प्रोपेगेण्डा की

सड़क पर लेखों की मोटर दौड़ाते-दौड़ाते हैरान हो गया हूँ और साहित्य क्षेत्र के रमणीय स्थलियों की सैर पैदल ही करना चाहता हूँ।⁴³

“प गिरिधर शर्मा के पत्रों में सतसई की ब्रजभाषा पर पर्याप्त सामग्री है। उनके सुझावों के आधार पर आगे के संस्मरणों में कुछ संशोधन कर भी लिया गया पर बहुत से स्थल ऐसे हैं जिनमें कोई संशोधन नहीं किया गया है। आज भी ब्रज-भाषा में मर्मज्ञ विद्वानों के समक्ष सतसई के पाठ प्रश्नचिन्ह के साथ है। इन पत्रों में जहाँ साहित्यिक गतिविधियों की सामग्री है वहाँ भाषा-संबंधी सामग्री भी मिलती है। तत्कालीन वर्तनी के रूप भी प्राप्त होते हैं, जैसे उननै, ब्रहोत, सकेगा, सकै, इकरम छापेंगे, भेजेंगे, मिलेगा, करें कमिटि, फैसिला, जियादह, जुबान, साबित, इनकार, इसरार, तरजीह आदि।⁴⁴

इनके अलावा प किशोरीदास वाजपेयी ने भी दो पत्र संकलन के लिए निष्ठा व लगन का परिचय दिया। उनके प्रकाशित किये गये – ‘साहित्यिकों के पत्र’ (उनकी अपनी लिखावट में सन् 1958) तथा आचार्य द्विवेदी और उनके संगी साथी (सन् 1965)। पहले संकलन में, सुप्रसिद्ध साहित्यकारों के पत्र उनके ब्लाक सहित मुद्रित हैं। प्रत्येक पत्र के बाद आचार्य वाजपेयी ने पत्र लेखक के व्यक्तित्व और कृतित्व पर संस्मरणात्मक शैली में लिखा है। ‘आचार्य किशोरीदास वाजपेयी और हिन्दी शब्द शास्त्र’ (सन् 1978) शीर्षक ग्रंथ में प्रमुख साहित्यिकों – आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, प अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, महाकवि हरिऔध, राष्ट्रकवि गुप्त, प गिरिधर शर्मा, चतुर्वेदी, महापंडित, राहुल, डॉ. चाटुर्ज्या, डॉ. सम्पूर्णानन्द, सेठ गोविन्ददास, डॉ. अमरनाथ झा तथा डॉ. रामविलास शर्मा के पत्र संकलित हैं।⁴⁵

“‘फाइल और प्रोफाइल’ (1968) का संपादन पाण्डेय बेचन शर्मा ‘उग्र’ ने किया।⁴⁶ उग्र ने तो उपन्यास ‘चन्द हसीनों के खतूत’ ही पत्र शैली में लिख डाला जिसकी सर्वत्र प्रशंसा हुई। ‘फाइल और प्रोफाइल’ सत्तर सुप्रसिद्ध साहित्यकारों के सैकड़ों पत्र (पृष्ठ 484) संकलित हैं। प्रारंभ में पत्र लेखकों के संक्षिप्त मनोरंजन शैली में परिचय भी है, जिसमें से उग्र जी स्वयं 13 पत्र का परिचय ही लिख सके।

‘उग्र विद्रोही थे, लीक छोड़कर चलने वाले’। कस्तूर चन्द ने जबलपुर से अपने दिनांक 8 4 1961 के पत्र में लिखा—

“श्रीफल—तुल्य आपका व्यक्तित्व बाहर से ठोस और कठोर (कड़ा) है, किंतु अंतरंग से वह स्निग्ध एवं तरल है। मैं व्यक्तियों से प्रभावित हुआ हूँ। हिन्दी के स्वर्ण युग भक्तिकाल में कहाँ एक मात्र कबीर ऐसा ही व्यक्तित्व था। लौह-युग में, स्टील युग कहा जाए तो बेहतर है— निराला और उग्र भी ऐसे व्यक्तित्व हैं। जो टूट गए किंतु जिन्होंने अवसरवादी स्वर के सामने झुकना जाना ही नहीं।⁴⁷

इसी प्रकार व्याकरण विशेषज्ञ किशोरी दास वाजपेयी ने अपने 30.01.1956 के पत्र में लिखा, “आप जो कुछ लिखते हैं, वही काव्य है और जैसी भाषा में लिखते हैं, वहीं श्रेष्ठ है। व्याकरण तो आप लोगो की भाषा का ही अनुगमन करता है।⁴⁸

छायावादी युग के प्रमुख कवियों निराला और प्रसाद ने भी पत्र लिखे थे, "आधुनिक छायावादी कवियों में 'प्रसाद के नाम पत्र' श्री रत्नशंकर प्रसाद (सन् 1976 ई.) तथा निराला के पत्र श्री जानकी बल्लभ शास्त्री (सन् 1969 ई.) उल्लेखनीय हैं। निराला के दुर्लभ पत्रों का सकलन डॉ. रामविलास शर्मा ने सम्पादित कर 'निराला की साहित्य साधना' के तृतीय खंड के रूप में प्रकाशित किया है जिसके प्रारंभ में पत्रों का संक्षिप्त शैलीगत विवेचन भी दिया गया है और विस्तृत संभावना की ओर संकेत किया है।"⁴⁹

"शांति निकेतन से शिवालिक (1967 ई.) में हजारी प्रसाद द्विवेदी के कुछ पत्र संकलित हैं और 'राष्ट्रवाणी' के 'मुक्तिबोध' विशेषांक में मुक्तिबोध के कुछ पत्र प्रकाश में आये हैं। 'बच्चन के विशिष्ट पत्र' प्रभात प्रकाशन से प्रकाशित हुए हैं। (रामनारायण उपाध्याय के पत्रों का सग्रह चिट्ठी-पत्री' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है।"⁵⁰

(छ) 1980 के बाद प्रकाशित प्रमुख पत्र-साहित्य (पत्र-साहित्य का उत्कर्ष काल)

सन् 1980 के बाद को हम पत्रों का उत्कर्ष काल कह सकते हैं। इस काल में विभिन्न रचनाकारों के पत्रों को संकलित कर किताब की शक्ल दी गई। कुछ पत्र संकलन इस प्रकार हैं—

- | | |
|--|--|
| 1 अनुभूति के क्षण | — सन् 1980 (विजयेन्द्र स्नातक), निजी पत्र। |
| 2 दिनकर के पत्र | — सन् 1981 (सं. कन्हैयालाल फुलफग), विशाल ग्रंथ। |
| 3 द्विवेदी के पत्र पाठक जी के नाम | — सन् 1982 (सं. पद्मधर पाठक) — मूल पत्र अंग्रेजी में। |
| 4 पत्र-हजारी प्रसाद द्विवेदी | — सन् 1983 (सं. डॉ. मुकुन्द द्विवेदी)। |
| 5 हजारी प्रसाद द्विवेदी के पत्र (दो खण्डों में)—संपादक डॉ. मुकुन्द द्विवेदी। | |
| 6 अचल पत्रों में | — सन् 1983 (सं. जीवन प्रकाश जोशी)। |
| 7 उग्र के पत्र | — सुधाकर पाण्डेय। |
| 8 पाया पत्र तुम्हारा (मुक्तिबोध) | — 1984 (सं. नेमिचन्द्र जैन)। |
| 9 पत जी और कालेलकर | — (पंत जी द्वारा लिखित 300 पत्र)। |
| 10 नागार्जुन के पत्र | — सन् 1987 (सं. नगेन्द्र कोहली)। |
| 11 चरचे और चरखे | — (सर्वेश्वर दयाल सक्सेना)। |
| 12 प चन्द्रधर शर्मा गुलेरी पत्रों पर | — सन् 1983 संदर्भ भारती (डॉ. विद्याधर शर्मा गुलेरी)। |
| 13 रवीन्द्र पत्राजलि | — (सं. कैलाश कल्पित) — 100 पत्र। (टैगोर के एक सौ पत्र हैं जिनमें से 11 पत्र एन्ड्रूज को और एक ग्रियर्सन को)। |
| 14 सृजन पथ के पत्र | — (सं. कैलाश कल्पित) अनेक पत्र। |
| 15 पत्रों के प्रकाश में कन्हैयालाल सेठिया | — (सं. कैलाश कल्पित), 80 पत्र। |
| 16 जेल और स्वतंत्रता | — आपातकाल में जेल से लिखे पत्र। |

17. संस्कृति, साहित्य और भाषा — सन् 1979 (डॉ. रघुवंश)।
 18. डॉ. सुमन के पत्रों का संकलन — सन् 1995 (सं. जयदेव तनेजा)।⁵¹

अन्य भाषाओं के पत्र, अनुदित होकर निकले हैं। उनमें 'श्री अरविन्द के पत्र', 'मित्र के नाम पत्र', 'शरत् पत्रावली' हैं।⁵²

साहित्यकारों के अलावा राजनीतिज्ञों के पत्र भी यत्र-तत्र मिल जाते हैं। कुछ प्रकाशित पत्र इस प्रकार हैं—

- "कुछ पुरानी चिट्ठियाँ — पं. नेहरू।
 पत्र-व्यवहार (जमनालाल बजाज के सं. रामकृष्ण बजाज।
 पत्रों का संग्रह — भाग एक-से सात।
 पत्रावली — सुभाष चन्द्र बोस।
 स्वतंत्र भारत की झलक — डॉ. राजेन्द्र प्रसाद।
 गुब्बारे खातिर — सन् 1959 (मौलाना आजाद)
 अडमान की गूँज — क्रांतिकारी चिट्ठियाँ — सन 1973 (वीर सावरकर)।
 सरदार भगत सिंह के पत्र और दस्तावेज — सन् 1976-77 (वीरेन्द्र सिन्धु)
 इन्दिराजी पत्रों और मुलाकातों के आइनों में — पी.डी. टंडन।
 कैदी के खत — मुहमद यूनुस।
 मीरा बहन के पत्र — सन् 1951।
 सरदार पटेल के नाम — सन् 1952।
 बापू का आशीर्वाद — सन् 1953।
 उत्तर प्रदेश में गांधी जी — सन् 1979 (सं. रामनाथ सुमन)।
 धार्मिक पत्रावली — पॉच सौ बहत्तर पत्र।
 लोक परलोक के पत्र — (हनुमान प्रसाद पोद्दार)।
 परमार्थ पत्रावली — जयदयाल गोयनका
 श्री अरविन्द के पत्र — तीन खंड।⁵³

"याद कर लेना कभी.. (शहीदों के खत) प्रकाशन विभाग द्वारा 1997 में प्रकाशित हुआ। इसमें विभिन्न क्रांतिकारियों के पत्रों का संकलन है। जिससे तत्कालीन युग का चित्रण होता है। क्रांतिकारी शहीदों ने समय-समय पर अपने माता-पिता, बहन-भाई, साथियों, मित्रों को जो पत्र

लिखे, वे सभी 'संग्रह' में संकलित हैं। इन पत्रों की मार्मिकता हमें उद्वेलित करती है। रोमांच भी इन पत्रों में बराबर बना रहता है।

अब कुछ पत्र-संग्रहों पर विचार करना अप्रासंगिक न होगा। लेकिन इसके पूर्व रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार, "पत्र-साहित्य का मौलिक और महत्वपूर्ण अंग साहित्यकारों के वास्तविक पत्र ही हैं। महावीर प्रसाद द्विवेदी और प्रेमचंद के पत्र दो महान लेखकों के व्यक्तित्व को सहज भाव से प्रकट करते हैं, साथ ही अपने साहित्यिक युग का बड़ा सजीव चित्र भी उपस्थित करते हैं। लेखकों की समकालीन परिस्थिति की जटिलता का कुछ अनुमान उनके पत्रों से हो सकता है। और फिर बहुत से पत्र स्वतंत्र रूप से गद्य और शैली रचना के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। सच तो यह है कि पत्र साहित्य अकाल्पनिक गद्य वृत्त का एक स्तर पर बड़े अच्छे ढंग से प्रतिनिधित्व करता है, क्योंकि कल्पना का और सजग कलात्मकता का अंश उसमें है नहीं, अतः सर्जनात्मकता का सारा दायित्व भाषिक गठन पर है।"⁵⁴ ऐसा राम स्वरूप चतुर्वेदी का विचार हो सकता है, वस्तुतः ऐसा नहीं है। जिसे राम स्वरूप चतुर्वेदी अकाल्पनिक गद्य वृत्त कहते हैं, दरअसल वह रचनाकार, लेखक की सर्जनात्मकता का प्रतिफल है। पत्रों में लिखी हुई कविता और आलोचना को हम सर्जनात्मकता की कोटि में ही परिगणित करते हैं। रचना सर्जनात्मकता का ही परिणाम होती है। शब्दों के कुशल शिल्पी ही साहित्य की रचना करते हैं। साहित्य का रचा जाना 'कल्पना' पर ही निर्भर है। बिना कल्पना के साहित्य ऐतिहासिक दस्तावेज मात्र रह जायेगा। हाँ शैली की भिन्नता हो सकती है जो कि जायज़ है।

डॉ. बनारसी दास चतुर्वेदी के पत्र: वृन्दावन दास द्वारा सम्पादित हैं। हिन्दी साहित्य की पत्र परंपरा में डॉ. बनारसी दास चतुर्वेदी पत्र लेखन कला के मर्मज्ञ हैं। चतुर्वेदी जी के महान व्यक्तित्व की झलक उनके पत्रों में स्पष्टतया परिलक्षित है। वस्तुतः चतुर्वेदी जी के पत्र भी उनके शुभ विचारों के दर्पण हैं। चतुर्वेदी के पत्र उनके शुद्ध मनोभावों की सात्विकता के प्रतिबिम्ब हैं। चतुर्वेदी जी के पत्र समाज में शुभ संस्कारों और सद्वृत्तियों की स्थापना एवं विकास में सहायक हो सकते हैं। उनके पत्रों में उनके व्यक्तित्व की निर्मल छाप दिखलायी पड़ती है।

'संवाद और एकालाप': मलयज द्वारा लिखित है। इसका प्रकाशन सन् 1984 में हुआ। इस संग्रह में अशोक वाजपेयी के नाम कुछ पत्र हैं। 31.10.1966 का पत्र द्रष्टव्य है। मलयज लिखते हैं: "अब रह जाती है बात सन् साठ के बाद की काव्य-भूमि या काव्य पीढ़ी की। मैं भी यह अनुभव करता हूँ कि कई स्तरों पर आज का कवि अपने पूर्ववर्ती से भिन्न है, किन्तु मैं 'सन साठ के बाद' जैसे विशेष उल्लेख को इस संबंध में एक सुविधाजनक (और कभी-कभी भ्रामक) नारे से अधिक महत्व नहीं देता।... किसी एक कवि या उसके कविता-संग्रह को मददे नजर रखकर काव्य-पीढ़ी के उस 'अंतर' पर चर्चा चलाना प्रायः भ्रामक सिद्ध होता है। अक्सर हो यह रहा है कि एक ही कवि कई-कई प्रवृत्तियों को वहन कर रहा है और काव्य भूमि का अंतर दर्शाने वाली प्रवृत्ति भी उनमें से एक है। यह अंतर दर्शाने वाली प्रवृत्ति भी किसी एक कवि की किसी-किसी कविता में ही व्यक्त हो पाती है।"⁵⁵ कविता पर बहस करते हुए मलयज पुनः लिखते हैं, "एक जमाना था जब कवियों को अपनी अस्तित्व-सिद्धि के लिए अपने से पहली पीढ़ी के सामने जिहादी का रूप भी धारण करना पड़ता था, इसी से समय-समय पर वे काव्य रचना को साथ आत्मने पद भी लिखा करते थे। अब भी वैसी ही तात्कालिक आवश्यकता रह गयी है, ऐसा मैं नहीं मानता। यदि आज सचमुच ही किसी जिहाद या युद्ध की जरूरत है तो हमारे परिवेश में

व्याप्त झूठ, दगाबाजी, क्रूरता और अमानवीय शोषण के खिलाफ, जिससे राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्तरों पर हमारी चेतना बंधी हुई है। यह काम हम किस प्रकार कर सकते हैं इसका निर्णय हर व्यक्ति का अपना निर्णय है। यह काम शायद कविता के क्षेत्र के बाहर का है, पर कविता में 'अंतर' इस बाहर में अपने को झोंके बगैर सिर्फ नारे बुलंद करने से नहीं आ सकता, यह विश्वास मेरा दिनों दिन पुष्ट होता जाता है।⁵⁶ प्रस्तुत पत्र कविता पर आलोचना का सार है।

'हजारी प्रसाद द्विवेदी के पत्र' प्रथम खंड का संपादन मुकुंद द्विवेदी ने किया है। 'आमुख' में मुकुंद द्विवेदी लिखते हैं, "प्रस्तुत खंड में हजारी प्रसाद के उन पत्रों को प्रकाशित किया जा रहा है जो उन्होंने स्व. पं. बनारसी दास चतुर्वेदी को लिखे थे। पं. बनारसी दास चतुर्वेदी के साथ उनका जितना गहरा संबंध था उतना ही गहरा स्नेह उन पर पं. बनारसीदास चतुर्वेदी का भी था। इन पत्रों को पढ़ने से द्विवेदी जी के व्यक्तित्व का पूरा चित्र सामने आता है जिसमें उनकी साहित्यिक साधनाओं, अनेक साहित्यिक समस्याओं एवं गतिविधियों का समावेश है। भाषा की सहजता के साथ-साथ प्रकृति प्रेम एवं विनोद वृत्ति का पूरा दृष्टांत इन पत्रों में मिलता है।"⁵⁷

द्विवेदी जी का प्रकृति के प्रति प्रेम भी पत्रों में कहीं-कहीं दिखलाई पड़ता है, प्रथम बंबई प्रवास के समय चतुर्वेदी जी को लिखे पत्र में इसका सुंदर उदाहरण मिलता है— "समुद्र तो मैंने पहली बार देखा है और वह भी एक ऐसे तूफान के बाद जिसका वेग 75 मील प्रति घंटा था। रास्ते में जंगल, पहाड़, नदी देखते हुए हम लोग नवीन जीवन का अनुभव कर रहे हैं। मेरा दृढ़ विश्वास हो गया है कि मैदान में रहने वालों को नई स्फूर्ति पाने के लिए इन पहाड़ों, जंगलों और नदी-नालो को तथा समुद्र को जरूर देखना चाहिए। बिना इनके देखे हम जीवनी शक्ति की अखंड धारा का अनुभव नहीं कर सकते। कितना विराट है हमारा देश, कितना मनोरम, कितना विचित्र! इसके लिए प्राण देना कोई बड़ी बात नहीं है।... अब तो मैंने निश्चय कर लिया है कि हिमालय देखने जरूर जाऊंगा। बिना प्रकृति के इस सौंदर्य और तेज को देखे जीवन एकांगी और एकधृष्ट हो जाता है। मैदान के रहने वालों की रीति मनोवृत्ति अगर दूर करना है तो उन्हें सीधे जंगल में ले आइये जहाँ कठोर पत्थर को तोड़कर कोमल तृण उगे हैं। (19.10.1940 ई.)"⁵⁸

पं. बनारसी दास चतुर्वेदी को लिखे गये पत्र एक ओर तो द्विवेदी जी के जीवन के साक्षात् प्रमाण हैं तो दूसरी ओर उनके साहित्य संघर्ष के प्रतिबिम्ब हैं। ये पत्र आचार्य द्विवेदी की साहित्य साधना को समझने में सहायक हैं। उनका पूरा का पूरा व्यक्तित्व इन पत्रों में खुलकर पाठकों के समक्ष आता है। पाठक इन पत्रों को पढ़कर अभिभूत हो उठता है और संवेदना के स्तर पर लेखक से तादात्म्य स्थापित कर लेता है।

जीवन प्रकाश जोशी ने 'अंचल पत्रों में' का संपादन सन् 1983 में किया। 'बच्चन के विशिष्ट पत्र' का संपादन 1984 में चन्द्रदेव सिंह ने किया। 'नामवर सिंह: व्यक्ति और आलोचक' का संपादन ज्ञानरजन और कमला प्रसाद ने किया है। इसका प्रकाशन 1988 में हुआ। इस संग्रह में श्री नारायण ने नामवर सिंह के 18 पत्रों को इकट्ठा करके संपादित किया है। श्री नारायण लिखते हैं, "यहाँ नामवर सिंह के कुल 18 पत्र प्रकाशित किये जा रहे हैं। ये पत्र 1954 और 1984 के मध्य लिखे गये हैं। यह एक लम्बा समय है। ये पत्र श्री कंदारनाथ अग्रवाल, डॉ. विष्णुकांत शास्त्री, श्री श्रीनारायण, मुद्राराक्षस, रामजी सिंह और डॉ. काशीनाथ सिंह को लिखे गये हैं। इन

पत्रों से नामवर जी की वैचारिक दृढ़ता और उनके संवेदनशील मन का पता चलता है। ये पत्र उनके व्यक्तित्व को प्रकाशित करते हैं। इनमें जीवन के सभी पक्ष आ गये हैं।⁵⁹

नामवर सिंह के पत्रों में साहित्यिकता का पुट है। आलोचना की जीवन्तता उनके पत्रों में परिलक्षित होती है। श्री नारायण को लिखे पत्रों में नामवर सिंह लिखते हैं, 'जायसी के प्रेम और रहस्यवाद' के लिए सामग्री तो शुक्ल जी की भूमिका से ही लीजिए: लेकिन व्याख्या के लिए थोड़ी अपनी बुद्धि लगाइये। जायसी ने प्रेम को जो इतनी प्रधानता दी, उसका बहुत बड़ा सामाजिक महत्व है। उस समय जब कि इस्लाम में वास्तविक बंधुत्व और पारस्परिक प्रेम का भाव लुप्त हो गया था तथा कस्बा, मस्जिद, शेख, मुल्ला वगैरह का जोर बढ़ गया था, सूफी संतों ने प्रेम की धारा बहाकर समाज को बाह्याडंबरों से उबार लिया। इससे जीवन में रस का संचार हुआ। यही उनके प्रेम का लोक सत्तात्मक (डेमोक्रेटिक) रूप रूप है।⁶⁰ पुनः नामवर सिंह लिखते हैं, "लेकिन यह लोक सत्तात्मक प्रेम जायसी के यहाँ इनवर्टेड रूप में – आध्यात्मिक रूप में व्यक्त हुआ। इसीलिए वह रहस्यवादी हो गया। जायसी पद्मावती का रूप वर्णन करते समय अथवा रतनसेन के प्रयत्नों का विवरण देते समय प्रायः लौकिक घटनाओं में अलौकिक संकेत भर देते हैं। लौकिक वस्तुएँ वहाँ प्रतीक हो जाती हैं, वे अपने आप में सार्थक नहीं रह जाती; उनकी सार्थकता उस अलौकिक संकेत में ही रहती है। यह सांकेतिकता, व्यंग्यात्मकता, ध्वन्यात्मकता अथवा प्रतीकात्मकता ही रहस्यवाद है। जहाँ प्रतीकवाद होगा, वहाँ अनिवार्यतः रहस्यवाद होगा। अपनी अपभ्रंश वाली पुस्तक के नये संस्करण में (पृष्ठ 294) मैंने पद्मावती में प्रेम की लौकिकता तथा सौंदर्य का अलौकिकता पर संक्षेप में कुछ कहा है। आप चाहें तो उसे देख सकते हैं।"⁶¹ नामवर सिंह के यहाँ पत्र साहित्य आलोचना का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। इतनी बढ़िया ढंग से समझायी गयी व्याख्या सहज ही संप्रेष्य है। आलोचना का जीवन्त दस्तावेज प्रस्तुत करते हुए नामवर सिंह के पत्र हैं।

गजानन माधव मुक्तिबोध और नेमिचन्द्र जैन के बीच 1942-1964 ई. तक पत्र व्यवहार हुआ। नेमिचन्द्र जैन ने 'पत्र-व्यवहार' को 'पाया-पत्र तुम्हारा' शीर्षक से संकलित कर ग्रंथाकार रूप दिया। इसका प्रकाशन 1984 में हुआ। मुक्तिबोध कवि और आलोचक दोनों हैं। उनके पत्रों में उनका दोनों रूप बोलता है। 'पाया पत्र तुम्हारा' में अंग्रेजी पत्रों की बहुतायत है। दोनों लोगों के बीच लम्बे अर्से तक पत्र-व्यवहार हुआ है। नेमिचन्द्र जैन का 2.4.1948 को मुक्तिबोध के नाम लिखे पत्र का स्वरूप कुछ इस तरह है, "यह सब तो है मेरे मानसिक इतिहास की बात जिसे मैं आपसे कहना चाह सकता हूँ और जिसमें, मैं सोचता हूँ, आपको दिलचस्पी होती। इसके अतिरिक्त मेरे बाहरी जीवन में भी बहुत से परिवर्तन घर कर गये। एक पूँजीपति बनने के जो प्लान्स मैंने रचने शुरू किये थे, वे स्वभावतः ही टूट गये। मैं उनके योग्य नहीं निकला। अब मैं भी इसी तलाश में हूँ कि कुछ कहीं काम मिल जाए। कुछ नौकरी कही मिल जाये जिसमें कुछ तो सहारा हो और इस बीच में मैं अब कुछ फिर से साहित्यिक बनने का प्रयत्न कर देखूँगा। साहित्य को बिना जीविका बनाये उससे इश्क नहीं चलने का। यह मेरा विश्वास दृढ़ होता जा रहा है।"⁶² यहाँ पत्र लेखक की चिंता आर्थिक है।

"मुक्तिबोध का जीवन और कृतित्व अनेकानेक अन्तर्द्वन्द्वों और अंतर्संघर्षों से भरा पड़ा है, उनके बहुआयामी व्यक्तित्व को सम्पूर्णता में तब तक नहीं समझा जा सकता, जब तक कि उनकी जिन्दगी की निकटतम घटनाओं और तथ्यों को, उनके कृतित्व के आमने-सामने रखकर न देखा

जाए। 'पाया पत्र तुम्हारा' मुक्तिबोध और नेमिचन्द्र जैन के बीच हुए पत्र-व्यवहार का सिलसिलेवार सकलन है, जिसके माध्यम से मुक्तिबोध के व्यक्तित्व को नये परिप्रेक्ष्य में समझने का अवसर मिलेगा। नेमिजी के मुक्तिबोध से संबंध कोरे साहित्यिक न होकर गहरी आत्मीयता से ओतप्रोत थे।⁶³ इस सकलन में सवाद की स्थिति बनती नजर आती है। लेकिन यह संवाद अल्पकालिक है। नेमिचन्द्र जैन की रचना कवितानुमा 'पाया पत्र तुम्हारा' के प्रारंभ में ही दी हुई है—

“पाया पत्र तुम्हारा

आज न कितने दिन के बाद

अचानक गूँज उठी है

आश्वासन की प्रति ध्वनि से प्राणों की कारा।

अपने ही अंतर की प्राचीरों का बन्दी

घुटते-घुटते

और पा गया

आशा की आलोचना — किरण का एक सहारा।”⁶⁴

उपर्युक्त कविता की व्याख्या की जाय तो जो निष्कर्ष हमारे समक्ष आयेगा, वह पत्र की मार्मिकता को उद्घाटित करने में समर्थ है। नेमिचन्द्र जैन पुनः लिखते हैं, “मुक्तिबोध के साथ लगभग बीस वर्षों की अवधि में गहरी अंतरंगता से जुड़ा हुआ अपना पत्र-व्यवहार प्रकाशित करते हुए मेरे मन में एक तरह की उत्तेजना भी है और कई प्रकार का संकोच भी।” ...दो पंक्तियों के बीच पत्राचार भले ही वह किसी हद तक औपचारिक हो, एक तरह का व्यक्तिगत अभिलेख ही होता है। और अगर वह घनिष्ठ मित्रों या किसी समान कार्य-क्षेत्र में समान उद्देश्यों और लक्ष्यों की प्राप्ति में लगे सहयोगियों के बीच हो, तब तो उसमें भावों, आवेगों, इच्छाओं और आकांक्षाओं के टूटते सूत्रों के ताने-बाने होते हैं कि वह उनके निजी संबंधों और उनके उतार-चढ़ाव का बहुत ही अंतरंग, लगभग गोपनीय, दस्तावेज बन जाता है। उसे सार्वजनिक बनाना संबंधों की पवित्रता को कम करना तो है ही, किसी कदर जोखिम का काम भी है। क्योंकि पत्रों के उन अंतरंग सूत्रों को पूरी तरह स्पष्ट करना मुश्किल होता है, और उसके बिना तरह-तरह की गलत फहमियों के पैदा होने और इकतरफा अधूरे नतीजे निकाले जाने का खतरा है। मगर दूसरी तरफ ऐसे पत्रों से एक पूरे दौर में दो या ज्यादा व्यक्तियों के, रचनाओं के, बाहरी और आंतरिक संघर्ष की ऐसी अनूठी और प्रामाणिक जानकारी मिल सकती है जो किसी भी प्रकार से संभव नहीं है।”⁶⁵

मुक्तिबोध के पत्रों में लयात्मकता का अद्भुत सामंजस्य है। पढ़ते-पढ़ते ऐसा अनुभव होता है कि हम कविता पढ़ रहे हैं, लेकिन उनमें उनकी पीड़ा की मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है। 28 फरवरी 1964 को राजनाद गाँव से नेमिचन्द्र जैन के नाम लिखा मुक्तिबोध का पत्र, “आपका पत्र, अकस्मात् मेघवर्षा की भौंति आह्लाददायक है।... आपके बुलाने पर मैं नयी दिल्ली अवश्य ही आऊँगा, यद्यपि मैं अब खाट पर से नीचे नहीं उतर सकता हूँ। आप सबकी बहुत याद आती है।”⁶⁶

‘मित्र संवाद’ (केदारनाथ अग्रवाल और रामविलास शर्मा के पत्रों का संकलन) का प्रकाशन हिन्दी पत्र-साहित्य की अभूतपूर्व घटना है। इसका प्रकाशन 1992 में हुआ। रामविलास शर्मा और

केदारनाथ अग्रवाल के बीच लम्बे समय तक पत्र-व्यवहार हुआ। अशोक त्रिपाठी लिखते हैं, "पत्रों को तिथि-क्रम में संयोजित किया गया है— संवाद शैली में जिसमें कहीं-कहीं एकालाप भी मिलेगा।"⁶⁷ इसी लिए 'मित्र संवाद' का प्रकाशन हिन्दी साहित्य की अभूतपूर्व घटना है। दरअसल इसके पूर्व जितने भी पत्रों के संग्रह प्रकाशित हुए उनमें साहित्यिक विधा का गुण होने के बावजूद 'संवाद' का अभाव दिखलाई पड़ता है किंतु 'मित्र संवाद' में संवाद की स्थिति स्पष्ट नजर आती है।

'कवियों के पत्र', डॉ. रामविलास शर्मा द्वारा संपादित नवीन पत्र-संकलन हैं। इसका प्रकाशन वर्ष 2000 ई. है जो कि डॉ. रामविलास शर्मा के लम्बे जीवन का अंतिम वर्ष भी। इस संग्रह की भूमिका में रामविलास शर्मा लिखते हैं, "इस संग्रह में मुख्यतः उन हिंदी कवियों के पत्र हैं जो प्रगतिशील धारा से जुड़े हुए थे या उसके बहुत निकट थे। कुछ के तो एक-दो पत्र ही हैं और कुछ के पॉच-सात, बीस-पच्चीस, चालीस-पचास तक हैं। इन पत्रों का संबंध साहित्य से है। कौन क्या लिख रहा है और उसमें मेरा कैसे सहयोग या असहयोग हो सकता है, इसकी चर्चा इन पत्रों में है। बहुत से पत्र ऐसे हैं जिनमें व्यक्तिगत संबंधों की प्रधानता है। ये पत्र भी हिन्दी साहित्य के इतिहास के लिए महत्वपूर्ण हैं। साहित्य के इतिहास की पुस्तकों में इस तरह के संबंध की चर्चा कम होती है। परंतु जिस तरह के परिवेश में कवि तथा अन्य साहित्यकार रचना करते हैं, उसमें ये व्यक्तिगत संबंध भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यदि कवि अपने परिवेश से आश्वस्त हो तो उसकी रचनाशीलता बढ़ती है। साथ ही आस-पास के साहित्यकारों से संबंध अच्छे नहीं तो इसका प्रभाव भी उसकी रचनाशीलता पर पड़ता है।"⁶⁸ इस संग्रह में रामविलास शर्मा को लिखे हुए मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, दिनकर, बच्चन, अर्जुन, नेमिचन्द्र जैन, गिरिजा कुमार माथुर, प्रभाकर माचवे, सुमित्रानन्दन पंत, महादेवी वर्मा, नरेन्द्र शर्मा, शमशेर बहादुर सिंह, त्रिलोचन, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शिवमंगल सिंह, 'सुमन' के पत्र तथा कवियों को लिखे हुए कुछ पत्र रामविलास शर्मा के भी संकलित हैं। इन पत्रों को रामविलास शर्मा हिन्दी साहित्य की धरोहर के रूप में स्वीकारते हैं। इन पत्रों के विषय में रामविलास शर्मा लिखते हैं, "ये पत्र हिन्दी साहित्य की धरोहर हैं, यह मानकर मैं इनकी रक्षा करता आया हूँ। अधिकांश पत्र मुझे आगरे के पते पर लिखे गये थे। 1943 से 1961 के बीच मैंने आगरे में अनेक मकान बदले थे। सन् 61 में अपना घर बन गया। तब ये मकान बदलने का सिलसिला बंद हुआ।... इस संग्रह में सबसे पुराना पत्र पंत जी का है, मई 1938 में लिखा हुआ। उस समय मैं शोध-छात्र था। अंतिम पत्र सुमन का है जो अभी नवंबर 1998 में लिखा गया है। इस तरह लगभग 60 वर्षों की अवधि में लिखे हुए पत्र मैं संजोता रहा हूँ।"⁶⁹ अर्थात् साठ वर्षों तक हिन्दी कविता की धारा किस ओर प्रवाहित हुई इसका वर्णन, विवेचन इस पुस्तक में है।

इस पुस्तक में एकाध पत्रों की बानगी देखी जाय। 13 जुलाई, 1969 को रामधारी सिंह दिनकर का पत्र रामविलास शर्मा के नाम इस प्रकार है, "प्रिय रामविलास जी, निराला की साहित्य-साधना पढ़ी, पढ़ी ही नहीं, कई दिनों तक उसमें डूबा रहा। आपने वह काम किया, जो कोई नहीं कर सकता था। ऐसा लगता है, मानों आरंभ से ही आप एक-एक घटना को जुगाते रहे थे। केवल रिसर्च के बल पर इतना सुंदर ग्रंथ तैयार नहीं हो सकता था। यह आपकी जीवन-व्याधिनी सतर्कता और सावधानता का परिणाम है। निराला जी धन्य हैं कि उन्हें आपके समान जीवनी लेखक मिला। और धन्यवाद के पात्र आप भी हैं कि आपने निराला जी के समान चरित नायक के जीवन वृत्त पर आरंभ से ही इतना ध्यान रखा था। निराला जी और आप, दोनों

लेखक अपनी-अपनी कृतियों के बल पर अमरता के अधिकारी थे।... पुस्तक में कई वाक्य ऐसे हैं, जो डायरी में दर्ज कर लेने योग्य हैं। एक वाक्य मैंने भी दर्ज किया है जो मेरे अपने जीवन का अप्रिय निचोड़ है। वह छोटा-सा वाक्य यह है कि "कलाकार के लिए भी गृहस्थ जीवन भार है"⁷⁰

पत्रिकाओं में छपे पत्रों से पूर्व दो-तीन पत्र-संग्रहों (पुस्तकाकार) पर विचार करना अप्रसांगिक न होगा। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने मौ. अल्ताफ हुसैन 'हाली' की पुस्तक का अनुवाद 'यादगारे ग़ालिब' नाम से किया है। यह पुस्तक हिन्दी अकादमी, दिल्ली से सन् 1992 में छपी है। 'यादगारे ग़ालिब' मौलाना अल्ताफ हुसैन 'हाली' की सर्वाधिक चर्चित एवं महत्वपूर्ण पुस्तक है। यह मिर्जा ग़ालिब की जीवनी भी है और उनके साहित्य का प्रारंभिक मूल्यांकन भी। यह पुस्तक पहली बार 1897 ई. में प्रकाशित हुई थी।

'राकेश और परिवेश: पत्रों में' का सम्पादन जयदेव तनेजा ने किया है। इस पुस्तक का प्रकाशन राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली से 1995 में पहली बार हुआ। जयदेव तनेजा लिखते हैं, "ये चुने हुए 770 पत्र मिलकर आत्मीयता का एक ऐसा वृत्त बनाते हैं, जिनके केन्द्र में राकेश हैं और परिधि पर तमाम पत्र लेखक। इसलिए इन पत्रों को क्रम और व्यवस्था देने के प्रक्रिया बेहद पेचीदा और मुश्किल थी। यूँ तो पत्रों को परम्परानुसार तरीखवार या अकारादि क्रम से संयोजित करना सबसे आसान और निरापद तरीका था, लेकिन उससे राकेश के जटिल व्यक्तित्व और उनके उद्वेलित-आंदोलित समय की कोई निश्चित और स्पष्ट तरवीर नहीं बना पा रही थी। इसलिए 'सम्बंधों' के हिसाब से पत्रों को संयोजित करने का फैसला किया। राकेश ने अपने जीवन में जो कुछ भी किया या नहीं किया— उस सबके मूल में कहीं न कहीं 'घर' रहा है। आजन्म माँ और अंतिम समय में अनीता को छोड़कर शायद किसी स्त्री ने भी राकेश को न तो पूरी तरह समझने का प्रयत्न किया और न ही देर तक साथ निभाया। तीन पत्नियों के अतिरिक्त राकेश के जीवन में आने वाली प्रेमिकाओं या महिला-मित्रों की संख्या कम नहीं है। फिर, अकेली वीणा के पत्र ही 'घर' में शामिल क्यों किए गए— यह प्रश्न निश्चय ही प्रबुद्ध पाठकों के मन में उठेगा। वास्तव में ये पत्र राकेश की डायरी से उद्धृत किए गये हैं। और इनके यहाँ रखे जाने का उत्तर भी वहीं मौजूद हैं। खासकर वहाँ जहाँ राकेश 1958 में वीणा के साथ चम्बा में गुजारे गए समय का उल्लेख इन शब्दों में करते हैं— "वे गहन आत्मीयता के पाँच दिन मुझे कभी नहीं भूलेंगे। जैसे सचमुच वह रस की वर्षा थी और मैं भीग रहा था। जैसे वह घर ही घर था— और सब तो मकान हैं — खाली, सूने, निस्पंद..."।

"आशा है मोहन राकेश के सत्तरवें जन्म दिन पर प्रकाशित यह पुस्तक उनके बारे में बहुप्रचलित एवं बहुप्रचारित अनेक धारणाओं को प्रमाणित, सत्यापित अथवा खंडित करने में सहायक सिद्ध होगी। उनके विचित्र व्यक्तित्व के अज्ञात या अल्प-ज्ञात पहलुओं से पर्दा उठाने के साथ-साथ यह पत्र-संग्रह यदि राकेश के आत्मकथानक साहित्य और उसके मूल स्रोतों को गहराई, गम्भीरता एवं सूक्ष्मता से समझने में भी उल्लेखनीय भूमिका का निर्वाह कर सका, तो मैं परिश्रम को निरर्थक नहीं मानूँगा।"⁷¹ वस्तुतः यह पत्र-संग्रह मोहन राकेश के अछूते पहलू को उद्घाटित करता है।

"मैं पढ़ा जा चुका पत्र" नंद किशोर नवल द्वारा संपादित 'पत्र-संग्रह' हैं। इसका प्रकाशन 'आधार प्रकाशन', पंचकुला हरियाणा से हुआ है। प्रथम संस्करण 1997 है। इसमें नागार्जुन, डॉ.

रामविलास शर्मा, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन शास्त्री लाल नगर, शमशेर बहादुर सिंह, उपेन्द्रनाथ अशक, नेमिचन्द्र जैन, भवानी प्रसाद मिश्र, डॉ. नामवर सिंह, भीष्म साहनी, डॉ. रघुवंश, हरिशकर परसाई, डॉ. शिवकुमार मिश्र, केदारनाथ सिंह, अमरकांत, मन्नू भंडारी, अशोक वाजपेयी और धूमिल के नंद किशोर नवल के नाम लिखे पत्र हैं। इस संग्रह के विषय में नंद किशोर नवल लिखते हैं, "मैंने इस संग्रह में कई तरह के लेखकों के पत्र दिए हैं। कुछ लेखक ऐसे हैं, जिनसे मेरी अधिक निकटता रही है। स्वभावतः उनके पत्र संख्या में अधिक हैं। उन पत्रों में यह देखना दिलचस्प है कि औपचारिक सबंध धीरे-धीरे कैसे घनिष्ठता में बदल गया है। कुछ लेखकों के साथ मेरा सबंध औपचारिक प्रतीत हो सकता है, लेकिन पत्रों में झांकने पर यह स्पष्ट हो जाएगा कि उसमें भी आत्मीयता की कमी नहीं है। व्यक्ति अपने संबंधों से जाना जाता है। मैं दो दशकों तक प्रगतिशील आंदोलन में सक्रिय रहा, इसीलिए स्वाभाविक रूप से मेरा घनिष्ठ संबंध नये-पुराने प्रगतिशील लेखकों से स्थापित हो गया। ये पत्र उसकी गवाही देते हैं। यदि मैं कुछ ऐसे लेखकों के संपर्क में भी आया, जो प्रगतिशील वृत्त के बाहर के लेखक हैं, तो इस कारण कि वे गहराई से साहित्य के प्रति प्रतिबद्ध हैं और अनेक मामलों में प्रगतिशील लेखकों की तुलना में ज्यादा उदार और मुक्त हैं। उदाहरण के लिए डॉ. रघुवंश और अशोक वाजपेयी। कुछ लेखकों के पत्र संख्या में बहुत कम हैं, फिर भी यदि मैं उन्हें इस संग्रह में दे रहा हूँ, तो इस कारण कि वे किसी न किसी रूप में उनके व्यक्तित्व अथवा कृतित्व से हमारा परिचय कराते हैं। यही बात बहुत कुछ सक्षिप्त पत्रों के सबंध में भी सही है। उनका कोई न कोई वाक्य, कोई न कोई शब्द पत्र-लेखक के व्यक्तित्व को निस्संदिग्ध रूप से व्यंजित करता है।"⁷²

भूमिका में नंद किशोर नवल लिखते हैं, "नागार्जुन के बाद मुझे जिन लेखकों के पत्र अच्छी संख्या में प्राप्त हुए हैं, उनमें डॉ. रामविलास शर्मा और डॉ. नामवर सिंह भी हैं। नागार्जुन के पत्र स्नेहपूर्ण पारिवारिक पत्र हैं, एक रचनाकार के पत्र, जबकि डॉ. शर्मा के पत्र ज्ञान और साहित्य से सबंध रखने वाले एक विद्वान और आलोचक के पत्र हैं। डॉ. शर्मा बहुत अच्छे शिक्षक हैं, इसलिए उनके पत्रों में सिखावन है। अपने नौवें पत्र में उन्होंने मुझे लिखा था, "आपके लेख जब भी जहाँ मिलते हैं, अवश्य देख लेता हूँ। सरसरी निगाह से। आप ठीक रास्ते पर हैं। बाकी बातें अपने अनुभव से सीखेंगे। इन लेखों को छह महीने बाद फिर देखें— यह जाँचे कि कहाँ टिप्पणी अधिक विस्तृत होनी चाहिए, कहाँ उद्धरण कम किए जा सकते हैं, कहाँ तत्कालीन साहित्यिक गतिविधि का उल्लेख आवश्यक है, कहाँ लेखक का विकासपथ प्रशस्त हो रहा है, इत्यादि। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह सिखावन आज भी मेरे लिए उतनी ही उपयोगी है। लक्ष्य करने योग्य यह भी है कि डॉ. शर्मा ऐसे शिक्षक नहीं हैं, जो शिष्य को सब कुछ बतलाकर उसे अपने साँचे में ढाल देना चाहते हैं। उन्होंने सीखने के लिए बहुत कुछ मेरे ऊपर भी छोड़ दिया था। उनका यह वाक्य मार्मिक है कि "बाकी बातें अपने अनुभव से सीखेंगे।"⁷³ रामविलास शर्मा की सिखाने की कला उनके पत्रों की जीवन्तता को बनाये रखती है।

'उनके पत्र उनके व्यक्तित्व की जिस विशेषता को सबसे अधिक झलकाते हैं, वह है उनका बेलासपन। मैंने उनसे अनुरोध किया था कि वे थोड़ा समय निकालकर निराला ग्रंथावली का संपादन कर दें। 29.1.1981 के पत्र में उन्होंने मुझे उत्तर दिया, "शरीर बहुत थका हुआ है। जो काम हाथ में है, उसके अलावा कोई छोटा मोटा और काम लेना भी हानिकारक होगा। निराला ग्रंथावली के संपादन से मैं अपने को अलग रखूँगा। उस सिलसिले में तुम्हारा यहाँ आना व्यर्थ होगा।

“उनके साथ मेरा संबंध अब तक काफी गहरा हो गया था। ऐसी स्थिति में अंतिम वाक्य वही व्यक्ति लिख सकता था, जिसका बेलौसपन इस आत्मविश्वास से उपजा हो कि उसके सौहार्द और सद्भाव में प्राप्तिकर्ता को संदेह न हो।”⁷⁴ डॉ. रामविलास शर्मा के पत्रों में बेबाकी का परिचय मिलता है। “डॉ. शर्मा किसी को दुविधा में नहीं डालते, वे द्वयर्थक भाषा का प्रयोग नहीं करते और पत्रों में भी बेबाकी का परिचय देते हैं, जबकि पत्र साहित्य की बहुत आत्मीय विधा है। ऐसा नहीं है कि उनमें पारिवारिकता नहीं है। वह है, लेकिन बहुत ही संयत् रूप में। वे बहुत ही संवेदनशील व्यक्ति हैं। उनके मन में उठने वाला प्रत्येक भाव उनके चेहरे पर प्रतिबिम्बित होता है। हृदय की हलकी से हलकी अनुभूति भी उनके चेहरे की रेखाओं और उनके होंठों को कंपा देती है। अपने को छिपा लेने की नागर कला उन्हें अभी तक नहीं आई। खास बात यह कि वे किसी को अपने से छोटा नहीं समझते और प्रत्येक व्यक्ति की क्रिया की उनके चित्त पर ग्रामीणों – जैसी सरल प्रतिक्रिया होती है। लेकिन अपने पत्रों में वे अपने को बौद्धिक अनुशासन में रखते हैं और उनमें कभी अपनी भावुकता का विस्फोट नहीं करते। नागार्जुन के बाद वे संभवतः हिन्दी के दूसरे महान् पत्र-लेखक हैं।”⁷⁵ नवल जी का विचार नागार्जुन से लगाव के कारण चाहे जो हो, इसमें दो मत नहीं कि, ‘सिखावन-व्यापार’ की कला रामविलास शर्मा को सर्वोच्च पत्र-लेखक साबित करती है। कहीं भी आप उनके पत्रों में इस कला को देख सकते हैं।

केदारनाथ अग्रवाल के पत्रों के विषय में नन्द किशोर नवल लिखते हैं, “ये अपने युग के एक महत्वपूर्ण रचनाकार के पत्र हैं, जैसे नागार्जुन के। केदार बाबू की जो चीज सर्वप्रथम प्रभावित करती है, वह है उनकी भावुकता। अपने एक आरंभिक पत्र में ही उन्होंने मुझे लिखा था, “इतने स्नेह और ललक से आपने मुझे याद किया है कि जो होता है कि तत्काल उड़कर पटना पहुँच जाऊँ— भेंट करूँ— सबके बीच समा जाऊँ।

“वे हिन्दी में संघर्ष उल्लास और दुर्दांत जिजीविषा के कवि रहे हैं। उनके पत्रों में कभी-कभी उनकी प्रवृत्ति की ये विशेषताएँ झलक मारती हैं। अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद उन्होंने मुझे अपने एक पत्र में जो भी लिखा था, वह इस बात का पक्का सबूत था कि अतिशय भावुक होते हुए भी उन्होंने चीजों को अपने जीवन में मूल्य के रूप में स्वीकार किया है। उनके शब्द हैं, “अपनी पत्नी के न रहने पर भी मैं उन्हें अपनी कविताओं में जिलाएँ हूँ और उनके साथ जी रहा हूँ। चेतन-दृष्टि अमर होती है। प्रकृति की सृष्टि तो मिटती रहती है। मानवीय चेतना इसीलिए मृत्यु पर जीवन की जय की घोषण करती रहती है। उनकी आस्था साहित्य में भी उन्हें संभाले रही है और दूसरों को भी उडिग रहने की प्रेरणा देती रही है।”⁷⁶

धर्मवीर भारती के लिखे पत्रों का संपादन पुष्पा भारती ने ‘अक्षर-अक्षर यज्ञ’ नाम से किया है। यह पुस्तक सन् 1999 में पहली बार वाणी प्रकाशन नई दिल्ली से छपी है। इस संग्रह में धर्मवीर भारती का अटल बिहारी वाजपेयी, गिरिजा कुमार माथुर, जगदीश गुप्त, जयदेव तनेजा, डॉ धनंजय वर्मा, मन्नू भंडारी, माखन लाल चतुर्वेदी और मोहन राकेश आदि के नाम लिखे पत्रों का संकलन है। कुल 92 लेखकों, विचारकों के पास लिखे हुए पत्र हैं। पत्रों की दुनिया एक लेखक के निजित्व और उसकी गंझिन सामाजिकता को उद्घाटित करती है। ऐसे में अगर वह लेखक डॉ. धर्मवीर भारती संवेदनशील कवि कथाकार और सुधी संपादक हो तो उसके पत्रों का महत्व बढ़ जाता है।

‘हमको लिख्यो है कहाँ’ को डॉ. कमलेश अवस्थी ने सम्पादित किया है। इसका प्रकाशन सन् 2001 में भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली से हुआ है। अशोक वाजपेयी लिखते हैं, “इस संचयन में ढाई सौ से कुछ ही कम व्यक्तियों के देवीशंकर अवस्थी जी के नाम लिखे पत्र हैं, जिनमें से दो सौ तीस से अधिक लेखकों के हैं और बाकी पारिवारिक जनों के। यह अपने आप में एक विलक्षण संवाद विधिका है जिसमें अपनी-अपनी रंगतों में, अपने-अपने शब्दों में इतने सारे व्यक्तियों की शबीहें हैं। उनमें न सिर्फ देवीशंकर जी के अपने एक लेखक बनने की संघर्ष कथा के कई पहलू उजागर होते हैं, बहुत सारे दूसरे लेखकों के लेखकीय और मानवीय जीवन के भी। यह देखकर अचरज होता है कि कुल पैंतीस-चालीस साल पहले हिन्दी की साहित्य-संस्कृति में, दृष्टि और विचार की भिन्नता के बावजूद, कितना सहज और अदम्य सौहार्द लेखक-समाज में था। वह समय हिन्दी में नये साहित्य के स्थापित होने का सन्धिकाल था और कई छोटी-छोटी जगहों में लेखक अपने-अपने ढंग से एक व्यापक संघर्ष में शामिल थे। उनकी अनायास ही एक बिरादरी बनती थी। और वे लेखक, अपनी दृष्टियों को धूमिल किये बगैर एक-दूसरे के प्रति जिज्ञासु थे, मददगार और उत्सुक बिना किसी अतर्कित अहंकार या बौद्धिक आतंक के एक मनुष्य और एक आलोचक के रूप में देवीशंकर अवस्थी इस व्यापक संवाद के एक विनम्र छोर थे। बल्कि ऐसा मुकाम जिस पर इतने सारे लेखकों को सहज ही भरोसा था। यह नहीं कि लेखकों का संसार या कि उस समय की आम दुनिया भोली-भाली और भलमनसाहत से भरपूर थी। उनमें, आज ही की तरह, मोह-मत्सर, बैर-नफरत आदि भी उचित मात्रा में थे ही। पर शायद उस समय इन सबसे ऊपर उठने के अवसर और हौसले आज से कहीं ज्यादा थे। कम से कम इसका विपुल साक्ष्य इस संचयन के पत्रों में मिलता है। यह बात भी नोट करने लायक है कि वे इतने सारे लेखकों का विश्वास पात्र बनने में देवीशंकर अवस्थी बन पाये, जबकि अपनी ईमानदारी, तैयारी और सहज मानवीयता के सिवाय उनके पास आकर्षण का केन्द्र बन पाने के लिए किसी तरह की सत्ता नहीं थी। वे एक नये आलोचक और सामान्य ओहदे के अध्यापक भर थे। किसी तरह की चकाचौंध, आतंक या सत्ता से दूर एक निपट साधारण व्यक्ति लेखक समाज में ऐसा स्नेह और मित्रता पा सका था।... मैं आश्चर्य हूँ कि छठवें-सातवें दशकों की साहित्यिक सक्रियता की कहानी जब जतन और धीरज से, समझ और संवेदना के साथ कही जायेगी तो इस संचयन का उसमें उचित स्थान और महत्व रहेगा। इन पृष्ठों में हिन्दी साहित्य के इतिहास का एक जरूरी हिस्सा पूरी आत्मीय अनौपचारिकता के साथ मौजूद है, और उम्मीद है कि उसे इस रूप में देखा-परखा जायेगा।”⁷⁷ डॉ. कमलेश अवस्थी ‘स्मृति-अरण्य’ ‘सम्पादक का वक्तव्य’ में लिखती है, “इन पत्रों में अवस्थी के अत्यंत सुव्यवस्थित व्यक्तित्व की एक झलक मिलती है। पत्रों के माध्यम से ऐसी घटनाएँ उजागर हुई हैं जो अवस्थी जी के पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षिक पक्षों को उभारती हैं, उनके जीवन के संघर्ष और उनके विकास-क्रम को भी इंगित करती हैं। इन पत्रों से यह भी पता लगता है कि अवस्थी जी एक ओर घर-परिवार-मित्रों के दायित्व और संबंधों से गहराई से जुड़े थे तो दूसरी ओर सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और साहित्यिक गतिविधियों से भी वे उतनी ही सक्रियता के साथ जुड़े थे। इन पत्रों को पढ़कर लगता है कि वे अपने मित्रों के साथ किस कदर संवाद बनये रखने में मशगूल थे—कुछ नयी योजनाएँ बनाते, नयी पत्रिकाओं की बात करते, नये साहित्यिक का प्रारूप तैयार करते, साहित्यिक विधाओं पर नये ढंग से विचार-विमर्श करते, नयी पुस्तकों की तैयारी करते।... डॉ. नामवर सिंह, श्री बाल कृष्ण राव, डॉ. रघुवंश, डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, श्री अशोक वाजपेयी आदि के पत्रों में इन योजनाओं की लम्बी सार्थक चर्चाएँ हैं।”⁷⁸ आगे डॉ. कमलेश अवस्थी लिखती

है, "अवस्थी जी की आलोचना दृष्टि की निष्पक्षता का प्रभाव और उनकी आत्मीय मित्रता से उत्पन्न स्नेहभाव उस समय के अनेक प्रसिद्ध लेखकों के पत्रों में विभिन्न प्रस्तावों, अनुरोधों, आमत्रणों और योजनाओं के निष्पादन के रूप में देखा जा सकता है।"⁷⁹

उप अध्याय—तीन

पत्रिकाओं में छपे हुए प्रमुख साहित्यिक पत्र

पत्रिकाओं में प्रकाशित कुछ पत्र इस प्रकार हैं—

‘चिट्ठियों से झॉकता मुंशी प्रेमचन्द का चेहरा — सन 1977 (डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र)
पत्रों से झॉकता हुआ दिनकर का व्यक्तित्व (कैलाश चन्द्र भाटिया)
आचार्य पद्म सिंह शर्मा: पत्रों के आधार पर स्मृति ग्रंथ (डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया)
रानी लक्ष्मीबाई का व्यक्तित्व उनके पत्रों में (उदय शंकर दुबे)

व्यंग्य शैली में ‘सरस्वती’ तथा ‘कल्पना’ में भ्रमरानन्द के नाम से प्रकाशित पत्र अब संकलित होकर ‘भ्रमरानन्द के पत्र’ (डॉ. विद्यानिवास मिश्र) शीर्षक से प्रकाशित हो चुके हैं।

पत्रिकाओं ने इस विधा के विशेषांक प्रकाशित किये हैं—

चौद (पत्रांक)	—	1928 (डॉ. नंद किशोर तिवारी)
ज्ञानोदय	—	नवम्बर—दिसम्बर 1353 (सं. लक्ष्मीचन्द जैन/शरद देवडा)
सारिका	—	सन् 1989 (अंक 396)
सम्मेलन पत्रिका	—	1982—83 (अनेक सुप्रसिद्ध साहित्यकारों के पत्र संकलित हैं)

अनेक पत्र-पत्रिकाओं के श्रद्धांजलि अंक, स्मृति अंक, अभिनन्दन अंकों में भी बहुमूल्य सामग्री प्रकाशित होती रहती है। इस प्रकार के विशिष्ट अंकों की संख्या बहुत अधिक है।⁸⁰

पत्र साहित्य की परंपरा को पुष्ट करने में प्रारंभ से ही पत्र-पत्रिकाओं का अमूल्य योगदान रहा है। ‘नागरी प्रचारिणी पत्रिका’, ‘सरस्वती’, ‘हंस’, ‘माधुरी’, ‘चौद’, ‘ज्ञानोदय’, ‘धर्मयुग’, ‘साप्ताहिक हिन्दुस्तान’ तथा ‘कादम्बिनी’ महत्वपूर्ण पत्रिकाएँ थीं। ‘चौद’ का पत्रांक हिन्दी पत्र साहित्य की अमूल्य निधि है। ‘हंस’ के अक्टूबर 1948 के अंक में प्रकाशचंद गुप्त द्वारा प्रकाशित प्रेमचंद के पत्र, ‘राष्ट्रवाणी’ के मुक्तिबोध स्मृति अंक में मुक्तिबोध के काव्य की रचना-प्रक्रिया तथा उनकी अभावमयी जीवन-गाथा के प्रकाशक कतिपय पत्र भी अपना महत्व रखते हैं। इधर आलोचना 2000 जुलाई-सितंबर के अंक में रामविलास शर्मा के पत्र केदारनाथ अग्रवाल के नाम छपे हैं। साथ ही केदारनाथ अग्रवाल का नामवर सिंह के साथ हुए पत्रों को भी इस अंक में उद्घाटित किया गया है। 26.9.96 को केदार जी को जन्म दिन की बधाई देने के लिए रामविलास शर्मा ने पत्र लिखा, “प्रिय केदार, पहली अप्रैल को पाँच दिन बाकी हैं, पचासी पूरे होने पर बधाई, हार्दिक अभिनन्दन मेरे कमरे के पास बाहर गेंदे के बड़े-बड़े फूल खिले हैं। अंगूर की

सूखी टहनियों में हरी-हरी पत्तियाँ फूट आयी हैं, तुम्हारे आँगन में भी फूल खिले होंगे, शायद गेदे के भी, वसंत तुम्हें बहुत बार शुभ हो और बसंती हवा बुढ़ापे में भी तुम्हें मस्त बनाये रहे।⁸¹ इसी प्रकार केदार के पत्र नामवर सिंह के नाम भी हैं। 29.2.1961 का लिखा नामवर सिंह के नाम लिखे पत्र में केदार लिखते हैं, “अज्ञेय मुझे फार्मलिस्ट न कहेंगे तो कौन कहेगा। बड़ा सयाना व्यक्ति है। इधर मुझसे कविताएँ भी माँग लेता है, कभी-कभी उधर सबसे अर्थशून्य अन्य बातें भी करता रहता है। बहुत बड़ा कुशल शिल्पी है दूसरे को नीचा दिखाने में। पर हम उसके मारे नहीं मरेगे। हम तो साहित्य के क्षेत्र में अपने दम-खम से आए हैं और जी भर कर जियेंगे। हमें मारनेवाले स्वयं मर जायेंगे। वहीं जिएगा जिसे समय जियाएगा।⁸² इस प्रकार पत्रिकाओं में पत्र के सकलन का कार्य बखूबी ढंग से चल रहा है। कुल 21 पत्रों को उक्त अंक में छापा गया है और 3 पत्र रामविलास शर्मा के नाम केदार जी के हैं। सन् 1952 से लेकर सन् 1961 तक के पत्र में केदार अकेले बोलते हैं। इस दौरान विभिन्न प्रकार के साहित्यिक विमर्श की चर्चा इनके पत्रों की रोचकता को बनाए रखने में समर्थ है।

‘तद्भव’ के अक्टूबर 2000 के अंक में देवी शंकर अवस्थी द्वारा पत्नी कमलेश अवस्थी को लिखी कुछ चिट्ठियाँ प्रकाशित हुई हैं। सन् 1956 से लेकर सन् 1963 तक के पत्र उक्त अंक में हैं। पत्र तो नितात निजी हैं, फिर भी देवीशंकर अवस्थी का साहित्यकार मन इन पत्रों में परिलक्षित होता है। देवीशंकर अवस्थी की उम्र मात्र 36 वर्ष तक रही। ‘तद्भव’ में छपे पत्र देवीशंकर अवस्थी के पत्र एक साहित्यकार का अंतरंग, अनौपचारिक और एक अर्थ में ‘असावधान सवाद’ है। प्रिय के सान्निध्य के प्रति आत्मीय आवेग इन पत्रों की प्रत्येक पंक्ति में है। “ये पत्र एक बौद्धिक की अलाश्रित निजता तक पहुँचने में पाठकों की मदद करेंगे। वस्तुतः इच्छा और प्रतीक्षा के बीच जीवन की उद्दाम उत्सवधर्मिता ही इन पत्रों का सारांश है।⁸³ इन पत्रों को लिखते हुए देवी शंकर अवस्थी ने कई प्रकार की कविताओं और कवियों का उद्धरण दिया है। किससे मिला। साहित्यिक क्षेत्र में बदलते परिवेश में क्या-क्या घटित हो रही हैं, सभी पर उनकी दृष्टि गयी है। 10.8.57 को देवी शंकर अवस्थी का लिखा पत्र— “कम्मो, तुम जानती हो कि आजकल मैं क्या सोचता हूँ। मैं जब भी घर बैठता हूँ तो यही सोचता हूँ कि कैसे इतने दिन बीतें। गिना करता हूँ कि अब 26 तारीख के कितने दिन बाकी रह गये। दूसरे प्रत्येक क्षण मेरे दिमाग में यही रहता है कि यहाँ तुमको बड़ी तकलीफ होगी। तकलीफ इस अर्थ में कि एक साथ हम दोनों इस गर्मी में किस स्थान पर रहेगे विशेष कर रात में। और यदि अलग लेटना पड़ा तब तो बहुत ही बुरा लगेगा। इतने दिनों तुम वहाँ अलग रहीं और जब यहाँ आओगी तब भी वही दुःख।⁸⁴ इस प्रकार से पत्र नितात वैयक्तिक है। पत्नी के प्रति प्रेम की उत्कटता को भी देवीशंकर अवस्थी के पत्र व्याख्यायित करते हैं।

तद्भव के अप्रैल 2000 के अंक में छपे आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के पत्र: पं. बांके प्रसाद द्विवेदी के नाम से है। संपादकीय लिखते समय अखिलेश लिखते हैं, “इन पत्रों से न केवल आचार्य द्विवेदी के जीवन के प्रारंभिक संघर्षमय जीवन एवं उनकी प्रतिभा पर प्रकाश पड़ता है वरन् इस बात की जानकारी मिलती है कि आचार्य द्विवेदी एवं पं. विश्वनाथ द्विवेदी जी के निर्माण में पं. बांके प्रसाद द्विवेदी का कितना बड़ा हाथ था और दोनों भाई पं. बांके द्विवेदी जी को कितना सम्मान देते थे। नीचे आचार्य द्विवेदी एवं पं. विश्वनाथ द्विवेदी द्वारा पं. बांके प्रसाद द्विवेदी को लिखे कुछ पत्र उद्धृत किये जा रहे हैं ताकि आचार्य द्विवेदी पर शोध कार्य करने वालों को उनके प्रारंभिक जीवन पर कुछ जानकारी मिल सके।⁸⁵ वस्तुतः किसी भी रचनाकार के पत्रों का

समग्र अध्ययन करने पर उसके जीवन से संबंधित प्रारंभिक पहलुओं पर विस्तृत जानकारी मिल जाती है। यह जानकारी रचनाकार से संबंधित प्रमाणिक बिन्दुओं को सूक्ष्मता के साथ अंकित करता है।

‘दस्तावेज’ 91 अंक साहित्यकारों के पत्रों पर केन्द्रित है। इसके संपादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी हैं। इस अंक में जैनेन्द्र कुमार के पत्र, अज्ञेय, श्री नारायण चतुर्वेदी, वियोगी हरि, वीरेन्द्र कुमार जैन के, हजारी प्रसाद द्विवेदी, वासुदेव शरण अग्रवाल, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र और रामविलास शर्मा तथा केदारनाथ अग्रवाल के पत्र हैं और भी दूसरे रचनाकारों के पत्र उक्त अंक में मौजूद हैं। रामविलास शर्मा की ‘सिखावन कला’ यहां भी दिखलाई पड़ती है। वह 23.4.1988 को काशी से डॉ. श्री नारायण को पत्र लिखते हैं, “जिन्हें हिन्दी नवजागरण से दिलचस्पी है, उन्हें अन्य जातियों के नवजागरण का अध्ययन अवश्य करना चाहिए। ये सारे नवजागरण एक बृहत राष्ट्रीय जागरण के अंग हैं। बंगाल के नवजागरण में साम्राज्य समर्थन और अध्यात्मवाद पर बहुत जोर दिया गया है। पर वहाँ साम्राज्य विरोधी और भौतिकवादी धाराएँ भी रही हैं। इनकी जानकारी स्वयं प्राप्त करना और दूसरों को कराना बहुत जरूरी है। विद्यासागर तो नास्तिक थे ही, ब्राह्म समाज और विवेकानन्द के वेदान्त में भेद करना आवश्यक है। राजा राम मोहन राय में भी अंतर्विरोध हो सकता है। उन्हें पढ़े बिना कैसे पता चले।”⁸⁶ रामविलास शर्मा अपने पत्रों में पढ़ने की सलाह अक्सर देते हैं। अप्रत्यक्ष किन्तु उपस्थित होने का गुण उनकी अध्यापकीय कला को प्रकट करता है। जिसके पास शर्मा जी पत्र लिखते हैं, वह उसे पढ़ने की सलाह अवश्य देते हैं। दरअसल ज्ञान का भंडार कभी नहीं भरता और रामविलास शर्मा ज्ञान-पिपासा को अक्सर बढ़ाते रहते हैं। एक स्तर पर उनके पत्र ‘आलोचना’ का जीवन दस्तावेज हैं। नवजागरण के माध्यम से समूचे युग को प्रतिबिंबित कर देना उनके बड़ा होने का प्रमाण है। जिस प्रकार एक गुरु अपने शिष्य को गढ़ता रहता है उसी प्रकार रामविलास शर्मा अपने ‘आत्मीय’ को गढ़ते रहते हैं। सिखाते रहते हैं।

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र 8.1.1963 के पत्र में विश्वनाथ को लिखते हैं, “आपका आंतरिक व्यथा भरा पत्र मिला। मैं ईश्वरवादी हूँ। ईश्वर बाहर भी है और भीतर भी। जो भीतर है वह हमें कर्तव्य कर्मों की प्रेरणा देता है जो बाहर है वह फल देता है। भीतर वाले पर तो अधिकार रहता है। अर्थात् कर्तव्य कर्म करना यही अपने वश में है। फल बाहर है, वह अपने वश में नहीं। पर भीतरी और बाहरी ईश्वर में अंतर होकर भी अंतर नहीं है। अतः कर्म और फल की एकता हो जाती है।”⁸⁷ अब देखिए इस पत्र में विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने पहले तो कहा कि मैं ईश्वरवादी हूँ। फिर ईश्वरवादी होने का कारण बतलाते हैं तो ऐसा लगता है कि जैसे निबंध लिख रहे हैं। कर्तव्य, कर्म फल पर एक-एक वाक्य में ग्रंथों को उड़ेल कर रख दिया है। यही चीज साहित्यकार के पत्रों को उत्कृष्ट बनाती है।

इसी अंक में केदारनाथ अग्रवाल का 11.1.1989 का पत्र है, “दिनांक 7.1.1989 का पत्र मिला। शुभ कामनाओं से हृदय भर गया। मैं प्रफुल्लित हुआ। पत्र न मिलता तो शायद इस ठंड में रजाई ओढ़े पड़ा ही रहता। पाकर प्रसन्न हुआ। जड़ता गई। चेतना चमत्कृत हुई।”⁸⁸ यदि केदारनाथ अग्रवाल को पत्र न मिलता तो वे आलस्य मुद्रा में रजाई में पड़े रहते। पत्र मिलने से उनकी जड़ता समाप्त हो गई और उनकी चेतना चमकृत हो गई। ऐसा लग रहा है कि पत्र नहीं खुद पत्र लेखक चला आया है। इसीलिए डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी कहते हैं, ‘पाती आधा मिलन नहीं,

मिलन' है। रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल के यहां तो इसकी जीवंतता के आद्योपांत दृष्टांत हैं।

'कथन' पत्रिका के जनवरी-मार्च, 2002 के अंक में रामविलास शर्मा द्वारा अनंत कुमार 'पाषाण' के नाम लिखे गये पत्रों का प्रथम प्रकाश हुआ है। इस पत्रिका में रामविलास शर्मा के कुल 83 पत्र संकलित हैं। 25.3.1991 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, "चंगेज खाँ बौद्ध था, इस बात की जानकारी तुम्हें हो गयी, यह प्रसन्नता की बात है। तुम्हें एक प्रश्न का उत्तर और देना है। सद्दाम मुसलमान है। उसका विरोध करने वाले सऊदी अरब, मिस्र और पाकिस्तान भी मुसलमान हैं; इनमें ज्यादा मुसलमान कौन हैं? अर्थात् इस्लाम के खूँखार रूप का प्रतिनिधि सद्दाम है या उसके विरोधी? कोई विचारधारा हो मार्क्स और एंगेल्स की सीख यह है कि जिन भौतिक परिस्थितियों में उसका उद्भव और विकास हुआ है उनका अध्ययन करना चाहिए। इसके विपरीत भाववादी चिंतक विचारधारा को विशुद्ध चेतना की उत्पत्ति मानकर उसे भौतिक परिस्थितियों से अलग रखकर देखते हैं। उन्होंने ईसाई धर्म पर जो कुछ लिखा है, वह Marx & Engles on Religion (Moscow) में संकलित है। उससे धर्म के अध्ययन में सहायता मिल सकती है।"⁸⁹ रामविलास शर्मा सदैव साम्राज्यवादी ताकतों का विरोध विचार धारात्मक स्तर पर करते रहे। "2 दिसंबर 1990 के पत्र में 'पाषाण' जी ने लिखा कि 'हिन्दू धर्म विश्व की सबसे क्रांतिकारी धर्म है, और इनके जवाब में अपनी क्रांतिकारी विचारधारा पर दृढ़ रामविलास जी ने लिखा-

"इस दुनिया को बदलना है। इसे बदलने का तरीका मार्क्स और लेनिन ने बताया था। बंबई के फुटपाथों पर सोने वालों से कहो- तुम आजाद हो! यह आजादी का मजाक है। उन्हें रोटी, कपड़ा, मकान दो, उनका पेट धर्म से न भेरगा।"

10 जनवरी 1991 के पत्र में लिखा- "धर्म ने कभी संपत्ति भेद को मिटाने का सक्रिय प्रयास नहीं किया। यहीं मार्क्सवाद उससे आगे हैं। हम उसकी विजय के लिए जीते हैं।"⁹⁰ रामविलास शर्मा की चिंता कितनी पवित्र है। आज भारत स्वतंत्र है। 15 अगस्त 2002 को प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी लाल किले की प्रचीर से "गरीब लोगों (उनके शब्दों में आम जनता) के पास फ्रिज होने की दुहाई देते हैं। किन्तु वह भूखे मरते गरीब-मजदूर का उल्लेख नहीं करते। वह भी कवि हैं। उनकी संवेदना शून्य हो चुकी है। साहित्यकार संवेदना को अपने साहित्य में उद्घाटित करता है। स्वतंत्र भारत में भूखे पेट, नंगे बदन ठिठुरते लोगों को काहे की आजादी? आज भारत में राजनेताओं का नैतिक चरित्र गिर चुका है। आये दिन गुजरात याकि पूरे राष्ट्र में सांप्रदायिक दंगों का चरित्र वयस्क हुआ है। रोटी, कपड़ा, मकान के पक्ष में यह सोच रामविलास शर्मा के विशाल हृदय की उज्ज्वल गाथा है।

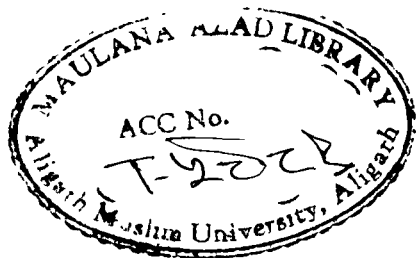
'वागर्थ', अंक 83, जून 2002 में उत्पल बनर्जी ने डॉ. धर्मवीर भारती का श्रीकांत जोशी से हुए पत्राचार को संकलित किया है। "पचास के दशक से लेकर नब्बे के दशक तक भारती जी और श्रीकांत जी के पत्राचार को पढ़ना अत्यंत प्रीतिकर है। भारती जी श्रीकांत जी से अग्रज और मित्र जैसा स्नेह करते थे। इन पत्रों में जो अधिकार और आत्मीयता हमें दिखाई देती है, उससे दो निश्छल हृदयों की अंतरंगता का पता चलता है। यह सच है कि इसमें बड़े-बड़े साहित्यिक मसलों पर गहन विमर्श की मुद्राएँ नहीं हैं, बल्कि ये व्यक्तिगत जीवन की सुबह-साँझ के, धूप छाँह के मर्मस्पर्शी शब्द चित्र जैसे हैं, जिनमें उम्र और अनुभूतियों के बदलते संस्कारों की स्पष्ट

छाया दिखाई देती है, यह बदलाव भाषा में भी है और संवेदनाओं में भी। यह मर्मस्पर्शिता इन पत्रों के ऐश्वर्य है। शब्दों के नेपथ्य में अर्थों का जो विराट और अनदेखा संसार होता है, ये पत्र उसी जगत का दर्शन कराते हैं।⁹¹

आजकल प्रायः सभी पत्र-पत्रिकाओं में 'पाठकों के पत्र' नाम से एक स्थायी कालम प्रकाशित होता है। इन पत्रों का भी एक विशेष महत्व है। साहित्य, समाज, राजनीति तथा धर्म किस करवट बैठ रही है, विभिन्न विषयों पर जनता के विचारों की व्याख्या रहती है। पाठकों की जागरूकता का परिणाम है कि साहित्यकारों को भी कभी-कभी सफाई देनी पड़ती है। पाठकों द्वारा उठाये हुए विभिन्न बहसों का निराकरण भी लेखक-साहित्यकार करते हैं। एक-दो पाठकों के पत्र तो बेहद मार्मिक होते हैं। आने वाले दिनों में पत्रों की परंपरा समृद्ध होगी। इसमें दो मत नहीं हैं।

भारतेन्दु युग से लेकर वर्तमान दौर तक खड़ी बोली साहित्य की सभी विधाओं में सशक्त हुई है। पत्रों में भी उसका सुष्ठुरूप देखा जा सकता है। शिवशम्भु के चिट्ठों से लेकर मिल संवाद के अंतिम दौर तक पत्र-लेखन की कला साहित्यिकता के नये-नये आयाम को उद्घाटित करती है। पत्र-साहित्य का उत्कर्ष काल सन् 1980 के बाद का है। क्योंकि इसी दौर में 'मित्र संवाद' का प्रकाशन होता है। अब पत्र सिर्फ लिखने में नहीं बल्कि दो व्यक्तियों के आमने-सामने बैठकर बातचीत करने को द्योतित करता है। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी का मानना है कि 'मित्र संवाद' गालिब के पत्रों के बाद सर्वश्रेष्ठ पत्र संग्रह है;⁹² तो शायद उसका कारण उसकी बातचीत की शैली है। जहां पत्र बात का स्वरूप ग्रहण कर ले तो उसे पत्र-साहित्य का उत्कर्ष काल मानने में संदेह नहीं होना चाहिए।

साहित्य की इस नवीन विधा ने कम समय में ही अधिक विकास किया है। आज हिन्दी में यह बात स्वीकार की जाने लगी है कि किसी व्यक्ति और उसके जीवन को समझने के लिए उसके पत्र अत्यंत महत्वपूर्ण कड़ी हैं। यही कारण है कि आज प्रमुख, लेखकों, नेताओं तथा अन्य विभूतियों के पत्रों के संकलन का कार्य प्रगति पर है। इस प्रकार पत्र विधा का भविष्य उज्ज्वल है।



संदर्भ

- ¹ प्रो. मैनेजर पाण्डेय— साहित्य और इतिहास दृष्टि, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण, 1981, द्वितीय संस्करण 2001, पृ. सं.81।
- ² डॉ. कालीचरण 'स्नेही' — पं. बनारसी दास चतुर्वेदी: व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ. सं.206-207।
- ³ वही, पृ. सं.207।
- ⁴ वही, पृ. सं.208।
- ⁵ वही, पृ. सं.208।
- ⁶ श्री रामचरित मानस (मूल गुटका) 'बालकाण्ड' (61वाँ संस्करण, स. 2030) गीता प्रेस गोरखपुर, पृ. सं.192।
- ⁷ विनय पत्रिका सक्षिप्त, स. डॉ. गोपीनाथ तिवारी, सं. 1972, रंजन प्रकाश आगरा, पृ. सं.23।
- ⁸ डॉ. कालीचरण 'स्नेही' — पं. बनारसी दास चतुर्वेदी: व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ. सं.208।
- ⁹ वही, पृ. सं.209।
- ¹⁰ कमल पुजाणी— हिन्दी का पत्र-साहित्य, पृ. सं.70।
- ¹¹ डॉ. कालीचरण 'स्नेही' — पं. बनारसी दास चतुर्वेदी: व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ. सं.209।
- ¹² कमल पुजाणी— हिन्दी का पत्र-साहित्य, पृ. सं.72।
- ¹³ डॉ. कालीचरण 'स्नेही' — पं. बनारसी दास चतुर्वेदी: व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ. सं.210-211।
- ¹⁴ कमल पुजाणी— हिन्दी का पत्र-साहित्य, पृ. सं.75।
- ¹⁵ मैनेजर पाण्डेय— साहित्य और इतिहास दृष्टि, पृ. सं.81।
- ¹⁶ डॉ. कालीचरण 'स्नेही' — पं. बनारसी दास चतुर्वेदी: व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ. सं.211।
- ¹⁷ संपादक श्री ज्ञानरमल्ल शर्मा, श्री बनारसी दास चतुर्वेदी: गुप्त निबधावली, स्वर्गीय श्री बालमुकुंद गुप्त— स्मारक संस्करण, प्रथम संस्करण 2001, प्रकाशक गुप्त स्मारक ग्रंथ प्रकाशन समिति, कलकत्ता।
- ¹⁸ वही पृ. सं.186।
- ¹⁹ वही, पृ. सं.187-188।
- ²⁰ वही, पृ. सं.192।
- ²¹ वही, पृ. सं.194।
- ²² वही, पृ. सं.199।
- ²³ वही, पृ. सं.202।
- ²⁴ वही, पृ. सं.210।
- ²⁵ वही, पृ. सं.240।
- ²⁶ वही, पृ. सं.242-43।
- ²⁷ वही, पृ. सं.248।
- ²⁸ वही, पृ. सं.252।
- ²⁹ हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (सोलह भाग में) नवम् भाग हिन्दी साहित्य का परिष्कार, द्वितीय काल 'स. 1950-1975 वि.}, संपादक सुधाकर पाण्डेय, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं.323।

-
- ⁰ संपादक डॉ नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, प्रथम संस्करण, 1973, संस्करण, 1983, पृ स 527।
- ¹¹ कमल पुजाणी— हिन्दी का पत्र—साहित्य, पृ स 81।
- ¹² हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, चतुर्दश भाग, पृ स 509—510, उद्धृत डॉ. कमल पुजाणी, हिन्दी का पत्र साहित्य, पृ स 81।
- ¹³ डॉ कालीचरण 'स्नेही' — प बनारसी दास चतुर्वेदी व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ स 212।
- ¹⁴ डॉ कैलाश चन्द्र भाटिया, रचना भाटिया — साहित्य में गद्य की नई विविध विधाएँ, पृ स 106।
- ¹⁵ कमल पुजाणी— हिन्दी का पत्र—साहित्य, पृ स 83।
- ¹⁶ डॉ कालीचरण 'स्नेही' — प बनारसी दास चतुर्वेदी व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ स 212।
- ¹⁷ वही, पृ स 212—214।
- ¹⁸ संपादक अमृत राय मदन गोपाल— चिट्ठी—पत्री, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, प्रेम चंद स्मृति दिवस, 1962, पृ स 1।
- ¹⁹ वही पृ स 6।
- ⁴⁰ वही, भाग—2, पृ स 3—4।
- ⁴¹ डॉ कैलाश चन्द्र भाटिया, रचना भाटिया — साहित्य में गद्य की नई विविध विधाएँ, पृ स 105—106।
- ⁴² वही, पृ स 106—107।
- ⁴³ वही, पृ स 107।
- ⁴⁴ वही, पृ स 107।
- ⁴⁵ वही पृ स 107।
- ⁴⁶ डॉ रामचन्द्र वर्मा— हिन्दी साहित्य युग एवं प्रवृत्तियों का विकास, पृ स.187।
- ⁴⁷ डॉ कैलाश चन्द्र भाटिया, रचना भाटिया — साहित्य में गद्य की नई विविध विधाएँ, पृ स 108।
- ⁴⁸ वही पृ स 108।
- ⁴⁹ वही, पृ स 108।
- ⁵⁰ वही, पृ स 108।
- ⁵¹ वही, पृ स 109—110।
- ⁵² वही, पृ स 109—110।
- ⁵³ वही पृ स 110—111।
- ⁵⁴ रामस्वरूप चतुर्वेदी हिन्दी गद्य — विन्यास और विकास, पृ स 178। वही, पृ स 92।
- ⁵⁵ मलयज — सवाद और एकालाप, पृ स 91
- ⁵⁶ वही पृ स 92।
- ⁵⁷ संपादक मुकुंद द्विवेदी— हजारी प्रसाद द्विवेदी के पत्र, पृ स 9।
- ⁵⁸ वही, पृ स 9।
- ⁵⁹ संपादक ज्ञानरजन और कमला प्रसाद— नामवर सिंह. व्यक्ति और आलोचक, पृ. स 65।
- ⁶⁰ वही पृ स 67।
- ⁶¹ वही, पृ स 67।
- ⁶² संपादक नेमिचन्द्र जैन— 'पाया पत्र तुम्हारा', पृ स 135।

-
- 63 वही, फुल स्केप कवर पृष्ठ।
- 64 वही, पृ स 9।
- 65 वही, पृ स 9।
- 66 वही, पृ स 218।
- 67 संपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र संवाद, पृ. सं.5।
- 68 संपादक डॉ रामविलास शर्मा, कवियों के पत्र, पृ. सं.7।
- 69 वही, पृ स 7।
- 70 वही, पृ स 58-59।
- 71 संपादक-जयदेव तनेजा- 'राकेश और परिवेश: पत्रों में', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 1995, पृ. सं.12,14।
- 72 नन्द किशोर नवल, मैं पढ़ा जा चुका पत्र, आधार प्रकाश पंचकुला, हरियाणा, प्रथम संस्करण, 1997, पृ स 9-10।
- 73 वही, पृ स 13।
- 74 वही, पृ स 13।
- 75 वही, पृ स 14।
- 76 वही, पृ स 20-21।
- 77 संपादक डॉ कमलेश अवस्थी हमको लिख्यो है कहा' (देवी शंकर अवस्थी के नाम पत्र), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2001, कवर पेज से।
- 78 वही, पृ स 17।
- 79 वही, पृ स 25।
- 80 डॉ कैलाश चन्द्र भाटिया, रचना भाटिया- साहित्य में गद्य की नई विविध विधाएँ, पृ. सं.111।
- 81 संपादक डॉ नामवर सिंह, आलोचना अंक 2000, जुलाई-सितंबर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ स 78।
- 82 वही, पृ स 88।
- 83 संपादक अखिलेश, तद्भव अंक, अप्रैल 2000, पृ. सं.184।
- 84 वही, पृ स 189।
- 85 संपादक अखिलेश, तद्भव, अंक अक्टूबर 2000, इंदिरा नगर लखनऊ, पृ. सं.184।
- 86 संपादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, दस्तावेज अंक 91, कैक्सटन प्रेस, इलाहाबाद, पृ. सं.79।
- 87 वही, पृ स 76।
- 88 वही, पृ स 61।
- 89 संपादक रमेश उपाध्याय, सज्ञा उपाध्याय- कथन पत्रिका फरवरी-मार्च 2002, नयी दिल्ली, पृ स 25।
- 90 वही, पृ स 9।
- 91 वागर्थ, अंक, 83, जून 2002, भारतीय भाषा परिषद प्रकाशन, संपादक विनोद दास, कलकत्ता, पृ स 81।
- 92 मेरे साथ साक्षात्कार परिशिष्ट में है।

अध्याय – तीन

मित्र-संवाद के पत्रों के विषय

उप अध्याय—एक

साहित्यिक

- (1) प्राचीन मध्यकालीन साहित्यकार
- (2) आधुनिक समकालीन साहित्यकार

उप अध्याय—दो

पारिवारिक

उप अध्याय—तीन

राजनैतिक

उप अध्याय—चार

आर्थिक

उप अध्याय—पाँच

प्रकृति

उप अध्याय—छः

साहित्येतर कलाएँ

अध्याय – तीन

मित्र-संवाद के पत्रों के विषय

‘मित्र संवाद’ दो मित्रों की बातचीत का दस्तावेज है। इनमें पहले है केदारनाथ अग्रवाल और दूसरे रामविलास शर्मा। दोनों मित्रों में आमने-सामने बातचीत नहीं होती लेकिन बातचीत का माध्यम दोनों साहित्यकारों के पत्र है। दोनों के बीच लगभग 56 वर्षों तक बातचीत का सिलसिला चलता रहता है। दोनों की दृष्टि समाज की सभी घटनाओं पर रहती है। ‘मित्र संवाद’, की भूमिका में रामविलास शर्मा लिखते हैं, “‘मित्र संवाद’ में केदार से मेरी बातचीत जुलाई 1935 में शुरू होती है और नवंबर 1943 तक अकेले मैं ही बोलता रहता हूँ। इसका कारण यह है कि इस बीच केदार के लिखे सारे पत्र नष्ट हो गये हैं।”¹ इन पत्रों से ज्ञात होता है कि रामविलास शर्मा की तत्त्वान्वेषी दृष्टि लगभग सभी ओर पहुँचती है। केदारजी की कविता पर बहस, प्राचीन-मध्यकालीन साहित्यकारों, समकालीन साहित्यकारों पर भी उनकी दृष्टि को देखा जा सकता है। दोनों मित्रों के पत्रों में पारिवारिक, राजनैतिक, आर्थिक, प्राकृतिक पहलुओं को भी उद्घाटित किया गया है। साहित्येतर घटनाओं और कला की चर्चा उनके पत्रों में होती है। कुल मिलाकर समाज के लगभग सभी पहलुओं पर दोनों रचनाकारों का विमर्श है।

उप अध्याय—एक

साहित्यिक

(1) प्राचीन मध्यकालीन साहित्यकार

‘मित्र-संवाद’ के दौरान विभिन्न पत्रों में दोनों मित्रों ने प्राचीन कवियों का लेखा-जोखा रखा है। उन पर बहस हुई है। इस संवाद में प्राचीन कवियों में कालिदास पर भी चर्चा है। कालिदास भारतीय कविता की परंपरा के श्रेष्ठ रचनाकार है। केदार को रामविलास शर्मा लिखते हैं इधर कालिदास पढ़ता रहा हूँ। एक लेख ‘आलोचना’ (अब नद दुलारे वाजपेयी है उसमें) के लिए लिखा है (कालिदास साहित्य के स्थायी मूल्यों की समस्या) और एक न्यू एज (मन्थली) के लिए भी (कालिदास पर ही)। November के New Age (Monthly) के लिए Slavery in Ancient India पर लिखने का वादा किया है। हिन्दी भाषा का विकास’ लिखने की नौबत अब आ रही है। कालिदास में सुरतवाद बहुत है, वर्ना वह भी आदमी था काम का। सोधी मिट्टी उसे बहुत पसंद है। अप्सराओं की लडकियों ही उसकी प्रेमिकाएँ हैं या उन्हीं में से एक रही होगी। अपने सीमित क्षेत्र में कला की जो पूर्णता उसमें है, वह किसी में नहीं। परिष्कृत इन्द्रिय बोध में सब उसके सामने पानी भरते हैं।

अय सुजातो नु गिर तमाल प्रवाल मादाय सुगन्धि यस्य।

यवाड कुरापाण्डु कपोल शोभि मयावत स परिकल्पितस्ते॥

पर्वत के समीप तमाल वृक्ष है। उसके सुगन्धित किसलय लेकर राम ने सीता जी के जौ के अकुर जैसे गालों के लिए आभूषण रचा था।² कबीर के यहाँ भी सुरत और निरत की चर्चा मिलती है कबीर की कविता भी यही पर कमजोर साबित होती है। कालिदास का प्रकृति वर्णन

बेजोड है रामविलास शर्मा जिसे परिष्कृत इन्द्रिय बोध कहते हैं वह आज की शब्दावली में अनुभूति की तीव्रता है। अनुभूति की तीव्रता कालिदास में जबर्दस्त है। पुन उसी पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, "किसलय की कोमलता, साथ ही उसका सुगन्धित होना, जो के अकुरो का पीतवर्ण और सीता के कपोल। Keats के *Eve of St. Agnes* में अर्द्धनग्न Madeline के वर्णन में Hothouse Plants का सा सौन्दर्य है— तरुण कवि की श्रृंगारी कल्पना की अतिशयता। कालिदास के उपर्युक्त छन्द में खुली हवा का आनन्द है, कोंच के टुकड़ों के रँग-बिरँगपन के बदले प्रकृति की सुकुमारता सचिit है। इसलिए उस महाकवि को सुरतवाद के दलदल से निकालकर तमाल पत्रों की छाया में पढ़ना आवश्यक है।"³ कबीर की कविता में भी जहाँ आराध्य के प्रति समर्पण है वहाँ उनकी कविता बेजोड साबित होती है। उनकी कविता को समझने के लिए प्रेम-सवेदना को समझना आवश्यक है और कालिदास की कविता को समझने के लिए प्रकृति का साहचर्य।

कालिदास पर बहस आगे बढ़ती है और केदारनाथ अग्रवाल लिखते हैं, "कालिदास सफल कवि है। सुरतवाद निस्संदेह बहुत है उसके काव्य में। लेकिन शान का कवि है— जिसे तुमने सोधी मिट्टी की महक कहा है। मैं तो संस्कृत नहीं जनाता लेकिन अनुवाद से ग्रथावली पढ़ते समय उसके श्लोकों के सस्वर पाठ का मजा ले चूका हूँ। मुझमें भी वही मोह है इसलिए मैं सुरतवाद की मिटास में पग जाता था। भाई जान, चीज ही ऐसी है वह। मुझे तो उसकी Classical कला से बहुत कला मिली है। मैंने सीखा है इस महान कवि से थोड़े में बात या भाव को व्यक्त करना, श्रेष्ठ कला साहित्य।"⁴ कालिदास प्राचीन भारतीय काव्य-परंपरा के चरमोत्कर्ष थे।

16 5 1957 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, "पहले सूर का दिव्य दर्शन देखो। रास का चित्र है। कल्पना के रँगों में सूर की सवेदनाओं ने ढल कर ज्योति के पत्र पर कैसा अमर चित्र आका है— वर्ण-वर्ण, रेखा-रेखा सजीव है, सारा चित्र इतना सर्वांग-संपूर्ण मानो द्रष्टा के सामने मंत्र प्रज्वलित अक्षर स्वतः अवतरित हुए हो—

अरुझी कुडल लट, बेसरि सौ पीत पट, बनमाल
बीच आनि उरझे है दोउ जन।
प्राननि सौ प्रान, नैन नैननि अँटकि रहे, चटकीली
छबि देखि लपटात स्याम घन।
होडा-होडी नृत्य करै, रीझि-रीझि अक भरै,
ता-ता- 'थेई-थेई', उछटत है हरखि मन।
सूरदास प्रभु प्यारी, मडली जुवति भारी, नारी कौ
ऑचल लै-लै पोछत है स्रमकन।"⁵

सूरदास का काव्य सामंती चरित्र के प्रति विद्रोह का काव्य था। प्रेम स्वभावतया विद्रोही होता है। प्रेम से पूर्व सूर की परंपरा पर विचार कर लेना आवश्यक है। सूर ब्रज भाषा की कविता के चरमोत्कर्ष थे। त्रिवेणी में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं, "जयदेव की देववाणी की सिग्ध पीयूष धारा, जो काल की कठोरता में दब गई थी, अबसर पाते ही लोक भाषा की सरसता में परिणत होकर मिथिला की अमराइयों में विद्यापति के कोकिल कंठ से प्रकट हुई और आगे चलकर ब्रज के करील कुजों के बीच फैल कर मुरझाये मनो को सीचने लगी। आचार्यों की छाप

लगी हुई आठ वीणाएँ श्री कृष्ण की प्रेमलीला का कीर्तन करने उठीं, जिनमें सबसे ऊँची, सुरीली और मधुर झंकार अंधे कवि सूरदास की वीणा की थी।⁶ सूरदास विद्यापति की परंपरा के कवि थे। विद्यापति अपूर्व के कवि हैं तो आँखों के वर्णन में सूरदास माहिर। प्रेम करने की पहली शर्त है 'निरखना'। निरखने की क्रिया आँखों से ही हो सकती है। आँखों का खुला होना चेतनता का प्रमाण होता है। चेतनता की स्थिति में मनुष्य सजग होता है। प्रेम व्यक्ति की सहजता व सजगता का परिणाम है। सूरदास का अपने आराध्य के प्रति अगाध प्रेम था। मित्रतापूर्ण प्रेम था। गोपियों को भी श्रीकृष्ण के प्रति अगाध श्रद्धा थी, प्रेम था। मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं, "प्रेम स्वभाव से ही सत्ता विरोधी और स्वतंत्र होता है। वह अपने प्रिय को छोड़कर किसी और भी सत्ता स्वीकार नहीं करता। सत्ता से प्रेम के संघर्ष की कहानी उतनी ही पुरानी है, जितनी प्रेम की कविता की परंपरा। यह आवश्यक नहीं कि प्रेम की कविता में विरोधी सत्ता हमेशा सामने हो। वह कहीं प्रत्यक्ष होती है और कहीं परोक्ष।"⁷ सूरदास की कविता सत्ता से विद्रोह की कविता है। सामंती चरित्र के प्रति क्रांति की कविता है। "सूरदास के काव्य में प्रेम तीन के तीन प्रकार हैं— मानवीय, ईश्वरीय और प्राकृतिक।"⁸ जहाँ प्रेम का मानवीय स्वरूप उद्घाटित है वहीं पर कविता विद्रोह का स्वरूप ग्रहण कर लेती है।

रामविलास शर्मा के प्रिय कवियों में तुलसी ही विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। तुलसी पर लिखने की चाहत उनमें अंतिम दिनों तक बनी रही। 6.2.74 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, "इधर भाषा विज्ञान से जी ऊबने पर हम तुलसीदास पढ़ते रहे। राम—लछिमन—भरत—सीता—हनुमान से बहुत अच्छे लगते हैं तुलसीदास। सतह पर काफी सेवार बहता दिखाई देता है, नीचे बहुत जोरदार रूढ़ियों की चट्टानों से टकराती हुई धारा है। 'लोक को न डर परलोक को न सोच देवा सेवा न सहाय गर्व धाम को न धन को' इस उक्ति में सभी रूढ़ियों के ऊपर से उन की कविता धारा बह चली है। जब वह Ecstasy में होते हैं तब उनके मन के साथ उनका शरीर, शरीर का रोम—रोम भाव में डूब जाता है— 'सजल नयन गदगद गिरा गहबर मन पुलक शरीर' एक पंक्ति में Ecstasy का ऐसा चित्रण दूसरी जगह नहीं देखा।"⁹ इस प्रकार की कई टिप्पणियाँ रामविलास शर्मा के पत्रों में मिल जायेंगी। आगे रामविलास शर्मा लिखते हैं, "राम चरित मानस में वह 'मन' का प्रयोग बहुत करते हैं, कवितावली और विनयपत्रिका में कम। अवश्य ही वह इसे अवधी का रूप मानते हैं।"¹⁰ इस प्रकार रामविलास शर्मा भाषा और शब्दों पर भी चर्चा करते चलते हैं।

प्राचीन कवियों का हवाला देते हुए समकालीन लेखकों पर व्यंग्य भी पत्रों में दिखलाई पड़ता है। ऐसा ही एक पत्र केदार का रामविलास शर्मा के नाम है, "तुलसीदास पर बहस सुनी। खूब अंत किया तुमने। अब लौं नसानी अब न नसैहों। यह व्यंग्य गुलाबराय जी के खूब चिपका। तुम्हारी भी समझ में प्रेम नहीं आता, मेरी भी समझ में नहीं आता।"¹¹ प्रेम मन की गूढ़तम संवेदनात्मकता का नामकरण है। भावनाओं का भव्यीकरण है। अप्रकट स्तर पर एकदम अमूर्त किंतु प्रकटीकरण के स्तर पर सुख, और देखने वालों की तिलमिला देने वाला। प्रेम जितना काल्पनिक होता है उतनी ही रचनात्मक भी। भक्त कवियों के यहाँ प्रेम का आश्रय अलौकिक था रीतिकालीन कवियों के यहां प्रेम उतना उदात्त नहीं रह गया। 27.10.47 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, "आपकी भूमिका में मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के नाम पर सिर्फ रीतिकालीन कविता दिखाई देती है और तुलसी और सूर एक लंबे पैराग्राफ में पलायनवादी सिद्ध किये गये हैं।"¹² वस्तुतः यह सत्य नहीं है। तुलसी दास जी में ओज गुण प्रधान हैं। सूर के यहाँ गृहस्थ जीवन की झांकियाँ स्पष्टतया परिलक्षित हैं। रामविलास शर्मा को तुलसी को पलायनवादी कहे

जाने पर गहरी आपत्ति थी। 'निराला की साहित्य साधना' में केदारनाथ अग्रवाल को रामविलास शर्मा ने लिखा है, "प्यारे तुलसीदास के बाद अब तक ऐसी अमोघ प्रतिभा का साहित्यकार हिन्दी में नहीं आया था। वाल्मीकि, तुलसीदास, निराला तीनों तरह के लेकिन तीनों गरल पीने वाले वीर थे, दुख पर रोने वाले नहीं, ओज गुण की सृष्टि करने वाले, सच्चे अर्थों में वीर रस के कवि।"¹³ तुलसीदास जी वीर रस के कवि होने के साथ-ही-साथ शील के कवि भी हैं। साहित्य इतिहास नहीं होता। साहित्य को आर्थिक व्यवस्था का प्रतिबिम्ब समझना सच्चाई से इंकार करना है। मिसाल के लिए तुलसीदास ने राजा दशरथ और रामचन्द्र का नाम लिया है, इसलिए तुम उन्हें राज सत्ता का पोषक कह कर ही छोड़ दोगे— लेकिन 'भरत' के चरित्र में उन्होंने जो करुणा भर दी है, उसके मानवतावादी महत्व को बिल्कुल भूल जाओगे। तुम यह भी नहीं बता सकोगे कि तुलसीदास ने यह क्यों लिखा— 'दारिद दसानन दबाई छुनी दीन बंधु दुरित दहन देखि तुलसी हहाकारी।' इस तरह के लेखक में अपने युग की असंगतियों झलकती हैं। तुलसीदास के सामने—समाज का वही ढांचा था जो शास्त्रों में लिखा हुआ था लेकिन उनकी सहृदयता बार-बार इससे बगावत करती थी। इस असंगति को पकड़ना आलोचक का काम है। इसी तरह मिल्टन का शैतान दुर्गुणों से भरा हुआ है, फिर भी Renaissance वह के विद्रोह का सबसे बड़ा प्रतीक है। तोल्स्टोय ने धर्म की घूँटी दी थी फिर भी पूँजीवाद के खिलाफ किसानों के असंतोष को प्रकट करने वाला सबसे बड़ा लेखक वही था। रूसो और वोल्टेयर राज्यतंत्र के विरोधी नहीं थे। फिर भी फ्रांसीसी राज्य क्रांति के सबसे बड़े विधायक वही थे।"¹⁴ तुलसीदास के यहाँ राम की सुशीलता पर भरत को अत्यधिक विश्वास है। तभी तो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं, "वह सुशीलता धन्य है जिस पर इतना विश्वास टिक सके, और वह विश्वास धन्य है, जो सुशीलता पर इस अविचल भाव से जमा रहे। भरत की आशा का एक मात्र आधार यही विश्वास है। कौशल्या के सामने जिन वाक्यों द्वारा वे अपनी सफाई देते हैं, उनके एक-एक शब्द में अंतःकरण की स्वच्छता झलकती है। उनका शपथ उनकी अंतर्वेदना की व्यजना है—

जे अघ मातु पिता गुरु मारे। गाय गोठ महिसुर पुर जारे।

जे अघ तिय— बालक वध कीन्हे। मीत महीपति माहुर दीन्हे।।

जे पातक उप पातक अहही। करम वचन मन—भव कवि कहही।

ते पातक मोहि होहु विधाता। जो एहु होइ मोर मत माता।।

इस सफाई के सामने हजारों वकीलों की सफाई कुछ नहीं है, इन कसमों के सामने लाखों कसमें कुछ नहीं हैं। यहाँ वह हृदय खोलकर रख दिया गया है, जिसकी पवित्रता को देख जो चाहे अपना हृदय निर्मल कर ले।"¹⁵

रामविलास शर्मा लिखते हैं, "तुलसीदास जी ने चित्रकूट पर वर्षा का वर्णन किया है परंतु उससे कौन चित्रकूट को पहचान सकेगा।"¹⁶ गोस्वामी तुलसीदास ने चित्रकूट पर वर्षा का वर्णन तो अवश्य किया है लेकिन चित्रकूट का महत्व प्रकृति वर्णन के लिए नहीं है। चित्रकूट का महत्व उपस्थित सभा के लिए है। जैसा कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है, "चित्रकूट में राम और भरत का जो मिलन हुआ है, वह शील और शील का, स्नेह और स्नेह का, नीति और नीति का मिलन है। इस मिलन से सघटित उत्कर्ष की दिव्य प्रभा देखने योग्य है। यह झोंकी अपूर्व है। 'भायप भगति, से भरत नंगे पौव राम को मनाने जा रहे हैं। मार्ग में जहाँ सुनते हैं कि यहाँ पर राम लक्ष्मण ने विश्राम किया था, उस स्थल को देख आँखों से आँसू भर लेते हैं— 'राम बासथल बिटप बिलोके। उर अनुराग रहत नहि रोके'

पुण्य समाज के प्रभाव से चित्रकूट की रमणीयता में पवित्रता भी मिल गयी। उसी समाज के भीतर नीति, स्नेह, शील, विनय, त्याग आदि के संघर्ष से जो धर्मज्योति फूटी, उससे आस-पास का सारा प्रदेश जगमगा उठा— उसकी मधुर स्मृति से आज भी वहाँ की वनस्थली परमपवित्र है। चित्रकूट के उस सभा की कार्रवाई क्या थी, धर्म के एक-एक अंग की पूर्ण और मनोहर अभिव्यक्ति थी। रामचरित मानस में वह सभा एक आध्यात्मिक घटना है। धर्म के इतने स्वरूपों की एक साथ योजना, हृदय की इतनी उदात्त वृत्तियों की एक साथ उद्भावना, तुलसी के ही विशाल 'मानस' में संभव थी।.. यदि भारतीय शिष्टता और सभ्यता का चित्रण देखना हो तो इस राज समाज में देखिए।¹⁷ अनुभूति की तीव्रता चित्रकूट सभा में उपस्थित सभी पात्रों में कूट-कूट कर भरी हुई है। उस सभा में उपस्थित सभी व्यक्ति अपना धर्म समझते हैं तभी तो चित्रकूट सभा का वर्णन मनोहर है। चित्रकूट सभा की कार्रवाई जनतांत्रिक कार्रवाई है। वहाँ पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, सभ्य और असभ्य सभी लोग उपस्थित रहते हैं। पूरा एक समाज उपस्थित है समाज का श्रम विभाजन यहाँ पर देखने को मिलता है। इसीलिए चित्रकूट का वर्णन दोनों के पत्रों में लगातार मिलता रहता है।

18.8 43 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, "इस साल तुलसी दास पर एक किताब लिखने की सोच रहा हूँ।"¹⁸ तुलसीदास पर रामविलास शर्मा की किताब तो नहीं पूरी हुई लेकिन उन पर छुट पुट टिप्पणियों और लेख लगातार आते रहे। यदि उनके टिप्पणियों और लेखों को संग्रहीत कर दिया जाए तो किताब का आकार ग्रहण कर लेगी। बाद में किताब के रूप में प्रकाशित भी हुई। तुलसी मध्यकालीन कवियों में रामविलास शर्मा के प्रिय कवि थे। राम चन्द्र शुक्ल के भी प्रिय तुलसी ही थे। दोनों आलोचकों के यहाँ मर्यादा कूट-कूट कर भरी हुई है रामविलास शर्मा ने राम चन्द्र शुक्ल पर एक स्वतंत्र आलोचना की पुस्तक लिखी। गोस्वामी तुलसी दास पर रामविलास शर्मा लिखते हैं, "तुलसी का महत्व इस विषम समाज-व्यवस्था को ढहने से बचाने में नहीं है, न उन्होंने उसे बचाया, तुलसी का महत्व इसमें है कि उन्होंने अपने को समाज के इन्हीं पतितों का एक अंग समझा, उनके अपमान को अपना अपमान समझा। उनके सम्मान के लिए, मानव-मात्र के लिए सुलभ भक्तिमार्ग का प्रतिपादन किया। तुलसी की यह विशेषता है कि जो जितना ही समाज-व्यवस्था में गिरा हुआ है, उतना ही वह राम को प्रिय है, जितनी जल्दी राम उस पर कृपा करने के लिए तैयार रहते हैं, उतनी जल्दी उच्च वर्णों के लोगों पर नहीं। इसीलिए देवता स्वर्ग में बैठे इन इतरजनों के भाग्यपर ईर्ष्या ही प्रकट कर सकते हैं। यहाँ कोल-किरात-निषाद — भीलनी-केवट आदि राम के दर्शन-मिलन का सुख पाते हैं। राम का स्वागत करने के लिए सबसे आगे स्त्रियाँ रहती हैं।"¹⁹ तुलसीदास ने समाज के समक्ष एक व्यवस्था रखी। आदर्श प्रतिमान खड़े किये। राम चन्द्र शुक्ल और रामविलास शर्मा ने भी आलोचना के नये प्रतिमान गढ़े। एक ने परंपरा की शुरुआत की और दूसरे ने परंपरा को दृढ़ता प्रदान की।

इस प्रकार दोनों लोगों के पत्रों में कहीं विस्तार और कहीं सूक्ष्मता के साथ प्राचीन और मध्यकालीन कवियों पर बहस है। कवियों और उनकी कविता पर बहस दोनों मित्रों के संवाद को रोचक बनाए रखती है।

(2) आधुनिक-समकालीन साहित्यकार

प्राचीन साहित्यकारों की अपेक्षा आधुनिक समकालीन साहित्यकारों में दोनों मित्रों की रुचि अधिक है। दरअसल प्राचीन साहित्यकारों की जहाँ भी चर्चा है, वह समकालीन, समवयस्कों की

चर्चा के दौरान ही है। प्राचीन और मध्यकालीन साहित्यकारों से कुछ सीखने के संदर्भ में ही चर्चाएँ क्रमशः आगे बढ़ती हैं।

39.43 के पत्र में रामविलास शर्मा केदारनाथ अग्रवाल को लिखते हैं, “कविताएँ भेजो—एकांकी और स्केज भी लिखो। दुर्भिक्ष, अकाल और बाढ़ पर भी। तुम्हें ‘भारतेन्दु युग’ मिला या नहीं?”²⁰ रामविलास शर्मा ने सन् 1943 में ‘भारतेन्दु युग’ लिखा। इस पुस्तक में उन्होंने लिखा है, “भारतेन्दु हिन्दी की जातीय परंपरा के संस्थापक हैं। पुनः तीसरे संस्करण में उन्होंने लिखा है, “इस पुस्तक के प्रथम संस्करण की भूमिका में मैंने लिखा था, भारतेन्दु हिन्दी की जातीय परंपरा के संस्थापक हैं। यह बात साहित्य की साम्राज्य विरोधी धारा के संदर्भ में सही है किन्तु हिन्दी जाति और उसकी संस्कृति अंग्रेजी राज कायम होने से पहले यहाँ विद्यमान थी।”²¹ रामविलास शर्मा की स्थापना साहित्य की साम्राज्य विरोधी परंपरा के संदर्भ में बिल्कुल सही है।

रामविलास शर्मा ने भारतेन्दु की सम्यक समालोचना की है। भारतेन्दु के विषय में उन्होंने लिखा है, “भारतेन्दु एक विशाल आंदोलन के केन्द्र थे।.. वह दूसरों को एक सहकारी की भाँति उत्साहित करते थे।.. उन्होंने वे विषय दिये जिन पर वह ग्रामगीत लिखना आवश्यक समझते थे।

इस विषय—सूची से पता चलेगा कि भारतेन्दु देश के राजनीतिक आंदोलन की बहुत सी बातें पहले ही सोच चुके थे। समाज सुधार से लेकर स्वदेशी आंदोलन तक उनकी दृष्टि गयी थी। वे देश की जनता में एक नयी चेतना जगाना चाहते थे जो प्रत्येक क्षेत्र में उसे सजग रखे।”²²

रामविलास शर्मा ने भारतेन्दु को मूल्यांकित करते हुए नवजागरण पर भी पर्याप्त विचार किया है। भारतेन्दु युगीन समाज में व्याप्त अंतर्विरोध से टकराये और समस्याओं की टकराहट के परिणामस्वरूप प्रगतिशील भारतेन्दु का उदय होता है। वे स्वभावतः प्रगतिशील थे। ‘भारतेन्दु की विचारधारा’ में लक्ष्मीसागर वाष्ण्य ने लिखा है— “नवीन राजनीतिक आर्थिक और शिक्षा—संबंधी व्यवस्था के फलस्वरूप उत्पन्न नवीन विचारों का प्रभाव हिन्दी के साहित्यिकों पर पड़े बिना न रह सका।”²³ पुनः लक्ष्मी सागर वाष्ण्य लिखते हैं, “पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार से भारतवासियों में आत्मचेतना जागरित हो रही थी।.. जिस समय भारत वर्ष अंधकार के गर्त में डूबा हुआ था, सौभाग्य से उस समय उसका पश्चिम की एक जीवित जाति के साथ—साथ सम्पर्क स्थापित हुआ।”²⁴ लक्ष्मी सागर वाष्ण्य अंग्रेजों को जीवित जाति मानते हैं। भारतेन्दु की प्रगतिशीलता अंग्रेजों के संपर्क का परिणाम थी। ऐसा वाष्ण्य का मानना है, लेकिन उनका मत बिल्कुल अग्राह्य है, साथ ही बेबुनियाद भी। रामविलास शर्मा का तर्क है, “अंग्रेजों ने हिन्दुस्तानियों को राजभक्ति सिखाई, उनके अंदर फूट की आग सुलगाई, उन्हें एक—दूसरे का खून बहाना सिखाया, यहाँ की संस्कृति और भाषाओं को पैरों तले रौंदा और यहाँ से जितना धन लूटकर ले गए, उतना अपने बाकी विश्वव्यापी साम्राज्य से न ले गये। हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय चेतना सीधे अंग्रेज डाकुओं के कारनामों का विरोध करके बढ़ी। इसलिए हिन्दुस्तान की तमाम भावनाओं का नया राष्ट्रीय साहित्य अंग्रेजी राज्य का विरोध साहित्य है। अंग्रेज साम्राज्यवादियों ने भारतीय जनता को गुलामी की शिक्षा दी, भरसक उसके राष्ट्रीय सम्मान और प्रतिरोध भावना को कुचलने की कोशिश की। इसके बावजूद जनता के समर्थ लेखक देश की संस्कृति की रक्षा और विकास के लिए आगे बढ़े। ऐसे लेखकों में ही भारतेन्दु हरिश्चन्द्र थे।”²⁵ रामविलास शर्मा का तर्क सही है। अंग्रेजों ने भारत के विकास के लिए रेल, डाक, तार का विकास नहीं किया। उनका तो मात्र एक लक्ष्य था अपना विकास और भारतीयों का जबर्दस्त शोषण। भवदेव पाण्डेय ने ‘भारतेन्दु हरिश्चन्द्र: नये परिदृश्य’

किताब लिखी है। उनकी नजर में भारतेन्दु एक हिन्दू नेता थे। इधर कुछ आलोचकों ने भारतेन्दु को पुनर्मूल्यांकित करने का प्रयास किया है। कुछ लोग सम्यक मूल्यांकन करते हैं तो कुछ आलोचना को मात्र पूर्वग्रह मानते हैं। जो भी हो सभी के मूल में रामविलास शर्मा ही हैं। सभी आलोचक गाहे-बगाहे उन्हीं के यहाँ से विषयों का चुनाव करते हैं और आलोचक कहलाने के हकदार बन जाते हैं। एक खाचें में फिट करना और विरोध के लिए सिर्फ विरोध करना आलोचकों का एकमात्र लक्ष्य है, जो कि साहित्य और आलोचना दोनों के लिए हानिकारक है। भारतेन्दु हिन्दी नवजागरण के अग्रदूत थे। यदि उनका समग्र मूल्यांकन किया जाए तो वे अंग्रेजों के जबर्दस्त विरोधी थे। उस युग की कुछ सीमाएँ थीं; भारतेन्दु उनसे परे नहीं थे।

21.2.40 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, "मैंने प्रेमचन्द पर अपनी किताब लिख ली है और शायद एक महीने में छप जायेगी।"²⁶ रामविलास शर्मा जिस किताब की सूचना यहाँ दे रहे हैं वह है 'प्रेम चन्द और उनका युग'। उन्होंने प्रेमचन्द को उनके युग की कसौटी पर मूल्यांकित करने का प्रयास किया है। वे प्रेमचन्द को तुलसी और कबीर की परंपरा का स्वाभाविक विकास मानते हैं। प्रेमचन्द का विश्लेषण करते हुए रामविलास शर्मा ने उनको तुलसी और कबीर की परंपरा का स्वाभाविक विकास माना है। "प्रेमचन्द और उनका युग" की भूमिका में रामविलास शर्मा लिखते हैं, "तुलसीदास के बाद हिन्दी में यह पहला इतना बड़ा कलाकार पैदा हुआ था जिसकी रचनाएँ अपनी ही भाषा के क्षेत्र में ही नहीं, सुदूर दक्षिण के गाँवों में भी पहुँच गयी थीं।"²⁷ प्रेम चन्द का गहरा रिश्ता अपने युग से था। प्रेम चन्द का विकास ही सामाजिक विडम्बनाओं की टकराहट के परिणामस्वरूप हुआ था। "प्रेम चन्द का साहित्य उनके जमाने के हिन्दुस्तान और स्वाधीनता आंदोलन का प्रतिबिम्ब है।"²⁸ प्रेमचन्द का साहित्य उस युग का ऐतिहासिक दस्तावेज है। यदि सन् 20 से 30 के हिन्दुस्तान को जानना है तो प्रेमचन्द का अध्ययन पर्याप्त होगा।

प्रेम चन्द जनता से कितने गहराई से जुड़े हुए थे रामविलास शर्मा इसका विश्लेषण करते हैं। इसी बात को ध्यान में रखकर रामविलास शर्मा ने 'प्रेमचन्द और उनका युग' की रचना की। उपशीर्षक 'प्रेमचन्द का जीवन' से प्रारंभ करके 'प्रेमाश्रम और गोदान: कुछ अन्य समस्याएँ' तक आकर रामविलास शर्मा स्थिर हो जाते हैं। इन्होंने 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम', 'निर्मला' और 'गबन', 'कायाकल्प' और 'रँगभूमि', 'कर्मभूमि' और 'गोदान' पर स्वतंत्र रूप से विचार विमर्श किया है। 'कहानियाँ' शीर्षक में कुछ कहानियों पर लेखक की दृष्टि केन्द्रित है। प्रेमचन्द को संपादक, विचारक और समालोचक के रूप में ग्रहण करने का प्रयास रामविलास शर्मा ने किया है। प्रगतिशीलता और भाषा की समस्या पर ध्यान देते हुए रामविलास शर्मा ने किस प्रकार युग निर्माता प्रेमचन्द को कलम का सिपाही बना दिया है, यह वर्णन अद्भुत है। युगीन समस्याओं की टकराहट से प्रेमचन्द कलम का सिपाही बन जाते हैं। प्रेमचन्द ने अपने युग के बीजगणित को समझा और उनका लेखा-जोखा एक मुंशी की तरह अपनी रचनाओं में उजागर किया। रामविलास शर्मा ने अंतिम अध्याय में कुछ विद्वानों के प्रश्नों का उत्तर दिया है और साथ ही साथ प्रेमाश्रम और गोदान संबंधी कुछ नई बातों की चर्चा भी की है।

रामविलास शर्मा प्रेमचन्द के साहित्य को स्थिर नहीं रखना चाहते थे बल्कि वे चाहते थे कि उनके साहित्य पर निरंतर विचार-विमर्श होता रहे। इसी उद्देश्य के लिए उन्होंने प्रथम संस्करण की भूमिका में लिखा है, "हिन्दी-उर्दू में खोज करने वाले विद्यार्थियों से एक विशेष

निवेदन है कि वे प्रेमचन्द के खतों को इकट्ठा करने की जिम्मेदारी लें और पत्रिकाओं में उनके जो लेख पड़े हों, उन्हें भी एकत्र करें। इससे प्रेमचन्द के साहित्य के अध्ययन में सहायता मिलेगी।”²⁹ प्रेमचन्द के साहित्य को रामविलास शर्मा ने सामाजिक संदर्भों में विश्लेषित करने का प्रयास किया।

‘प्रेमचन्द का जीवन’ साहित्यकार प्रेमचन्द के जीवन का जीवन्त दस्तावेज है। लेखक ने प्रारंभ में लिखा है, “प्रेमचन्द हिन्दुस्तान की नई राष्ट्रीय और जनवादी चेतना के प्रतिनिधि साहित्यकार थे।” प्रेमचन्द के साहित्य का अध्ययन करने पर पता चलता है कि उनके केन्द्र में राष्ट्रीयता और जनपक्षधरता कूट-कूट कर भरी हुई है। प्रेमचन्द का बचपन गरीबी में व्यतीत हुआ। इसमें दो मत नहीं। गरीबी की टकराहट से प्रेमचन्द को नये-नये अनभव मिले जिन्होंने उनकी साहित्यिकता को समृद्धि प्रदान की। रामविलास शर्मा प्रेमचन्द के विद्यार्थी जीवन को हिन्दुस्तान के औसत गरीब विद्यार्थी का जीवन मानते हैं।

प्रेमचन्द का निजीजीवन भले ही गरीबी व अभावों में व्यतीत हुआ हो लेकिन उनका साहित्यिक जीवन समृद्धिशाली था। एक से एक अक्षर बीजों का प्रकाशन ‘सदन’ से प्रारंभ होकर ‘श्रम’ की महत्ता स्थापित करते हुए समाज के समक्ष ‘दान’ के रूप में उपस्थित होता है। उस ‘दान’ में ‘कर्म’ और ‘रँग’ का अद्भुत सामंजस्य है जोकि समाज का ‘कायाकल्प’ कर सकने की क्षमता रखता है। रामविलास शर्मा ने प्रेमचन्द की सबसे अच्छी कहानी उनके जीवन को माना है। प्रेमचन्द अपनी रचनाओं में उपस्थित हैं— संघर्ष शील होरी की तरह। रामविलास शर्मा ने प्रेमचन्द की छवि दुखी हिन्दुस्तान के गरीबों के लेखक वाली बनाई। दरअसल रामविलास शर्मा मार्क्सवादी आलोचक है और प्रेमचन्द ‘आलोचनात्मक यथार्थवाद’ के लेखक हैं।

‘सेवासदन’ प्रेमचन्द का हिन्दी में छपा प्रथम उपन्यास है। रामविलास शर्मा सेवासदन को हिन्दी कथा साहित्य की परंपरा का स्वाभाविक कदम मानते हुए इसकी मुख्य समस्या पर विचार करते हैं। उनकी दृष्टि में ‘सेवासदन’ की मुख्य समस्या भारतीय नारी की पराधीनता है। रामविलास शर्मा समस्याओं के संदर्भ में चर्चा करते हुए लिखते हैं, “वास्तव में वेश्या-जीवन उसका मुख्य विषय है भी नहीं।”³⁰ वेश्या जीवन उसका मुख्य विषय हो अथवा न हो लेकिन कथानक को ‘त्रासदपूर्ण’ बनाने की पर्याप्त क्षमता रखता है। एक नारी किस तरह से सामाजिक विडम्बनाओं में फँसकर, अंततः उसकी मकड़जाल से बाहर नहीं निकल पाती है, यही वर्णन का विषय है। उपन्यास के अंत में काल्पनिक किंतु कमजोर समाधान द्वारा सुमन के जीवन का उद्धार होता है। रामविलास शर्मा ने वेश्यावृत्ति को धर्म से जोड़ा है और प्रेमचन्द को कबीर की परंपरा का स्वाभाविक विकास माना है। दरअसल कविता के क्षेत्र में समाज में व्यक्त अंतर्विरोधों को कबीर और तुलसी ने उजागर किया। गद्य आधुनिक युगीन देन है। प्रेमचन्द ने गद्य की विधा कहानी और उपन्यास को जनता से जोड़ा।

‘प्रेमाश्रम’ किसान जीवन से संबंधित अपने तरह का बेजोड़ उपन्यास है। प्रेमाश्रम की रचना लेखक ने किन परिस्थितियों में की है, इस ओर रामविलास शर्मा की दृष्टि गई है। इस सबंध में रामविलास शर्मा का विचार है, “प्रेमाश्रम में उन्हीं अत्याचारी जमींदारों, रिश्वती, राजकर्मचारियों, अन्यायी महाजनों और स्वार्थी बंधुओं की कहानी लिखी गयी है जिनको प्रेमचन्द ‘सेवासदन’ में ही वेश्यावृत्ति का जनक और पोषक बतला चुके थे।”³¹ रामविलास शर्मा ने जिस

तरह से इस उपन्यास पर विचार किया है, आगे के अध्ययन में यह महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। प्रेमचन्द को किसान आंदोलनों के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकित किया गया है। तत्कालीन समाज में व्याप्त कोई भी ऐसी समस्या न थी जिस पर प्रेमचन्द की लेखनी नहीं चली हो। प्रेमचन्द किसान जीवन से उद्भूत हुए रचनाकार थे। इसलिए वे किसान जीवन का महाकाव्य लिख सके। आगे लिखते हुए रामविलास शर्मा का मत है, “वह स्वाधीनता आंदोलन के सैनिक साहित्यकार थे।”³² प्रेमचन्द ने अपने साहित्य का उद्देश्य ‘स्वतंत्रता प्राप्ति घोषित किया था।’ वस्तुतः उनका साहित्यिक रूढ़ियों की जकड़बंदियों से स्वाधीनता प्राप्त करना उद्देश्य था। वे समाज में व्याप्त बुराइयों पर कुठाराघात करते हैं। रामविलास शर्मा ने लिखा है, “प्रेमचन्द ने सोवियत विरोधी झूठे प्रचार का पर्दाफाश करके एक सच्चे शांति-प्रचारक का काम किया।”³³ प्रेमचन्द रूस की तरह भारत में भी मजदूरों के हक के पक्षधर थे। पुनः रामविलास शर्मा लिखते हैं, “प्रेमचन्द की साहित्य राष्ट्रीय उत्थान का साहित्य है, वह भारत की नवजाग्रत मानवता और उसके आत्म सम्मान का साहित्य है।”³⁴ जो भी हो प्रेमचन्द का साहित्य राष्ट्रीय उत्थान का साहित्य होने के साथ ही साथ सामाजिक विकास का भी साहित्य है। प्रेमचन्द का साहित्य ‘गाँधीवाद’ से अलग तरह का साहित्य है। शोषकों के प्रति घृणास्पद बातों का अभाव ‘गाँधीवाद’ में है, लेकिन प्रेमचन्द के साहित्य में ऐसा नहीं है।

‘प्रेमचन्द’ पर लिखी हुई रामविलास शर्मा की पुस्तक प्रथम सुव्यवस्थित विवेचित पुस्तक है। इस पुस्तक में रामविलास शर्मा ने तर्कपूर्ण ढंग से स्थापनाएँ दी हैं।

रामविलास शर्मा कविताएँ भी लिखते थे। 27.5.40 को एक पत्र में रामविलास शर्मा ने केदार को एक कविता समर्पित की है—

“अवतार...

एक सतत संघर्ष,

बंधु उड़ते झंझा से मास—मास दिन वर्ष

वेदना दुःख दारिद्र्य शोक में भी अक्लांत,

—नैश निर्धूम लपट जैसे मसान में —

रामविलास शर्मा कहीं कहीं छायावादी वेदना का विरोध करते हैं। छायावाद का प्रकृति—चित्रण तो ठीक है, लेकिन वेदना की बात जहाँ होती है तो रामविलास शर्मा कहते हैं, “इस पत्र में तुमने वह छायावादी वेदना प्रकट की है कि महादेवी वर्मा की मात हो जाएँ।”³⁵ महादेवी वर्मा के यहाँ ‘वेदना’ का रहस्यवादी स्वरूप है। जयशंकर प्रसाद के आँसू का आद्यान्त ही ‘वेदना’ है—

“इस करुणाकलित हृदय में

अब विकल रागिनी बजती,

क्यों हाहाकर स्वरों में,

‘वेदना’ असीम गरजती।।”³⁶

गद्य और पद्य दोनों में रामविलास शर्मा ‘वेदना’ इत्यादि को जायज नहीं मानते हैं। निराला जी पर रामविलास शर्मा एक पत्र में लिखते हैं, “निराला जी पर कविता इसी दृष्टिकोण

से लिखी गयी है। वह छायावादी स्वप्न द्रष्टा है, अब वह स्वप्न नहीं रहे। स्वप्नों का वह सौंदर्य उनके यथार्थ जीवन पर व्यंग्य करता है। यह वैषम्य मैंने व्यक्त करने की चेष्टा की है। परंतु स्वप्न द्रष्टा होते हुए भी उन्होंने सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह किया है। उन्होंने ही लिखा था— तुझे बुलाता कृषक अधीर और सिंहा की मद में आया है आज स्यार।³⁷ निराला ओज के कवि हैं। ओज गुण उनकी कविता को बड़ा साबित करता है। निराला निराशा के कवि नहीं हैं। वे उत्साह और आशा के कवि हैं। 'राम की शक्तिपूजा' इसका जीवन्त दस्तावेज है। 27 11 58 के पत्र में केदारनाथ अग्रवाल रामविलास शर्मा को लिखते हैं,

राम की शक्तिपूजा' में जो 'शतशैलसम्बरणशील' सम्बरणशील) — 'भेद कौशल—समूह' — बिच्छुरितवन्धि — राजीव नयन—हत—लक्ष्य' — 'बाण—लोहित लोचन— रावण मदनमोचन—महीयान — वारित—सौमित्र—मल्लयित—अगणित—मल्ल—रोध' — 'गर्जित—प्रलयाब्धि क्षुब्ध—हनुमत—केवल—प्रबोध' — 'उद्गीरित' से लेकर 'रावण' सम्बर' शाब्दिक अर्थक्या है? 'धस गया धरा में कवि गह युग पद मसक दण्ड' क्या है?³⁸ 'राम की शक्तिपूजा' अत्यंत उत्कृष्ट कविता है यह सहज सप्रेष्य नहीं है। भाषा की जटिलता और विस्तृत रचना फलक के कारण कई आयामों को यह कविता उद्घाटित करती है।

11 12 58 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, "राम की शक्तिपूजा' के बारे में तुम्हारे प्रश्नों में मैं एक का भी जवाब न दूंगा। कारण यह है कि इसके लिए पूरा लेख लिखना पड़ेगा। निवेदन है कि एक बार राम की शक्तिपूजा पर मेरा लेख पढ़ जाइये और इसके बाद विस्तृत विवेचन के लिए खुद तशरीफ लाइये।"³⁹ निराला ने 'राम की शक्ति पूजा' की सामग्री बगला के एक मध्यकालीन कवि कृत्तिवास के रामायण से ली है, जो अनुमानतः तुलसीदास के सौ वर्ष पूर्व हुए थे। निराला ने माइकेल मधुसूदन दत्त और रवीन्द्रनाथ के काव्य को नहीं, कृत्तिवास, चंडीदास और गोविन्ददास जैसे मध्ययुगीन बगला कवियों के काव्य को भी पढ़ा था। इन कवियों में कृत्तिवास का विशेष महत्व है क्योंकि उनके 'रामायण' को लोक—काव्य का स्थान प्राप्त हो गया था। वह बगल के जन—जन में गाया गया, जिससे उसका रूप भी परिवर्तित होता गया। आज भी यह काव्य बहुत प्रभावशाली है। नन्द किशोर नवल लिखते हैं, "राम की शक्ति पूजा' का पूरा ढाँचा कृत्तिवास से लिया गया है। दोनों में कुछ अंतर भी है। कृत्तिवासीय रामायण में युद्ध में हनुमान भी भाग खड़े होते हैं, जबकि 'शक्तिपूजा' में अत—अत तक टिके रहने वाले वे एकमात्र योद्धा हैं। उसमें युद्ध के बीच रावण द्वारा राम की जो स्तुति की गई है और देवताओं के अनुरोध पर सरस्वती के उसके कंठ पर आसीन होने का जो वर्णन है, वह 'शक्ति—पूजा' में नहीं। कृत्तिवासीय रामायण में रावण को शक्ति की कृपा युद्ध क्षेत्र में ही प्राप्त होती है, जबकि शक्ति—पूजा में वह उसे पहले से ही प्राप्त है। उसमें राम को चंडी की आराधना की प्रेरणा ब्रह्मा से मिलती है जबकि शक्तिपूजा में जाबवान से। इसी तरह उसमें आराधना की विधि मूर्ति—पूजनवाली है जबकि 'शक्ति पूजा' में योगवाली।"⁴⁰ इस कविता में विजय की आशा है। निराला के सघर्षों का आख्यान है। उनकी जीवटता का परिचय है। निराला दोनों मित्रों के श्रद्धेय हैं। इसलिए निराला की चर्चा उनके पत्रों में लगातार होती रहती है।

निराला की मृत्यु पर केदार ने रामविलास शर्मा को जो पत्र लिखा है वह अत्यंत हृदयस्पर्शी और मार्मिक है। 'भाषा और समाज' का निराला के प्रति समर्पण पर केदार लिखते हैं हिन्दी का गरगज कविता का दिग्गज उठ गया। क्या कहूँ। मैं तो दुखी हूँ ही। तुम भी

विचलित पड़े होओगे। धैर्य धरो दोस्त। तुमने तो उन्हें अपनी सर्वश्रेष्ठ कृति 'भाषा और समाज' समर्पित करके अपना ऋण चुकाया। मगर सौजन्य प्रिय सरकार उन्हें मान-सम्मान न दे सकी। कितनी विदग्धता है इस व्यवहार में। काश तुम गये होते और महाकवि को देख आये होते।⁴¹ सरकार तो चाटुकारों का सम्मान करती है। जन कवियों के मान-सम्मान की चिंता 'जन लेखक ही करते हैं। 'भाषा और समाज' हिन्दी साहित्य की उत्कृष्ट पुस्तक है। 'भाषा और समाज' निराला जी को समर्पित करने का अभिप्राय हिन्दी साहित्य की उत्कृष्टता को समर्पित करना था। इस पुस्तक में सामाजिक विकास के संदर्भ में भाषा के विकास का अध्ययन करते हुए भाषा शास्त्र और समाजशास्त्र की अनेक स्थापनाओं का तार्किक खण्डन-मण्डन किया गया है। सैद्धांतिक विवेचन इसका प्रमुख गुण है किंतु साथ ही साथ इसमें भाषा संबंधी अनेक व्यावहारिक समस्याओं का भी विवेचन है।

20.10.61 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, "मुक्ति मिली, विलंब से। पूर्ण नरक त्राज उन्हें यहाँ मिल गया। लेकिन वीर आखीर तक लड़ा। पूर्ण विजयी होकर गया— रोग पर विजयी हो कर नहीं, विरोध पर विजयी होकर, सबको अपना बनाकर।.. प्यारे, तुलसीदास के बाद अब तक ऐसी अमोघ प्रतिभा का साहित्यकार हिन्दी में न आया था।"⁴² निराला का तत्कालीन साहित्यकारों ने काफी विरोध किया था। लेकिन वह एक मन राम का रहा जो न थका। जो दीनता नहीं जानता था। वह सिर्फ लड़ना जानता था। निराला के विरोध होने पर रामविलास शर्मा केदार को पत्र में लिखते हैं, "बेशक निराला जी की आलोचना की जा सकती है लेकिन आलोचना वे करें जिन्होंने निराला से अधिक साधना की हो और जीवन में उनसे अधिक संयम बरता हो। ऐसे लोग नजर नहीं आ रहे। फिर दारागंज में 'वन्य जंतुओं का रोदन कराल' तो सुना जा सकता है, साधकों की मर्मवाणी नहीं।"⁴³ बिल्कुल सही बात है। विरोध करना बुरा नहीं है। लेकिन विरोध करने वाला क्षमतावान होना चाहिए। सिर्फ विरोध के लिए विरोध साहित्य के लिए हानिकारक है।

'निराला की साहित्य साधना' रामविलास शर्मा के साहित्यिक अध्यवसाय का परिणाम था। "शिवमंगल सिंह सुमन ने निराला के पत्र तुम्हें न देकर अपराध किया है। वे देते तो न जाने कितना कुछ और सामने आ जाता है। सुमन स्वयं क्या लिखेंगे इस तरह का। भावुकता और बात है। कविता और बात है। विवेक—बोलता हुआ विवेक चिंतन से तर्कायित होकर निकले इसके लिए अध्यवसाय, संयम, अंतर्दृष्टि और क्षमता चाहिए। तुममें एक न्यायाधीश की बुद्धिमत्ता है और एक कुशलशिल्पी की सिद्धि। दोनों ने अतीत को पकड़कर उसे वर्तमान बनाकर भविष्य में जीने के लिए प्रस्तुत कर दिया है। तीनों काल एक होकर बोल रहे हैं। लोगों को निराला प्रिय लगेंगे। वह सबके सिर चढ़कर बोलेंगे।"⁴⁴ बड़ा आलोचक वह होता है जो साहित्यिक जगत में किसी को लोकप्रिय कर दे। जायसी को रामचन्द्र शुक्ल ने लोकप्रिय बनाया तो कविता के क्षेत्र में निराला को आलोचक रामविलास शर्मा ने लोकप्रिय किया। आलोचकों ने कविताओं की मार्मिक व्याख्या की एक बड़े आलोचक के अभाव में किसी भी रचनाकार को साहित्य जगत में लोकप्रिय होने में कठिनाई होती है। विरोधों का सामना झेलना पड़ता है। लेकिन यदि रचनाकार में क्षमता है तो कालांतर में उसकी रचनाएँ पठनीय होंगी। निराला ने भले ही जीवन में अभावों को देखा हो लेकिन वर्तमान में उनकी पहुँच अधिक है। आज वे छायावादी कवियों में सर्वाधिक पढ़े जाने वाले कवि हैं। उनकी कविताएँ काल का अतिक्रमण करते हुए सार्वकालिक हैं। शिवमंगल सिंह सुमन ने पत्रों को नहीं दिया तो भी 'निराला की साहित्य-साधना' लिखते हुए रामविलास शर्मा की

‘साहित्य-साधना’ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। आज रामविलास शर्मा के न रहने पर नामवर सिंह भले ही इतिहास की ‘शव-साधना’ लिखें। रामविलास शर्मा की साहित्य साधना एक किस्म की थी तो नामवर सिंह की ‘शव-साधना’ दूसरे किस्म की है। बाद में रामचन्द्रशुक्ल पर स्वतंत्र रूप से लिखते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना को रामविलास शर्मा ने “शुक्ल जी के योग्य(?) शिष्य डॉ. शवमंगल सिंह ‘सुमन’ को समर्पित किया। योग्य (?) की अभिव्यंजना ध्वनित हो रही है।

तत्कालीन युग के लेखक लक्ष्मी सागर वाष्णीय पर भी लिखते हुए रामविलास शर्मा जी कहते हैं, “विश्वविद्यालयों के द्वार पाल निराला के विरुद्ध लाठी लेकर खड़े रहे कि कहीं भीतर न घुस आयें। जब वह न रहे, तब संत और ऋषि बनाकर उन्हें पूजने लगे। सत्य से आँखें मिलाने का साहस उनमें नहीं है। इसलिए लक्ष्मी सागर वाष्णीय ने मेरी किताब पर जो कुछ कहा होगा, जरूर सतही रहा होगा। पंत जी ने लिखा था कि उनके संबंध में अतिरंजना से काम लिया गया है, मेरी पुस्तक में, और उसका निराकरण करते हुए वह कुछ लिखेंगे। ज्ञानपीठ पुरस्कार पर बधाई भेज दी थी।”⁴⁵ विश्वविद्यालयों क्या जन समाज में पढ़े जाने वाले निराला सबसे बड़े कवि हैं। निराला रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल दोनों के प्रिय कवि हैं। इसके साथ ही निराला युवा कवियों के प्रेरणा स्रोत भी रहे हैं। वे नयी परंपरा को चलाने वाले कवि रहे हैं।

1.8.65 के पत्र में केदारनाथ अग्रवाल लिखते हैं, “नागार्जुन में (व्यंग्य) कूट-कूट कर भरा है। सच है। वह संत है। यह गलत है। संत तो पंत हैं। यह बच्चनोवाच है। मेरा कथन नहीं है। वह सबका है— इस घर — उस घर का — चाहे जहाँ खाये, सोये या बतियाये। वह बिहार की मिट्टी का सत्यभाषी, जनता का कंठहार है।”⁴⁶ नागार्जुन के काव्य-आस्वाद में विविधता है। उनके काव्य की भाषा में भी विविधता है। उनके जीवनानुभवों में विविधता है। काव्य के आस्वाद और भाषा की विविधता का अनुभव की विविधता से घनिष्ठ संबंध है। हिन्दुस्तान में पूरब-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण सभी ओर की प्रकृति से नागार्जुन का प्रत्यक्ष परिचय है। जीवन की समृद्ध अनुभव राशि किसी कवि की चेतना को किस रूप में ढालती है; नागार्जुन की कविताएँ इसका सबसे बढ़िया उदाहरण है। जीवन के अनुभव और रचनात्मक साहित्य में जितना प्रत्यक्ष संबंध नागार्जुन के यहाँ देखने को मिलता है, उतना कई कारणों से उनके समकालीन या बाद के अधिकांश कवियों में नहीं मिलता। निराला के बाद हिन्दी-साहित्य की जीवन्त वास्तविकता नागार्जुन ही बन सके क्योंकि उनमें अद्भुत काव्य प्रतिभा थी— बिल्कुल ‘कबीर’ की तरह। देश की साधारण जनता से कवि का लगाव जितना ही गहरा होगा और साथ ही साथ आत्मीय भी, कविता के वर्ण और आस्वाद में उतनी ही विविधता होगी। कवि की संवेदना उतनी ही सघन होगी। कविता का यथार्थवाद उतना ही गम्भीर होगा और काव्य की जीवन-शक्ति उतनी ही दुर्दम्य होगी। नागार्जुन की काव्य प्रतिभा पर नामवर सिंह लिखते हैं, “इस बात में तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं कि तुलसीदास के बाद नागार्जुन अकेले ऐसे कवि हैं जिनकी कविता की पहुँच किसानों की चौपाल से लेकर काव्य-रसिकों की गोष्ठी तक है।”⁴⁷ जनता के सीखने में प्रत्येक दिन, प्रत्येक क्षण घटित यथार्थ नागार्जुन की कविता का यथार्थ है पर यह तात्कालिक प्रतिक्रिया को कविता में प्रत्यक्ष करने वाली कवि-दृष्टि ऐतिहासिक यथार्थ के गहरे बोध या विवेक का परिणाम है— “देखोगे/सौ बार मरूँगा/देखोगे, सौ बार जियूँगा/हिंसा मुझसे थर्राएगी/ मैं तो उसका खून पियूँगा। प्रतिहिंसा ही स्थायी भाव है मेरे कवि का। जन-जन में जो ऊर्जा भर दे, मैं उदगाता हूँ उस रविका।”⁴⁸ नागार्जुन कबीर की तरह घुमक्कड़ हैं। उनकी घुमक्कड़ी प्रवृत्ति ने उनकी

स्थानबद्धता तोड़कर उन्हें जातीय और राष्ट्रीय संवेदना के धरातल पर पहुँचाया। उनकी यह संवेदना उनके प्रखर राजनीतिक विवेक से जुड़कर उनकी काव्य-चेतना को एक नये धरातल पर पहुँचाती है। इस धरातल पर पहुँकर नागार्जुन लोक कवि के आसन से उठकर हिन्दी के जातीय और भारतीय जनता के कवि का गौरव प्राप्त करते हैं। उनके कवि-व्यक्तित्व के इस स्वरूप को नियंत्रित और निर्धारित करने वाली शक्ति उनकी क्रांतिकारी आस्था, उनका सहज अनुभव-विवेक और सजग वर्ग-दृष्टिकोण है।

नागार्जुन कविता और कविता-आंदोलनों की तमाम चौहद्दियों को पार कर जीवन के प्रकृत और सहज रूप को पकड़ लेते हैं। वे अतीत को उतना ही जानते हैं जितना किसी भी रचनाकार को जानना चाहिए। पर, वे उसमें से चुनते हैं, अपने युग के लायक उसे मांजते-चमकाते हैं। जरूरत पड़ी तो कुछ और जोड़कर उसे तरोताजा बनाते हैं या फिर नया अर्थ देकर उसे पुनः प्रतिष्ठित करते हैं। निराला और तुलसीदास की तरह वे अनेक भाषाओं के साथ-साथ अनेक छंदों और शैलियों के भी कवि हैं। धिन-धिन धा, धमक-धमक मेघ बजे जैसे ऋतु गीत जब वे लिखते हैं तब विद्यापति और निराला दोनों को स्वयं में शामिल कर लेते हैं। इनके यहाँ निम्नवर्ग अथवा सचमुच का सर्वहारा वर्ग कविता का नायक है। रिक्शा खींचने वाला, चटकल में काम करने वाला मजदूर, उच्चवर्ग का पुश्तैनी शिकार हरिजन और मछुवारा और महिला वर्ग जो वर्गों से ही नहीं शताब्दियों से भारतीय समाज की गुलामी करने को विवश है, नागार्जुन के चरित्र नायक हैं। उनकी मूल चिंता पद दलित, शोषित किंतु करवटें लेता हुआ वह जागरूक किसान, मजदूर, हरिजन है जो अपना भविष्य स्वयं तय करेगा। देखिए— “मेरा मन कहता है, विज्ञान के किसी छात्र से जाकर पूछूँ/अधिक से अधिक क्या सब होता है।, पसीने का गुण धर्म?/रिक्शावाले की पीठ की चमड़ी और कितना शुष्क-श्याम होगा?/स्नायुतंतु की ऊर्जा और कितना पिघलेगी। इस नरवाहन की प्राणशक्ति और कितना पकेगी?/और कितना.../क्षार अम्ल, दाहक विगलन कारी।”⁴⁹

नागार्जुन जन कवि हैं। उन्हें जन कवि होने का अभिमान है। उनका सम्पूर्ण साहित्य जनता की सेवा के लिए है। व्यंग्य उनमें कूट-कूट कर भरा हुआ है। उनमें जन-जीवन की पीड़ा, व्यथा, शोषण, विसंगति की व्यंजना है। उनकी कविताएँ तत्कालीन परिवेश का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत कर जनता को उसकी असलियत का बोध कराती है और उसे संघर्ष करने के लिए प्रेरित व उत्साहित करती है। उसमें यथास्थिति से मुक्ति का साहस बंधाती हैं। उसके सौंदर्य-बोध को तेज और धारदार बनाती हैं जिसमें उसमें सच्चाई को पहचानने की सामर्थ्य व शक्ति आती है।

केदारनाथ अग्रवाल, रामविलास शर्मा को लिखते हैं, “आज अमृत लाल नागर का पत्र आया। तुमसे बड़ी बधाई भेजी है उन्हें भी जवाब दे रहा हूँ। तुमने मौन तोड़ा।”⁵⁰ समकालीन साहित्यकार अमृतलाल नागर की बधाई भेजने की भी चर्चा उनके पत्रों में है।

रामविलास शर्मा द्वारा 15.3.88 को केदारनाथ अग्रवाल को लिखे गए पत्र में त्रिलोचन शास्त्री की चर्चा है। त्रिलोचन शास्त्री की कविता में स्वयं का विश्लेषण मिलता है। इसके माध्यम से उन्होंने किसान जीवन और उसके परिवेश का चित्रण किया है। उसमें किसान जीवन की रीति-नीति, आस्था, विश्वास, आशा, निराशा, गरीबी, मुक्ति-कामना आदि के अनगिनत चित्र उकड़े

गये हैं। "त्रिलोचन की भाषा की सादगी पर बहुत लोग मुग्ध हैं। यह उन्हें गाँव से मिली है जो उनके छंदों में रच-बस गई है। त्रिलोचन ने उसे संस्कारित किया है। यह दूसरी बात है कि कहीं-कहीं निराला की भाषा की छाप दिख जाती है। उसके टुकड़ों को भी त्रिलोचन ने मुख्यतः अपने गीतों में जड़ा है। गोस्वामी तुलसीदास के वाक्य-विन्यास से भी वह प्रभावित हैं।"⁵¹ त्रिलोचन ग्रामीण जीवन से उद्भूत रचनाकार हैं। ग्राम जीवन और सामान्य जीवन उनकी कविता में गहराई से रचा बसा है।

3.1.36 के पत्र में रामविलास शर्मा केदारनाथ अग्रवाल को लिखते हैं, "तुम्हारा पत्र पूरा गद्य-काव्य है मित्रता करो, मुझसे ही नहीं, जिस किसी से भी हो सके। जिन खोजा तिन पाइयों, को चरितार्थ करने का एक ही ढंग है। अपने को थोड़ा-थोड़ा व्यक्त करते हुए, दूसरों को भी जानने की चेष्टा करो।"⁵² रामविलास शर्मा की केदार को सलाह है। मित्रता करने के कुछ प्रतिमान होने चाहिए। कुछ शर्तें होनी चाहिए। जल्दबाजी में मित्रता करना खतरनाक है। देखने व परखने के बाद जो मित्रता होती है, वह स्थायी होती है। गद्य काव्य आधुनिक युगीन विधा है। गद्य काव्य में लयात्मकता होती है जो कि केदार के पत्रों की विशेषता है।

केदार की कविताएँ जनता के अधिक निकट हैं। 17.1.55 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, "तुम्हारी कविताओं में सबसे बड़ा गुण यह है कि वह लोक-कला के इतने नजदीक हैं कि उसका एक अंग सा बन गई है। वह जनता द्वारा तुरंत अपनाई जा सकती हैं और उसके जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन ला सकती हैं इसलिए तुम बाबू लोगों के राय की चिंता न करके उन्हीं भूमि सूतों के लिए लिखो जिनके तुमने गीत गाए हैं, जिन्होंने बौद्धा की वकालत में भी तुम्हारे विश्वास को जीवित रखा है।"⁵³ केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवादी कविता की परंपरा के स्तम्भ कवि हैं। उनकी कविताएँ राजनीति, प्रकृति और समाज के प्रति प्रतिबद्ध हैं। 'कहे केदार खरी-खरी' में राजनीति से संबंधित कविताएँ हैं। उन्होंने बरगद, इमली, समेल के पुरनिया पेड़, धतूरा और बेल पर कविताएँ लिखी हैं। आगे रामविलास शर्मा लिखते हैं, "ये कविताएँ लोक कला हैं, जनता के लिए हैं। इसलिए खूब सावधानी से लिखो। छन्द और भाषा में कहीं कोताही न दिखे। समय की कमी का बहाना किससे करोगे? उनसे जो आज संपत्तिशाली वर्गों की कला पर लोक कला के विजयी होने की बाट जोह रहे हैं?... 'क्रांति हो लेकिन पले (पत्नी) हो पायलों में' – विरोधी उपमानों को जोड़ा चमत्कारी है। ऐ दधीचो ठीक न लगा; शब्द दधीची है न! नागवाली उपमा भी काफी जोरदार नहीं है। कुल कविता खूब शसक्त है। 'छोटे हाथ' की जितनी तारीफ की जाय थोड़ी। तुम्हारे हाथ चूमता हूँ। श्रम पर बहुत ही बढ़िया रचना है। खेत का दृश्य-आसमान की ओढ़नी ओढ़े बहुत सुंदर है।— सिर्फ किसान मेरी निगाह में धरी का पुत्र है, राधा का कृष्ण नहीं।"⁵⁴ दरअसल रामविलास शर्मा, केदारनाथ अग्रवाल के साथ मिलकर प्रगतिवादी कविता की जमीन को पुख्ता कर रहे थे। जनवादी आंदोलन को सशक्त करने में आम जनता का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसीलिए साहित्य में लगातार जमीनी लोगों की हकीकत को वर्णित करने के पक्षधर दोनों मित्र हैं।

रामविलास शर्मा कविताएँ भी लिखते थे। 27.5.40 के पत्र में रामविलास शर्मा ने केदार को एक कविता समर्पित की है—

"अवतार

एक सतत् संघर्ष,
बंधु उड़ते झंझा से मास-मास दिन वर्ष
वेदना दुःख दारिद्र्य शोक में भी अक्लांत,
—नैश निर्धूम लपट जैसे मसान में —

अप्रतिहत चेतना सहन करती कठोर आघात।
कौन वह जीवन से प्रिय जीवन का आदर्श?
क्रुद्ध जब ज्येष्ठ प्रभंजन, स्रस्त पत्र, संत्रस्त
धरित्री धूलिभरा आकाश
कुसुम बिखरा समीर में गंध,
धूलि में मिल जाता भावी वसंत
का दूत।
पूर्ण कर कौन अमर उल्लास?
अनागत की असंख्य संतति में बन उत्कर्ष
चिरंजीवी हो यह संघर्ष”⁵⁵

‘अवतार’ एक प्रकार का प्रबंध काव्य है। सन-सामयिक आंदोलनों पर कवि रामविलास शर्मा की दृष्टि बड़ी प्रखर रही है। ध्यान देने की बात है कि गाँधी जी अवतार हैं। साधारण मनुष्य नहीं। इसीलिए ‘असाधारणता’ उनका प्रमुख गुण-धर्म है। असाधारण होना सामान्य जन से दूर हटाता है। इस कविता पर रामविलास शर्मा केदार से राय माँगते हैं। रामविलास शर्मा ‘तार सप्तक’ के कवियों में से एक थे। उनकी एक कविता और देखी जाए।

“चौदी की झीनी चादर सी
फैली है वन पर चौदनी
चौदी का झूठ पानी है,
झूठी है फीकी चौदनी।
खेतों पर ओस भरा कुहरा,
कुहरे पर भीगी चौदनी।
आँखों में कुहरे से आँसू
हँसती है उन पर चौदनी।
दुःख की दुनिया पर बुनती है
माया के सपने चौदनी।
मीठी मुस्कान बिछाती है।
भीगी पलकों पर चौदनी।

दुख और कर्म का जीवन यह
 वह चार दिनो की चोदनी।
 यह कर्म सूर्य की ज्योति अमर,
 वह अंधकार की चोदनी।⁵⁶

दुख की दुनिया पर बुनती है। माया के सपने चोदनी।" ससार दुखमय है। इस प्रकार का कथन समाज में प्रचलित लोकोक्ति हो चुकी है। ससार दुखमय है। इसका, सबसे बड़ा कारण यहाँ रग-रग में व्याप्त माया है। माया को कबीर ने 'ठगिनी' की सजा से अभिहित किया है। वस्तुतः माया की लीला अपरपार है। माया के विषय में गोस्वामी तुलसीदास का विचार है, मैं अरु मोर तोर तैं माया " मैं मेरा, तुम-तुम्हारा यही माया है। जहाँ गैर और अपने की भावना घर लेगी वहाँ दुख और निराशा तो हाथ लगेगी ही। तुम और हम की बुनियाद माया है। यह कर्म सूर्य की ज्योति अमर पवित्र दृष्ट्य है। कर्म से हमेशा सुफल ही मिलता है। भारत का समस्त दर्शन ही कर्म-सिद्धांत पर आधृत है।

'तार सप्तक' की चर्चा करते हुए केदारनाथ अग्रवाल लिखते हैं, "तारसप्तक में तुम्ही सबसे ऊँचे हो। सब रचनाएँ पकी और एक क्लास की हैं।"⁵⁷ तार सप्तक में सात कवि थे। सन् 1943 में अज्ञेय के संपादकत्व में 'तारसप्तक' का प्रकाशन हुआ। इसके प्रकाशन को लेकर रामविलास शर्मा को आपत्ति है। 'कवियों के पत्र' की भूमिका में रामविलास शर्मा लिखते हैं, बहुतों का विचार है कि तार सप्तक 1943 में प्रकाशित हुआ था। परंतु 14 दिसंबर 1943 को अज्ञेय मुझे सूचना दे रहे थे कि मेरी भेजी हुई काव्य सामग्री उन्हें अभी मिली है और यह भी कि उसके साथ न वक्तव्य और न परिचय। इस तरह दिसंबर के अंत तक तार सप्तक के छपने की कोई संभावना नहीं थी। इस संबंध में 2 फरवरी 1944 को नेमिचन्द्र जैन ने मुझे जो पत्र लिखा था, वह महत्वपूर्ण है। उसमें उन्होंने कहा था, 'तार सप्तक आखिरकार छपकर तैयार हो गया।' इससे निश्चित होता है कि फरवरी 1944 के आरंभ में तार सप्तक प्रकाशित हुआ था।⁵⁸ जो भी हुआ हो पत्रों के आधार पर रामविलास शर्मा का मत सही प्रतीत होता है।

1959 को केदारनाथ अग्रवाल रामविलास शर्मा को लिखते हैं, "दूसरी पुस्तक शमशेर की आयी है। नाम है 'कुछ कविताएँ'। यह भी अपना मित्र अजीब कवि है। संग्रह समथ कवि नरेन्द्र को भेंट किया गया है। पहली कविता 'निराला के प्रति' है। अंतिम कविता अज्ञेय को सम्बोधित की गयी है। देखा तुमने नरेन्द्र और निराला के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करके तथा निराला को, राह से भटकने पर, पथप्रदर्शक के रूप में देखकर, और अज्ञेय के प्रति आत्मीय होकर मेरे इस प्यारे मित्र ने किस सफाई से इन सबकी परंपराओं की और उनके कृतित्व की दाद दे दी है।"⁵⁹ शमशेर बड़े कवि हैं। दूसरे सप्तक के प्रकाशन पर शमशेर ने अपनी कविता की परिभाषा यों दी थी 'सुन्दरता का अवतार हमारे सामने पल-छिन हेता रहता है। अब यह हम पर है कि हम अपने सामने और चारों ओर की इस अनंत और अपार लीला को कितना अपने अंदर घुला सकते हैं।"⁶⁰ शमशेर की कविताओं पर विजय देव नारायण साही की टिप्पणी है, 'तात्त्विक रूप में शमशेर की काव्यानुभूति सौन्दर्य की ही अनुभूति है। जिन लोगों का ख्याल है कि छायावाद के बाद हिन्दी कविता ने सौन्दर्य का दामन छोड़ दिया है। उन्होंने शायद शमशेर की कविताओं का आस्वादन करने का कष्ट कभी नहीं किया। मैं एक कदम और आगे बढ़कर कहना चाहता हूँ कि आज तक हिन्दी में विशुद्ध सौन्दर्य का कवि यदि कोई हुआ है तो वह शमशेर है और इस 'आज

तक' में मैं हिन्दी के सब कवियों को शामिल कर रहा हूँ।⁶¹ इस मान्यता में अतिवाद हो सकता है, लेकिन एक बात निश्चित है कि शमशेर आधुनिक युग के बड़े कवियों में से एक थे। उनका सौन्दर्य बोध अतिविशिष्ट था। शमशेर के लिए मृत्यु काल के समान है जिससे बचकर निकल जाना कवि को गवारा नहीं है। इसलिए तो वे कहते हैं, 'काल तुझसे होड है मेरी।' शमशेर समय से होड करने वाले कवि हैं। शमशेर को नामवर सिंह सिर्फ सौंदर्य ही नहीं बल्कि प्रेम के विलक्षण अनुभवों का चित्रकार भी मानते हैं।

अवधी के क्रांतिकारी कवि और लेखक पद्मिनी जी की भी चर्चा 'मित्र-सवाद' के पत्रों में होती है। पद्मिनी गोस्वामी तुलसीदास की प्रिय भाषा 'अवधी' के लोकप्रिय कवि थे।

केदारनाथ अग्रवाल रामविलास शर्मा को लिखते हैं, "आज अमृत लाल नागर का पत्र आया। तुमसे बड़ी बधाई भेजी है। उन्हें भी जवाब दे रहा हूँ। तुमने मौन तोड़ा।"⁶² समकालीन साहित्यकार अमृतलाल नागर की चर्चा उनके पत्रों में है। अमृतलाल नागर तत्कालीन युग के बड़े उपन्यासकार थे। उनका 'मानस का हस' और 'बूँद और समुद्र' उपन्यास काफी चर्चित हुआ था।

3 12 53 के पत्र में मुशी को लिखे हुए पत्र में केदारनाथ अग्रवाल उपन्यासों पर टिप्पणी करते हैं, 'यदि पढ चुके हो यह उपन्यास तो राय लिखना ऐसा बढिया है कि बस। न भगवती चरण को सफलता मिली है, न धर्मवीर भारती को। एक ने '3 वर्ष' लिखा है। बिल्कुल कमजोर बीमार। दूसरे ने 'गुनाहों का देवता' वह भी घृणास्पद। "Students" में 100 % यथार्थ है। दुर्बलताएँ हैं चरित्रों में। किन्तु वे उपन्यास की बिक्री को बढाने के लिए नहीं। 'बीज' अमृतराय का उपन्यास है। उसे पढ गया हूँ। मौजूदों में यह हमारी सफाई का दावेदार है। इसलिए स्वस्थ है, सबल है और एक कदम आगे है। पिछले दशक के निरूपण में यह सफल है।"⁶³

इस प्रकार दोनों मित्रों ने साहित्य जगत की लगभग सभी महत्वपूर्ण विधाओं और प्रमुख रचनाकारों पर पत्रों में प्रकाश डाला है। रामविलास शर्मा की भारतेन्दु, प्रेमचन्द, निराला और राम चन्द्र शुक्ल पर लिखी पुस्तकों का क्रमबद्ध अध्ययन किया जाए तो आधुनिक युग को समझने में अधिक सहायता मिलेगी। रचनाकारों पर लिखे हुए पत्र युगीन समाज और संस्कृति को समझने में सहायक हैं।

उप अध्याय—दो पारिवारिक

मित्र-सवाद के पत्रों में 'परिवार' पर लगातार चर्चा होती रहती है। यहाँ परिवार का समाजशास्त्रीय अर्थ नहीं है। 'मित्र-सवाद' के पत्रों में 'वसुधैव कुटुम्बक' की परम्परा का पालन हुआ है। भारतीय संस्कृति का उद्घोष 'वसुधैव कुटुम्बकम्' वाला ही है। समाजशास्त्रीय अर्थ में 'परिवार' का सकीर्ण अर्थ ही मिलता है। लेकिन 'मित्र-सवाद' के पत्रों में परिवार का धरातल अत्यंत विस्तृत है। इसमें मित्र, साहित्यकार सभी में अपनापन है। सभी लोग एक दूसरे से भावनात्मक स्तर पर जुड़े हैं। 'निराला' दोनों के आदर्श है, लेकिन दोनों के घरेलू-पारिवारिक जीवन में समाविष्ट लगते हैं। दोनों का निराला से गहरा संबंध है। एक स्तर पर मित्र सवाद के पत्रों में परिवार का 'संयुक्त' धरातल मिलता है। इस परिवार में भाई, पत्नी, बच्चे मित्र व अन्य

समवयस्क रचनाकार हैं। सभी लग एक दूसरे के विषय में जानने को उत्सुक रहते हैं। एक दूसरे से बातचीत का क्रम बनाये रखते हैं। एक की पीडा से दूसरा दुःखी होता है और दूसरे की सफलता पर पहला खुश। 'अपनापन' की भावना 'साहित्यिक परिवार' को स्थायी बनाये रखती है। रचनात्मकता के स्तर पर चित्रकूट की दिव्य झोंकी 'मित्र-संवाद' में मिल जाती है।

सर्व प्रथम केदारनाथ अग्रवाल के पत्र को देखा जाए। "क्या तुलनात्मक दिवाली में आये थे? मैं नहीं जा सका। आज कल श्रीमती जी वहीं हैं। अकेला हूँ इसी से साहित्य लिख-पढ़ लेता हूँ।"⁶⁴ इस पत्र में केदार पत्नी की चर्चा करते हैं। 'अकेला हूँ इसी से साहित्य लिख-पढ़ लेता हूँ। दरअसल उनकी पत्नी के अन्यत्र चले जाने से केदारनाथ अग्रवाल के पास पर्याप्त समय रहता है। वह पेशे से वकील थे। एक तो वकालत पेशा और दूसरे पारिवारिक कार्य। अकेले में कुछ दिन रहना ही बेहतर लगता है किन्तु जब अकेलापन ही 'जीवन' हो तो स्थिति दयनीय हो जाती है। केदारनाथ अग्रवाल के साथ ऐसा नहीं है। आगे वह अपनी पत्नी से बेहद प्रेम करते हैं। 'हे मेरी तुम' कविता पत्नी के प्रति ही है।

दोनों मित्रों की संवेदना का धरातल अत्यंत विकसित व परिष्कृत है। रामविलास शर्मा 11.1.43 को केदार को लिखते हैं, "यहाँ एक बहुत दुःखद घटना हो गयी। 8 जनवरी की रात को स्वर्गीय बलभद्र दीक्षित जी के लडके बुद्धिभद्र का भी देहांत हो गया। खेतों में सर्दी लग जाने से निमोनिया हो गया था। केवल पाँच दिन बीमार रहे। बीमारी की खबर पाकर मैं गया लेकिन विलम्ब से पहुँचा, भेंट न हो सकी। मौखिक सहानुभूति के बदले मैं चाहता हूँ कि उनके मित्र उनके परिवार के लिए कुछ मासिक बचाया करें, परंतु इसका विज्ञापन न होना चाहिए। यह अपने मित्रों तक ही रहे।"⁶⁵ 10.2.43 को रामविलास शर्मा लिखते हैं, "तुम्हारा पत्र मिला। आश्वासन मिला। किन शब्दों में अपने हृदय के भाव प्रकट करूँ? साहित्यकारों के परिवारों पर यदि परमात्मा गाज गिरता है तो हम उसे रोकेंगे।" इस वाक्य को पढ़ा और फिर पढ़ा। अब याद हो गया है।"⁶⁶ इस पत्र में अवधी के कवि और समर्थ गद्य लेखक बलभद्र दीक्षित पढीस के पुत्र बुद्धि भद्र के देहांत पर रामविलास शर्मा का मासिक बचाया जाना, उनके हृदय विस्तार का द्योतक है। रामविलास शर्मा का यह स्वभाव रहा है कि कोई कार्य हुआ तो इसके पीछे क्या-क्या कारण थे। बुद्धिभद्र दीक्षित का देहांत हुआ तो क्या हुआ? उसके कितने बच्चे थे? परिवार कैसे चलेगा? ऐसा संयुक्त परिवार का मुखिया ही सोच सकता है। केदार के पत्र में उल्लिखित 'साहित्यिको के परिवारों पर यदि परमात्मा गाज गिरता है तो उसे हम रोकेंगे नहीं' उनकी दृढ़ता और भाग्यवादी, समझौतावादी न होने का प्रमाण है।

3.4.36 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, "मालकिन ने पुत्र रत्न को जन्म दिया है।"⁶⁷ भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में पुत्र को रत्न की उपाधि से विभूषित किया गया है। यहाँ पर रामविलास शर्मा ने भारतीय परंपरा का पालन किया है। रामविलास शर्मा और उनके मित्र रामविलास शर्मा की पत्नी को मालकिन ही कहते हैं। भारतीय हिन्दी काव्य परंपरा में स्त्री अपने प्रियतम को साहब की उपाधि से विभूषित करती है। विशेषकर कबीर की कविता इसका साक्षात् प्रमाण है। कबीर की कविता पारलौकिक धरातल पर जितनी सच्च है उतनी ही लौकिक धरातल पर अपने यथार्थपन को उद्घाटित करती है। नारी का जिक्र जहाँ भी कबीर की कविता में मिलता है वहाँ 'साहब' — के रूप में ही पति आता है। हिन्दी कविता की समृद्ध परंपरा को रामविलास शर्मा ने जीवित रखा है। गद्य आधुनिक हिन्दी की देन है। आधुनिक हिन्दी गद्य के

क्षेत्र में रामविलास शर्मा ने 'मालकिन' सम्बोधन का प्रयोग कर समूची नारी जाति को सम्मानित करने का कार्य किया है। सन् 1936 में ही छपी 'कामायनी', 'राम की शक्तिपूजा' और 'गोदान' समाज की सच्चाई को यथार्थ परक तरीके से उद्घाटित करती है। 'कामायनी' में नारी को प्रसाद देवी के आसन तक ले आते हैं। लेकिन 'राम की शक्तिपूजा' में राम की संशय ग्रस्त मानस में सीता का चित्र उभरता है। कष्ट में स्वजनों की स्मृति मनोवैज्ञानिक सच है—

“नयनों का नयनों से गोपन — प्रिय—सम्भाषण
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान—पतन

ज्योति—प्रपात—स्वर्गीय ज्ञात छवि प्रथमस्वीय
जानकी नयन कमनीय प्रथम कंपन तुरीय।”⁶⁸

निराला के यहाँ नारी विषम परिस्थितियों में ढाँढस बंधाने वाली ऊर्जा को भरती हुई नजर आती है। 'गोदान' में नारी 'धनिया' वर्ग चरित्र बन जाती है। जीवन की चुनौतियों से टकराती 'धनिया' होरी का गोदान करती है। नारी को नारी का अधिकार दिलाने का कार्य रामविलास शर्मा ने बखूबी किया है। 'मालकिन' सम्बोधन सिर्फ उनकी पत्नी के लिए नहीं रह जाता बल्कि यह संबोधित समूची नारी जाति को संबोधित करने का एक लहजा बन जाता है। इस प्रकार रामविलास शर्मा नारी वर्ग को उनका अधिकार दिलाने की वकालत दूसरे ढंग से करते हैं। अतः वे नारी—चेतना के प्रबल पक्षधर लेखक हैं।

21240 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, “सोचते—सोचते कि फुर्सत मिले तो लबा—सा पत्र लिखूँ यह दिन आ गया। तुम्हारी दूसरी चिट्ठी भी आ गयी। तुम्हें चिट्ठी लिखने की बात रोज सोचता जरूर था। इधर धर्मपत्नी जी कुछ बीमार हो गई थी— बच गई — अब सब ठीक है।”⁶⁹ पत्नी की बीमारी, पत्नी के सभी समाचार दोनों मित्र एक दूसरे को देते हैं। दुःख में सहानुभूति, प्रत्येक क्षण एक दूसरे की स्थिति की जानकारी मित्रता को गहराई प्रदान करता है। सम्बोधन देखिए— ‘धर्मपत्नी’। रामविलास शर्मा का सम्बोधन का तरीका भी विशिष्ट है। उनके महान साहित्य के विपुल भंडार की तरह उनका संबोधन भी महान है। भारतीय संस्कृति में पत्नी को ‘धर्मपत्नी’ का संबोधन कभी ‘मालकिन’ का संबोधन परंपरा के प्रति उनके अनुराग का द्योतक है। रामविलास शर्मा को परंपरा का गहरा बोध था तभी तो वे परंपरा को मूल्यांकित करने बैठ जाते हैं। रामविलास शर्मा का परिवार ‘संयुक्त परिवार’ की बेहतर मिसाल पेश करता है। आज जब ‘संयुक्त परिवार’ की अवधारणा धराशायी हो रही है तब रामविलास शर्मा का ‘परिवार’ जनता के लिए उदाहरण है। साहित्यकारों क्या साधारणजन को भी ‘घर की बात’ पढ़नी चाहिए। इस पुस्तक में उनके परिवार के 100 वर्षों की निरंतरता को देखा जा सकता है। रामविलास शर्मा के पारिवारिक सौहार्द को इस पुस्तक में देखा जा सकता है। ‘सचेतक’ को पढ़ने के बाद केदार ने लिखा, “सचेतक पढ़ गया। घर की भीतरी झोंकी मिली। मालूम हुआ कि पारिवारिक स्नेह सबध बड़े मधुर बनते रहे हैं। जीवन ऐसे ही जिया जाये तो सार्थक हो जाता है। वरना तो नरक की गंध आ जाती है तुम सब लोग बड़े खुले दिल की सुगंध देकर ही एक—दूसरे के आत्मीय बन सके हो।” इसी पत्र में केदारनाथ अग्रवाल आगे लिखते हैं, “बाप बेटों को प्यार करता है। झिडकता तक नहीं।”⁷⁰ पारिवारिक स्नेह—संबंध बड़े मधुर बनते रहने में घर के प्रत्येक व्यक्ति का

हाथ होता है। जब एक व्यक्ति दूसरे का सम्मान करेगा, छोटे बड़े का अदब-लिहाज होगा तो सबध खराब हो ही नहीं सकता। बस प्रत्येक व्यक्ति को घर में कर्तव्यबोध होना चाहिए।

रामविलास शर्मा का परिवार विस्तृत अर्थों में 'परिवार' है। जिसमें मित्र, सहयोगी व अन्यान्य दूसरे सभी शामिल हैं। 6 11 58 को केदार को पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, "कल से एक दूसरी उलझन है। हमारे सहयोगी राजनाथ की पत्नी बहुत बीमार है। बचने की आशा कम है। इस समय सबेरे के ग्यारह बजे हैं। मैं अभी अस्पताल से लौट रहा हूँ। पत्नी को वही देखभाल के लिए छोड़ आया हूँ।"⁷¹ मित्र हो या सहयोगी, किसी के भी बीमारी की अवस्था में रामविलास शर्मा चिंतित हो जाते हैं। निराला पर भी प्रहार होने पर वे बेहद दुखी हो जाते हैं। निराला की बीमारी की अवस्था में रामविलास शर्मा इलाहाबाद पहुँच जाते हैं। केदार को लिखे पत्र में, 'मैं श्री रामकृष्ण के घर गया। वहाँ उनसे मिला। निराला जी के हाल-चाल पूछता रहा। पता चला कि कुछ दिनों पूर्व वह डावाडोल हालत में थे। तमाम सूजन आ गयी थी। अच्छा यह तो लिखो कि अब बेटी की तबियत कैसी चल रही है? दोस्त, चिंता न करना। सब ठीक होगा। तुम तो गंभीर हृदय हो। निराला की बीमारी हिन्दी की बीमारी है— कविता की बीमारी है युग की बीमारी है हिन्दी के अन्य कवियों की बीमारी है।"⁷² निराला हिन्दी परिवार के 'सर्वश्रेष्ठ' व्यक्तित्व थे। विशेषकर रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल द्वारा प्रवर्तित परिवार की अवधारणा के श्रेष्ठ तो वे ही थे। 'भारतेन्दु मंडल', 'द्विवेदी मंडल' की तरह 'निराला मंडल' भी है। भारतेन्दु अपने मंडल के प्रधान थे तो द्विवेदी जी अपने मंडल के मुखिया और 'निराला मंडल' — (निराला परिवार) के वरिष्ठ निराला थे। इसीलिए निराला की बीमारी को रामविलास शर्मा ने युग की बीमारी कहा है। कवि निराला का जीवन विषमताओं से भरा रहा। वे कई बार बीमार हुए। बीमारी की अवस्था में वह इस दुनिया से चल बसे।"

16 9 42 के पत्र में भी रामविलास शर्मा लिखते हैं, "करवी में निराला जी सख्त बीमार हैं। प राम लाल गर्ग के यहाँ ठहरे हैं। उन्हें देखकर आसको और मुझे हाल लिखो तो बड़ा अच्छा हो। मैं भी बादा आने की कोशिश कर सकता हूँ।"⁷³ निराला जब भी बीमार होते हैं रामविलास शर्मा वहाँ उपस्थित रहते हैं।

पत्नी के प्रति सम्मान की भावना के साथ-साथ प्रेम भी 'मित्र-सवाद' में मुखरित होता है। कभी कोई पत्नी के प्रति कविता लिखकर नयी परंपरा की शुरुआत करता है तो कोई पत्नी के साथ साझीदारी की बात करता है। पत्नी दोनों के मूल में है। पत्नी की उपेक्षा दोनों के यहाँ नहीं है। नारी के प्रति सम्मान एक बात है और यदि नारी स्वयं की पत्नी हो तो बात दूसरी हो जाती है। 'पत्नी' का आसन दोनों के यहाँ उच्च है। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवता' वाली परंपरा से आकर दोनों मित्र जुड़ जाते हैं। प्राचीन काल में नारियों को उच्च स्थान प्राप्त था। कालांतर में स्त्रियों का जीवन नारकीय हो गया, किंतु आधुनिक काल में शिक्षा के प्रचार, प्रसार व विस्तार के साथ ही नारियों का सम्मान शुरू हुआ। इसी के भी अग्रदूत बने 'निराला'। निराला के यहाँ 'श्याम तन' वाली स्त्री भारतीय सौंदर्य-शास्त्र की परंपरा के प्रति विद्रोह करने वाली स्त्री है। मित्र-सवाद में उपस्थित नारी महिला चरित्र की सशक्त अभिव्यक्ति है। जब 'सवाद' के दोनों मित्र नितांत निजी मुद्दों पर बातचीत करते हैं तब वे अनौपचारिक हो जाते हैं, रामविलास शर्मा एक पत्र में केदार को लिखते हैं,

“श्रीमतीजी दिल्ली में सत्कार लाभ कर रही है। एक हफ्ता हो गया— हम समझते थे, हमारे बिना उनका दो दिन जी न लगेगा, सो न पत्री भेजी न बहुरने का नाम लिया। खैर, हम भी उनके गम में हलवा खा रहे हैं। शोभा बनाने जा रही है और यह पत्र समाप्त करने तक तैयार हो जाएगा। दो कौर तुम्हारे नाम के सबसे पहले खाऊँगा।

तन से मुझको कसे हुए अपने दृढ़ आलिंगन में,
मन से, किंतु, विषण्ण। दूर तुम कहाँ चले जाते हो?”⁷⁴

हलुवा खाने से पूर्व ‘तन से मुझ को करते हुए अपने दृढ़ आलिंगन में, मन से, सभी से कितु स्मृतियों में ही; वस्तुतः प्रत्यक्ष धरातल परतो दूर हैं। पत्नी वियोग में काव्यात्मकता फूट पड़ती है। दरअसल तब आलोचक रामविलास शर्मा न होकर कवि रामविलास शर्मा हो जाते हैं, कविता हृदय के फूट पड़ने से निःसृत होती है। प्रेम करना एक बात है, प्रेम पर कविताएँ लिखना दूसरी बात। खासकर प्रेमिका जब स्वयं की पत्नी ही हो। लेकिन रामविलास शर्मा की उपर्युक्त पंक्ति प्रेम मन से पंक्ति ‘दृढ़ आलिंगन में’ वासना की कोई बू नहीं आती बल्कि प्रेम मन से किया हुआ है उनका भी पत्नी वियोग में ‘कवितापन’ को निखारते हैं। 23.7.58 को रामविलास शर्मा को केदार पत्र में लिखते हैं—

“हे मेरी तुम।
बिना तुम्हारे
जलता तो है दीपक मेरा
लेकिन ऐसे
जैसे आँसू की यमुना पर
छोटा—सा खद्योत टिमकता।”⁷⁵

दोनों ही मित्र स्वभावतः प्रगतिवादी हैं, जनवादी हैं। दोनों मित्रों क अपनी—अपनी पत्नी के प्रति अगाध, प्रेम व स्नेह है। परिवार के स्थायित्व के लिए आवश्यक है कि ‘पति—पत्नी’ दोनों का बराबर का सहयोग हो। दोनों की बराबर की भागीदारी हो। समय—समय पर दोनों मित्र पत्नी का सहयोग करते हैं। पत्नी के काम में हाथ बटाते हैं। तभी तो केदार लिखते हैं, “मैं भी पत्नी की बरतन धुलने में मदद कर देता हूँ। समय काफी रहता है। सहयोग से काम चल रहा है।”⁷⁶ परिवार की गाड़ी सहयोग से ही खिसकती है। बिना सहयोग के तो परिवार की संस्कृति ही विनष्ट हो जाएगी। पति—पत्नी में एक—दूसरे के प्रति सहयोग, समर्पण और निष्ठ का भाव होना चाहिए। जहाँ केदार बरतन धुलवाने की बात करते हैं वहीं रामविलास शर्मा सुबह घूमने जाने का जिक्र करते हुए नाश्ता बनवाने का उल्लेख करते हैं।

“आजकल मैं भी घूमने नहीं जा पाता। सबेरे मालकिन के साथ रसोई घर में नाश्ता बनवाता हूँ। नाती को सबेरे स्कूल जाने की जल्दी होती है।”⁷⁷

परिवार के मुखिया पर विभिन्न प्रकार की जिम्मेदारियाँ रहती हैं। बेटी के वर की तलाश करना, पत्नी के स्वास्थ्य की चिंता करना इनमें शामिल है। प्रतिदिन के समस्याओं के घात—प्रतिघात से जीवन का विकास होता है। फिर सुख ही सुख रहे तो जीवन नीरस हो जाएगा

और सुख की अनुभूति ही नहीं होगी। थोड़े शिकवे हो— थोड़ी सी शिकायत हो तो जीवन का मजा ही दूसरा होता है। सघर्ष जीवन को माजता है। व्यक्ति को समस्याओं से लड़ने की क्षमता प्रदान करता है। व्यक्ति को उत्साहित करता है। 11.3.69 को रामविलास शर्मा केदार के पास पत्र भेजते हैं, “गृहस्थी के अनेक झझट कभी पत्नी अस्वस्थ, कभी बेटी के लिए वर की असफल तलाश। हमने मन से कहा— सबेरे शाम आधा घण्टा चिंता कर लिया करो, उसके बाद बस निराला के साथ रहो।”⁷⁸ दरअसल निराला सघर्षों के कवि हैं। सघर्ष की पीड़ा झेलते-झेलते वह इसकी विषमता को समझते हैं। उनका फक्कड़ाना अदाज सभी को आकृष्ट करता है। निराला का साहचर्य ही रामविलास शर्मा को सघर्षों से टकराने की क्षमता प्रदान करता है।

साहित्यकारों की आर्थिक स्थिति सामान्यतः सुदृढ़ नहीं होती। सिर्फ अपनी पत्नी ही नहीं मित्रों की पत्नी के विषय में भी रामविलास शर्मा सोचते हैं। 17.1.62 के पत्र में वह लिखते हैं, नागर की माँ का दिमाग सही नहीं है। और भी पारिवारिक झझट रहे हैं। किसी साहित्यिक के ऐसी पत्नी मिले जो उनके धन न कमाने पर न खीजे तो वह उसके जीवन का सबसे बड़ा पुण्य समझो।”⁷⁹

पारिवारिक जीवन के कई पहलुओं को दोनों के पत्र उद्घाटित करते हैं। ऐसा ही एक पत्र मुशी के नाम है, “तुम जिन्दा हो, सचमुच यह बहुत दमदार खबर है। मैं (मैंने) तो समझा था कि अब तुम्हें न पा सकूँगा, शायद मेरे लिए सो गये हो। अहोभाग्य, कि मेरे लिए तुम फिर प्रगट हो गये। कई बार डॉक्टर को खत भेजकर तुम्हें खोजता रहा, पर कुछ भी पता न लगता था। कहो, पिछले दिन कैसे गुजरे? अब कितनी औलादों के पिता हो? शरमाओ मत, हँस कर जवाब दो। पिता होना कोई गुनाह नहीं है। नई जान को, नन्हा-मुन्ना गुलाब सा गोल-मटोल बच्चा बुला लेना, बहुत उम्दा होता है। रहने भी दो सतति निरोध को। भारत की सरकार बेकार अडगा डालती है इस फुलवारी को लगाने में। तुम कहोगे बुरा है, बखेड़ा है पैदावार बढ़ाना, गरीबी की निशानी है। हाँ, मौजूदा समाज में है— जहाँ एक कमाये, दस खाये। लेकिन सोचो तो कि घर में बीस हाथ नये-नये जन्म ले और भविष्य सुंदर न हो।”⁸⁰ इस पत्र में गुदगुदाने वाली हँसी भी है और समाज पर व्यंग्य भी। पत्र को पढ़ते हुए ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि कोई कविता पढ़ रहे हो। केदारनाथ अग्रवाल का गद्य एक साथ कई चीजों को ध्वनित कर देता है। बड़े चुटीले अदाज में वे पारिवारिक स्थिति का लेखा-जोखा ले रहे हैं। सन् 53 में परिवार नियोजन की चिंता न किसी को थी न आज ही है। आज भी द्रुतगति से जनसंख्या बढ़ती जा रही है।

5.4.90 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, “लगता है, पिछले दिनों तुम्हें काफी तकलीफ रही। मोच का दर्द पुराना है? कमर में हो तो तखत पर सोने से लाभ होगा। मैंने अपनी कमर का दर्द ऐसे ही ठीक किया है।”⁸¹ उम्र के एक पड़ाव पर आकर मित्रों में व्यक्तिगत दुःख शारीरिक पीड़ा, दिखलाई देने लगती है। लेकिन रामविलास शर्मा को दिया गया सलाह स्नेहिल है।

पारिवारिक समस्याओं को दूर करने के लिए ‘प्रेम’ की आवश्यकता होती है। बच्ची को टाइफाइड होने के परिणामस्वरूप रामविलास शर्मा का ‘प्रोग्राम’ फिसल हो जाता है। वह पूर्व

निर्धारित कार्यक्रम पर नहीं पहुँच पाते हैं। इस पर केदार लिखते हैं, “यह जानकर दुःख हुआ कि बच्ची को टाइफाइड हो गया है। पूर्ण विश्वास है कि हमारे तुम्हारे प्रेम से वह स्वस्थ हो जाएगी।”⁸² हमारे-तुम्हारे का एकीकृत प्रेम ही ‘मित्र-सवाद’ की रचनात्मकता को प्रस्फुटित करता है।

परिवार की सरचना में सभी को साथ लेकर चलना पड़ता है। यदि थोड़ी भी खटपट हुई तो फिर दिक्कतें खड़ी हो सकती हैं। एक बार गौंट पड़ जाने पर जीवन दूभर हो सकता है। 17 7 47 को केदार पत्र में लिखते हैं, “मेरा रोब तो मेरी बीबी नहीं मानती तब तुम और दूसरे लोग क्या मानेंगे। कहती है इन किताबों को बाहर रख कर आया करो। आँखें बहुत फालतू नहीं हैं। भैया चुप रह जाता हूँ। घर की आग बड़ी बुरी हो सकती है।”⁸³

परिवार में किसी भी व्यक्ति के बिछुड़ जाने से मन में अपार पीड़ा होती है। परिवार की सरचनात्मक स्थिति गड़बड़ा जाती है। केदारनाथ अग्रवाल की पुत्री किरन के पति की असमायिक मृत्यु हो जाती है। केदार पर अचानक बज्रपात हो जाता है। इस पर रामविलास शर्मा लिखते हैं, ‘तुम्हारा कार्ड मिला। पढ़ कर बहुत दुःख हुआ। प्रियजन के वियोग के लिए कोई सात्वना नहीं है। जब तक हम उन्हें प्यार करते रहते हैं, तब तक वे हमारे लिए मृत नहीं हैं। लेकिन उनका अभाव हृदय को क्लेश देता है। मनुष्य का कर्म ही दुःख का एकमात्र उपचार है। तुम्हें अपनी पुत्री के स्वास्थ्य की ओर ध्यान देना चाहिए। और उसके भविष्य की चिन्ता करनी चाहिए। इसके लिए धैर्य और परिश्रम दोनों आवश्यक होंगे। ये बड़ी निर्मम चोटें हैं लेकिन इन्हें सहना ही होगा और हृदय को दृढ़ करना ही होगा। दुःख सहने से तुम्हें अपने और समाज के लिए शक्ति मिलेगी, दुःख का संभवतः यही एकमात्र गुण है।’⁸⁴ दार्शनिकता का पुट लिए हुए समझाने का अनोखा ढंग ‘मित्र-सवाद’ की पारिवारिक परिकल्पना को साकार करता है।

उप अध्याय—तीन

राजनैतिक

कोई भी लेखक अपने परिवेश से कटा नहीं होता। वर्तमान की रचना-प्रक्रिया का जुड़ाव परिवेशों में घटित राजनीतिक घटनाओं से सबद्ध होता है। ‘मित्र-सवाद’ के दोनों मित्र एक विशेष विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध रचनाकार हैं। मार्क्सवादी विचारधारा उनकी मानसिकता और उनकी संवेदना का सत्य है। उनकी संवेदना को ‘मित्र-सवाद’ के पत्रों में देखा जा सकता है। इन पत्रों में कहीं विशुद्ध मार्क्सवाद की चर्चा है तो कहीं साहित्य और राजनीति की समझ का सबध। राजनीति का फलक कहीं स्थानीयता का पर्याय है तो कहीं अंतर्राष्ट्रीयता का अक्रिमण करती है। रामविलास शर्मा मार्क्सवादी विचारधारा के प्रतिबद्ध रचनाकार हैं, मार्क्सवादी विचारधारा को अपनाकर सर्वाधिक कृतियों का प्रणयन रामविलास शर्मा की क्षमता को प्रदर्शित करता है। भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद, मार्क्स और पिछले हुए समाज, मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य आदि उनकी कृतियों मार्क्सवादी विचारधारा के प्रति आबद्ध रचनाएँ हैं। अमृतराय लिखते हैं, “मेरे लिए विचारधारा कुछ दूसरी चीज है। उसे आदमी मजबूती से पकड़ता है। वह समर्पण मागती है। उसके लिए निष्ठा चाहिए, गहरा आंतरिक विश्वास चाहिए। उसी निष्ठा और गहरे विश्वास में से सब तरह के अभाव, कष्ट, निन्दा, अपमान, जल, यातना, सब कुछ सहने और जरूरत पड़ने पर

अपने प्राण तक दे देने की ताकत आती है। जहाँ ये निष्ठा और समर्पण और अकुंठ विश्वास नहीं है, वहाँ फिर विचारधारा कैसे जैसे हुई वैसे न हुई।⁸⁵ रामविलास शर्मा का समर्पण 'मार्क्सवाद' के प्रति है।

मार्क्स का जीवन—दर्शन और दूसरे विचार—संप्रदायों में बड़ा अंतर यह है कि मार्क्स का दर्शन, द्वंद्वात्मक भौतिकवाद या दूसरे संदर्भ में ऐतिहासिक भौतिकवाद, जीवन का एक संपूर्ण दर्शन है। उसकी मान्यताओं में ऐसी आंतरित क्षमता है कि उनके अंतर्गत मानव जाति के आर्थिक विकास, सामाजिक विकास, राजनीतिक विकास, सांस्कृतिक विकास, एक कड़ी के रूप में आँखों के समक्ष नाच उठता है। अर्थ—व्यवस्था में से समाज व्यवस्था निकलती है, फिर उस विशेष अर्थ—व्यवस्था और समाज व्यवस्था में से एक ओर अनुरूप संस्कृति का उदय होता है जो विभिन्न कलाओं और साहित्यों में स्वयं को अभिव्यक्त करती है और दूसरी ओर अनुरूप राजनीति का। मार्क्स सिर्फ नये अर्थशास्त्र का प्रणेता ही नहीं था बल्कि उसी ने पहली बार मानव समाज के बदलते हुए रूपों को उसके आर्थिक विकास के साथ जोड़कर देखा था। उसी की निगाह पहली बार इस ओर गयी कि सामाजिक संरचना और आर्थिक संरचना दो अलग और समानांतर वस्तु स्थितियाँ नहीं हैं, दोनों में संबंध है। पहले आर्थिक संरचना परिवर्तित होती है और तदनन्तर उसका अनुकरण करते हुए, उसकी सामाजिक संरचना में आर्थिक संरचना से दो अभिप्राय है — पहला उस समय उस समाज के पास उत्पादन के साधन कौन से हैं और दूसरा यह कि उन पर स्वामित्व किसका है। रामविलास शर्मा ने चिंतन को गहराई प्रदान करने के लिए मार्क्स का गहराई से अध्ययन विश्लेषण किया है। मार्क्स की पुस्तक 'दास कैपिटल' (पूँजी) का अनुवाद रामविलास शर्मा ने ही किया है।

31.3.76 के पत्र में रामविलास लिखते हैं, "आज मैंने पूँजी खंड2 को दोहराने का काम पूरा किया। यह पुस्तक एंगेल्स ने मार्क्स की पाण्डुलिपियों से संकलित करके तैयार की थी। इसकी एंगेल्स—लिखित भूमिका उन महानुभाव की एक महान कृति है"⁸⁶ इस पुस्तक को तैयार करने में रामविलास शर्मा ने काफी परिश्रम किया था। अनुवाद के समय जिस कठिनाई का सामना करना पड़ता है, उस की भी चर्चा इस पत्र में है। उसके संशोधित और असंशोधित रूपों का जिक्र भी वे पत्र में करते हैं, "मार्क्स अपने कारखाने में ढेरों समस्याओं में जूझ रहे हैं और जो माल तैयार किया है, कहीं पूरा है, कहीं अधूरा है, उनकी मेधा कहीं पूरी तरह दीप्त है, कहीं थकान और बीमारी से मद्धिम है। किताब पढ़ने की अपेक्षा पढ़ाने से ज्यादा समझ में आती है। अनुवाद करने और उसे दोहराने से पढ़ाने का सा परिचय हो जाता है या उससे कुछ ज्यादा लगता था कि साल भर मैं मार्क्स के दिमाग की सारी कार्यवाही बहुत नजदीक से देख रहा हूँ। मार्क्स का विचार—क्षितिज निरंतर बदल रहा था— यह बात मैंने गॉठ बाँध ली है, और मार्क्स के अनुयायी होने का मतलब उनके सूत्रों को दोहराना नहीं है।"⁸⁷

रामविलास शर्मा विचार धारा के प्रति प्रतिबद्ध रचनाकार हैं, अन्ध समर्थक साहित्यकार नहीं। एक पत्र में केदार लिखते हैं, "मार्क्स अद्भुत आदमी था। इनके बारे में जितना जाना जाये कम है। मार्क्स की अगुवाई भौतिकवाद की विकासमान होती चली जाने वाली द्वंद्वात्मक अगुवाई है।"⁸⁸ इससे पता चलता है कि दोनों मित्रों को मार्क्सवाद और मार्क्स के प्रति गहरी जानकारी थी। मार्क्स और एंगेल्स दोनों में गहरी मित्रता थी। मित्रता रामविलास शर्मा और केदारनाथ

अग्रवाल में भी थी। केदार को 1860 के आस पास मार्क्स की मान्यताओं में हुए मौलिक परिवर्तन को रामविलास शर्मा 22.4.76 के पत्र में लिखते हैं,

क. "भारत का अंग्रेजों द्वारा जीता जाना अनिवार्य था।

अगली क्रांति इंग्लैण्ड में नहीं भारत में होगी।

ख. रूस का अंग्रेजों द्वारा जीता जाना अनिवार्य है।

अगली क्रांति पश्चिम यूरोप में नहीं रूस में होगी

ग. मजदूर वर्ग समाज का सबसे क्रांतिकारी वर्ग है।

अंग्रेज मजदूरों से आइरिश किसान ज्यादा क्रांतिकारी हैं।

घ. भारत में अंग्रेजों के आने से पहले कोई बड़ी क्रांति नहीं हुई।

17वीं सदी में आगरा एशिया की सबसे बड़ी मंडी थी।

ड. रोम और एथेंस में उत्पादन का आधार दास प्रथा थी।

रोम में मुख्य अंतर्विरोध स्वाधीन गरीब किसानों और धनी भूस्वामियों के बीच था। दास प्रथा केवल इससे प्रभावित थी।"⁸⁹

मार्क्स की साहित्य-दृष्टि श्रेष्ठतम मानवतावादी साहित्य-परंपरा का अंग है, उसको किसी दूसरे रूप में उपस्थित करना उसको संकुचित करना होगा, छोटा करना होगा। केदार को लगातार रामविलास शर्मा ने मार्क्सवाद के बारे में लिखा। 8.2.83 के पत्र में वे लिखते हैं— "मार्क्स जब दर्शनशास्त्र पर लिखते हैं तब अर्थशास्त्र उनके साथ रहता है, जब अर्थशास्त्र पर लिखते हैं, तब दर्शनशास्त्र उनके साथ रहता है। कुछ दिन हुए मैं पूँजी खण्ड-1 पढ़ रहा था और एक वाक्य पर निगाह अटक गयी, तुम्हारे अवलोकनार्थ उद्धृत करता हूँ, Every day brings a man twenty four hours nearer to his grave; but how many days he has still to travel on that road, no man can tell accurately by merely looking at his, मार्क्स ने यूनानी दार्शनिक एपिक्यूरस को जवानी में गहराई से पढ़ा था। जीवन भर एपिक्यूरस का चिंतन उनके साथ रहा।"⁹⁰

मार्क्स को निरंतर पढ़ते रहने से केदारनाथ अग्रवाल की रुचि भी मार्क्स और उनके 'वाद' के प्रति होती है तभी तो 'संवाद' की स्थिति उत्पन्न होती है— "मार्क्स का उद्धरण पढ़ने को मिला। सत्य यही है जो उन्होंने पूँजीखंड-1 में लिखा। फिर भी जिजीविषा बड़ी प्रबल होती है और मैं तो उसी को अपनाये हुए अधिक से अधिक दिन तक जीने की लालसा बलवती बनाए रखता हूँ।"⁹¹

केदारनाथ अग्रवाल भी मार्क्सवादी विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध होकर कविता लिखते हैं, "वे जीवन भर इसी विचारधारा से जुड़े रहे और कविताओं का प्रणयन करते रहे। मित्र की प्रगतिशीलता पर रामविलास शर्मा ने 'प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल' निबंध लिखा। राजनीति में व्याप्त अवसरवाद की पीड़ा उन्हें सालती है लेकिन उन्हें अपनी विचारधारा के पुनः चमकने की आशा है।

‘इस समय राजनीति में काफी अवसरवाद फैला हुआ है, उसी के अनुरूप मार्क्सवादी लेखकों में अवसरवाद गहरे घर कर गया है। मुझे विश्वास है कि यह अवसरवाद छट जाएगा, राजनीति और साहित्य में मार्क्सवाद का सूरज फिर चमकेगा। इससे तुम्हारी कविता की लोकप्रियता का प्रसार होगा।’⁹²

केदारनाथ अग्रवाल उम्र के अंतिम पड़ाव तक मार्क्सवादी विचारधारा से सबद्ध रहे। जब समाजवादी देशों में हड़कम्प मचती है और सर्विया की अभूतपूर्व घटना घटित होती है, तब लोग कहते हैं कि समाजवाद मर चुका है तब केदार का अंतर्मन बेचैन हो उठता है, “लोग कहते हैं कि मार्क्सवाद समाजवाद मर चुके। कहते हुए इन्हे शर्म नहीं लगती। यह नहीं जानते कि मार्क्सवाद सतत विकासशील माननीय मूल्यों का जीवन दर्शन है। वह भला कैसे मर सकता है। जो हो रहा है वह उसके अमानवीय क्रियान्वयन का परिणाम है। जनतंत्र कभी, कहीं भी यथास्थिति को ध्वस्त नहीं कर सकता— वह तो ऐसा भैंसा है जो सब जगह की हरी घास चर लेता है और शासकीय निरकुशता के सहारे मोटा होता रहता है। लोकतंत्र अब तक कोई जीवन—दर्शन नहीं दे सका। वह तरह—तरह की विसर्गियों का पालक और पोषक है। देश अपना भी आत्मवाद से ग्रस्त है। वर्ण युद्ध हो रहा है चारों ओर। सरकार सकट में है। समस्याएँ कैसे सुलझेगी कह नहीं सकता। द्वन्द्व और संघर्ष में जीना पड़ेगा।”⁹³

मार्क्सवाद से होते हुए, अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं की चर्चा करते हुए राष्ट्रीयता से जोड़ देना महत्वपूर्ण है। समसामयिक राजनीतिक घटनाओं, समाज में व्याप्त जातिवाद, सांप्रदायिकता पर चर्चा मित्रों की जागरूकता का परिणाम है। वे समाज से बेखबर नहीं हैं और बेखबर होना भी नहीं चाहते। लोकतंत्र की खामियों को गिनाते हुए समाजवाद की उत्कृष्टता का वर्णन मन को झिझोड़ने वाला है।

भारतीय न्यायिक व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार पर भी ‘मित्र—सवाद’ में कुठारघात मिलता है। केदार लिखते हैं, “मुकदमे में जैसे दृष्टि से तहकीकात करनी चाहिए वैसी तहकीकात दरोगा नहीं करते। इससे सफलता नहीं मिलती और अधिकतर अभियुक्त छूट जाते हैं, जो दोषी भी होते हैं। गवादान भी वैसे होते हैं, और झूठ का अम्बार लगा देते हैं। यहाँ भी कातिल आल्हा ऊदल की परंपरा में अब भी काम करते हैं अदालत में न्याय न पाकर लोग बाहर स्वयं न्याय कर लेते हैं। हत्याएँ होती रहती हैं। अदालत तो एक विशिष्ट प्रणाली और सिद्धांत से काम करती है। इससे वह विवश होकर छोड़ती है।”⁹⁴ गवाहों का मुकर जाना, झूठी गवाही देना, समाज के नैतिक पतन का सूचक है। व्यक्ति पग—पग पर झूठ का सहारा लेता है।

समाज में व्याप्त गुंडागर्दी पर भी पत्र है। गुंडागर्दी भारतीय समाज और राजनीति को गहरे ढंग से प्रभावित कर रही है। 27.10.72 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, ‘तुम्हारी परेशानी समझकर चित्त दुखी हुआ किन्तु फिर सोचा समाज में गुंडागर्दी इतनी बढ़ गई है कि साहस पूर्वक उसका मुकाबला करना अत्यावश्यक है और जो ऐसा करते हैं, वे अभिनंदनीय हैं—परिणाम कुछ भी हो। जिये तो मर्द की तरह वरना जिन्दगी से मौत अच्छी। जिन्दगी में ऐसे क्षण कभी—कभी अचानक आ ही जाते हैं जब मर्द मौत की परवाह न करके सम्मानपूर्वक जीते रहने के लिए शत्रु से भिड़ जाता है।’⁹⁵

साहित्यिक हलको में नियुक्ति के सबध में जिस राजनीति का प्रयोग होता, जिन सबधों की दुहाई दी जाती है, 'मित्र-सवाद' के पत्रों में दिखलाई पड़ती है। रामविलास शर्मा केदार को लिखते हैं यह विद्यापीठ गद्दी राजनीति का दलदल है और यहाँ सफल निदेशक वह माना जाता है जो इधर-उधर से पैसा ले आये, खायें और खिलायें, काम का प्रदर्शन खूब करे, काम चाहे कुछ न करे।⁹⁶ रामविलास शर्मा ईमानदार व्यक्ति थे। ईमानदार व्यक्ति की नियुक्ति निदेशक के रूप कहीं? नियुक्ति सबधी भ्रष्टाचार को यह पत्र उद्घाटित करती है।

20 5 83 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, "छात्रों में गुडागर्दी उनके गुरुओं में जातिवाद विशेष रूप से ब्राह्मण ठाकुरवाद यहाँ की आकर्षक विशेषताएँ हैं।"⁹⁷ कालेजों विश्वविद्यालयों में छात्रों में गुडागर्दी आज भी जारी है। गुरु एक विशेष वर्ग, अपनी जाति के चेलों को पकड़ कर दूसरे शिक्षक के खिलाफ आवाजे बुलंद करवाते हैं। कालेजों में जातिवाद का चरमरूप देखने को मिलता है। सस्थानों में 'जातिवाद' के आधार पर ही छात्र नेता चुनाव लड़ते हैं। विश्वविद्यालयों और कालेजों से ही राजनीति, प्रशासन आदि वयस्क होता है। 'वयस्क अवस्था' पर 'व्याप्त जहर समाज की संस्कृति को क्षतिग्रस्त करता है। ब्राह्मणवाद-ठाकुरवाद को तो पूछिए मत। इस वाद को लेकर वर्ग विशेष के व्यक्ति दोनों समाज के मठाधीश बनते हैं, लेकिन समाज मठाधीशी से नहीं, सबको साथ लेकर चलने से बनता है। तभी उनकी परंपरा अक्षुण्ण रहती है। जातिवाद वर्तमान राजनीति को भी दूषित कर रहा है। आज जाति की राजनीति हो रही है। राजनीति की कोई 'जाति' नहीं रह गयी है। कालेजों, विश्वविद्यालयों की ओछी राजनीति समाज को गहरे स्तर पर प्रभावित कर रही है।

4 5 64 के पत्र में केदारनाथ अग्रवाल लिखते हैं, "भारतीय दल में भी ऐसी छीछालेदार होनी थी, इसकी कल्पना कोई नहीं कर सकता था। पर हुई। यह भी बढ़ रहे चरणों को खूटे से बाधकर जनसाधारण को बैल की तरह बधिया बनाने की दुखद घटना है। चितन के नाम पर सब भाड़ झोकते हैं। वहाँ तो कुजड़ों की सी लड़ाई हो रही है। कभी बेंटेर लड़ते देखा था मैंने रायबरेली में सन 1921 ई. में। अब यह देख रहा हूँ। लड़ाई भी होता है तो एक शान की होती है— सिद्धांत की होती है। यह तो दगा-फसाद का नमूना है। वास्तव में सब नगें होकर नाच रहे हैं। अफसोस है।"⁹⁸ भारतीय दलों की छीछालेदार उस युग का भी सत्य था और आज का भी सच है। आज राजनीति की कोई विचारधारा नहीं है। राजनीति का कोई धर्म नहीं है। आज तो धर्म की राजनीति हो रही है। एक-दूसरे को लड़वाया जा रहा है। जाति के नाम पर, धर्म के नाम पर, अगड़ों-पिछड़ों के नाम पर देश बाटा जा रहा है। कोई क्षेत्रवार की रोटी सेक रहा है तो कोई भाषा के नाम पर राजनीतिक उल्लू सीधा कर रहा है। सभी जगह राजनीति का कोई चरित्र नहीं रह गया है। सत्ता से पहले चुनावों में जिनका विरोध करके राजनीतिक दल 'वोट पाते हैं बाद में उन्हीं के 'दुष्कर्मों' के साझीदार होते हैं। व्यक्तिगत स्वार्थ, हित और सत्ता के लिए दलों का दलदल करना आम बात हो गई है। आज विधानसभा और लोकसभा में मारपीट के दृष्टांत मौजूद हैं। लोकतंत्र के चरित्र को स्वार्थी नेताओं और दलों ने धुधला करके रख दिया है। भारतीय नेताओं का शुरुआती दौर से ही अवसरवादी चरित्र रहा है। आज तो यह 'अवसरवाद' चरम पर है।

वर्तमान दौर में चाटुकारिता चरम पर है। 'मित्र-सवाद' के दौरान भी चाटुकारिता चरम पर थी। सरकार पिछलगुओं को ही पुरस्कृत करती थी। निराला जीवन में पुरस्कार न पा सके।

दूसरों ने उन के सहयोगियों ने दुनिया की कमाई भी की और कविता की बेड़ भी लगाई। वह लोग संतुलन का पल्ला अपनाये रहे। फलस्वरूप समाज में वही भद्र बने और सम्मानित हुए। ऐसे लोगों पर केदार लिखते हैं, "आखिर सरकार हमारे कवि को सम्मानित करने और पुरस्कृत करने में क्यों कोताही कर रही है तो मिश्र जी से मालूम हुआ कि निराला जी का वही हाल हुआ जो टंडन जी का हुआ। मुझे खीस हुई। मैं रोष से भर गया। मैं ऐसी सरकार की भर्त्सना करता हूँ जो योग्य कवि का सम्मान करने में अड़ियल टट्टू की तरह आगे बढ़ने से इनकार कर देती है। वाह रे सरकारी नीति। क्या कभी सरकार समझेगी या नहीं।"⁹⁹ सरकारी नीतियों पर केदार का व्यंग्य सटीक है। अड़ियल टट्टू एक ही जगह रुक जाता है वैसी ही सरकारी नीतियाँ होती हैं। यदि कोई मामला सरकारी आफिसों में दब जाए तो फिर साहब फाइल अड़ियल टट्टू ही हो जाता है। 'अड़ियल टट्टू' सरकारी नीतियों के लिए सटीक शब्द है।

सरकार ने निराला को कोई सम्मान नहीं दिया। इसकी टीस प्रगतिशील काव्यधारा के कवि केदारनाथ को बराबर बनी रही। जब सरकार 'ठस' पड़ जाती है तब साहित्यकार रचनाकार अपने-अपने ढंग से काम करते हैं। 15.10.61 के पत्र में केदार लिखते हैं, "तुमने तो उन्हें अपनी सर्वश्रेष्ठ कृति 'भाषा और समाज' समर्पित करके अपना ऋण चुकाया। मगर सौजन्य प्रिय सरकार उन्हें मान-सम्मान न दे सकी। कितनी विदग्धता है इस व्यवहार में।"¹⁰⁰ वैसे ही निराला जन-कवि थे और जन कवि को सरकार भले ही मान-सम्मान न दे लेकिन जन कवि जनता के हृदय पर राज करता है।

19.10.64 के पत्र में केदार लिखते हैं, "इंदिरा गांधी को अभी जनता से पूरी बाकफियत नहीं है। वरना वह भी अपना विचार बदलती देश की राजनीति और अर्थ नीति दोनों ही साधारण जन के लिए संकटमय हैं। भविष्य भयंकर लग रहा है।"¹⁰¹ तत्कालीन समाज की सच्चाई को उकेरकर रख दिया गया है। 'भविष्य उस समय भयंकर लग रहा था' किंतु आज की वर्तमान स्थिति उस समय की भविष्य ही थी। कवि केदार का अनुमान कितना सत्य है, देखा जा सकता है। आज राजनीति और अर्थ नीति दोनों से ही जनता 'त्रस्त' है। बहुदलीय व्यवस्था मंहगाई की मार और बढ़ाती जा रही है। कृषि प्रधान देश भारत को 'पूँजीप्रधान' बनाने की कोशिश की जा रही है। संविधान को बदलने के लिए हिन्दुत्ववादी ताकतें कोशिश में हैं। सचमुच वर्तमान भयंकर है। आज सरकारी नीतियाँ नवयुवकों की बेरोजगारी के लिए उत्तरदायी हैं। 'यांत्रिक शिक्षा' का अभाव है। सरकार तुलना तो करेगी अमरीका से, लेकिन धनाभाव के कारण कोई भी योजना कार्यान्वित नहीं कर पा रही है। बार-बार 'मठों और मंदिरों' की राजनीति हो रही है। ऐसे में 'मित्र-संवाद' के पत्र राजनीति विमर्श में हस्तक्षेप हैं।

माक्सवादी मूल्यों से सरोकार रखने वाले 'दोनों मित्र' आजीवन शोषण के खिलाफ संघर्ष करते रहे। मानवीय मूल्यों की वकालत उनकी जनपक्षधरता को तीव्र बनाता है। समाजवादी मूल्यों के विघटन की चिंता हो या सरकारी तंत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार अथवा राजनीति में गुंफित जातिवाद। सभी पर दोनों मित्रों की तत्वान्वेशी दृष्टि रहती है और दोनों 'संवाद' के बीच इन मुद्दों पर विमर्श जारी रखते हैं। समाज में जब शोषण और दमन की प्रक्रिया तीव्र होती है तो रचनाकार ही कलम उठाते हैं। दोनों मित्रों ने इस परंपरा का निर्वहन बखूबी किया है। बात का अंत एक पत्र से किया जाय। सितंबर, 1939 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, "मैंने सोचा है, 'हिन्दी साहित्य और राजनीति' पर बोला जाय— हिन्दुस्तानी राजनीति की कमजोरियाँ, क्या

साहित्य उससे सहानुभूति रख सकता है? और हिन्दुस्तानी राजनीति के घातक प्रभाव से अपनी रक्षाकर साहित्य ने राजनीतिज्ञों के चलने के लिए एक स्वतंत्र और आत्म सम्मान युक्त मार्ग छोड़ दिया है।¹⁰²

उप अध्याय—चार आर्थिक

‘मित्र-सवाद’ के 56 वर्षों में अर्थ-विषयक विचार भी पत्रों में यदा-कदा मिल जाते हैं। कभी अर्थ की चिंता पेशे से जोड़कर देखी जाती है तो कभी दैनिक महंगाई में। बाजार में दिन प्रतिदिन गहरी होती जा रही महंगाई पर भी चर्चा है। विभिन्न पहलुओं से सम्बद्ध होकर आर्थिक परिदृश्य का उद्घाटन ‘मित्र-सवाद’ के पत्रों में होता है।

8.3.45 को केदार लिखते हैं, “कल चलना यों असंभव है कि जो सेशन मुझे आज करना था वह आज नहीं शुरू हुआ, कल से शुरू होगा वह भी दूसरे पहर से और परसों तक जरूर चलना है। मैं इसे छोड़कर नहीं आ सकता, पर मेरा वही हाल हो रहा है जो विंधे पक्षी का। भग कर पहुँचना चाहता हूँ पर पक्षाघात जो एक तरह का हो गया है। साली वकालत भी बेडियों की तरह पैर में पड़ी है। रोटियाँ क्या देती हैं मुझे खरीद लिया है। मुझे अपनी गुलामी पर खीस होती है। ऐसा लगता है जैसे अपने ही जूते अपने सर पर मारकर खून निकाल लूँ।¹⁰³ वकालत का पेशा बहुत व्यस्त होता है। इसमें अवकाश कम ही मिल पाता है। केदार का जीवन-यापन वकालत के माध्यम से ही होता है। उनकी चिंता जायज है। परिवार को चलाना है इसलिए वे इस पेशे को छोड़ भी नहीं सकते।

महादेवी वर्मा ने निराला जी के लिए साहित्यकार संसद की स्थापना की थी। निराला जी की आर्थिक स्थिति कुछ बेहतर नहीं थी। अर्थ की मार वे बार-बार झेलते रहे। कवि बड़े थे। धनाढ्य नहीं। निराला जी की कविताएँ ही उनका विपुल धन हैं। 14.3.45 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, “महादेवी जी ने एक साहित्यकार संसद स्थापित की है। वह निराला जी के पुस्तकों का प्रकाशन करेगी और उन्हें अभी से आर्थिक सहायता कर रही है। उसके लिए तुम कम से कम 500 रुपये एकत्र करके महादेवी जी के पास शीघ्र भिजवाओ और निराला जी के जो पत्र तुम्हारे या वहाँ और किसी के पास हों, उन्हें तुरन्त (Registered) मेरे पास भेज दो।¹⁰⁴ 500 रुपये की राशि उस जमाने में बहुत अधिक थी। 500 रुपये की व्यवस्था करने के लिए केदारनाथ अग्रवाल लिखते हैं, “500 रुपये की बात ठीक है। मैं दो-एक दिन में प्रयत्न करना प्रारम्भ करूँगा। अभी किसी से नहीं कह सका। कृपया एक विशेष विवरण भेजो क्या है और कैसा है। कौन क्या है—कहाँ है? तब तो लोग देगे।¹⁰⁵ इस प्रकार अर्थ की चिंता दोनों मित्रों के ‘सवाद’ का प्रमुख विषय है। जीवन में अर्थ महत्वपूर्ण है। मार्क्स के जीवन में भी अर्थ की कमी हुई थी। उनकी सहायता उनके मित्र एंगेल्स ने की थी। निराला की मदद ‘हिन्दी परिवार’ के लोगों ने की।

महंगाई की मार साधारण जनता के लिए बहुत बड़ी चीज है। दिन-प्रतिदिन की बढ़ती महंगाई पर केदारनाथ अग्रवाल लिखते हैं, “महंगाई कुतुबमीनार से भी ऊँचे पहुँच गयी है। मनुष्य

चींटी की तरह छोटा हो गया है। और कन-कन की तलाश में दिन-रात जुट गया है।¹⁰⁶ कुतुबमीनार की चोटी बहुत ऊँची है। इसको देखने पर टोपी गिर जाती है। बाजा की बढ़ती हुई महँगाई को देखकर जनता को गश आ जाता है। तब से लेकर आज तक महँगाई की प्रक्रिया निरंतर जारी है। बाजार में चीजें महंगी दर महंगी होती जा रही है। मनुष्य की औकात चींटी की तरह हो गयी है। चींटी समय की सूक्ष्मताम प्राणी है। उसे कोई भी रौंद सकता है। मनुष्य भी बाजारों की भीड़ में चींटी हो गया है। तुच्छ प्राणी की तरह वह एक-एक पैसे की जुगत में इधर-उधर घूमा करता है।

वैवाहिक अवसरों पर होने वाली फिजूल खर्ची पर रामविलास शर्मा लिखते हैं, “ब्याह बारात में जाने पर असभ्यता की नुमाइश देखने को मिलती है। जी घिनाता है, हम पैसे वाले हैं, हमारे ठाट देखो, महिलाओं की चमकदार साड़ियाँ देखो, दालदा में सना पक्वान्न चखो। भीतर से सब खोखले।”¹⁰⁷ विवाह के समय लोगों की फिजूल खर्ची कुछ अधिक ही होती है। तड़क-भड़क, साज-सज्जा सब कुछ मात्र क्षणिक ही होता है। पाश्चात्य संगीत की धुनों पर नाचते-थिरकते लोग भारतीय संस्कृति की परंपरा को क्षरित करते हैं। वैवाहिक अवसरों पर ही शराब की बोतलें चलती हैं। सारी व्यवस्था लड़की वाले के सिर होता है। पैसों की अकूत बरबादी होती है। मात्र दिखावे के लिए इतना सब कुछ बेकार है। महिलाओं का दिखावा तो इतना अधिक होता है कि जैसे वह पुनः दुल्हन बनने की तैयारी में हों। बनाव साज-सज्जा अंततः वैवाहिक अनुष्ठान को बाधित ही करती है। इस अवसर पर पक्वानों की शुद्धता भी नहीं बनी रहती। डालडा के पक्वान पेट के लिए हानिकारक होते हैं। रामविलास शर्मा किसी भी जगह शुद्धता के पक्षधर हैं, बनावट, कृत्रिमता उन्हें रुचिकर नहीं है।

नेल्सन मंडेला दक्षिण अफ्रिका के गांधी हैं। गांधी ने भारत के स्वतंत्र होने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। नेल्सन मंडेला ने दक्षिण अफ्रीकी लोगों के लिए लड़ाई लड़ी। उन्हें 27 वर्षों तक जेल में रखा गया। नेल्सन मंडेला जब जेल से छूटे जनता बहुत खुश हुई। रामविलास शर्मा केदार को लिखते हैं, “नेल्सन मंडेला की रिहाई पर सब लोग बहुत खुश हैं। इस खुशी में वह गुरसा खो गया जो उन्हें 27 साल जेल में रखने वालों पर आना चाहिए। रंग भेद का आर्थिक आधार दक्षिण अफ्रिका में लगी हुई जर्मन-ब्रिटिश-अमरीकी पूँजी है। उस आधार को ध्वस्त किए बिना दक्षिण अफ्रीका में लोकतंत्र पूरी तरह कायम नहीं हो सकता।”¹⁰⁸ इस पत्र में अर्थ राजनीति से जुड़ जाती है। दक्षिण अफ्रीका की गुलामी का कारण आर्थिक है। बिना आर्थिक रूप से स्वतंत्र हुए व्यक्ति, समाज अथवा देश विकास नहीं कर सकता। आर्थिक गुलामी का मसला बहुत बड़ा मसला है। भारत आज स्वतंत्र है। लोकतंत्र की दुहाई दी जाती है; लेकिन आर्थिक रूप स्तर पर जन्म लेने वाला प्रत्येक बच्चा कर्ज तले दबा हुआ है। प्रत्येक व्यक्ति का जन्म हमारे देश में आर्थिक गुलामी में ही होता है। आज अमरीका को भारत बड़ा ‘बजारा’ नजर आ रहा है। अंग्रेजों के लिए भी यहाँ से पाने के लिए बहुत है। ‘आर्थिक उदारीकरण के नाम पर भारतीय जनता शोषण व दमन की चक्की में पिसती जा रही है। आज हर व्यक्ति सहमा हुआ है। रामविलास शर्मा की चिंता सिर्फ दक्षिण अफ्रीका की चिंता नहीं है अपितु आने वाले दिनों में भारत की आर्थिक दास्तां की चिंता है। एक ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत को दो सौ वर्षों तक गुलाम रखा। आज तो ईस्ट इंडिया की तरह अनेकानेक कंपनियों की भरमार है। अर्थ और राजनीति दो चीजे न होकर एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

भारत कृषि प्रधान देश है। आज भले ही हम अपने वास्तविक स्वरूप को खोते जा रहे हो लेकिन हम मूलतः कृषि प्रधान देश ही हैं। मूल चरित्र छोड़ने के कारण ही हमारा देश आर्थिक रूप से विपन्न होता चला जा रहा है। आज भले ही हम 'पूँजीवाद' की दौड़ में उछल-कूद कर रहे हो लेकिन जवाहरलाल नेहरू के समय ऐसा नहीं था। उन्होंने पंचवर्षीय योजनाओं का सूत्रपात करके हमारे देश के मूल चरित्र 'किसान चरित्र' को सीचने का कार्य किया था। केदारनाथ अग्रवाल लिखते हैं, "नेहरू का निधन संपूर्ण देश को शोकमग्न कर गया है। वह पूरे भारत का था। क्या बात है कि वह भारत भूमि के खेतों की मिट्टी में अपनी मिट्टी मिला कर फसल बन कर उगना चाहता है— मेहनतकशों की मशक्कत के आगे वह अपना तन-मन-धन भूलकर न्यौछावर हो गया। बड़ा महान व्यक्ति है। ऐसा नेता न हुआ है— न होगा।"¹⁰⁹ नेहरू के युग में भारत आर्थिक स्तर पर कृषि में आत्मनिर्भर हुआ था। यह ऐतिहासिक तथ्य है।

दैनिक खान-पान की वस्तुओं की दुर्लभता सन् 64 का सत्य था। आज भीसहकारी समितियों से खान-पान की वस्तुओं पर से सब्सिडी हटाई जा रही है। कठोर कदम वर्तमान प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी उठा रहे हैं। कठोर कदम इंदिरा गांधी ने भी उठाया था। 7 10 64 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, "बादा में भी लोग गेहूँ, दाल-चावल के भाव की बातें करते होंगे। गल्ले की कमी हो सकती है लेकिन माल होते हुए भी मिलता नहीं है, चोरी छिपे भले लोग ले आये। दिन पर दिन हालत खराब होती जाती है। लड़ाई के जमाने से हमारा अर्थ तंत्र हर झटके के बाद कुछ सभलता है और उसके बाद दूसरा झटका पहले से तगड़ा लगता है। श्रीमती इंदिरा गांधी लोगों को समझा रही हैं कि देश के उन्नति करने में ऐसा होता ही है। कांग्रेस से गाड़ी सभल नहीं रही है। राजनीतिक और आर्थिक संकट दोनों हैं। क्रांतिकारी परिस्थितियों में जब क्रांति नहीं होती तब प्रति क्रांति होती है। भविष्य कुछ ऐसा ही है।"¹¹⁰ स्थिति तो आज भारतीय जनता पार्टी से भी नहीं सभल रही है। लेकिन शासन कर रहे हैं। आर्थिक संकट स्वतंत्र भारत का सच है। कुछ एक को छोड़कर सभी शासकों के शासन के दौरान आर्थिक तस्वीर गन्दी ही नजर आयी। कहाँ हमारे पास 'तख्तेताउस' था कहाँ आज हम दरिद्र हैं।

अमरीका प्रमुख पूँजीवादी देश है। सन 45 के बाद से अमरीका पूँजीवाद का गढ़ रहा है। लेनिन के पुस्तक साम्राज्यवाद की चर्चा करते हुए रामविलास शर्मा लिखते हैं, "इजारेदार पूँजी का केन्द्रीकरण बड़े डाकुओं द्वारा दुनिया का बटवारा, दुनिया की जातियों का साहूकार और कर्जदार दो तरह के जातियों में बंट जाना, यह सब लेनिन ने अच्छी तरह समझाया है। सन 45 के बाद पूँजी का केन्द्रीकरण भारी पैमाने पर हुआ है। इसका गढ़ है अमरीका। सबसे पहले युगोस्लाविया ने इजारेदार पूँजी को आमंत्रित किया। उसके बाद पोलैंड, हंगरी, रूमानिया आदि ने। इन सबके बाद चीन इस रास्ते पर चला और अंत में रूस ने भी इजारेदार पूँजी के प्रवेश के लिए द्वार खोल दिये। सबसे पहले टीटो ने कहा था— आज के जमाने में पूँजीवादी और समाजवादी देश परस्पर निर्भर हैं। अब यह बात सोवियत नेता भी कहते हैं। जनतंत्र का नाटक पहले पोलैंड में हुआ। वहाँ ऐसा विद्रोह फैला कि मार्शल ला लागू करना पड़ा। अमरीकी दखलअंदाज हर जगह जातीय विद्वेष भड़काते हैं। यूरोप में जनतंत्र का विकास सामंतवाद के विरोध की बुनियाद पर हुआ था। समाजवादी जनतंत्र के विकास की बुनियाद साम्राज्यवाद का विरोध ही हो सकता है। इजारेदार पूँजीपति अपने सहयोग की कीमत चाहते हैं। उन की खुलेआम मांग है निजी पूँजी के प्रसार को छूट मिले। जिन समाजवादी देशों ने अपने यहाँ मार्केट इकनॉमी चलाई है, वहाँ कीमते बढ़ी हैं और जनता में असंतोष फैला है।"¹¹¹ असंतोष तो भारतीय जनता में भी व्याप्त है। भारत में भी

कीमते अत्यधिक बढ़ चुकी है जिसका प्रभाव आम जनता पर पड़ा है। वह शोषण की चक्की में लगातार पिस रही है। शोषण और दमन का चक्र आजादी के बाद से ही जारी है। दुनिया के सभी देश अमरीका से खौफ खाते हैं। वह पूँजीवाद का अधिष्ठाता बना हुआ है। दुनिया में जहाँ कहीं भी उसे जड़ बनाने का मौका मिलता है, वह चूकता नहीं। भारत भी अपने परपरागत मित्र 'रूस' को छोड़कर 'पूँजीवादी' – सामंती चरित्र के मित्र अमरीका की ओर हाथ बढ़ा रहा है। आज तो भारत अमरीका का पिछलग्गू बनता जा रहा है। हमें आर्थिक रूप से सुदृढ़ होकर सामंती-पूँजीवादी चरित्र के लोगों से होड़ लेनी चाहिए।

एक बार फिर निराला की चर्चा है। निराला की आर्थिक स्थिति खराब थी। उनके पास दवा के लिए भी रुपये नहीं थे। इस स्थिति की चर्चा करते हुए रामविलास शर्मा लिखते हैं, 'निराला जी की हालत काफी खराब है। राम कृष्ण वही जाकर रहेंगे और उनकी देखभाल करेंगे। इसके लिए मैं मित्रों में धन संग्रह कर रहा हूँ। क्या तुम कुछ भेज सकते हो? भेजना तो यही मेरे पते से और उसे अपने तक रखना। यह प्रबंध निराला जी से गोप्य रखा जायेगा।'¹¹² निराला जी की मदद में दोनों मित्र हमेशा तत्पर दिखते हैं। हिन्दी परिवार के मुखिया निराला की सेवा करना दोनों का कर्तव्य था। उसे दोनों मित्र अपना कर्तव्य समझते हैं।

केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिशील काव्यधारा के प्रमुख कवियों में से एक हैं। एक कविता 'रोटी' पर है। 18458 को रामविलास शर्मा को केदारनाथ लिखते हैं, 'रोटी' वाली रचना में Dramatic Motive नहीं है। यह भी आफत है।'¹¹³ 'रोटी' साधारण जनता की सबसे बड़ी आवश्यकता है। 'रोटी' 1857 के गदर का प्रतीक थी। 'रोटी' के लिए ही लुई सोलहवें को गद्दी त्यागनी पड़ी। 'रोटी' क्रांति का प्रतीक है। 'रोटी' व्यक्ति की बुनियादी आवश्यकता है।

कुल मिलाकर दोनों के पत्र 'मित्र-सवाद' की 56 वर्षों की आर्थिक स्थिति का विश्लेषण करते हैं। आज की स्थिति के दिशा निर्धारण में दोनों का 'सवाद' तत्कालीन व समकालीन स्थिति का विश्लेषण करता है।

उप अध्याय-पाँच

प्रकृति

"प्रकृति का भी समय के अतर्गत एक इतिहास है। एंगेल्स का कहना मुझे सही प्रतीत होता है। इस कथन का तात्पर्य यह कभी नहीं होता कि वही प्रकृति उसी रूप में सतत बनी रहेगी। हो सकता है कि यह न रहे— कोई किसी दूसरे रूप में रहे। फिर कभी ऐसा ही रूप ग्रहण कर ले। यह क्रम तो निरंतर होता रहेगा।"¹¹⁴ प्रकृति निरंतर परिवर्तनशील है। उसका समाज परिवर्तनशील है। छायावादी कवियों के यहाँ भी प्रकृति से संबंधित कविताएँ मिलेंगी। प्राचीन कवियों के यहाँ भी प्रकृति से संबंधित कविताएँ मिलेंगी। प्रत्येक युग के कवियों का भावबोध अलग-अलग होता है। संवेदना अलग होती है। ससार रहे या न रहे। मगर पदार्थ रहेगा, शक्ति भी रहेगी। ऐसी उक्ति शैक्सपियर की है। शैक्सपियर इस दुनिया के नष्ट होने की बात कह रहे हैं मगर उससे पदार्थ और शक्ति के सर्वनाश हो कर न रहने की बात नहीं कहते। अंग्रेजी कवि कीट्स ने भी कविताएँ लिखी हैं। साधारण बातें उसकी कविता में उद्घाटित होती

रहती हैं। "शाम की बदली है। कुहार भी पड रही है। कीट्स की कविताएँ तुम्हारे पास है या नहीं? 1817 के संग्रह में उसने अपने भाईयों पर एक Sonnet लिखा है। साधारण बातों को कविता में बांधने में एक ही है— Wordsworth की तरह गांवों में या पहाड़ों पर जाकर कहीं, शहर के कमरे में Fire Piece के पास। न पढी हो तो पढ़ना... गतिशील क्षणों को पत्थर टांक दिया है। उस कवि ने।

नेचर के संबंध में एक स्थापना यह है— "Nature is a whole, moving in narrow circles and remaining immutable"

दूसरी स्थापना यह है— " Nature also has its history in time, the celestial bodies, like the organic species... coming into being passing away... (Anti Duhring का पहला अध्याय)

एंगेल्स ने पहली स्थापना का खंडन किया है, दूसरे का समर्थन। अब बताओ, Nature has history in time, तो प्रकृति अनादि कैसे हुई? अगर Celestial bodies और organic being का passing away निश्चित है तो Tempest में Shakespeare..."¹¹⁵ प्रत्येक क्षण की बदलती हुई चेतनता को कविता में रूपायित करना बड़ी बात है। छायावादी कवि पंत की 'परिवर्तन' कविता में 'शत-शत' फेनोच्छ्वसित स्फीत फूटकार भयंकर कहा गया है। कालचक्र निरंतर परिवर्तित होता रहता है।

छायावादी कवियों का प्रारंभिक काव्य प्रकृति के प्रति किशोर सम्मोहन का काव्य है, किंतु शनैः शनैः इस प्रकृति का स्थान मानवीय जीवन और उसकी विविध जटिल भाव-भूमियाँ ले लेती है। जब सुमित्रा नन्दन पंत ने आरंभ में लिखा था—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाला तेरे बाल-जाल मैं कैसे उलझा दूँ लोचन?
भूल अभी से इस जग को।

"तब शायद उनके जग में प्रकृति का ही विशेष महत्व था। पर यथार्थ की समझ के प्रयत्न में प्रकृति के बाद दिए बिना भी उनकी तथा अन्य छायावादी कवियों की कविताओं में मनुष्य और उसके सामाजिक परिवेश का तनाव क्रमशः केन्द्र में आ जाता है।"¹¹⁶

जय शंकर प्रसाद ने अपने निबंध 'यथार्थवाद और छायावाद' का समापन करते हुए लिखा, "प्रकृति विश्वात्मा की छाया या प्रतिबिम्ब है, इसलिए प्रकृति को काव्यगत व्यवहार में ले आकर छायावाद की सृष्टि होती है, यह सिद्धांत भी भ्रामक है। यद्यपि प्रकृति का आलंबन, स्वानुभूति का प्रकृति से तादात्म्य नवीन काव्य धारा में होने लगा है, किंतु प्रकृति से संबंध रखने वाली कविता को ही छायावाद नहीं कहा जा सकता।"¹¹⁷ सिर्फ प्रकृति ही कविता नहीं हो सकती। हाँ प्रकृति से संबंध रखने वाली चीजें कविता अवश्य हो सकती हैं। प्राकृतिक वस्तुएँ कविता की कला को पुष्ट करती हैं। 26.11.56 को केदार ने एक कविता 'ताजमहल' पर लिखी—

"शिल्पकला की कोमल कृति यह ताजमहल है
कभी नहीं मुरझाने वाला श्वेत कमल है

निर्मल नक्षत्रों की छवि से भी निर्मल है
 चन्द्रोदय लगता इसके आगे धूमिल है
 आंखों से उमड़ा यह मानव मन का जल है
 करुणा—सागर का उज्ज्वल सा यह बादल है
 पत्थर हो कर भी सदियों से यह विह्वल है
 विह्वल हो कर भी यह सुंदर मुखमंडल है

इसीलिए यह नीली—श्याम गगन है
 ताजमहल की छाया में भी सांवरपन है
 ओस और आँसू का भू पर गीलापन है
 और मनुष्यों के सनेह में पीलापन है¹¹⁸

पीलापन? क्या निर्जीव प्रेम से अर्थ है। साधारण मनुष्यों का प्रेम निर्जीव नहीं होता। रामविलास शर्मा को इस पर आपत्ति है— “अंतिम पंक्ति पीलापन? क्या निर्जीव प्रेम से अर्थ है? साधारण मनुष्यों का प्रेम निर्जीव क्यों? इसके सिवा नीली यमुना, श्याम गगन, छाया के साँवरपन के साथ कलर हार्मिंग भंग कर देता है। कविता से यह अनुमान तो होता है कि तुमने क्या अनुभव किया है लेकिन वह अनुभूति Mature होकर Symmetrical नहीं हो पाई। हम कविता नहीं देखते, वह भावचित्र देखते हैं जो हमारे मन में है। लेकिन पाठक तो वह नहीं देखता। वह कलाकृति के रूप को देखकर ही भावचित्र पहुँच सकता है।”¹¹⁹ कविता में भावबोध आवश्यक है। भावबोध के साथ शब्दचित्र भी उत्कृष्ट होने चाहिए, तभी कविता मर्मस्पर्शी, सहज संप्रेष्य हो सकती है। ताजमहल कविता पर लगातार बहस होती रही। दोनों मित्रों में ‘संवाद’ की स्थिति तर्क—वितर्क से बनती है। अंततः केदार लिखते हैं, “मेरी वकालत तुम्हारे सामने न चल सकी, यह मेरे हित में ही है। तुम जीते मैं हार कर भी न हारा क्योंकि नई कविता लिखने का मार्ग खुला। ‘ताजमहल’ कविता का संशोधित रूप—

हरियाली का श्याम सरोवर सदियों से फैला है भू पर
 श्वेत कमल—सा खिला हुआ यह ताजमहल है उसके ऊपर
 नील गगन को छू कर भी यह नहीं हुआ है नीला अब तक
 अमल धवल यह खड़ा हुआ है भूतल पर गर्वीला अब तक

वे शिल्पी हैं धन्य जिन्होंने प्रस्तर में यह कमल खिलाया
 कभी न घटने, सतत् चमकने वाला छवि का चोंद उगाया
 पत्थर को भी अश्रु बनाकर हम जैसा ही विकल बनाया
 पत्थर से सस्मित सपने की बांकी झांकी को प्रकटाया।¹²⁰

छायावादी कवियों के भाव—बोध और नयी कविता के प्रगतिशील कवियों के भाव—बोध में अंतर है। वे शिल्पी अर्थात् कलाकार, मजदूर धन्य हैं जिन्होंने पत्थरों में कमल के समान कोमल ‘प्रेम की संवेदनात्मकता’ को रचनात्मकता का आयाम दिया। पत्थर सर्वहारा का प्रतीक है और

‘कमल’ अभिजात्य का। यही पर आकर छायावादी कवियों से भिन्न हो जाते हैं। युग बोध का भावबोध पर प्रभाव पड़ता है। प्रगतिशील कवियों का भावबोध सामान्य जनता के हृदय की भौंति अनुभूत किया भाव बोध है। केदार का लिखा एक सॉनेट है—

“जडी भूत काठिन्य भूमि का बदल गया है हरियाली में
हरियाली को अग लगा सुस्पंदित है तरु लतिकाएँ
श्यामलता की इस पुष्कन से मदविह्वल है दिवस—दिशाएँ
मुग्ध, मगन—मन नव दिन का है नीलम की निर्मल प्याली।

मेरे मन में व्याप गई है तरु लतिकाओं की श्यामलता
मेरा भी अस्तित्व ध्वनित है तरु पातों की मृदु ध्वनियों में
मैं भी जी भर खेल रहा हूँ फूलों के रंगों की होली,
इसीलिए तो अब आई है, मेरे भावों में कोमलता
रँगों को आकार मिला है मेरी कविता की कलियों में
चमक उठी है रंग—बिरंगी ललित कला की चूनर—चोली।”¹²¹

“मेरे मन में व्याप गई है तरु—लतिकाओं की श्यामलता/मेरा भी अस्तित्व ध्वनित है तरु—पातों की मृदु ध्वनियों में” में श्यामलता और तरु—पात द्रष्टव्य है। कविता में सावलेपन का सबसे पहले वर्णन निराला ने किया। ‘श्याम तन भर बंधा यौवन/नत नयन प्रियकर्मरत मन’ में नायिका श्याम तन वाली है। पंत के गोरे अंगों पर सिहर—सिहर लहराते ताल तरल सुंदर नहीं है। कवि केदार के अंतस में तरु—लतिकाओं की श्यामलता व्याप्त हो गई है। इस कविता में वह स्वयं कहते हैं, “इसीलिए तो अब आई है, मेरे भावों में कोमलता।” तरु—पात की श्यामलता समझने के बाद ही कविता ‘जन—कविता’ होगी। एक बात और प्रकृति के साहचर्य से कविता को निखरने में मदद मिलती है।

केदार की कविताओं में ‘मित्र—सवाद’ के माध्यम से प्रकृति नये—नये रूपों में उद्घाटित हुई है।

“हिम से हत, संकुचित प्रकृति अब फूली।
रूप—राग—रस—गंध—भार भर झूली।
रँगों से अभिभूत हुई चट्टानें।
जड़ता में जागी जीवन की तानें।।
नभ में भी आलोक—नील गहराया।
सागर में संगीत तरंगित गाया।
आठ रूप शिव के, समाधि को त्यागे।
मृन्मय अवनी के अँगों में जागे।।
वासतिक वैभव यौवन पर आया।
काव्य—कला का कृती वेशमन भाया।। 15 1.57

हमीर पुर गया था। वेतवा के खड़े कगार पर ऊपर फूली सरसों देखकर आठ पंक्तियाँ लिख सका हूँ। वे ये हैं—

संतत होते प्रखर कोर के संस्पर्शों से
काट रही है दृढ़ कगार को जल की धारा।
साँसें लेता हुआ समीरण प्रश्वासों से
तोड़ रहा है कण-कण का संस्पर्श-सहारा।
फूले खेतों से फिर भी फूली है छाती
सरसों को उसने-सरसों ने उसे संवारा
देख रहा हूँ उसे देखकर मैं अपने को
भूल रहा हूँ अनन्तकाल का मैं अधियारा।¹²² 18.1.57

केदार के प्रकृति वर्णन में किसानों के सरसों का वर्णन है। साधारण जीवन के यहाँ से चीजों को उठाकर कविता में ढालने में केदार माहिर हैं। तभी तो वह लिखते हैं, “जरा हमारे पोखर का गंदला पानी भी बना लो और गांव की स्त्रियों के आंचलों में भी लहरा लो। न हो उसमें तैरती हुई बत्तखों के पंख ही सहला लो।”¹²³ केदार की कविता में ‘भाव भेद रसभेद अपारा’ वाली चीजें द्रष्टव्य हैं। “कहीं पर वह रीझते हैं, कहीं खीझते हैं, कहीं उत्तेजित, कहीं स्थितिप्रज्ञ, कहीं दुःखी, कहीं प्रसन्न, कहीं किसी व्यक्ति अथवा वृत्ति से तादात्म्य, आपा खोये हुए, बेसंभाल, कहीं एकदम तटस्थ, विवेकशील, तर्क का सूत कातते हुए मन ही मन हंसते हुए। उनकी अनेक मुद्राएँ हैं, अनेक भंगिकाएँ हैं, मेरे लिए उनकी सबसे प्रिय मुद्रा है वह है जब वह मन ही मन हंसते हैं। सजल नयन गदगद गिरा गहवर मन पुलक शरीर— केदार संघर्ष और चुनौतियों के कवि हैं।”¹²⁴ केदार के यहाँ रचनात्मकता के विभिन्न आयाम हैं। “कविता के एक छोर पर तीखा मारक व्यंग्य है। (इसकी अनोखी मिसालें कहे केदार खरी-खरी में हैं), दूसरे छोर पर फूल नहीं रग बोलते हैं की दुनिया हैं। हँसने-हँसाने के लिए कविता में उन्हें कम समय मिलता है। पर यह उनके व्यक्तित्व का बहुत महत्वपूर्ण पक्ष है। इस दृष्टि से पत्रों का गद्य उनकी कविता का पूरक है। वह कवि केदारनाथ अग्रवाल का गद्य है, यह तथ्य भुलाकर भी आप उनका आस्वादन कर सकते हैं। और हास्य विनोद तो उसका एक पक्ष है, बहुत जगह तो वह कविता बन जाता है, छायावादी शब्दावली में रचा हुआ गद्य-काव्य नहीं, यथार्थवादी कविता, ऐसा गद्य जो अपनी गद्य की जमीन नहीं छोड़ता, फिर भी कविता बन जाती है।”¹²⁵ केदार में आस-पास की चीजों को देखने और उनका वर्णन करने की जबर्दस्त क्षमता है। केदार का व्यक्तित्व उनके कृतित्व के माध्यम से हिन्दी जनता के समक्ष प्रकट हो चुका है।

“कविता में वह खुलकर बोलते हैं, फिर भी जो वहाँ नहीं कहा, वह यहाँ है। जिस कारखाने में उनकी कविता ढलती है, उसे आप भीतर से यहाँ देख सकते हैं। जो सामग्री कविता में नहीं ढाली गयी पर कविता से घटकर नहीं है, वह भी आपको यहाँ मिलेगी। 23.7.58 के पत्र में केदार लिखते हैं, “सामने नल चल रहा है। बाल्टी भर रही है। पानी बोल रहा है। आंगन के कच्चे कोने में, पहले भी कटी, रातरानी ने पत्तियाँ निकाल दी हैं।”¹²⁶ ‘पानी बोल रहा है’ में पानी का बोलना भी व्यंजनापूर्ण है। पानी साधारण जनता को आसानी से उपलब्ध होने वाली चीज है, लेकिन आधुनिक काल में आधुनिकता की आपा-धापी में पानी भी बोलने लग गया है। केदार की

कविता 'रात की रानी' के लिए पत्तियाँ निकालने वाली कविता है। 'बीती विभावरी जागरी' की कविता न होकर निराशा के अवसादपूर्ण क्षणों में ढाँढस बँधाने वाली कविता है।

5 11 83 के पत्र में केदार ने कहा था "सास का जोर पक्तियों में आवे, मेरी यह साधना है।"¹²⁷ आदमी के सास लेने की तरह उनकी कविता सहज है, उनके सास लेने की आवाज उनके पत्रों में ध्वनित है। रामविलास शर्मा लिखते हैं, "जब वह कचहरी से बाहर होते हैं तब उनकी हर सास कविता होती है। लेकिन सताकर भी कचहरी उन्हें कविता दे जाती है। '11/5 से सुबह की कचहरी हो जायेगी। साढ़े छ बजे सुबह से 1 बजे दिन तक। तब तो समझो घिर जाऊँगा। चूर-चूर हो जाऊँगा। पर किया क्या जाए। पेट के लिए गर्भवती की तरह जिऊँगा। न खा पाऊँगा, न घूम-फिर सकूँगा। (4 5 64) विरोधी परिवेश से लेती टक्कर — यह केदार का जीवन।"¹²⁸

11 7 45 को रामविलास शर्मा केदार को लिखते हैं, "इलाहाबाद में पानी बरसा है और इतना कि जमुना का पानी गंगा में भरने लगा। बादा का क्या हाल है?" वर्णन प्राकृतिक है। निराला को 'तोड़ती पत्थर' में मजदूरनी गर्मी के दिनों में पत्थर तोड़ रही थी, लेकिन समय की करवटों के फलस्वरूप इलाहाबाद में पानी बरसा और जमुना का पानी गंगा में भरने लगा। प्राकृतिक वर्णन के बहाने समाज के यथार्थ को उद्घाटित करना 'मित्रों' के सवाद का विषय रहा है। यहाँ तो अभी बादलों की राह देख रहे हैं अर्थात् सभी स्थानों पर सामाजिक विकास की अवधारणा एक समान नहीं थी। कहीं अमीरी, कहीं गरीबी, कहीं शोषक, कहीं शोषण, कहीं गुलामी की जजीरो का जखीरा था। इस पत्र के द्वारा रामविलास शर्मा सामाजिक यथार्थ को उद्घाटित कर रहे हैं। 'बादलों' की तुलना निराला जी के 'बादल राग' से की जा सकती है। दरअसल वह युग गुलामी का था और स्वतंत्रता सभी स्थानों पर नहीं थी। अंग्रेजों का दमन-चक्र जारी था। निराला अथवा उस युग के लगभग सभी लेखकों, कवियों के यहाँ 'बादल' को प्रतीक रूप में देखा जा सकता है। बादल गर्जना का प्रतीक है और बादल राग स्वतंत्रता की अलाप का।

केदार कभी सूर की रचना पढ़कर आनन्दित होते हैं तो कभी रोन्सार्ड की रचना को बढ़िया बताते हैं। दोनों के मूल में प्रकृति के प्रति उत्कटता का भाव ही है। 26 8 57 के पत्र में केदार लिखते हैं, 'सूर की रचना पढ़कर आनंद प्राप्त हो गया। मुझे 'नृत्यन मदन फूले' वाला पूराबद बहुत अच्छा लगा। 'मन के मनोज फूले हलधर वर को' यह पक्ति तो लाजवाब है। ऊपर का सा वर्णन तो सभी लोग करते हैं, 'मन के मनोज' फूलने में सारी खूबी है। 'गरज' कारे भरे जूथ जलधर के 'पक्ति अच्छी है। रोन्सार्ड की रचना बढ़िया है। खूब है। जहाँ समुद्र है वहाँ फसल लहरायेगी। यह भाव गजब का है। यह उसकी तीव्र अनुभूति का परिचायक है। भाव भूमि पर पहुँच कर वैज्ञानिक, वैचारिक, कवि तथा तार्किक — सब एक स्वर से कुहक उठते हैं, कोयल जैसे।"¹²⁹ यहाँ भी प्रकृति में स्वच्छन्द विचरण करने वाली कोयल से उपमान दिया गया है। कोयल की बोल बड़ी मीठी होती है। हृदय को आह्लादित करने वाली होती है। तीव्र अनुभूति केदार के गद्य की विशेषता है। काल्पनिकता गद्य बनकर जितना केदार के यहाँ द्रष्टव्य है, अन्यत्र दुर्लभ।

3 9 57 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, 'तुम अभी मदन-मनोज के कवि हो। गरजत कारे भारे जूथ जलधर के' वह भी यमुना से श्यामल जल पर। धरती से आकाश तक

प्रकृति पुलकित है और उसके पुलक फूट पड़े हैं। उसकी सघनता में। सूर ने बादलों की फोटू नहीं खींची, कृष्ण जन्म पर गोपी-गवालों-गायों और तुम्हारे नृत्यन मदन के साथ उन्हें भी यमुना के जल पर पुलकित दिखलाया गया है। सावन भादों से अधिक प्रकृति को कभी रोमांचित देखा है? और तुम कहते हो— काव्य की विशेषता नहीं है। मालूम होता है, दिल की सरसों सूख गयी है।¹³⁰ सावन भादों का वर्णन रामविलास शर्मा के गद्य में दिखलाई पड़ता है। कविता की परंपरा में बारहमासा का वर्णन जायसी ने बड़ी तन्मयता के साथ किया है। 'पद्मावत' की उत्कृष्टता को बरकरार रखने में 'बारहमासा' का अदभुत योगदान है। परंपरा के चर्मोत्कर्ष जायसी के पद्मावत पर आचार्य राम चन्द्र शुक्ल की टिप्पणी है, "नागमती के विरहवर्णन के अंतर्गत यह प्रसिद्ध बारहमासा है जिसमें वेदना का अत्यंत निर्मल और कोमल स्वरूप, हिन्दू दांपत्य जीवन का अत्यंत मर्मस्पर्शी माधुर्य, अपने चारों ओर की प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों के साथ विशुद्ध भारतीय हृदय साक्ष्य की साहचर्य भावना तथा विषय के अनुरूप भाषा का अत्यंत स्निग्ध, सरल, मृदुल और आकृत्रिम प्रवाह देखने योग्य है।"¹³¹

1.4.57 को रची गयी कविता का उल्लेख 24.4.57 के पत्र में केदार कुछ इस तरह से करते हैं—

“आज अभी आँखें से
पर्वतीय निर्जन के धुंध-भरे घेरे में
कैद खड़े पेड़ों के मौन पड़े डेरे में
पातहीन डालों के आखिरी किनारों पर
पीत पगे फूलों के आरसी-कपोलों पर
दिन में ही जगर मगर दीपजले देखे हैं।”¹³²

इस कविता की रचना-प्रक्रिया के विषय में केदार पुनः लिखते हैं, “यह कविता मैंने प्रयाग जाते समय रेल के डिब्बे में उस समय लिखी थी जब मानिकपुर एक स्टेशन रह गया था और मैंने मानिकपुर की पहाड़ियों पर मौन खड़े नंगे पेड़ों की डालों के आखिरी किनारों पर में फूल पर देखे थे। हम डिब्बों में रस-सिक्त हो गये थे।”¹³³

केदार कभी डब्ल्यू.एस. लेंडर की कविता का 'विदाई' शीर्षक से अनुवाद करते हैं तो कभी 'कटैयाँ पर गीत' लिखते हैं। दोनों में ही प्रकृति विभिन्न तरीके से आयी है। कविता द्रष्टव्य है।—

“विदाई”
लडा नहीं मैं, अपनी मैंने जोट न पायी
पुण्य प्रकृति ही, ललित कला ही मुझ को भायी
जीवन-अग्नि जलाई-मैंने देह तपायी।
बंद हुई वह अग्नि, बुझी, दो मुझे बिदाई। 12.8.56

“कटैयाँ का गीत”

हमारे नगरों के चहुँ ओर
 सिपाही लडते हैं, झकझोर
 उमडता रहता है रणटोर
 तडपती जनता है सब ओर
 हमें दुःख भारी है
 हृदय में आता एक विचार
 गलाएँ युद्धों के औजार
 बनाएँ खेती का औजार
 काम में लाएँ कृषक-कमार
 इसी की बारी है
 करोड़ों लोगों में हो चाह
 हिलोरें लेता हो उत्साह
 कुमारी धरती का हो ब्याह
 बैल हल खींचे भरे उछाह
 जुलाई जारी हो।
 खेत में उपजे अन्न अपार
 कटाई का आये त्यौहार
 मगन मन नाचे सुख-संसार
 गीत की उमड़े, उमड़े पारावार
 सुहागिन नारी हो।¹³⁴

पुण्य प्रकृति किस प्रकार ग्रामीण संस्कृति को उद्घाटित करती है। उपर्युक्त कविता की एक-एक पंक्ति ग्रामीण जीवन, ग्रामीण संस्कृति और सभ्यता को उकेर कर रख देती है। 'गलाएँ युद्धों के औजार/बनाएँ खेती के औजार' की सार्थकता वर्तमान दौर में 'परमाणु-वर्चस्व की लड़ाई' में है। आज विश्व के लगभग सभी देश 'हथियारों की होड़' में एक-दूसरे से आगे निकलना चाहते हैं। भारत भी अपनी मूल संस्कृति ग्रामीण-संस्कृति को त्यागकर पूँजीवादी सरगना बनना चाहता है। विभिन्न प्रांतों में किसान मर रहे हैं। कहीं-कहीं फसलों के नष्ट हो जाने पर वे आत्म हत्या तक के लिए बाध्य हो रहे हैं। लेकिन हमारी सरकार किसानों पर ध्यान न देकर हथियारों पर ध्यान दे रही है। सूखे की स्थिति बार-बार उत्पन्न हो रही है। ऐसे में केदार की कविता किसान जीवन की आत्मीय कविता हो जाती है।

'मित्र-संवाद' के एक पत्र में केदार लिखते हैं, "तुम भूखे होओगे। रोटी की ही बात सुनो।

रोटी के पैदा होते ही
 बुझी आँख में जुगनू चमके
 और थका दिल
 फिर से हुलसा,

जी हाथों में आया,
और होठ मुसकाये,
घर मेरा वीरान पड़ा
आबाद हो गया

कैसी है रोटी?"¹³⁵ रोटी साधारण जनता 'सर्वहारा' की प्रमुख आवश्यकता है। लेकिन 'सर्वहारा' को वक्त की रोटी भी नहीं मयस्सर होती। केदार का सिर्फ रामविलास शर्मा से 'संवाद' नहीं है बल्कि पूरे समाज के साथ साक्षात्कार है। केदार की कविता 'समाज' के साक्षात्कार की कविता है। इसी पत्र में उल्लिखित एक कविता और देखी जाए—

हंस है आकाश,
धरती सेब है,
और यह दोनों सनातन सत्य हैं
आदि में थे और अब भी आज हैं
और आगे भी रहेंगे
शेष चाहें कुछ बाकी न रहे।"¹³⁶

केदार की कविताओं में उपमानों का विलक्षण संयोग है तभी रामविलास शर्मा लिखते हैं, "तुम्हारी कविताओं में अब भी ताजगी है, अनूठापन हैं, उपमानों का चमत्कारी प्रभाव है, तीक्ष्ण और कोमल संवेदनाएँ हैं।"¹³⁷

12.9.57 के पत्र में रामविलास शर्मा केदार को सूर की कविता के बहाने प्रकृति को किस तरह कविता में रूपायित करना चाहिए समझाते हैं— "तुमने लिखा है — सूर को चाहिए था कि वह जलधरो को झुके हुए दिखाते, उनके बिम्बों से जमुना को दुगुनी प्रसन्नता दिखाते, शायद सूर वह भूल गये थे।

तुम यह भूल गये हो कि इस समय जमुना और जलधर दोनों ही आपा खाये एक तीसरे ही आनंद में मग्न हैं। यह वही आनंद है जिसने धेनु, गोपी, ग्वाल, अंकुरित पुन्य, मदन और मनोज सभी को एक डोर में बांध दिया है। उसी डोर में जमुना और जलधर भी बंधे हैं। फिर जलधरों को क्या पड़ी है जो जमुना पर झुके, वहाँ तो जमुना ही रात्रि को लैंप बुझाती हुई कवि-पत्नी की तरह उमंग रही है... जमुना और जलधरों की श्यामलता के साथ कुंज पुंजों की हरीतिमा कैसी मिल गयी है; साथ में इस की कल्पना भी कर लो।"¹³⁸ विश्लेषण कितना सटीक है और रामविलास शर्मा का गद्य प्राकृतिक कवियों के साहचर्य के फलस्वरूप गद्य-काव्य का स्वरूप ग्रहण कर लेता है।

रामविलास शर्मा की 'रूप-तरंग' में सवल काव्यमय जीवनानुभूति मिलती है। जिस पर केदार की टिप्पणी है— "इतनी सबल काव्यमय जीवनानुभूति शायद ही किसी अन्य पुस्तक में मिलेगी। दृष्टिकोण युगान्तरकारी है। यदि आज्ञा हो तो कहूँ कि प्रत्येक पंक्ति साहसी के माथे की चमकती रेखा है और प्रत्येक कविता पनघट से लौटती हुई सुन्दरी के सिर पर धरी कनक-कलसी है— जिसमें नीर नहीं रस और राग ही राग भरा है।"¹³⁹ सुंदरी पनघट से लौट

रही है। 'श्रम' करके लौट रही है। बिन 'श्रम' के जीवन व्यर्थ है। रामविलास शर्मा 'श्रम' के कवि कहलाने के अधिकारी हो सकते हैं।

रामविलास शर्मा को केदार की कौन सी कविता अच्छी लगती है। 17 1 55 के पत्र में देखा जा सकता है, "तुम्हारी सबसे बढ़िया कविताएँ वही लगी जहाँ तुमने जीते-जागते रेखाचित्र दिये हैं जैसे दफा 110 के मुजरिम के, पूँजीपति के बेटे के। उसके बाद बढ़िया लगी वह कविताएँ जहाँ तुमने प्रकृति के चित्र दिये हैं— धरती पर उतरती धूप के, शिव के जटाबूट पर उतरती गंगा फूल कटोरो से मुस्काती नगरी। उसके बाद तुम्हारी आह्वान वाली कविताएँ हैं। तुम्हारी कविताओं में सबसे बड़ा गुण यह है कि वह लोक-कला के इतने नजदीक हैं कि उसका एक अंग सा बन गयी है। वह जनता द्वारा तुरत अपनाई जा सकती है और उसके जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन ला सकती है।"¹⁴⁰ वस्तुतः केदार का काव्य वही उत्कृष्टता के धरातल पर पहुँचता है जहाँ आम जन जीवन का प्रकृति के साथ तादात्म्य होता है। 23 7 58 में पत्र में कुछ कविताएँ द्रष्टव्य हैं—

मैं बादल हूँ
आषाढी जामुन के रंग का,
लेकिन तप कर
मैं बादल हो गया कनक का,
और तुम्हारा क्षेत्र हो गया।

लिपट गयी जो धूल पॉव से
वह गोरी है इस गाँव की
जिसे उठाया नहीं किसी ने
इस कुठाव से
मिटटी का यह श्याम हरित तन
तरुवर
इस पर बैठी नीले रंग की चिड़िया
मेरे मन का सुआ घुमक्कड़ बगीचो का,
हरी डाल पर नहीं ठूठ पर आ बैठा है,
जैसे पत्ता एक बचा हो गिर जाने से
पतझर में जो बोध कराता है सावन का
हरियाली जब फूट निकलती है पेड़ों से
बूढ़े वन में भी तरुणाई की उमंग से

धूप नहीं, यह
बैठा है खरगोश पलग पर
उजला,

रोएँदार, मुलायम

जिसको छू कर

ज्ञान हो गया है जीने का।¹⁴¹ 'मित्र सवाद' में सवादात्मकता की स्थिति लगातार बनी रहती है। कही कविता में तो कही गद्य में प्रकृति की निरंतरता से गद्य पढ़ने की रुचि बनी रहती है। रामविलास शर्मा केदार को लिखते हैं, "आज सवेरे घनघोर कुहरा था। और दिन में 6 बजे घूमने जाता था। आज 7 बजे गया। आम के पत्ते, पीपल के पत्ते, बरगद के पत्ते, सबसे ओस की बूंदें टपकने का स्टाइल अलग-अलग था।"¹⁴²

इस प्रकार 'मित्र-सवाद' के 56 वर्षों के पत्रों में प्रकृति किन-किन का साहचर्य प्राप्त करती है। किसानों के यहाँ ऋतुओं, बादलों की शोभा का क्या महत्व है, उद्घाटित है। कवि या लेखक अपनी प्रकृति व परिवेश से गहरे रूप में जुड़ा होता है। उनकी अभिव्यक्ति साहित्यकार के रचनाकौशल का अंग बन जाती है। 'मित्र-सवाद' में दोनों मित्रों की जीवन्तता को उद्घाटित करने में प्रकृति की महत्वपूर्ण भूमिका रही है, किंतु दोनों मित्रों की प्रकृति का भावबोध नितांत आधुनिक है। वहाँ पर प्राचीन कवियों की उपमा सी सूझबूझ नहीं दिखलाई पड़ती बल्कि 'मित्र-सवाद' में अभिव्यक्त प्रकृति सहज स्वाभावोद्गार है।

उप अध्याय—छः

साहित्येतर कलाएँ

मनुष्य स्वभावतया सामाजिक होता है। समाज में चीजे अन्योन्याश्रित होती हैं। एक दूसरे से उनका गहरा जुड़ाव होता है। 'मित्र सवाद' में पत्रों के माध्यम से साहित्य जगत के अलावा अन्य चीजों पर विचार किया गया है। दरअसल सवाद की सार्थकता तभी हो सकती है जब समाज की संपूर्ण विरासत और परंपरा पर बात की जाए। भौतिक और अभौतिक के द्वन्द्व पर बात की जाए। भौतिकता और अभौतिकता की द्वन्द्वात्मकता के परिणामस्वरूप समाज व साहित्य दोनों का विकास संभव है। इसी के परिणामस्वरूप 'मित्र-सवाद' का भी विकास होता है। साहित्यिक विमर्श के दौरान अन्यान्य चीजों पर भी मित्रों का सवाद बहस को नया आयाम देता है। 'सवाद' में दोनों मित्र साहित्यकारों पर बात करने के साथ ही परिवार, राजनीति, अर्थ और प्रकृति के क्षेत्र का भी समावेश करते हैं। कभी-कभी इन चीजों से इतर भी विमर्श चलता रहता है जो कि सवाद का रूप अख्तियार करता है।

3136 के पत्र में रामविलास शर्मा केदार को लिखते हैं, "विद्यार्थियों का वर्ष तो जुलाई या अगस्त से ही शुरू होता है। अथवा हम हिन्दुओं का चैत्र से जो बधाई देने के लिए अधिक उपयुक्त अवसर जान पड़ता है।"¹⁴³ रामविलास शर्मा विद्यार्थियों के वर्ष पर बात करते हुए उनके उत्साह को परिलक्षित करते हैं। विद्यार्थी जुलाई महीने में विद्यालयों में जाते हैं। पिछली कक्षाओं को छोड़कर नयी कक्षा में जाने का मन में अभूतपूर्व उत्साह होता है। नवीनता का आरंभ होता है। नये माह की शुरुआत हिन्दू संस्कृति में चैत्र माह से मानी जाती है। ध्यान देने की ही बात है कि पत्र लिखने की तारीख 3136 है। सन 1936 के वर्ष का लगभग प्रारंभ दिन। अंग्रेजी महीने का प्रारंभ जनवरी माह में होता है। अंग्रेजी परंपरा में बधाई देने के साथ ही रामविलास शर्मा को

भारतीयता की याद भूलती नहीं। दरअसल वह अपनी परंपरा से जुड़े हुए रचनाकार थे। “क्या नये वर्ष के लिए तुम्हें बधाई दूँ? पहले तो कुछ ऐसा दिखाई नहीं देता जो नया हो गया हो। तारीख की सन में अलबत्ता परिवर्तन हुआ है और लिखने में बहुधा पुराना सन् लिख जाता है।”¹⁴⁴

रामविलास शर्मा के पत्र बेहद आत्मीय हैं। मित्रता में पत्रों के छपने का भय नहीं होता। पत्र-विधा में रचनाकार नितांत आत्मीय होकर बात करता है। इसलिए गाली साली की चिंता भी उसे नहीं रहती। बेधड़क होकर बातें करता है। 5.12.43 को लिखे पत्र में केदार कुछ इस तरह प्रस्तुत होते हैं, “मैंने तो तुम्हें लम्बा पत्र लिखा और भेजा, तुमने एक छोटा सा ‘टुटलूँ दूँ’ पोस्ट कार्ड ही मेरी खिदमत में पेश किया। मैं नहीं जानता कि सिवाय साहित्यिक जबान में तुम्हें गाली दूँ और क्या कहूँ। कविताएँ नहीं अच्छी रह जाने भी दो। दोस्त खत को तो बसन्त की बहार से भर देते। लिखने वाले साले लिखा ही करते हैं पर बेचारों की दो या तीन चीजें पूरी उतरती हैं।”¹⁴⁵ केदारनाथ अग्रवाल को Free Verse का माध्यम मिला था। इसमें रोज की बोली का सजीव रूप मिलता है। केदार लिखते हैं, “शर्मा मेरी राय मानो तो तुम मुझे तुकांत लिखने की यह सलाह न दो। मैं तुम्हारा केदार हूँ। वैसे तो मानूंगा ही पर तनिक और सोच लो। लोग गधे होते हैं—हरामजादे होते हैं, उन्हें तो तुम जितने घूँट पानी पिलाओगे वह उतने घूँट वैसा पानी पियेंगे। उनकी खुद की रुचि क्या है। वह लेखक की कलम के साथ नाचते हैं ताब भर हो मेरी कलम में तो उन्हें ऊबने न दूँगा। ऐसे तरीके से लिखूँगा जो नई होगी। मैं पुराना तरीका उसे ही नहीं देता। सांस का जोर पंक्तियों में आवे, मेरी यह साधना है।”¹⁴⁶ केदार की यह उत्कट इच्छा थी कि सांस का जोर कविता में आये। उनके निरंतर प्रयत्न से उनकी कविता का स्वरूप निखरता गया।

15.1.47 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, “इस समय कालेज में बैठे हुए हम तुम्हें खत लिख रहे हैं। बहुत ही मनहूस वातावरण है। 80 लड़के इम्तहान दे रहे हैं। यानी मेरी आँख बचाकर बात करने, डेस्क में रखी हुई किताब देखने और जेब से कागज निकालने की कोशिश कर रहे हैं। कुछ लोग छत की तरफ देख रहे हैं। कुछ रात की घोटी हुई चीजें जल्दी से कागज पर उतारने की कोशिश में हैं।”¹⁴⁷ रामविलास शर्मा की चिंता परीक्षा-प्रणाली को लेकर है। भारतीय शिक्षा प्रणाली किस कदर अंधकार के गर्त में डूबी जा रही थी, उस पर उन्होंने गौर किया है। आज भी वर्तमान शिक्षा प्रणाली निहायत परंपरागत है। तकनीकी शिक्षा का अभाव, व्यवसायिक शिक्षा का अभाव, रटंत विद्या ‘डिग्रियों’ का ढेर तो लगा देती है किंतु उसकी सार्थकता नहीं के बराबर होती है। चारों ओर लोग निरर्थक होकर घूम रहे हैं। नकल करना या रट कर परीक्षा पास कर लेने को गांधी जी भी अच्छा नहीं मानते थे, बल्कि वह तो इसे पास समझते थे। यहाँ पर आकर एक स्तर पर रामविलास शर्मा गांधी जी की सत्य की परंपरा से जुड़ जाते हैं।

29.12.47 के पत्र में केदार लिखते हैं, “दो कविताएँ भेज रहा हूँ पढ़ना और मेरी ही तरह कंधे में राइफल धरे दौड़-दौड़ कर फिर उसे सीने के पास लाकर आगरे की अपनी छत से जोर-जोर से धाँय-धाँय दागना ताकि कश्मीर के बैरियों के सीने फट जाएँ और जनता का कश्मीर जीते।”¹⁴⁸ कश्मीर समस्या भारत की आजादी के साथ आज तक ज्यों की त्यों बरकरार है। ‘जोर-जोर से धाँय-धाँय दागना’ युद्ध तो युद्ध है चाहे वह युद्ध के मैदान में लड़ा जाय या कविता के मैदान में। कविता के मैदान में युद्ध लड़ना साहित्यकारों का काम है। कश्मीर के बैरी

आज भी उत्पात मचा रहे हैं। सांप्रदायिकता का जहर आज भी वहाँ की कट्टरपंथी जनता में भरा हुआ है। जनता वहाँ मर रही है। सीमा पर डटे हुए सिपाही शहीद हो रहे हैं। केदार की एक कविता द्रष्टव्य है—

“मरकर भी जो मरे नहीं
वह अमर हो गये।
जीकर भी जो जिये नहीं
वह कहर हो गये।” (1 दिसम्बर 81)¹⁴⁹

11.4.44 के पत्र में केदार लिखते हैं, “आगरा के ताजमहल के संगमरमर पर अपना हाथ फेरना चाहता हूँ और मुमताज की शीतलता को गरमाना चाहता हूँ।”¹⁵⁰ मुगलकालीन शहंशाह शाहजहाँ ने अपनी बेगम मुमताज महल की यादों को ताजा करने के लिए आगरा में ताजमहल का निर्माण कराया था। यह मजार अपनी भव्यता और विशालता के कारण आकर्षक है। अद्भुतता इसका सर्वोपरि गुण है। विश्व के सात आश्चर्यों में से एक ताजमहल देशी-विदेशी पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र है। पत्नी, प्रेम का ऐसा उदाहरण कला के इतिहास में दुर्लभ है। कला का रिश्ता अपने युग, परिवेश से होता है। ‘कला’ के रूप में निखरी ‘ताजमहल’ आज भी लोगों के आकर्षण का केन्द्र क्यों है? कला कालजयी होती है। शहंशाह, शाहजहाँ महान था। उसकी बेगम भी महान सुंदरी थी। पत्नी की याद में बनवायी गयी कला कालजयी हो गयी।

रामविलास शर्मा के पत्र में जहाँ-तहाँ हिन्दुओं के त्यौहारों का वर्णन है। त्यौहार हिन्दुओं की संस्कृति का अंग है। कभी वह शिवरात्रि छुट्टी का जिक्र करते हैं तो कभी अन्यान्य का। “आज शिवरात्रि की छुट्टी है, फिर भी सबेरे ढाई घंटे पढ़ा आया।”¹⁵¹ पढ़ना-पढ़ाना रामविलास शर्मा का लत था। कभी वह विकासवाद की चर्चा करते हैं। “हर वैज्ञानिक कवि हृदय होता है। डारविन ने पॉच साल तक बीगल जहाज पर विश्वभ्रमण किया था और परा-पौधों के संबंध में सामग्री एकत्र की थी। उसकी वर्णन करने की क्षमता अद्भुत है। ब्राजील के वनों और वहाँ स्पेन से आये निवासियों के जीवन के वर्णन में उसने कवि और कथाकार की कला का परिचय दिया है।”¹⁵² तो कभी चार्ल्स लैब के पत्रों की चर्चा इसी पत्र में करते हैं, “चार्ल्स लैब के पत्र पढ़ते हुए उसकी वीरता पर बड़ी श्रद्धा हुई। उसकी बहिन अर्द्ध-विक्षिप्त और अर्द्ध मृत सी थी लेकिन उसके निबंधों में इस ट्रेजडी की छाया भी नहीं पड़ने पाई। भाषा पर उसका अधिकार शेक्सपियर जैसा है। हकलाता भी था, शराब भी बहुत पीता था, क्या करे, जन्म भर क्वारा भी तो रहा था।”

रामविलास शर्मा को केदार की कविता पढ़ते हुए वाल्ट व्हिटमैन याद आते हैं। वह लिखते हैं, “अपनी सरसों का जोड़ीदार Walt Whitman का Dandelion देखे,

Simple Fresh and fair from winter's close emerging
As if no artifice of fashion, bringners, politics hand ever been,
forth from its sunny noop of shetter'd grass innocent golden calm as the down,
The springs first dandelion shows its face.

यह कविता सत्तर साल के हिवटमैन ने लिखी थी— अपनी आयु के समान पूर्ण। भाव और शब्द किस सहज डोर से बधे हैं और प्रकृति का वही स्पन्दन जो कालिदास ने सुना था, यहाँ भी है।¹⁵³

कभी—कभी पत्रों में नामों की सार्थकता पर भी बहस होती है। कंदार लिखते हैं, 'तुम तो सूर्यवशी राम हो। रामविलास ने किया था— दूसरे शब्दों में कुल की रीति के विपरीत आचरण करते थे, तभी तो सीता हरण हुआ। और जब फिर मिली भी तो राम उन्हें न रख सके— तुमने राम के आगे पुरुषत्व का चिन्ह "विलास न लगाकर उनके पुल्लिंग होने का सबूत तो दे दिया। बधाई है हजरत आपको इसीलिए मुहम्मद साहब के पुसकत्व की याद करके तुम्हें जनाब मन संबोधित कर रहा हूँ।'¹⁵⁴

1158 को कंदार पत्र में नये वर्ष की बधाई कुछ इस तरह देते हैं, "नये साल की बधाई लो। इस वक्त सबेरे का सूरज बादलों का लिहाफ ओढ़ कर अपने आसमानी घर में शायद चाय पी रहा है। वहाँ कोई पकौड़ी बनाने वाला या मुगौड़ा बनाने वाला नहीं है, इससे वह केवल चाय पी रहा होगा।"¹⁵⁵ चाय लोगों के स्वागत का प्रतीक बन गया है। आज चाहे सर्वहारा हो, चाहे पूँजीपति सभी के यहाँ चाय की प्याली जरूर मिल जाएगी, हाँ पकौड़ी चाहे न मिले। कंदार की कविताओं में इस तरह के प्रतीक कई स्थलों पर विद्यमान हैं।

"सिंहासनस्थ है श्रीमान् गिरगिटान
मेरे गुलाब के फूले खड़े पेड़ पर
प्रकृति की रम्य रचना का आस्वाद लेते
सुगंध से सतुष्ट
गिरगिटान, कोई और नहीं,
राजस्थ पर सवार मंत्री लगता है,
जिसके चलाए
रथ चक्र नहीं चलता। (6 जून 82)"¹⁵⁶

भारत में ट्रेने देर से चलती थी। आज भी स्थिति कुछ अधिक बदली नहीं है। घर से निकले, गतव्य पर पता नहीं कब पहुँचेंगे। ऐसे ही एक पत्र में कंदार लिखते हैं, "मुझे चिंता थी कि तुम आगरे न पहुँच पाये होगे। ट्रेनों की अनियमितता के कारण।"¹⁵⁷ ट्रेनों की व्यवस्था के बहाने मित्रों के लिए जो तडप है, इस पत्र में परिलक्षित होता है। 'अपूर्वा' में एक कविता से मिलान करके देखा जाए—

जीने का दुख
न जीने के सुख से बेहतर है,
इसलिए कि
दुख में तपा आदमी
आदमी—आदमी के लिए तडपता है,
दुख से सजा आदमी

आदमी-आदमी के लिए
आदमी नहीं रहता है।¹⁵⁸

दोनों मित्रों में एक-दूसरे के प्रति तडप थी। कौन क्या कर रहा है। घर पहुँचा कि नहीं। यदि नहीं पहुँचा तो कारण क्या रहा होगा। सारी चिंताएँ हैं। तभी दोनों नितात आत्मीय पत्र सवाद की स्थिति तक पहुँच जाते हैं। केदार की एक कविता पुनः द्रष्टव्य है—

जो हमारे साथ है
वह
हमारे हाथ है,
कर्म के करतार है,
रूचिर
रचनाकार है।¹⁵⁹

दोनों मित्र एक-दूसरे के हाथ हैं। कर्म के करतार हैं, साथ ही महान रचनाकार हैं। एक प्रतिष्ठित आलोचक और दूसरा प्रगतिशील कवि।

13 10 60 के पत्र में केदार लिखते हैं, “पिकासो का एक चित्र ‘कृति’ में देखा कि दो नगी औरते पास-पास बैठी हैं। सिवाय अंगों के यथार्थ चित्रण के और कुछ नहीं पल्ले पड़ा। हॉ ब्रुश में माहिर वह कलाकार रेखाओं को ही मिटा चुका है। दोनों के शरीर में मांसलता सपाट पर है। दूसरा चित्र है उसी का। सभोग की क्रिया में नर और नारी खड़े हैं। पार्श्व में भी कुछ यही हो रहा है। यह भी निरावरण झाकी है। राम जाने क्यों यह सब ऊँची कला है। केवल निर्भीकता और दुस्साहस ही कला नहीं है। पिकासो कुछ और है।¹⁶⁰ पिकासो एक बड़े चित्रकार है। बात निर्भीकता की नहीं, बात कला के प्रदर्शन की है। कला को यदि स्वरथ नजरिये से देखा जाएगा तो कला की सार्थकता स्पष्ट होगी। ‘सभोग की क्रिया में नर-नारी खड़े हैं।’ सभोग की क्रिया के पीछे छिपी हुई अभिव्यक्ति का प्रश्न है। ध्यान से देखने पर स्पष्ट होता है कि यह क्रिया प्रकृति में मनुष्यों की निरंतरता का साक्षात् प्रमाण है। यदि चित्रकार इस क्रिया को पेटिंग में अभिव्यक्त कर रहा है तो मेरी समझ में यह उसका बेलागपन है। अरुण प्रकाश के प्रश्नों के जवाब के सिलसिले में मैनेजर पाण्डेय कहते हैं, “चाहे वह प्रेम की स्थिति का ही चित्रण हो। मुझे लगता है कि जहाँ स्वानुभूति का सवाल है, उस पर ध्यान दीजिए तो लगता है कि अगर सभोग के प्रसंग पुरुष का अनुभव एक हो सकता है तो स्त्री का भी अलग अनुभव हो सकता है और उस अनुभव को अगर वह अभिव्यक्त करना चाहते हैं तो मुझे उससे दुखी होने का कोई अधिकार नहीं है।¹⁶¹

पिकासो के चित्र के बरक्स अमृत शेरगिल के चित्रों पर भी केदार बात करते हैं “अमृता शेरगिल का एक चित्र Illustrated Weekly में आया है — देहाती युवती, काली-कलूटी, कमर में सिर्फ एक चीथड़ा लगाये, निरावरण खड़ी है — दाहिने हाथ की गदोरी में एक लट लिए। हथेली लाल है जैसे दहक रही है। आँखें अधेरी चमड़ी को भेद कर कुछ-कुछ मुलमुला रही हैं। इसके अतिरिक्त पीछे से कुछ लाली अधेरा फोड़ कर झलक दे रही है। यथार्थ की यह कृति अपनी गठन में अच्छी है। मालूम होता है कि मौन अधेरे की नदी बह रही है। भोर होने से पहले झिलमिलाती आ रही है लाली में, अपने दो कठोर द्वीपों को घेरे, जघाओं से नीचे जाती। सूरज

चाद, सितारे, जुगनू और बिजली की किरणें सब डूब गयी हैं उसके तन में।¹⁶² यथार्थ चित्रण पर केदार जिस तरह से टिप्पणी कर रहे हैं, ऐसा लगता है जैसे वह कोई कविता लिख रहे हों। दीप की लौ-से दिन' में केदार इस तरह लिखते हैं-

भूल सकता मैं नहीं
ये कुच-खुले दिन,
ओठ से चूमे गये,
उजले, धुले दिन,
जो तुम्हारे साथ बीते
रस-भरे दिन,
बावरे दिन,
दीप की लौ से
गरम दिन।¹⁶³

14 4 62 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, "मोपासा ने एक उपन्यास में लिखा है। कला प्रेमी विधवा, चारों ओर मडलाने वाले कलाकार, वह सब से खेलती है, अंत में मिलता है एक पुरुष जो कलाकार नहीं है। बड़ी साधना के बाद बेचारा उसे प्राप्त करता है लेकिन प्राप्ति के बाद उसे घोर निराशा होती है क्योंकि रमणी तन से बंधकर भी मन से दूर रहती है।"¹⁶⁴ मोपासा के साथ ही केदार माइकेल एजेलो की चर्चा करते हैं, "इधर Agony and Ecstasy पढ़ रहा हूँ। माइकेल एजेलो के जीवन पर आधारित इरविंग स्टोन का उपन्यास।"¹⁶⁵

22 83 के पत्र में केदारनाथ लिखते हैं, "तुम्हारा स्वास्थ्य पहले से ठीक है। यह सुनकर असीम आनंद हुआ। दोस्त अभी 'शतायु' पूरा करना शेष है। क्रिकेट में लोग अपनी-अपनी बल्लेबाजी के शतक पूरे कर रहे हैं। तुम भी शतक बनाओगे।"¹⁶⁶ क्रिकेट आज भारत का सर्वाधिक लोकप्रिय खेल है। सन 1983 में विश्वकप जीतने के बाद इसकी लोकप्रियता में जबर्दस्त उछाल आया है। क्रिकेट जनता की मानसिकता से जुड़ गया है। खासकर जब भारत-पाकिस्तान से मैच हो तो खेल का मैदान' न होकर 'रणभूमि' हो जाती है। क्रिकेट में रुचि रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल की थी। खेल भी उनके जीवन का हिस्सा है। जीवन के आयु की तुलना क्रिकेट के शतक से करते हैं।

इस प्रकार साहित्य के अलावा अन्य विषयों पर दृष्टि 'मित्र-सवाद' को रचनात्मक स्तर पर उत्कृष्ट बनाती है।

संदर्भ

- ¹ संपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1992, पृ स 9।
- ² वही, पृ स 119, 28 9 56 का पत्र।
- ³ वही, पृ स 119 28 9 56 का पत्र।
- ⁴ वही, पृ स 120 30 9 56 का पत्र।
- ⁵ वही, पृ स 163।
- ⁶ राम चन्द्र शुक्ल, त्रिवेणी, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी सवत् 2043, पृ स 37।
- ⁷ मैनेजर पाण्डेय, भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1993, द्वितीय संस्करण 1997, पृ स 42।
- ⁸ वही, पृ स 42।
- ⁹ संपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स.372।
- ¹⁰ वही, पृ स 372।
- ¹¹ वही, पृ स 58, 11 4.44 का पत्र।
- ¹² वही, पृ स 93, 27 10 47 का पत्र।
- ¹³ रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य साधना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1969, भाग-3, पृ स 417।
- ¹⁴ संपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 93, 27 10 47 का पत्र।
- ¹⁵ राम चन्द्र शुक्ल, त्रिवेणी, पृ स 71।
- ¹⁶ संपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 93, मई 1943 का पत्र।
- ¹⁷ राम चन्द्र शुक्ल, त्रिवेणी, पृ स 60-61।
- ¹⁸ संपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 47।
- ¹⁹ रामविलास शर्मा, आचार्य राम चन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला पेपर बैक संस्करण, 1993, पृ स 108।
- ²⁰ संपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 48।
- ²¹ रामविलास शर्मा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पटना, पहला संस्करण, पाचवा संस्करण, 199 , पृ स 17।
- ²² वही, तीसरे संस्करण की भूमिका शीर्षक से।
- ²³ वही, पृ स 63-64।
- ²⁴ वही, पृ स 64।
- ²⁵ वही, पृ स 66।
- ²⁶ संपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 36।
- ²⁷ रामविलास शर्मा, प्रेम चन्द और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पटना, पहला छात्र संस्करण, 1993, आवृत्ति, 1995, 1998, पृ सं 8। (पहले संस्करण की भूमिका)
- ²⁸ वही, पृ स 12।
- ²⁹ वही, पृ स 13।

-
- ³⁰ वही, पृ स 31 ।
- ³¹ वही, पृ स 43 ।
- ³² वही, पृ स 122 ।
- ³³ वही पृ स 126 ।
- ³⁴ वही, पृ स 130 ।
- ³⁵ सपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 33, 13 8 39 का पत्र ।
- ³⁶ जय शकर प्रसाद, आसू, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम लोकभारती संस्करण, 1988 पृ स 7 ।
- ³⁷ सपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 46, मई 1943 का पत्र ।
- ³⁸ वही, पृ स 205–206 ।
- ³⁹ वही, पृ स 207 ।
- ⁴⁰ नद किशोर नवल, निराला और मुक्तिबोध चार लम्बी कविताएँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, पहला संस्करण 1993, तीसरी आवृत्ति 2001, पृ स 57–58 ।
- ⁴¹ सपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 263, 15 10 61 का पत्र ।
- ⁴² वही, पृ स 264 ।
- ⁴³ वही, पृ स 259, 7 9 61 का पत्र ।
- ⁴⁴ वही, पृ स 339, 5 3 69 का पत्र ।
- ⁴⁵ वही, पृ स 341, 12 5 69 का पत्र ।
- ⁴⁶ वही, पृ स 308 ।
- ⁴⁷ सपादक नामवर सिंह, नागार्जुन प्रतिनिधि कविताएँ, भूमिका, पृ स 9–10 ।
- ⁴⁸ नागार्जुन, हजार–हजार बाहो वाली, प्रथम संस्करण 1994, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ स 11 ।
- ⁴⁹ सपादक नामवर सिंह, नागार्जुन प्रतिनिधि कविताएँ, भूमिका, पृ स 135 ।
- ⁵⁰ सपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 369, 19 11 73 का पत्र ।
- ⁵¹ बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ स 451 ।
- ⁵² सपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 22 ।
- ⁵³ वही, पृ स 107 ।
- ⁵⁴ वही पृ स 108 17 1 55 का पत्र ।
- ⁵⁵ वही पृ स 37 ।
- ⁵⁶ वही पृ स 43 17 2 43 का पत्र ।
- ⁵⁷ वही पृ स 57 26 3 44 का पत्र ।
- ⁵⁸ सपादक, रामविलास शर्मा, कवियों के पत्र, पृ स 19 ।
- ⁵⁹ सपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 231
- ⁶⁰ सपादक मजुल उपाध्याय, अथातो काव्य जिज्ञासा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, 1996, पृ स 42, लेखक विजय देव नारायण साही ।
- ⁶¹ वही, पृ स 43 ।
- ⁶² सपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 369, 19 11 73 का पत्र ।
- ⁶³ वही पृ स 103 ।

-
- ⁶¹ वही, पृ स 50, 11 11 43 का पत्र।
- ⁶⁵ वही, पृ स 40-41।
- ⁶⁶ वही।
- ⁶⁷ वही, पृ स 25।
- ⁶⁸ संपादक रामविलास शर्मा, राग-विराग, लोक भारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद, 199, पृ स।
- ⁶⁹ संपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 35।
- ⁷⁰ वही, पृ स 442, 4 12 83 का पत्र।
- ⁷¹ वही, पृ स 200।
- ⁷² वही, पृ स 257, 259।
- ⁷³ वही, पृ स 39।
- ⁷⁴ वही, पृ स 278, 14 4 62 का पत्र।
- ⁷⁵ वही, पृ स 134-135।
- ⁷⁶ वही, पृ स 377, 8 4 74 का पत्र।
- ⁷⁷ वही, पृ स 390, 17.4 75 का पत्र।
- ⁷⁸ वही, पृ स 340।
- ⁷⁹ वही, पृ स 269।
- ⁸⁰ वही, पृ स 102, 3 12.53 का पत्र।
- ⁸¹ वही, पृ स 523।
- ⁸² वही, पृ स 79, 3 6 46 का पत्र।
- ⁸³ वही, पृ स 86।
- ⁸⁴ वही, पृ स 115।
- ⁸⁵ अमृतराय, विचारधारा और साहित्य, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1984, पृ स 23।
- ⁸⁶ संपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 394।
- ⁸⁷ वही, पृ स 394।
- ⁸⁸ वही, पृ स 395, 12 4 76 का पत्र।
- ⁸⁹ वही, पृ स 396।
- ⁹⁰ वही पृ स 428।
- ⁹¹ वही, पृ स 430, 16 3 83 का पत्र।
- ⁹² वही, पृ स 446, 18 9 85 का पत्र।
- ⁹³ वही, पृ स 519, 6 1 90 का पत्र।
- ⁹⁴ वही, पृ स 301, 22 7 64 का पत्र।
- ⁹⁵ वही, पृ स 365, 27.10 72 का पत्र।
- ⁹⁶ वही, पृ स 354, 17 1 71 का पत्र।
- ⁹⁷ वही, पृ स 435, 20 5 83 का पत्र।
- ⁹⁸ वही, पृ स 293।
- ⁹⁹ वही, पृ स 258, 5 9 61 का पत्र।

-
- 100 वही, पृ स 263 ।
- 101 वही, पृ स 304 ।
- 102 वही, पृ स 34 ।
- 103 वही, पृ स 65, 8 3 45 का पत्र ।
- 104 वही, पृ स 67 ।
- 105 वही, पृ स 68, मार्च 1945 का पत्र ।
- 106 वही, पृ स 301, 5 8 64 का पत्र ।
- 107 वही, पृ स 501, 12 12.88 का पत्र ।
- 108 वही, पृ स 521, 12 2 90 का पत्र ।
- 109 वही, पृ स 236–237, 5 6 64 का पत्र ।
- 110 वही, पृ स 304 ।
- 111 वही, पृ स 497, 17 7 88 का पत्र ।
- 112 वही पृ स 74, 12 3 46 का पत्र ।
- 113 वही, पृ स 188 ।
- 114 वही, पृ स 130, 9 12.56 का पत्र ।
- 115 वही, पृ स 128–129, 6 12 56 का पत्र ।
- 116 राम स्वरूप चतुर्वेदी — हिन्दी साहित्य और सवेदना का विकास, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद
संस्करण 1991, पृ स 128 ।
- 117 वही, पृ स 128 ।
- 118 संपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 131 ।
- 119 वही, पृ स 133, 15 12.56 का पत्र ।
- 120 वही, पृ स 139–140, दिसम्बर 1956 का पत्र ।
- 121 वही, पृ स 141, 28 12 56 का पत्र ।
- 122 वही, पृ स 147 ।
- 123 वही, पृ स 149, 8 2.57 का पत्र ।
- 124 वही, पृ स 13 ।
- 125 वही, पृ स 12 ।
- 126 वही, पृ स 17 ।
- 127 वही पृ स 17 ।
- 128 वही
- 129 वही, पृ स 167 ।
- 130 वही, पृ स 168 ।
- 131 राम चन्द्र शुक्ल, त्रिवेणी, पृ सं 25–26 ।
- 132 संपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 160 ।
- 133 वही पृ स 160, 24 4 57 का पत्र ।
- 134 वही, पृ स 152–153 ।

-
- ¹³⁵ वही, पृ स 183—184, 11 4 58 का पत्र।
- ¹³⁶ वही, पृ स 185।
- ¹³⁷ वही, पृ स 111, 9 1 56 का पत्र।
- ¹³⁸ वही, पृ स 171।
- ¹³⁹ वही पृ स 112, 1 3 56 का पत्र।
- ¹⁴⁰ वही, पृ स 107।
- ¹⁴¹ वही, पृ स 193—195।
- ¹⁴² वही, पृ स 484, 17 12 87 का पत्र।
- ¹⁴³ वही, पृ स 22।
- ¹⁴⁴ वही, पृ स 22।
- ¹⁴⁵ वही, पृ स 51।
- ¹⁴⁶ वही, पृ स 515 12 43 का पत्र।
- ¹⁴⁷ वही, पृ स 81।
- ¹⁴⁸ वही, पृ स 96।
- ¹⁴⁹ केदारनाथ अग्रवाल— अपूर्वा, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 1984, पृ स 69।
- ¹⁵⁰ सपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 58।
- ¹⁵¹ सपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 149, 27 2 57 का पत्र।
- ¹⁵² वही, पृ स 150, 27 2 57 का पत्र।
- ¹⁵³ वही, पृ स 51।
- ¹⁵⁴ वही, पृ स 172, 13 9 57 का पत्र।
- ¹⁵⁵ वही पृ स 177।
- ¹⁵⁶ केदारनाथ अग्रवाल, अपूर्वा, पृ स 92।
- ¹⁵⁷ सपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 89, 16 9 47 का पत्र।
- ¹⁵⁸ केदारनाथ अग्रवाल, अपूर्वा, पृ स 30।
- ¹⁵⁹ वही पृ स 39।
- ¹⁶⁰ सपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 244।
- ¹⁶¹ सपादक किशन वाजपेयी, सवेद, फरवरी 2002, दिल्ली, पृ स 50—51।
- ¹⁶² सपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 244।
- ¹⁶³ केदारनाथ अग्रवाल फूल नहीं रग बोलते हैं, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण अगस्त 1977।
- ¹⁶⁴ वही, पृ स 279।
- ¹⁶⁵ वही पृ 295, 4 5 64 का पत्र।
- ¹⁶⁶ वही, पृ स 428।

अध्याय — चार

मित्र—संवाद के पत्रों की साहित्यिकता

उप अध्याय—एक

विचारधारा और साहित्य का अंतःसंबंध

उप अध्याय—दो

काव्य दृष्टि और मध्यकालीन काव्य का विश्लेषण

उप अध्याय—तीन

निराला, प्रगतिशील कविता और नई कविता

उप अध्याय—चार

गद्य साहित्य का विश्लेषण

उप अध्याय—पाँच

‘मित्र—संवाद’ का गद्य विधान

अध्याय – चार

मित्र-संवाद के पत्रों की साहित्यिकता

मित्र-संवाद छप्पन वर्षों के विस्तृत आयाम को उद्घाटित करने वाला सांस्कृतिक दस्तावेज है। इसमें युग की साहित्यिक झलक प्रतिबिम्बित होती है। साहित्य का समाज से गहरा सरोकार होता है। समाज समूह में लोगों के आपसी सौहार्द के तौर-तरीकों का जटिल स्वरूप है। “किसी समुदाय में निहित विभिन्न स्वरूपों, प्रक्रियाओं, संगठनों और संस्थाओं का समेकित रूप भी समाज को माना जाता है। भारतीय समाज की चरित्रगत विशेषताओं में वर्ग-व्यवस्था, कृषि आधारित वर्ग-व्यवस्था, बहु-संप्रदाय (अधिसंख्यक हिन्दू) विभिन्न क्षेत्रीय संस्कृतियाँ, संयुक्त परिवार तंत्र (शहरी क्षेत्रों में नाभिकीय परिवारों का बढ़ता चलन), आध्यात्मिक नजरिया, अंधविश्वास और परंपराओं में बदलाव का प्रतिरोध, लेकिन आधुनिकीकरण का प्रभाव भी दिखायी दे रहा है और सामाजिक परिवर्तन के चलते कई तरह की समस्याएँ और टकराव पैदा हो रहे हैं। यही आज के भारतीय समाज की पहचान बन गयी है।”¹ मित्र-संवाद में दो गहरे मित्रों की आपसी बातचीत (पत्र-व्यवहार) द्वारा सामाजिक-सांस्कृतिक सरोकारों पर दृष्टि डाली गई है। संवेदना के रचाव-बसाव द्वारा युग की समस्याओं को साहित्यिक विस्तार दिया गया है। मित्रों के मन में आर्थिक स्थिति पर किस तरह क्षोभ होता है, अपने पत्रों में किस तरह पारिवारिक मसलों पर एक-दूसरे की आत्मीयतापूर्वक जानकारी लेते हैं, साहित्यिक गलियारों में हो रही चर्चाओं, विवादों पर किस तरह टिप्पणी करते हैं, निराला के विरोध पर कितना संयमित और मर्यादित जवाब देते हैं, भाषा पर किस तरह का चिंतन परोसते हैं, ‘कविता क्या है’ की किस तरह परिभाषा करते हैं, कविता की परंपरा पर किस तरह की व्याख्या देते हैं, उपन्यास पर किस तरह की संवेदनात्मकता को उद्घाटित करते हैं, नाटक और नाटककारों पर किस तरह विचार करते हैं, निबंधों पर किस तरह सोचते हैं, साहित्यिक विवादों को किस तरह सुलझाते हैं, और किस तरह से एक वाक्य में ‘गागर में सागर’ भर देते हैं। इसकी जानकारी मित्र-संवाद में आद्योपांत मिल जाती है। ध्यातव्य है कि युग की समझ विचारधारात्मक और संवेदनात्मक स्तर पर मित्र-संवाद की साहित्यिकता को सांस्कृतिक दृष्टिकोण से तर्कपरक चिंतन बनाकर प्रस्तुत करती है।

“मानवों के बीच विविधता प्रजाति के स्तर पर, संस्कृति के स्तर पर, भाषा के स्तर पर और धर्म के स्तर पर दृष्टिगोचर होती है। भारत में सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से पर्याप्त विविधता दृष्टिगोचर होती है।”² इस पर मित्र संवाद में तर्कपरक चिंतन है। विविधताओं को संवेदना के माध्यम से समझा गया है। कविता की धारा में भक्तिकालीन कविता से लेकर नयी कविता तक की पड़ताल मित्र संवाद में यहाँ से वहाँ तक मिल जाती है। कविता की विविधता को समाज के दायरे में व्याख्यायित किया गया है। मजदूर और किसान जनता के शोषण पर दृष्टि डाली गयी है। “आदमी का अमानवीय शोषण और दमन के खिलाफ विद्रोह करना ही क्रांति है। मार्क्स के सिद्धांतों का केन्द्रीय बिन्दु मानव है। यह मानव कभी दासता की बेड़ियों में जकड़ा या कभी सामंतवादी व्यवस्था में प्रजा रूप में था और आज पूँजीवाद समाज में मजदूर है। मनुष्य का

अंतिम लक्ष्य उसकी स्वतंत्रता है और यह स्वतंत्रता जो बुनियादी है तब तक उसे नहीं मिल सकती जब तक उस पर अकुश रखने वाला राज्य नेस्तनाबूत नहीं होता, शोषण करने वाला पूँजीवादी वर्ग नहीं रहता।”³ मित्र सवाद एक स्तर पर आम जनता के शोषण को उद्घाटित करता है तो दूसरे स्तर पर युग की विषमताओं से टकराहट के लिए सम्बल प्रदान करता है। तीसरे स्तर पर क्रांति का घोषणा-पत्र बन जाता है।

मित्र सवाद के पत्र साहित्यिकता के धरातल पर अन्य विधाओं से जुड़ते हैं। कहीं पत्रों में कविता पर बहस है, कहीं आलोचना की विलक्षणता का दिग्दर्शन रचनात्मकता के नये धरातल को परत-दर-परत उकेरता चला जाता है। एक बहस तैयार होती है। एक दस्तावेज बनता है जो कि रचनाकारों के लिए अभूतपूर्व है। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं, “मित्र-सवाद के पत्रों में कई विधाओं का समावेश है। दो मित्रों की दो भाव सत्ताओं का ऐसा सहज योग अन्यत्र दुर्लभ है। निस्संदेह इन पत्रों का एक-दूसरे की रुचियों पर रचनाओं का प्रभाव पड़ा है।”⁴

मित्र सवाद के पत्र युग की समझ हैं। बाजार में बढ़ते उपभोक्तावाद और आर्थिक महगाई पर चर्चा है। पत्रों को लिखने के पीछे जो मशा है उसके कारणों की समझ भी आवश्यक है। सन् 1935 से लेकर 1991 तक छप्पन वर्षों का लंबा अंतराल है। परंतु भारत को दोनों मित्रों ने देखा था। गुलामी की जद्दोजहद में शुरू हुई बातचीत आजाद भारत के उदारीकरण तक की अभिव्यक्ति है। गुलाम भारत के शोषक अंग्रेज भले ही देश से बाहर चले गये हों किंतु व्यवस्था जस की तस है। बस शोषक स्वदेशी है। आजादी के नाम पर देखे गये सपने मित्र सवाद के अंतिम पत्र 25491 तक सच साबित नहीं हुए। आजाद भारत की तस्वीर अत्यंत भयावह है। सन् 1989 के पत्रों में आरक्षण आदि की चर्चा है। आरक्षण, जाति-बिरादरी के नाम पर शोषण की चक्की में स्वतंत्र भारत का युवक पिसा है। आम जनता का खून बहा है। ‘आप 1984 की सिख विरोधी हिंसा बाबरी मस्जिद के ध्वंस, गुजरात के सांप्रदायिक दंगों पर विचार करें। 1984 की हिंसा में दिल्ली की बाहरी बस्तियों- झुग्गी-झोपड़ियों के युवकों ने सबसे ज्यादा भाग लिया। मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार इन्हें सर्वहारा में परिणत होना चाहिए था। स्वातंत्र्योत्तर भारत में मजदूरों ने सांप्रदायिक दंगों में भाग लिया। बाबरी मस्जिद तोड़ने वालों में ये युवक सबसे आगे थे और गुजरात के दंगों में भी।”⁵

ये हत्यारे क्रूर भी हैं किंतु शोषक नहीं। ये खुद शोषक व्यवस्था के शिकार हैं। जैसे पागल कुत्ता खुद रोगग्रस्त होता है इसलिए दूसरों को काटता है। ये प्रायः बेरोजगार होते हैं। बेरोजगार युवक की कोई जगह नहीं होती। घर में बिल्कुल नहीं। वहाँ माता-पिता, भाई-बहन की आशा-आकांक्षा को पूरा न कर पाने का तिरस्कार होता है। और बेरोजगार, किकर्तव्यविमूढ़ युवक को भूमंडलीकरण अपार असीम आकांक्षाओं की हविस देता है। इस व्यवस्था में अपराध एक मात्र विकल्प है समकालीन मध्यवर्गीय, निम्नमध्यमवर्गीय, निम्नवर्गीय युवक के सामने। समाज में कोई राजनैतिक सांस्कृतिक आंदोलन होता जैसा कि स्वाधीनता आंदोलन था- तो ये युवक भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद बन सकते हैं। किंतु आजादी के बाद तेलगाना विद्रोह, नक्सलवादी और जय प्रकाश नारायण का संपूर्ण क्रांति आंदोलन ही ऐसे बड़े आंदोलन थे, जिनमें युवकों ने बड़ी संख्या में किसी बड़े उद्देश्य की पूर्ति के लिए भाग लिया।”⁶

‘मित्र-सवाद’ मेसमाज के सच को सवेदनात्मकता की सूक्ष्म विवृति के साथ रचनात्मकता का सस्पर्श दिया गया है। मित्र सवाद दो मित्रों के बीच हुआ विमर्श है, जो सवाद का स्वरूप ग्रहण करता है। शिव कुमार मिश्र लिखते हैं, “इस मित्र सवाद की दुनिया बड़ी विस्तृत और भरी-पूरी है। यह दोनों मित्रों के अलावा, उनके घर-परिवार, गाँव-जहान, नाते-रिश्तेदारों, परिचितों अपरिचितों के हर्ष-उल्लास, ताप-त्रास आदि की खोज खबर लेने और रखने वाली दुनिया ही नहीं, इन से आगे बढ़कर समाज, देश और पूरी पृथ्वी की आहटों को सुनने और सहजने वाली दुनिया है। इसमें अपना-अपना जीवन जीते तरह-तरह के लोग हैं, अपने नाना रूपों की प्रकृति हैं, उसके सहचर हैं, पूरे ब्राह्माण्ड तक प्रसार हैं, इस दुनिया का। मित्रों, परिचितों, नाते-रिश्तेदारों की जीवन से जुड़ी छोटी-मोटी बातों के अलावा समाज, साहित्य, राजनीति दर्शन, विज्ञान, कला, संस्कृति और न जाने कहाँ-कहाँ की बातें समायी हैं इस दुनिया में। हल्की-फुल्की चर्चाओं के साथ ज्ञान की गुरु गभीर चर्चाएँ हैं इसमें। मित्र हैं तो अमित्र (शत्रु नहीं) भी यहाँ हैं। शताब्दी के छ दशकों का एकदम भरा-पूरा परिचय तो नहीं है इसमें, परंतु इस काल-खंड की कुछ धडकने जरूर इसमें सुन पड़ती हैं। भरा-पूरा चित्रण और चर्चा पत्रों में संभव भी नहीं थी। चूँकि सवाद दो साहित्यिक मित्रों के बीच है, अतएव स्वभावतः दोनों मित्रों के अपने हाल-चाल के अलावा, उसमें साहित्य की चर्चा ही सर्वाधिक है। साहित्य की भी और साहित्य के माहौल की भी, खासतौर से कविता की। कविता के अलावा निबंध, आलोचनात्मक लेखों की, कभी-कभार उपन्यासों की। कहानी और नाटक की बातें लगभग नहीं हैं।”⁷

उप अध्याय—एक

विचारधारा और साहित्य का अंतःसंबंध

मित्र सवाद का साहित्यिक विस्तार रचनाशीलता की जमीन को तराशता है। दो मित्रों का आपसी पत्र व्यवहार साहित्यिक स्तर पर अनेक विधाओं को समृद्ध करता है और पत्र को तो चरमोत्कर्ष पर ले जाकर ‘सवाद’ — ‘पूरामिलन’ बना देता है। “सवाद में पहल निश्चय ही केदार जी की रही है, किंतु पत्रों को प्रस्तुत करने का श्रेय तो रामविलास जी को ही है। इन पत्रों के वास्तविक महत्व का बोध उन्हें ही था। आरंभिक दिनों में ही केदार जी को उन्होंने लिखा था, तुम्हारा पत्र बहुत सुन्दर था। गद्य काव्य। गद्य पर सुंदर आधिपत्य। बाद में ये पत्र प्रकाशित होने चाहिए। (31 8 38) अतः 1991 में उन्होंने इसे कर दिखाया।”⁸ इन पत्रों का संबंध साहित्य की अन्यान्य विधाओं से है। “इस सवाद में सवादी है हिन्दी के मूर्धन्य मार्क्सवादी समीक्षक डॉ रामविलास शर्मा और हिन्दी के शिखर प्रगतिशील कवियों में एक बाबू केदारनाथ अग्रवाल। दोनों ही उम्र के नव दशक में भी कर्मठ और क्रिएटिव, आगे की पीढ़ियों के लिए एक मिशाल, रचना और विचार की नई जमीनें अब भी तलाशने और तोड़ने के लिए आतुर और सचेष्ट, गुजर गए के साक्ष्य को सामने लाने के आगे की मजिलों पर निगाह गड़ाए, अपने वर्तमान और विद्यमान के साथ हाथापाई और मुठभेड़ करते हुए। कुछ के लिए उपेक्षित, चुके हुए, विवादास्पद, दूसरे कुछ के लिए, प्रेरक और मार्ग दर्शक। अपनी धुन में मस्त और बेपरवाह, तुरंत लक्ष्य को निगाह के दायरे में लिए हुए, “लाछना-ईधन हृदय-तल जले अनल” के बावजूद तमाम-कुछ की अवज्ञा कर काफी कुछ का ईंट का जवाब पत्थर से देने का हौसला रखनेवाले, देने वाले, और फिर अपनी

रचना, विचार तथा जीवन-यात्रा में आश्वस्ति और उत्साह के साथ आगे बढ़ते हुए।⁹ इस लेख के लिखने के समय तक दोनों मित्र जीवित थे। जीवन के अंतिम समय तक दोनों की रचनात्मकता निरंतर संवर्द्धित होती गई। दोनों मार्क्सवादी विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध रचनाकार थे। मित्र संवाद के पत्रों में उनकी विचारधारा का स्पष्ट प्रतिबिम्बित है, जो कि उनकी प्रतिबद्धता को उद्घाटित करती है।

ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति मनुष्य है। सोचने विचारने की शक्ति उसे अन्य सांसारिक प्राणियों से अलग धरातल पर स्थापित करती है। कुछ सामाजिक मनुष्यों में अनुभूति की तीव्रता अपेक्षितया अधिक होती है। जब अनुभूति की तीव्रता वैचारिक स्तर पर मनुष्य की संवेदना में रच-बस जाती है तब भाषाई स्तर पर साहित्य का जन्म होता है। "मालार्मे ने कहीं लिखा है कि कविता विचारों से नहीं, शब्दों से लिखी जाती है और वह अर्थहीन होती है, इतना जोड़ना भूल गया। विचारों से शब्दों का विलगाव करके और शब्द शिल्प पर अधिक जोर देकर, उसने अत्यंत दीक्षागम्य तथा सांकेतिक कविताएँ लिखीं।"¹⁰ परंतु विचारणीय बात यह है कि सर्वप्रथम मालार्मे की अनुभूति ने वैचारिक स्तर पर उसकी संवेदना को झिंझोड़ा होगा। मुक्तिबोध की कविता की एक पंक्ति है— 'विचार आते हैं। लिखते समय नहीं। पीठ पर बोझा ढोते वक्त।' अधिकतर सहृदय के अनुभव सामाजिक ही हुआ करते हैं। समाज की राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक समस्याओं के निराकरण के विषय में सहृदय सोचता है। यह अकारण नहीं है बल्कि अनुभूति की तीव्रता इसमें सहायक है। किसी भी साहित्यिक रचना में विचारों का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

विचारों की बात तो ठीक है, परंतु विचारधारा के स्तर पर जटिलता उत्पन्न हो जाती है। अमृतराय लिखते हैं, "विचार तो आसानी से समझ में आता है। सबके मन में कभी कोई कभी कोई विचार आता रहता है। अभी मैं अपने बारे में सोच रहा हूँ, फिर अपने बाल-बच्चों के बारे में सोचने लगा, फिर टोले-पड़ोस के बारे में सोचने लगा, फिर देश की किसी ज्वलंत समस्या या पंजाब के अकाली उग्रपंथियों की समस्या के बारे में सोचने लगा। ... इस तरह के छिटपुट सोच-विचार सभी पढ़े लिखे लोगों के मन में आते ही रहते हैं।"¹¹ इस प्रकार मनुष्य का जीवन विचारों से परिपूर्ण है। उसमें चिंतन-मनन की प्रक्रिया अनादि काल से अनवरत जारी है। "ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी में विचारधारा को इस तरह परिभाषित किया गया है। — 'विचारों का विज्ञान, दर्शन शास्त्र का वह विभाग जिसका संबंध विचारों के उद्भव और प्रकृति से है।"¹²

मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं, "मार्क्स-एंगेल्स की रचनाओं में विचारधारा का अर्थ सब जगह एक ही नहीं है, विचारधारा की धारणा में परिवर्तन और विकास हुआ है। 'जर्मन विचारधारा' (1845-46) नामक पुस्तक में मार्क्स एंगेल्स ने विचारधारा को 'छद्म चेतना' कहा है, उसके कल्पना प्रधान स्वरूप पर बल दिया है और उसे आधार से निर्धारित माना है। उन्होंने यह भी लिखा है कि विचारधारा में यथार्थ के वास्तविक बोध के बदले यथार्थ का भ्रम अधिक होता है। विचारधारा की इस धारणा के अनुसार विचारधारा का यथार्थ से संबंध होता है, भले ही उसमें यथार्थ का उल्टा प्रतिबिम्ब हो। ऐसी विचारधारा की भी एक सामाजिक भूमिका होती है और उसमें जीवन स्थितियों का चित्र होता है।"¹³

किसी भी विचारधारा का जन्म व्यक्ति की सामाजिक भूमिका में रचा पगा होता है। समाज में जन्म लिए हुए सभी मनुष्यों के पद व प्रस्थिति निर्धारित हैं। इस क्रम में व्यक्ति कुछ सोचता है। व्यक्ति के इस सोच के क्रम को उसकी सामाजिक भूमिका किस प्रकार निर्धारित कर रही है, इसी से उसकी विचारधारा परिलक्षित होती है। समाज विभिन्न वर्गों में विभाजित है। वर्गों में विभाजित समाज के आपसी हित टकराते हैं। विभाजित वर्गों का स्वयं का विशेष तरह से सोचने-विचारने का नजरिया होता है। विचारधारा को एक वर्ग विशेष के सामूहिक राजनैतिक कार्यक्रम के रूप में नहीं बल्कि व्यक्ति की संपूर्ण अनुभव का एक विशिष्ट आधारभूत आयाम है। ऐसा नहीं है कि विचारधारा सदैव सचेष्ट, सुचिंतित और सुव्यवस्थित ही रहती हो। बल्कि वह भावनाओं के स्तर पर सक्रिय रूप में विद्यमान होती है। व्यक्ति अपने अनुभव के आधार पर समाज को जिस रूप में देखना चाहता है, उसके लिए उसे एक वर्ग-विशेष की आवश्यकता पड़ती है।

विचारधारा का जन्म यथार्थ के धरातल पर होता है, किंतु वह परिवर्तनशील समय के साथ स्वयं एक भौतिक शक्ति बन जाती है। ऐसी स्थिति में यथार्थ नहीं रहता—वही विचारधारा का सेवक मात्र रह जाता है। विचारधारा के लिए वही यथार्थ जरूरी रह जाता है, जो उसे संतुष्ट करता है। "यहाँ विचारधारा का अभिप्राय केवल वर्गगत दृष्टिकोण तक सीमित न रहकर तर्कपूर्ण विश्लेषण द्वारा सुव्यवस्थित निष्कर्षों तक पहुँचने की बौद्धिक क्रिया हो जाता है। आज प्रतिक्रियावादी बुर्जुवा विचारधारा इतनी अवैज्ञानिक और असंगत हो चुकी है कि अब वह तर्क और गंभीर विचार-विमर्श के बल पर खड़ी नहीं हो सकती। इसीलिए बुर्जुवा विचारकों की यह कोशिश रही है कि तर्क और विश्लेषण को अनुचित घोषित कर दिया जाये और यह प्रचारित किया जाए कि हमारे अनुभवों और परिस्थितियों को विचार अथवा बौद्धिक चिंतन के द्वारा व्याख्यायित करने के सब प्रयास निरर्थक हैं।"¹⁴ जबकि बुर्जुवा चिंतकों की यह कोशिश नितांत भ्रामक और तथ्यहीन है। इसके बरक्स रामविलास शर्मा की विचारधारा मार्क्सवादी रही है, सोच जनवादी रही है और केदारनाथ अग्रवाल की कविता प्रगतिवादी।

अपने साक्षात्कार में रामविलास शर्मा कहते हैं, "मार्क्सवाद का मूल सिद्धांत यह है कि आदमी के खाने-पीने की चीजें बनाने के जो साधन हैं, उनके ऊपर समाज का अधिकार होना चाहिए। जैसे मिल से आप कपड़ा बनायें तो मिल के ऊपर समाज का अधिकार होना चाहिए, जमीन से आप अन्न पैदा करते हैं तो जमीन समाज का अधिकार होना चाहिए। पूँजीवाद में होता यह है कि ये साधन बड़े पैमाने पर केन्द्रित होते हैं, जैसे बैंकों में पूँजी केन्द्रित होती है। बैंक-पूँजी कारखानों के ऊपर नियंत्रण रखती है। वैसे भी अगर आप बैंक-पूँजी को छोड़ दें तो बड़े-बड़े कारखाने हैं, उनमें हजारों आदमी काम करते हैं। काम करने वाले तो बहुत हैं मगर उस कारखाने का जो मालिक है, वह एक है। तो श्रम जाता है सामाजिक और स्वामित्व होता है व्यक्तिगत। दोनों के अंदर संघर्ष होता है। ये सारा उत्पादन मुनाफे के लिए होता है। खेतों में जब पूँजीवादी ढंग से खेती होती है तो वहाँ भी मुनाफा कमाने का लक्ष्य होता है। मुनाफा हटाकर उसकी जगह जनता का हित, समाज की सेवा, लोगों की जरूरतें पूरी करना, इसके लिए उत्पादन हो, यह मूल सिद्धांत है। खाने-पीने की जो चीजें हैं, वे समाज के लिए हैं और उन पर समाज का अधिकार होना चाहिए। साहित्य में इसी के अनुरूप मूल सिद्धांत यह है कि साहित्य

लोगों की खुशामद करने के लिए नहीं होना चाहिए जैसे राजदरबारों में होता है। मुनाफा कमाने के लिए न होना चाहिए। समाज के विकास के लिए होना चाहिए, और मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के लिए होना चाहिए। यह मूल रूप से मार्क्सवाद का सिद्धांत है। जब आप साहित्य-सृजन करें तो आप मार्क्सवाद को थोड़ी देर के लिए भूल जायें, जितनी सांस्कृतिक विरासत है, जो साहित्य आपके देश में रचा गया है और जो बाहर रचा गया है, उससे भरसक लाभ उठाकर आप साहित्य रचने की कोशिश करें।¹⁵

“राजनीतिक अर्थशास्त्र की आलोचना को योगदान पुस्तक में मार्क्स ने विचारधारा को एक विशेष ऐतिहासिक संदर्भ की विशिष्ट सामाजिक चेतना कहा है। इसे वर्ग चेतना भी कहा जा सकता है क्योंकि मार्क्स के अनुसार विचारधारात्मक रूपों के दायरे में मनुष्य अपने संघर्षों तक के प्रति सचेत होते हैं और विजय तक संघर्ष करते हैं।”¹⁶ मार्क्स ने जहाँ उक्त पुस्तक में विचारधारा को विशिष्ट सामाजिक चेतना या वर्ग चेतना का नाम दिया है, वहाँ कानूनी, राजनीतिक, धार्मिक और दार्शनिक विचारधारात्मक रूपों के साथ सौंदर्य बोधी विचारधारा का भी उल्लेख किया है। लेनिन ने समाजवाद को मजदूर वर्ग की विचारधारा कहते हुए विचारधारा के संबंध में मार्क्स की व्याख्या को स्वीकार किया है। मैनेजर पाण्डेय इसे मार्क्सवाद को विकसित करने का लेनिनवादी ढंग मानते हैं।

विचारधारा के विषय में मार्क्स एंगेल्स के विचारों का संक्षिप्तीकरण करते हुए कहा जा सकता है कि “विचारधारा केवल विचारों की धारा नहीं है, उसमें विचार, आस्था, विश्वास और मूल्य चेतना का भी योग होता है। वह एक विशेष ऐतिहासिक संदर्भ में बनी सामाजिक चेतना है, उस चेतना की गतिविधियों की संघटना है, उसमें चेतना को अपने अनुकूल बनाने की क्षमता होती है।”¹⁷

किसी भी साहित्य का निर्माण एक विशेष युग के सापेक्ष होता है। साहित्यकार अपने युग को देखता है और अपने अनुभव से साहित्य को युग विशेष का दस्तावेज बना देता है। जिस प्रकार विचार धारा में विचार, आस्था, सौंदर्य, विश्वास और मूल्य चेतना महत्वपूर्ण होती है उसी प्रकार साहित्य के लिए भी इन चीजों का होना आवश्यक है। बिना इन चीजों के धनात्मक योग से किसी भी साहित्य को युगीन दस्तावेज बनाना असंभव है। मित्र संवाद में विचार, आस्था, सौंदर्य विश्वास और मूल्य चेतना सभी का गहरा योग है।

“विचार धारा का ऐतिहासिक संदर्भ, जीवन-स्थिति और वर्ग से अनिवार्य संबंध होता है। एक विचारधारा शोषण और दमन का साधन बनती है और दूसरी मुक्ति का माध्यम भी होती है।”¹⁸ प्रतिक्रियावादी बुर्जुवा समाज की विचारधारा से दलित, किसान-मजदूर वर्ग का शोषण हुआ लेकिन कालांतर में मार्क्सवादी विचारधारा से पूँजीवादी समाज ने आने वाले खतरे को भांप लिया। पूँजीवादी समाज ने ‘समाजवादी विचारधारा’ को खतरे के रूप में देखा क्योंकि वह समाज की शोषित जनता को उनके अधिकारों से वंचित रखना चाहता था। जिस जनता को सदियों से दबाया गया था यदि वह अपने अधिकारों की मांग करे तो बेचारे सामंती प्रवृत्ति के लोगों को कष्ट तो होगा ही। सामंती प्रवृत्ति के लोगों के लिए ‘समाजवादी-विचारधारा’ भले ही दुःखकर

प्रतीत हुई, हालांकि ऐसा नहीं होना चाहिए था, लेकिन दलित, किसान और मजदूर वर्ग के लिए 'समाजवादी विचारधारा' अंततः लाभप्रद ही सिद्ध हुई।

यदि प्रेमचन्द के 'गोदान' को दृष्टि में देखकर बात की जाय तो बात अधिक स्पष्ट होगी। प्रेमचन्द ग्रामीण जीवन से उद्भूत लेखक थे। गाँवों में किसानों की क्या स्थिति थी? प्रेम चन्द की पारखी दृष्टि से उस सच (ऐतिहासिक सच) को परख लिया था। ऐतिहासिक सच इसलिए कि सदियों ने किसानों की नियति 'होरी की नियति' के समान हो गयी थी। शोषण, दमन, अन्याय का दुष्पक्र किसानों के जीवन में रच-बस गया था। 'होरी का चरित्र' गोदान में 'वर्ग-चरित्र' के रूप में परिवर्तित हो जाता है। 'गोदान' को यदि सामंती-समाज का कोई व्यक्ति पढ़े तो प्रथम दृष्टतया संवेदनात्मक धरातल पर वह प्रभावित तो होता है लेकिन वैचारिक स्तर पर उसके मन में अतर्द्धन्ध होना प्रारंभ हो जाता है। अंततः वह किसान-मजदूर वर्ग को उसका हक नहीं देना चाहता। 'संवेदना' के स्तर पर तो 'गोदान' सभी को प्रभावित करती है लेकिन विचारधारात्मक स्तर पर एक खास वर्ग को प्रभावित नहीं कर पाती है।

'गोदान' में मातादीन – सिरिया चमारिन के प्रसंग में मातादीन के मुँह में 'चमारों' द्वारा हड़डी ढूस दी जाती है। इस प्रसंग से एक खास वर्ग को खास तरह की सौंदर्यानुभूति होती है। "सौन्दर्यबोधी विचारधारा में यथार्थ से चेतना का एक विशिष्ट संबंध सौंदर्यपरक संबंध व्यक्त होता है। मार्क्स के अनुसार सौंदर्य बोधी विचारधारा आर्थिक आधार से और राजनीतिक, दार्शनिक विचारधाराओं से भी सापेक्षतः स्वतंत्र होती है। साहित्य के विचारधारात्मक रूप का खंडन करने वाले प्रायः विचारधारा को राजनीतिक विचारधारा का पर्याय समझते हैं, जबकि मार्क्स दोनों को एक नहीं मानते।"¹⁹

प्रत्येक साहित्यकार एक वर्ग विशेष के दृष्टिकोण को अपना कर ही तत्कालीन जीवन-परिस्थितियों को समझने का प्रयास करता है। साहित्य में अनुभव विशेष को ज्यों का त्यों नहीं रख दिया जाता। बल्कि एक वर्ग विशेष के दृष्टिकोण को अपनाकर उसे समझने का प्रयास किया जाता है और आखीर में उसे शब्दबद्ध किया जाता है।

"साहित्य शब्द में 'सहित' का भाव जुड़ा है। शब्द और अर्थ के साथ या भाव और विचार के साथ जीवन के साथ जो जुड़ा है, वह साहित्य है।"²⁰ किसी भी शब्द का कुछ न कुछ विचारधारात्मक अर्थ होता है। यदि साहित्य में 'सहित' का भाव जुड़ा हुआ है तो 'विचारधारा सहित' ही साहित्य का सृजन होता है। बिना विचारधारा के साहित्य सृजन की प्रक्रिया असंभव है। साहित्य मनुष्य के चेतन अस्तित्व के प्रश्नों से कमोवेश उसकी समग्रता में 'साक्षात्' करता है। वह उसके समग्र अस्तित्व का आईना है। फलतः मनुष्य के चेतन अस्तित्व के उपादान साहित्य के भी उपादन है।"²¹ प्रश्न कुमार चौधरी ने चेतन-अस्तित्व के चार कारक माने हैं— अज्ञात, कल्पना, यथार्थ और एकत्व-बोध। "साहित्य में रचनाकार अपनी तमाम व्यक्तिगत विशिष्टताओं के बावजूद, और उसके साथ, सचेत अस्तित्व को पुनः सृजित करने की कोशिश करता है और इसी कोशिश के परिणामस्वरूप काल की कृतियाँ हमारे सामने आती हैं।"²²

साहित्य और विचारधारा का प्रगाढ़ संबंध है। कोई लेखक किसी पार्टी से प्रतिबद्ध होते हुए भी सफल रचनाकार बन सकता है। कठिनाई तब होती है जब साहित्य में विचारधारा को कसौटी के रूप में व्यवस्थित किया जाता है और साहित्य संवेदना से शून्य या उस दृष्टि से निहायत कमजोर रचना को भी विचारधारा के आधार पर श्रेष्ठ ठहराने की कोशिश की जाती है। साहित्यकार की विचारधारा को रचना में स्वाभाविक रूप में समाहित होना चाहिए।

“जार्ज लुकाच ने लिखा है कि विचारधारा कोई झण्डा नहीं है जिसे लड़ाई के मैदान में ले जाकर गाड़ना है। साहित्य के संदर्भ में यह बात और भी सच है।... विचारधारा संपूर्ण रचना में निहित और व्यक्त होती है।”²³ रचना के माध्यम से साहित्यकार को फतवे बाजी नहीं करनी चाहिए। यदि रचना फतवा का स्वरूप अख्तियार करती है तो इससे रचना और रचनाकार दोनों की क्षति होती है। “किसी व्यक्ति की विचारधारा केवल उसके कथनों और घोषणाओं के आधार पर नहीं की जा सकती। विचारधारा तो व्यक्ति के सामाजिक जीवन के क्रिया-व्यापार में व्यक्त होती है और उसी के सहारे जानी जा सकती है। ... रचनाकार की विचारधारा को जानने का विश्वसनीय साधन उसकी रचना ही है।”²⁴ साहित्य में विचार धारा इस रूप में आनी चाहिए जिससे वह पाठक को बोझिल न लगे। रचना के अंदर विचारधारा स्पष्ट अथवा सूक्ष्म रूप में विषय-वस्तु की हैसियत से विद्यमान न होकर परिप्रेक्ष्य के रूप में भी विद्यमान हो सकती है।

क्या गलत विचार धारा को अपनाकर कोई साहित्यकार उत्कृष्ट साहित्य की रचना कर सकता है? आखिरकार गलत विचारधारा की कसौटी क्या होनी चाहिए? यह संभव है कि जो विचारधारा हमें अनुचित व गलत लगे वह दूसरे विचारकों को अच्छी लगे। वामपंथी विचारकों में नागार्जुन बड़ी आत्मीयता से पढ़े जाते हैं, लेकिन उन्हें नागार्जुन की कुछ कविताएँ आपत्तिजनक भी लग सकती हैं। सचेत रूप में प्रतिक्रियावादी विचारधारा को अपनाये होने के बावजूद यह संभव है कि लेखक अपने मानस की गहराई में उससे कहीं अधिक प्रगतिशील और तर्क सम्मत विचारधारा को स्वीकार कर चुका हो। ऐसी स्थिति में उसकी रचना में जो शक्ति हमें दिखलाई पड़ती है वह वास्तव में उसकी गहरे में अपनाई हुई विचारधारा के कारण ही आती है और सचेत रूप से अपनाई हुई विचारधारा से उसका कोई ताल्लुक नहीं। बाल्ज़ॉक की रचनाओं के संदर्भ में एंगेल्स ने जिस ‘यथार्थपरक की विजय’ का जिक्र किया है वह वस्तुतः दो भिन्न प्रकार की विचारधाराओं के इस प्रकार के द्वन्द्व की ही सूचक है।

साहित्य के माध्यम से व्यक्त होने वाले किसी अनुभव में विचारधारा एक आधारभूत आयाम के रूप में विद्यमान होती है और साहित्यिक कृति के मूल्यांकन में इस आयाम का महत्वपूर्ण स्थान होता है, किंतु रचना में होने वाले अनुभव को हमें उसकी संपूर्णता में देखना चाहिए और उसकी सार्थकता को केवल उसमें अंतर्निहित विचारधारा के स्वरूप के आधार पर नहीं आंकना चाहिए। एक ही विचारधारा में शामिल साहित्यकार अपनी बौद्धिक क्षमता, संवेदना-शक्ति, भाषा की दृष्टि से एक-दूसरे से काफी भिन्न होते हैं।

किसी भी साहित्यकार का अनुभव रचना-प्रक्रिया में प्राथमिक स्तर का होता है और विचार द्वितीयक स्तर का। बिना अनुभव से गुजरे हुए विचार तक नहीं पहुँचा जा सकता है। अनुभव तो सभी को होता है लेकिन रचना तभी रचना के रूप में परिणत होती है, जब उस

अनुभव विशेष पर विचार विमर्श की प्रक्रिया शुरू हो। मित्र संवाद में दोनों मित्रों ने अनुभव विशेष पर विचार-विमर्श किया है, इस प्रकार "प्रत्येक कृति एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है और कृतिकार पाठक और आलोचक इस एक ही प्रक्रिया के अंग हैं, जिनमें से प्रत्येक की प्रतिक्रिया उस प्रक्रिया की ही अनिवार्य कड़ी है।"²⁵

कला साहित्य का विस्तृत फलक है। मार्क्स तथा एंगेल्स की परिभाषानुसार, "कला सामाजिक चेतना का एक रूप है और इसलिए इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उसके परिवर्तनों के कारण मनुष्यों के सामाजिक अस्तित्व में ढूँढे जाने चाहिए।"²⁶ साहित्य भी मनुष्यों की सामाजिक चेतना से निर्धारित होता है। मनुष्य की चेतना के निर्माण में समाज का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

साहित्य मार्क्सवाद की कसौटी पर सामाजिक हुआ। कहने का अभिप्राय यह है कि सही अर्थों में साहित्य का सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यांकन शुरू हुआ। हालांकि इससे भी पूर्व साहित्य का सामाजिकता से गहरा सरोकार था, फिर भी मार्क्सवाद ने इसे और परिपुष्ट किया। "प्रायः यह माना जाता है कि फ्रांसीसी विचारक तेन (1828-93) साहित्य के समाजशास्त्र के प्रवर्तक हैं। यह लगभग सच है लेकिन यह भी सच है कि तेन के पहले से फ्रांस में साहित्य के समाजशास्त्रीय चिंतन की एक परंपरा बन रही थी जिसका उन्होंने उपयोग किया था। फ्रांस में साहित्य के समाजशास्त्रीय चिंतन की परंपरा व्यवस्थित रूप में मादाम स्तेल (1766-1817) की पुस्तक "सामाजिक संस्थाओं से साहित्य के संबंध पर विचार" (1800) से शुरू हुई। मादाम स्तेल क्रांतिकारी विचारों की महिला थीं। वे नेपोलियन की तानाशाही के विरुद्ध संघर्ष और अपनी सक्रिय राजनीतिक गतिविधियों के कारण फ्रांस छोड़ने पर मजबूर हुईं। फ्रांस से भागकर वे जर्मनी चली गयीं। वहाँ उन्होंने कला और साहित्य संबंधी जर्मन चिंतन, विशेषतः समकालीन चिंतन को आत्मसात् किया, जिसकी अभिव्यक्ति उनके साहित्य चिंतन में हुई। "सामाजिक संस्थाओं से साहित्य के संबंध पर विचार" नामक पुस्तक इसी प्रक्रिया की देन है। इस पुस्तक में पहली बार साहित्य के भौतिक आधार, सामाजिक अस्तित्व और सामाजिक संस्थाओं से उसकी क्रिया-प्रतिक्रिया पर व्यवस्थित ढंग से विचार हुआ है। यही कारण है कि कुछ साहित्य के समाजशास्त्री मादाम स्तेल को ही साहित्य के समाजशास्त्र के प्रवर्तन का श्रेय देते हैं।"²⁷ कहने को यह भी कहा जाता है कि प्लेटो की अनुकरण विषयक अवधारणा में साहित्य को समाज के प्रतिबिम्ब के रूप में देखने की धारणा अंतर्निहित है, परंतु सच्चाई यह नहीं है। तेन पूर्व साहित्य के विश्लेषण में मुख्य रूप से समाजशास्त्री विषय वस्तु क्षीण रहती थी। उसमें वैज्ञानिक नियमबद्धता का अभाव था। तेन की परंपरा को कालांतर में मार्क्सीय सरोकारों ने आगे बढ़ाया। साहित्य मनुष्य के विकृत मनुष्य मस्तिष्क को परिष्कृत कर सुंदर विचारों से परिपूर्ण करता है और मनुष्य के साथ मस्तिष्क को शुद्ध कर मनुष्य को सच्चे अर्थों में समाज-सेवी बनाने में समर्थ होता है। इतना होने के बावजूद प्रत्येक युग का साहित्य युग विशेष के साहित्य से भिन्न होता है। 'राम चरित मानस' की रचना चाहकर भी कोई साहित्यकार आज नहीं कर सकता। आज मनुष्य की पीड़ा-समस्याएँ अलग हैं। फलतः आज का साहित्य मध्यकालीन साहित्य से अलग धरातल पर स्थापित है। रीतिकालीन साहित्य का सरोकार सामंती समाज से था। सामंतों की विलासिता इस काल के साहित्य में प्रतिबिम्बित है। हिन्दी साहित्य में आदिकालीन साहित्य भी इससे भिन्न नहीं हैं। जहाँ आदिकालीन

साहित्य सामंतों की आपसकी टकराहटों को प्रदर्शित करता है, वहीं रीतिकालीन साहित्य, सामंतों की विलासिता प्रदर्शित करता है। 'मित्र-संवाद' छप्पन वर्षों के समय को संवेदनात्मक धरातल पर व्याख्यायित करता है। केदारनाथ अग्रवाल 9.12.56 के पत्र में लिखते हैं, "एंगेल्स का कहना मुझे सही प्रतीत होता है कि प्रकृति का भी समय के अंतर्गत एक इतिहास है। इस कथन का तात्पर्य यह कभी नहीं होता कि वही प्रकृति उसी रूप में सतत बनी रहेगी। हो सकता है कि यह न रहे—कोई किसी दूसरे रूप में रहे। फिर कभी ऐसा रूप ही ग्रहण कर ले।"²⁸ जब प्रकृति बदलती है तो साहित्य का सरोकार भी बदलता है।

आज साहित्य को सामाजिक प्रतिबिम्बित मानने की प्रवृत्ति जोरों पर है। उन्नीसवीं सदी में भी साहित्य को समाज का प्रतिबिम्ब मानने की प्रवृत्ति लोकप्रिय थी और मार्क्स तथा एंगेल्स भी इसी मत का पोषण करते थे। वे प्रायः साहित्य का उल्लेख यथार्थ को अनेक तरह से प्रतिबिम्बित करने वाले तत्व के रूप में करते थे। लेकिन वर्तमान में मैनेजर पाण्डेय ने दर्पणवादी दृष्टिकोण की सीमा निर्धारित की है। वह लिखते हैं, "दर्पणवादी दृष्टिकोण की एक सीमा यह है कि इसमें रचनाकार की चेतना की क्रियाशीलता की उपेक्षा होती है। लेखक सामाजिक यथार्थ को रचना में प्रतिबिम्बित ही नहीं करता, वह उसकी पुनर्रचना भी करता है। रचना में उनकी कल्पनाएँ और आकांक्षाएँ भी व्यक्त होती हैं। दूसरी सीमा यह है कि समाज रचना की अंतर्वस्तु में ही नहीं होता, उसके रूप और शिल्प में भी होता है। अभिव्यक्ति केवल प्रस्तुतीकरण नहीं है, वह केवल प्रातिनिधिक ही नहीं होती, प्रतीकात्मक भी होती है। दर्पण वादी दृष्टिकोण में न तो शिल्प की इन विशेषताओं का विवेचन होता है और न इन विशेषताओं में अभिव्यक्त समाज की खोज होती है।"²⁹ बावजूद इसके मैनेजर पाण्डेय रचना की बेहतर समझदारी के लिए उसके सामाजिक संदर्भ की जानकारी को उपयोगी व सही मानते हैं।

तेन साहित्यिक रचनाओं को युगीन दस्तावेज इसलिए मानते हैं क्योंकि वह उन्हें स्मारक मानते हैं। इतिहास के विभिन्न काल-खंड, युग विशेष और उसकी प्रतिभा के बीच एक सुसंगत संबंध स्थापित करने में सफलता प्राप्त करते हैं। कलाकार अपनी कला की गहराई में प्रवेश करने के साथ ही अपने युग व जाति की चेतना में अंतः प्रवेश करता है, जबकि एक सामाजिक कलाकार की रचना समान रूप से प्रामाणिक सामाजिक दस्तावेज होने के बाद भी अपने युग का प्रतिनिधित्व नहीं करती। सच तो यह है कि महान कलाकार ही अपने समय से पूर्ण अभिव्यक्ति में समर्थ होते हैं। महान साहित्य हेगलीय अवधारणा के अनुरूप युगीन चेतना का मूर्तरूप होता है। तेन की समस्या महान कला और साहित्य के अविर्भाव के कारणों को निश्चित करने की समस्या थी। तेन ने इसके लिए तीन अवधारणाओं प्रजाति, क्षण और परिवेश के उपयोग का प्रस्ताव किया।

केदारनाथ अग्रवाल 12.3.76 के पत्र में लिखते हैं, "मार्क्सवाद और भारतीय इतिहास के बारे में भी बहुत कुछ तुम दे सकते हो। उसे भी दो।"³⁰ कालांतर में रामविलास शर्मा ने 'भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद' पुस्तक लिखी। 12.4.76 के पत्र में केदार लिखते हैं, "मार्क्स अद्भुत आदमी था। एंगेल्स भी बढ़िया आदमी था।"³¹ कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स ने 'कम्यूनिस्ट मैनीफेस्टो' का प्रकाशन किया। अपने पूर्ववर्तियों से जुड़ते हुए भी घोषणापत्र क्रांतिकारी सिद्ध हुआ। इस घोषणा पत्र का तर्क था कि मनुष्य का सामाजिक इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास

रहा है। मार्क्स और एंगेल्स दोनों ने साहित्यिक विश्लेषण हेतु भौतिक आधार की शब्दावली का प्रयोग किया, फिर भी उनकी चिन्ता विशुद्ध आर्थिक तत्वों से तथा सामाजिक वर्ग की महत्वपूर्ण भूमिका से जुड़ी थी। तेन से अलग धरातल पर सोचते हुए उन्होंने इस प्रकार साहित्य और समाज का कोई विशिष्ट विवरण सामने नहीं रखा और इस प्रकार साहित्य के एक विशिष्ट मार्क्सीय समाजवाद की रचना का कार्य उनके अनुयायियों के लिए शेष रह गया। इससे कोई उल्लेखनीय परिणाम सामने नहीं आया। 'कई बार तो साहित्य को हठवाद का भी शिकार होना पड़ा। इस हठवाद के अधीन साहित्य को सामाजिक संरचना के निरूपण के रूप परिभाषित करके अत्यंत एकतरफा और यॉत्रिक व्याख्या दे दी रही होती। इसलिए लूनाचारस्की (लेनिन के अधीन प्रथम सोवियत सांस्कृतिक भला) यह लिख सके कि मार्क्सवादी समीक्षक का कार्य एक युग के समग्र सामाजिक विकास का संपूर्ण चित्र प्रस्तुत करना है, क्योंकि 'साहित्यिक कृति सदा किसी वर्ग के चेतन अथवा अचेतन मनोविज्ञान का लेखक द्वारा अभिव्यक्त प्रतिबिम्ब होती है। लूनाचारस्की ने आगे लिखा है कि किसी भी साहित्यिक कृति के सम्यक मूल्यांकन हेतु शुरुआत उसके कथ्य उसके सामाजिक सत्त्व से करनी चाहिए और उस सामाजिक सत्त्व को विशिष्ट सामाजिक समुदायों से जोड़ने की चेष्टा करनी चाहिए। खासतौर से महत्वपूर्ण है— साहित्यिक रूप। कथ्य से विमुक्त कर दिया जाए तो इसमें एक 'एकाकी दुःग्रह्य चरित्र अपनाने की प्रवृत्ति दिखाई देने लगती है। यह विशेषता उन 'वर्गीय प्रवृत्तियों' में पायी जाती है 'जो कथ्य से रहित हैं जो वास्तविक जीवन से डरती हैं, और जो आडंबरपूर्ण अथवा सतही और छिछोरी शाब्दिक कलाबाजियों की ओट में इस जीवन से छिपना चाहती हैं।'³²

8 2 83 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, "मार्क्स ने इतिहास मात्र के विवेचन के लिए भौतिकवाद पर कौन सी पुस्तक लिखी? तुम्हें इस जानकारी से मजा आना चाहिए कि रूस में कुछ लोग मार्क्स के ग्रंथों में ऐतिहासिक भौतिकवाद ढूँढते थे और उसे न पाकर बहुत क्षुब्ध होते थे। ऐसे एक सज्जन मिखाइलोव्स्की थे। इनके बारे में लेनिन ने लिखा था—

उसने कैपिटल पढ़ी और यह देखने में असफल हो गया कि उसके समक्ष किसी का वैज्ञानिक भौतिक आदर्श है— सबसे कठिन समाज का निर्माण एक आदर्श जो उसके पूर्व किसी ने नहीं दिया था और वह बैठकर स्वतंत्र समस्याओं को अपनी कुशाग्र बुद्धि द्वारा हल करने का अभ्यास करता है। उसके किस कार्य में मार्क्स ने अपने इतिहास की यथार्थवादी अवधारणा की कल्पना की थी।"³³

16 3 83 के पत्र में केदारनाथ अग्रवाल लिखते हैं, 'जब तक मानवीय चेतना जनवादी चेतना नहीं बनती तब तक यही सब होता रहेगा। ऐसे ही लोग तो कहते हैं कि ऐतिहासिक द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का कोई युगीन महत्व नहीं रह गया। ये भ्रष्ट बुद्धि कुछ भी नहीं दे सकते। श्रम और संघर्ष ही पथ प्रशस्त कर सकता है। जिसके लिए ये तैयार नहीं दीखते। मार्क्स का चिंतन ही जीवित है। वह चिंतन विश्व को सही दृष्टि प्रदान कर रहा है। उनका चिंतन अब और विकास कर रहा है। वह Static नहीं है, Progressive है। इतिहास ने उसे खत्म नहीं दिया। वही उससे विकसित हो रहा है।'³⁴

मार्क्स तथा एंगेल्स ने साहित्य का सबध विचारधारा से जोड़ा। उन दोनों के आरम्भिक लेखन में दो विषय मुख्य रहे— विचारधारा से सबधित सर्वव्यापी सामाजिक प्रभाव और श्रम—विभाजन। स्मिथ तथा फर्गुसन के अनुसरण में मार्क्स तथा एंगेल्स का भी विश्वास था कि सामाजिक जीवन में श्रम—विभाजन की भूमिका बड़ी निर्णायक है। वाणिज्य तथा उद्योग के विकास के साथ श्रम—विभाजन का विस्तार भी बढ़ता जाता है। यह कुछ व्यक्तियों और समूहों को भौतिक उत्पादन के क्षेत्र से हटाकर मानसिक उत्पादन के क्षेत्र में ले जाता है। उन्होंने इसके लिए एक तर्क रखा था कि श्रम—विभाजन ही शुद्ध सिद्धांत को जन्म देता है जो दर्शन, धर्म—मीमांसा आदि से सबधित विचारों को निरी भौतिकता के प्रदूषण से मुक्त मानता है। यदि इस सिद्धांत पर विचार किया जाए तो कला और साहित्य भी इसी श्रेणी में आ जाते हैं। पूँजीवाद बाजार के आर्थिक निर्देशों के तहत लाभ की आवश्यकता को देखते हुए तत्कालीन साहित्य उद्योग की ओर उन्मुख था। मार्क्स तथा एंगेल्स की तरह ही फ्रांसीसी समीक्षक सेतब्बे भी साहित्य के वाणिज्यीकरण की प्रवृत्ति को पहचान रहे थे। बावजूद इसके सेतब्बे ने श्रम—विभाजन को अपनी चिंता के केंद्र में नहीं रखा। साहित्य का बाजारीकरण आज भी हो रहा है। वर्तमान स्थिति चिंताजनक है। प्रकाशन का वाणिज्यीकरण कुत्सित और लिप्सावादी लेखन को प्रश्रय दे रहा है। जनप्रिय साहित्य (शिष्ट साहित्य का स्तर गिर रहा है। लेखकों का स्तर भी गिर रहा है।) “मार्क्स तथा एंगेल्स आधुनिक युग के मनुष्यों को पुनर्जागरण युग के मनुष्यों की तुलना में प्रायः इस आधार पर हीन मानते हैं कि श्रम—विभाजन ने बड़े पैमाने पर खंडित सामाजिक प्रारूपों को जन्म दिया है। उदाहरणार्थ पुनर्जागरण युग के मनुष्यों का कई भाषाओं का क्षेत्र अधिक विस्तृत था। तुलना में आधुनिक मनुष्य तो निरी छापा है। उनका आशय अवश्य ही यही था कि पहले जैसी वह ‘पूर्णता’ केवल समाजवाद तथा साम्यवाद के माध्यम से वापस पाई जा सकती है।”³⁵ आज पूँजीवाद के कारण ही साहित्य का स्तर पतनोन्मुख है।

श्रम विभाजन के तर्क को रखते हुए मार्क्स तथा एंगेल्स ने पूँजीवादी समाज को एक ऐसी व्यवस्था के रूप में देखा है जो एक बेगानेपन भरी और वस्तुकृत दुनिया की रचना करती है। इस दुनिया में मनुष्य औरों के साथ अपने सहज सबध बनाये नहीं रख सकता। वह एक अधूरी खंडित सत्ता बनकर रह जाता है।³⁶

जर्मन विचारधारा में साहित्य और आर्थिक आवरण के सबध को पूर्णतया आर्थिक कार्यकारण सबध के रूप में देखा गया। विचारधारा के रूप में कला के स्वतंत्र अस्तित्व को नकार दिया गया। 1848 की असफल क्रांति के बाद मार्क्स ने पूँजीवाद के आर्थिक तथा समाजशास्त्रीय अध्याय पर कार्य आरम्भ किया। ‘1857 में इंट्रोडक्शन टु ए क्रिटिक ऑफ पोलिटिकल इकॉनॉमी ग्रंथ की भूमिका में मार्क्स ने प्राचीन यूनान की अधिक पिछड़ी हुई भौतिक संस्कृति तथा उसकी उन्नत कला के बीच विरोधाभास की कुतूहलपूर्ण समस्या को उठाया है— भौतिक उत्पादन के विकास तथा कलात्मक उत्पादन के बीच असमान सबध की समस्या को।”³⁷ परंतु 1859 में क्रिटिक की भूमिका में आर्थिक कार्यकारण के निश्चित सबधों पर पुनर्विचार किया गया। ‘अपने जीवन के सामाजिक उत्पादन में मनुष्य कुछ निश्चित सबध बनाते हैं जो उनकी इच्छा से स्वतंत्र तथा अपरिहार्य होते हैं। यह उनकी भौतिक उत्पादन शक्तियों के विकास के एक निश्चितचरण से जुड़े हुए उत्पादन के सबध में हैं। उत्पादन के इन सबधों का कुल योग समाज की आर्थिक संरचना का निर्माण करता है। यही वह वास्तविकता है जिस पर कानूनी और राजनीतिक

अधिरचना उठती है और जिससे सामाजिक चेतना के निश्चित रूप जुड़ते हैं। उत्पादन का तरीका सामान्य रूप से सामाजिक, राजनीतिक तथा बौद्धिक जीवन-प्रक्रिया को रूप देता है।³⁸

शेक्सपियर और बालजाक की चर्चा मार्क्स महान कलाकारों के रूप में करते हैं। इन पर टिप्पणी करते हुए मार्क्स ने स्थूल समाजशास्त्रीय विश्लेषण का विरोध किया है। उनकी टिप्पणियों को साहित्य के समाजशास्त्र के मार्ग-निर्देशक के रूप में नहीं लिया जा सकता। मार्क्सवाद को साहित्यिक सिद्धांत के आवरण में एंगेल्स ने ढका।

एंगेल्स ने साहित्य को समाज का दर्पण बिंब माना। परंतु साहित्य और समाज के संबंध में मार्क्स और एंगेल्स का कोई निश्चित सिद्धांत नहीं मिलता है। इनमें कुछ संकेत, द्वयर्थकता और हठवाद मिलते हैं। रूसी लेखक प्लेखानोव ने अपनी प्रतिभा से साहित्य चिंतन को आगे बढ़ाया। इनके लेखन में सामाजिक दर्पण और प्ररूप की संकल्पना निहित है। प्लेखानोव ने कला और साहित्य के स्पष्टतः समाजशास्त्रीय आधारों की सहज घोषणा की। उन्होंने लिखा है कि "कला का महत्व तभी होता है जब वह समाज के लिए महत्वपूर्ण क्रियाओं, भावनाओं और घटनाओं का निदर्शन करती है, उन्हें जाग्रत करती है या उन्हें संप्रेषित करती है।"³⁹ प्लेखानोव ने साहित्य को वर्गबद्ध माना और यह भी माना कि "बुर्जुवा प्रभुत्व के साथ महान साहित्य की कोई सगति नहीं है। प्लेखानोव के बाद मार्क्सवादी साहित्य चिंतन को आगे बढ़ाने वाले जॉर्ज लुकाच भी मानते हैं कि साहित्य वर्ग संघर्ष को प्रतिबिम्बित करता है। उनका तर्क है कि समस्त साहित्य, किसी वर्ग, किसी विश्व-दृष्टि के दृष्टिकोण से ही लिखा जाता है और इस प्रकार वह किसी परिप्रेक्ष्य की ओर इंगित करता है। प्लेखानोव की तरह लुकाच भी समाजवाद के प्रति आस्था को कलाकार की रचनात्मकता की कसौटी मानते हैं। वह मानते हैं कि—

"जो लेखक समाजवाद का निषेध करता है, वह भविष्य की ओर से आँख मूंद लेता है, वर्तमान के सही मूल्यों का हर अवसर छोड़ देता है, और विशुद्ध गतिहीन कला को छोड़कर और किसी भी प्रकार के सृजन की क्षमता खो बैठता है।"⁴⁰ लुकाच का विश्वास समाजवादी यथार्थवादी में था। उनके मतानुसार यह यथार्थ प्राचीन बुर्जुवा मानववाद का अतिक्रमण कर जाएगा और समाजवादी समाज को पाने हेतु संघर्षशील, सक्रिय मनुष्य का चित्रण करते हुए यह आधुनिकवादी संत्रास को निश्चित रूप से मिटा देगा।

मार्क्सवादी-चिंतन के अनुसार महान साहित्य वर्गीय हितों की अभिव्यक्ति है। इसमें वैयक्तिक मनोविज्ञान, सामूहिक संबंधों या किसी विशेष श्रोतावर्ग का कोई योगदान नहीं होता। यदि इस बात को स्वीकार कर लिया जाए तो बालजाक और टाल्सटॉय की रचनाएँ क्या महान नहीं हैं? इन दोनों की रचनाओं में अनचाहे ढंग से यथार्थ का चित्रण हुआ है। कभी-कभी लेखक के न चाहते हुए भी समाज की वास्तविकता साहित्य में परिलक्षित होती हैं। इस प्रकार लेखक की अपनी विचारधारा में और उस दुनिया में जिसे वह कलात्मक रूप से प्रस्तुत करता है, एक अतर्विरोध की संभावना निहित है।

हिन्दी में कबीर, दादू, रैदास, मलूक आदि निम्न वर्ग से आये हुए विचारक थे। समाज में व्याप्त कुरीतियों के प्रति उनकी प्रतिक्रियाएँ आज भी मनुष्य को झिंझोड़ती हैं। तुलसीदास ने सामंती व्यवस्था के आदर्श को अपने साहित्य के माध्यम से व्याख्यायित किया। राम चरित मानस में राम सामंती मूल्यों के प्रतीक हैं। इस संदर्भ में मुक्तिबोध ने प्रश्न किया है कि तुलसीदास का

रामचरित मानस हमें आज भी प्रभावित करता है। किंतु क्या हमें तुलसीदास जी के आचार विचार प्रभावित करते हैं?⁴¹ मुक्तिबोध उत्तर भी देते हैं — 'नहीं'। वह राम के व्यक्तित्व को समकालीन सदर्भों में प्रभावित करने का कारण मानते हैं। तुलसी की आदर्श पारिवारिक व्यवस्था हमें प्रभावित करती है। तत्कालीन मानव-संबंधों के भीतर मानवता की जितनी भी सर्वोच्चता संभव थी, उतनी तुलसी के राम में समा गयी।

किसी भी समाज अथवा वर्ग के कुछ जीवन मूल्य होते हैं। इन्हीं जीवनमूल्यों की अभिव्यक्ति रचना को कालजयी बनाती है। मार्क्सवादी साहित्य चिंतन के अनुसार साहित्य सामाजिक प्रतिबिम्ब है। हिन्दी साहित्य में वीरगाथाकालीन काव्यों में वीरगाथाकालीन समाज जितनी स्पष्टता से परिलक्षित है, उतना ही भक्तिकालीन युग का समाज भक्तिकालीन साहित्य से मुखर है। रीतिकालीन समाज का विलासितापूर्ण जीवन रीतिकालीन कविताओं में मुखरित होकर स्पष्ट रूप से यह बता रहा है कि उस युग की परिस्थितियों से प्रेरित होकर इस प्रकार के समाज और साहित्य का निर्माण हुआ। मित्र-सवाद के स्पष्ट चित्र देखे जा सकते हैं। आज भले ही कोई साहित्यकार प्राचीन युग के कथानक क्यों न ले, उसमें आज का युग भी अस्पष्ट रूप से बोलता है। इसका कारण यह है कि साहित्यकार अपने युग की समस्याओं एवं घात-प्रतिघातों से अपने को सर्वथा विमुख नहीं रख सकता। कभी-कभी तो साहित्य में प्रत्येक युग की समस्या का बयान होता है। जैसे कि 'मित्र-सवाद' में रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल भले ही प्राचीन युग से लेकर आधुनिक युग की घटनाओं का जिक्र करते हैं, लेकिन पूरे सवाद में 56 वर्षों का समय स्पष्टतः बोलता है। मित्र सवाद आधुनिक युग की सांस्कृतिक विरासत है।

मार्क्सवाद के माध्यम से साहित्य सृजन के जवाब में रामविलास शर्मा कहते हैं, "वास्तव में मार्क्सवाद एक नया दर्शन है पर मार्क्सवाद में जो पुराना समाजवाद है उसके अंश हैं, मार्क्सवाद में जो पुराना अर्थशास्त्र है उसके कुछ अंश हैं, मार्क्सवाद में पुराना जो भौतिकवाद है (फ्रांस में या यूनान में) उसके थोड़े से अंश हैं। पुरानी संस्कृति के तत्व लेकर मार्क्सवाद विकसित हुआ। इसलिए साहित्य में आदमी के लिए बहुत जरूरी है कि जब वह रचना शुरू करे तो पुराने साहित्य से सीखे। सीखने के बाद मार्क्सवाद आपको जो सिखा सकता है वह यह है कि आप समाज में देखें कि कौन से वर्ग आगे बढ़ रहे हैं और कौन से पीछे हैं।"⁴²

साहित्य और समाज का संबंध घनिष्ठ ही नहीं, अन्योन्याश्रित भी है। दोनों एक दूसरे से प्रभावित होते हैं एवं दोनों एक-दूसरे को प्रभावित भी करते हैं। समाज यदि गलत रास्ते पर जा रहा होगा तो युग का साहित्य उसे ठोक-पीट कर सही मार्ग पर लायेगा और किसी युग का साहित्य अपने समाज के प्रतिकूल जा रहा होगा तो समाज उसे सुधार कर अपने अनुरूप कर लेगा। फ्रांस की राज्यक्रांति के मूल में उस देश के विचारकों का रचा हुआ साहित्य ही है। इंग्लैंड के स्वाधीनता संग्रामों के मूल में उस देश के स्वाधीनता-प्रेमी व्यक्तियों की रचनाएँ ही हैं और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के मूल में हमारे यहाँ के साहित्यकारों, विचारकों एवं मनीषियों की साधना है। वर्तमान में मित्र सवाद समाज के सांस्कृतिक निर्माण हेतु संभावनाओं की ओर भी संकेत करता है, जिसके प्रमुख उन्नायक हैं रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल।

आज जब साम्राज्यवादियों का वर्चस्व है ऐसे में रामविलास शर्मा अपने साक्षात्कार में कहते हैं साम्राज्यवादियों के इस आक्रमण से अपनी संस्कृति का रक्षा करनी चाहिए, अपनी भाषाओं के अधिकारों के लिए लड़ना चाहिए, अपनी संस्कृति के सामन्त विरोधी, साम्राज्य विरोधी पक्ष को

उभारकर प्रस्तुत करना चाहिए और साहित्य, दर्शन, विज्ञान, हर क्षेत्र में अपनी संस्कृति का विकास करना चाहिए। विकास का एक तरीका पूँजीवादी है। इस तरीके में बात आत्मनिर्भरता की होती है, जो नतीजा निकलता है वह पर निर्भरता का होता है। दूसरे देशों से सीखना गलत नहीं है। लेकिन पहले अपने देश में सीखने को जो कुछ है, उसे सीख लेना चाहिए। देश की संस्कृति का विकास यहाँ के राजनीतिक-आर्थिक विकास से जुड़ा हुआ है और विकास का यह कार्य वर्तमान समाज व्यवस्था को बदले बिना सम्पन्न नहीं हो सकता। मैं जो कुछ लिखता हूँ, वह सब इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए है।⁴³

उप अध्याय—दो

काव्य दृष्टि और मध्यकालीन काव्य का विश्लेषण

‘मित्र-संवाद’ कविता पर लम्बी बातचीत है। कविता कैसे होनी चाहिए? कविता क्या है? सभी पर विस्तार पूर्वक बातचीत होती है। बातचीत का माध्यम है— पत्र। कविता पर बातचीत करते हुए कविता की परंपरा पर विमर्श भी है। कालिदास से लेकर सूर, तुलसी, कबीर तक होते हुए निराला की कविता पर विमर्श कविता की समझ को पुख्ता करता है।

‘कविता की परंपरा’ पर बातचीत कविता क्या है, कैसी होनी चाहिए, के बाद ही है। दरअसल दोनों का रचाव-बसाव एक-दूसरे से पत्रों में गहरे रूप में है। मित्र को समझाते हुए रामविलास शर्मा कविता की व्याख्या करते हैं। पत्रों को मिला देने पर ‘कविता’ पर एक पूरा आलेख तैयार हो जाता है। शायद पत्रों के माध्यम से ही ‘कविता क्या है?’ निबन्ध लिख रहे थे।

9.1.56 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, “तुम्हारी कविताओं में अब भी ताजगी है, अनूठापन है, उपमानों का चमत्कारी प्रभाव है, तीक्ष्ण और कोमल संवेदनाएँ हैं। लेकिन अपनी अनुभूति को बराबर Refresh करते रहना जरूरी है और भाषा, छन्द वगैरह पर और मेहनत करनी जरूरी है। कविता कला है, सुन्दर है। उसके कलात्मक सौंदर्य पर और ध्यान देना जरूरी है। .. काव्य रचना को और कठिन साधना के रूप में ग्रहण करो।”⁴⁴ 20.12.56 के पत्र में केदार लिखते हैं, “सुन्दरता क्षणिक होती है इसलिए मैंने उसे सदियों से कायम बताकर स्थायित्व बना दिया है।”⁴⁵

25.12.56 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, “तुम्हारे तर्क में कोई कमजोरी नहीं है, कमजोरी है मूर्ति विधान में। कविता की भाषा इंद्रियों की भाषा है। संगीत और मूर्तिविधान द्वारा कवि वह सब कह देता है जो तर्क द्वारा दार्शनिक कह नहीं सकता।”⁴⁶ “कविता और तर्क में अंतर है। आप मेरी कल्पना के सामने ऐसा चित्र खड़ा कीजिए कि मैं उसमें डूब जाऊँ।”⁴⁷

पुनः 25.5.1959 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, “तुम्हारी कविता में ‘हम ही’ की जगह हमी होना चाहिए। यह कविता छन्द बद्ध होती यानी सानुप्रास तो ज्यादा जमती। कुल मिलाकर व्यंग्य बढ़िया है।”⁴⁸

केदारनाथ अग्रवाल 5.7.59 के पत्र में लिखते हैं, “कविता दिमागी शांति चाहती है।”⁴⁹ इसके जवाब में रामविलास शर्मा लिखते हैं, “तुमने लिखा है— कविता दिमागी शांति चाहती है। मुझे लगता है — शारीरिक शांति यानी कामधाम से फुर्सत और भी आवश्यक है। तुम वकालत करते हुए कविता लिख लेते हो, यह मेरे लिए सदा चमत्कार का विषय रहा है। मुझे मानसिक शांति तो प्राप्त है लेकिन सबेरे से शाम तक काम के मारे शरीर को एकाग्र नहीं कर पाता— जैसे लोग मन एकगत करते हैं और कविता के लिए शरीर शांत, संतुलित, दैनिक उत्तरदायित्व से मुक्त होना चाहिए।”⁵⁰

8.2.83 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, “एक प्रश्न: कविता की व्याख्या कैसे की जाए? विशेष कविताओं की व्याख्या किए बिना निर्विशेष कविता की व्याख्या हाथ न लगेगी। यदि कोई आलोचक किसी कवि का सही अध्ययन करता है तो वह कविता मात्र के अध्ययन और उसकी रचना का मार्ग प्रशस्त करता है।”⁵¹

‘कविता क्या है?’ पर बहस पुरानी है। आचार्य राम चन्द्र शुक्ल से लेकर डॉ. नगेन्द्र और रामविलास शर्मा ने इसकी व्याख्या की है। कविता किस तरह उपजती है, किस तरह से भाषिक सिंचाई द्वारा उसकी उर्वरा शक्ति बढ़ती है सभी पर रामविलास शर्मा की दृष्टि है। उद्धरित पत्रों में इसको स्पष्टतः देखा जा सकता है।

आचार्य राम चन्द्र शुक्ल लिखते हैं, “जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावरथा ज्ञानदशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की मुक्तावरथा रसदशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती आयी है उसे कविता कहते हैं।

कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ संबंधों के संकुचित मंडल से ऊपर उठाकर लोकसामान्य भावभूमि पर ले जाती है जहाँ जगत की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप को साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है। इस भूमि पर पहुँचे हुए मनुष्य को कुछ काल के लिए अपना पता नहीं रहता। वह अपनी सत्ता को लोक सत्ता में लीन किये रहता है। उसकी अनुभूति सबकी अनुभूति होती है या हो सकती है।”⁵²

रामविलास शर्मा कविता और तर्क में अंतर करते हैं। आचार्य राम चन्द्र शुक्ल लिखते हैं, “भावों या मनोविकारों के विवेचन में हम कह चुके हैं कि मनुष्य को कर्म में प्रवृत्त करने वाली मूल प्रवृत्ति भावात्मिकता है। केवल तर्क बुद्धि या विवेचना के बल से हम किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होते। ... शुद्ध ज्ञान या विवेक में कर्म की उत्तेजना नहीं होती। कर्मप्रवृत्ति के लिए मन में कुछ वेग का आना आवश्यक है। यदि किसी जन समुदाय के बीच कहा जाए कि अमुक देश तुम्हारा इतना रूपया प्रतिवर्ष उठा ले जाता है तो संभव है कि उस पर कुछ प्रभाव न पड़े। पर यदि दारिद्र्य और अकाल का भीषण और करुण दृश्य दिखाया जाय, पेट की ज्वाला से जले हुए कंकाल कल्पना के सम्मुख रखे जाएँ और भूख से तड़पते हुए बालक के पास बैठी हुई माता का आर्तक्रंदन सुनाया जाए तो बहुत से लोग क्रोध और करुणा से व्याकुल हो उठेंगे और इस दशा को दूर करने का यदि उपाय नहीं तो संकल्प अवश्य करेंगे। पहले ढंग की बात करना राजनीतिज्ञ या अर्थशास्त्री का काम है और पिछले प्रकार का दृश्य भावना में लाना कवि का काम है। अतः यह धारणा कि काव्य व्यवहार का बाधक है, उसके अनुशील से अकर्मण्यता आती है, ठीक नहीं। कविता तो भाव प्रसाद द्वारा कर्मण्य के लिए कर्मक्षेत्र का और विस्तार कर देती है।”⁵³ तो कविता में भावना का होना आवश्यक है। भावुकता कवि की कल्पना का प्रसार करती है। तर्क तो राजनीतिज्ञ या अर्थशास्त्री करते हैं, कविता तो साहित्यकार ही कर सकता है। भावना क्या है?

कल्पना का उससे कैसे सबध स्थापित होता है? आचार्य शुक्ल लिखते हैं, 'जो वस्तु हमसे अलग है, हमसे दूर प्रतीत होती है, उसकी मूर्ति मन में लाकर उसके सामीप्य का अनुभव करना ही उपासना है। साहित्य वाले इसी को भावना कहते हैं और आजकल के लोग 'कल्पना'। जिस प्रकार भक्ति के लिए उपासना या ध्यान की आवश्यकता होती है उसी प्रकार और भावों के लिए प्रवर्तन के लिए भी भावना या कल्पना अपेक्षित होती है। जिनकी भावना या कल्पना शिथिल या अशक्त होती है, किसी कविता या खास उक्ति को पढ़ सुनकर उनके हृदय में मर्मिकता होते हुए भी वैसी अनुभूति नहीं होती। बात यह है कि उनके अतकरण में चटपट वह सजीव और स्पष्ट मूर्ति विधान नहीं होता जो भावों को परिचालित कर देता है।"⁵⁴ कल्पना के माध्यम से चित्र खड़ा करने की बात रामविलास शर्मा भी कहते हैं। रामविलास शर्मा मार्क्सवादी आलोचक, चिंतक होते हुए भी विचारों के प्रति रूढ़ नहीं हैं उनके यहाँ कविता की सही समझ है। कल्पना को आचार्य शुक्ल दो प्रकार का मानते हैं। वह लिखते हैं, "कल्पना दो प्रकार की होती है— विधायक और ग्राहक। कवि में विधायक कल्पना अपेक्षित होती है और श्रोता या पाठक में अधिकतर ग्राहक। अधिकतर कहने का अभिप्राय यह है कि जहाँ कवि पूर्ण चित्रण नहीं करता वहाँ पाठक या श्रोता को भी अपनी ओर से कुछ मूर्ति विधान करना पड़ता है। योरपीय साहित्य मीमांसा में कल्पना को बहुत प्रधानता दी गयी है। है भी यह काव्य का अनिवार्य साधन, पर साधन ही, साध्य नहीं, किसी प्रसंग के अतर्गत कैसा ही विचित्र मूर्ति विधान हो, पर यदि उसमें उपयुक्त भाव संचार की क्षमता नहीं तो वह काव्य के अतर्गत न होगा।"⁵⁵ केदारनाथ अग्रवाल की कविता भाव के स्तर पर भी पाठकों को सहज सप्रेष्य है। रामविलास शर्मा, केदार को ऐसी ही कविता लिखने की सलाह भी देते हैं।

आचार्य राम चन्द्र शुक्ल ने लिखा है, "कविता का अंतिम लक्ष्य जगत के मार्मिक पक्षों का प्रत्यक्षीकरण करके उनके साथ मनुष्य हृदय का सामंजस्य स्थापन है।"⁵⁶ जगत का मार्मिक पक्ष क्या है? जगत् का मार्मिक पक्ष युगीन विषमता और अंतर्विरोध है। युगीन समस्याओं को शब्दों में उकेरने की कला व्यक्ति को कवि के आसन पर बिठा देती है। आचार्य शुक्ल जिस भाव संचार की बात करते हैं दरअसल वह जगत की मार्मिकता ही है। मनुष्य अपनी समस्याओं को कविता में देखता है तो उसका सहज तादात्म्य होता है। 'काव्य का विषय सदा—विशेष होता है, सामान्य नहीं, वह व्यक्ति सामने लाता है, 'जाति' नहीं। यह बात आधुनिक कला समीक्षक के क्षेत्र में पूर्णतया स्थिर हो चुकी है। अनेक व्यक्तियों के रूप—गुण आदि के विवेचन द्वारा कोई वर्ग या जाति ठहराना, बहुत—सी बातों को लेकर कोई सामान्य सिद्धांत प्रतिपादित करना, यह सब तर्क और विज्ञान का काम है— निश्चयात्मिकता बुद्धि का व्यवसाय है। काव्य का काम है कल्पना में बिम्ब या मूर्त भावना उपस्थित करना, बुद्धि के सामने को विचार लाना नहीं। बिम्ब जब होगा तब विशेष या व्यक्ति का ही होगा, सामान्य या जाति का नहीं।"⁵⁷

कल्पना में मूर्ति तो विशेष ही की होगी, पर वह मूर्ति ऐसी होगी जो प्रस्तुत भाव का आलम्बन हो सके। जो उसी भाव को पाठक या श्रोता के मन में भी जगाए जिसकी व्यंजना आश्रय अथवा कवि करता है। इससे सिद्ध हुआ कि साधारणीकरण आलम्बन धर्म का होता है। व्यक्ति तो विशेष ही रहता है, पर उसमें प्रतिष्ठा ऐसे सामान्य धर्म की रहती है जिसके साक्षात्कार से सब श्रोताओं या पाठकों के मन में एक ही भाव का उदय थोड़ा या बहुत होता है। तात्पर्य यह है कि आलम्बन रूप में प्रतिष्ठित व्यक्ति समान प्रभाववाले कुछ धर्मों की प्रतिष्ठा के कारण सबके भावों का आलम्बन हो जाता है। 'विभावादि सामान्य रूप में प्रतीत होते हैं' — इसका तात्पर्य यह है कि रस—मग्न पाठकों के मन में यह भेदभाव नहीं रहता कि यह आलम्बन मेरा है या दूसरे का।

थोड़ी देर के लिए पाठक या श्रोता का हृदय लोक का सामान्य हृदय हो जाता है। उसका अपना अलग हृदय नहीं रहता।⁵⁸

“कालरिज कल्पना को व्यक्ति के आत्म तथा बाह्य प्रकृति वस्तु के बीच समन्वय स्थापित करने वाली शक्ति के रूप में देखते हैं। अब तक की कविता तथा काव्य सिद्धांतों में यह समन्वय इस रूप में देखने में नहीं आया था। पिछले युग की अभिजात्यवादी कविता अंतस् से अधिक बाह्य से जुड़ी थी और जहाँ दोनों का चित्रण हुआ भी था, वह दोनों को एकीकृत करते हुए नहीं। वहाँ कविता या तो बाह्य प्रकृति का अनुकरण या प्रतिबिम्ब थी, या प्रकृति भव्य भावनाओं या उपदेशों के स्रोत के रूप में चित्रित की गयी थी। इसके विपरीत कॉलरिज तथा वड्सवर्थ विशेषकर वड्सवर्थ की कविता में प्रकृति तथा मानव जीवन बाह्य तथा आंतरिक संसार इस प्रकार घुले-मिले थे कि उन्हें अलग करके देखना संभव नहीं था। इसका एक अखंड इकाई के रूप में प्रस्तुतीकरण कल्पना शक्ति के माध्यम से ही संभव हुआ। वस्तु तथा आत्म का यह एकात्म तभी संभव था जब दोनों को अखंड इकाई के रूप में देखा जाए यह दृष्टि कल्पना से मिलती है। वड्सवर्थ तथा कॉलरिज के कल्पना संबंधी विचारों में अंतर जरूर है पर दोनों ने ही कल्पना को सामान्यतः विपरीत या विरुद्ध माने जाने वाले इन तत्वों का समंजन तथा संलयन करने वाली शक्ति के रूप में देखा है।⁵⁹

“कविता की विषयवस्तु को भी वड्सवर्थ कविता के उद्देश्य से जोड़ते हैं। कविता को वे मानव तथा प्रकृति का प्रतिरूप मानते हैं (Poetry is the image of man and nature) यह मानव भी अभिजात्यवादी साहित्य का ओजस्वी अतिमानव नहीं, बल्कि हमारे चारों ग्रामीण परिवेश में घूमता-फिरता, अपने सुख-दुःख सहता मनुष्य है।⁶⁰ निर्मला जैन पुनः लिखती हैं, “स्वयं वड्सवर्थ अपनी कविता का लक्ष्य सामान्य जीवन की घटनाओं तथा स्थितियों का वर्णन मानते हैं। कवि को बिना शोर-शराबा मचाये इन घटनाओं तथा स्थितियों में हमारे प्रकृति के प्राथमिक नियमों की तलाश करनी चाहिए। इनमें उसे कल्पना के ऐसे रंग भरने चाहिए जिससे मानस के आगे सामान्य वस्तुओं के भी अनोखे पक्ष प्रस्तुत हों। विषयवस्तु के रूप में सामान्य ग्रामीण जीवन के चुनाव के पक्ष में वड्सवर्थ कई तर्क देते हैं। शहर की जटिलताओं से दूर सरल ग्रामीण जीवन में मनुष्य की सारभूत भावनाओं को परिपक्वता के लिए बेहतर जमीन मिलती है क्योंकि यहाँ उन पर कम प्रतिबंध होते हैं। ग्रामीण जन अपेक्षाकृत सीधी सहज तथा सशक्त भाषा का प्रयोग करते हैं। अतः उनके चित्रण में भाषा की इस सहज तथा शक्ति का सुंदर उपयोग हो सकता है। ग्रामीण परिवेश में हमारी मूलभूत अनुभूतियाँ अधिक सहज स्थिति में रहती हैं और उनसे ही ग्रामीण जीवन के आचार व्यवहार उद्भूत होते हैं। ग्रामीण काम धंधे भी ऐसे होते हैं कि उन्हें अधिक आसानी से समझा जा सकता है। ग्रामांचल में मनुष्यों की भावनाएँ प्रकृति के सुंदर तथा स्थायी रूपों में समाविष्ट रहती हैं, अतः इस परिवेश तथा जीवन पर अधिक सही-सही विचार किया जा सकता है और उनका संप्रेषण भी अधिक सशक्त रूप में हो सकता है।⁶¹

रामविलास शर्मा कविता की भाषा को इंद्रियों की भाषा मानते हैं, “वड्सवर्थ सदा कविता में विचार की गरिमा तथा उसके वहन के लिए उपयुक्त भाषा के पक्षधर रहे, किंतु उससे भी अधिक बल उन्होंने आलंकारिक भाषा के बहिष्कार पर दिया।⁶² विचारों की गरिमा इंद्रियों की सात्विकता का परिणाम है।

केदारनाथ अग्रवाल का गद्य और साथ ही रामविलास शर्मा का गद्य लयात्मक है। खसकर मित्र संवाद के पत्रों के परिप्रेक्ष्य में यह बात सौ फसीदी सही है। “काव्य भाषा के सदर्थ में वड्सर्वर्थ की सबसे अधिक क्रांतिकारी विवादास्पद मान्यता यह रही है कि पद्य और गद्य की भाषा में कोई अंतर नहीं होता, न हो सकता है। उदाहरण देते हुए उन्होंने समझाया है कि श्रेष्ठ कविताओं के सबसे रोचक हिस्सों की भाषा सुलिखित गद्य की भाषा के समान होती है। वड्सर्वर्थ का सवाल है कि हम जब कविता और चित्रकला के बीच साम्य का संधान करते हुए उन्हें बहने मान लेते हैं तो गद्य तथा पद्य के बीच तो और भी कम अंतर है। दोनों का स्रोत माध्यम तथा आधार सामग्री एक ही है और उनमें परिमाण का अंतर तक नहीं। यदि यह माना जाए कि तुक तथा छंद पद्य को गद्य से अलग करते हैं, तो वड्सर्वर्थ का कहना है कि कविता की विशिष्टता उसकी भाषा है। आम बोलचाल की भाषा में कवि सुरुचि तथा संवेदनापूर्ण जो हिस्से चुनकर कविता में प्रस्तुत करता है उनकी विशिष्टता ही उन्हें सामान्य जीवन में प्रयुक्त भाषा के भेदसपन और क्षुद्रता से अलग देती है। इस पर यदि उसमें छंद का प्रयोग हो तो उसकी विशिष्टता और बढ़ जाती है किंतु कविता से प्राप्त आनंद का बहुत ही थोड़ा सा हिस्सा छंद पर निर्भर होता है। और मात्र छंद ही कविता के लिए पर्याप्त नहीं होता। कविता में मुख्य तत्त्व है उसकी विषयवस्तु।”⁶³

अतः निर्मला जैन लिखती है, “सारांशतः वड्सर्वर्थ कविता के लिए किसी भी प्रकार की बनावटी या अलंकार बोझिल भाषा के विरुद्ध है। इंग्लैण्ड में उस समय लिखी जा रही कविता के ‘भडकीलेपन और निरर्थक पदावली (Gandiners and Inane Phraseology) के खिलाफ वे बराबर सहज सरल और जैसा कि उन्होंने बार-बार दुहराया है, आम आदमी की सामान्य बोलचाल की भाषा के पक्षधर रहे हैं। इस भाषा में से कवि उपयुक्त शब्द चुनता है और उन्हें अपनी विषयवस्तु के अनुरूप सस्कार देता है। विषयवस्तु गरिमामय हो तो यह सहज-सरल भाषा भी गरिमामय ढंग से उसका वहन कर सकती है। जिस प्रकार सामान्य बोलचाल और काव्य की भाषा में वड्सर्वर्थ मूलतः कोई अंतर नहीं मानते, उसी प्रकार गद्य तथा पद्य की भाषा में भी उनके अनुसार कोई अंतर नहीं है। छंद भी दोनों में स्पष्ट अंतर नहीं दिखलाता क्योंकि विषयवस्तु तुच्छ या हास्यास्पद होने पर छंद किसी रचना को कविता नहीं बना सकता और कई बार गद्य में भी सहज रूप में छंद की लय समाहित होती है। जैसा पहले कहा जा चुका है, छंद की उपयोगिता वड्सर्वर्थ इस रूप में मानते हैं कि वह कविता ही नहीं, कवि या पाठक में भी अनुशासन और सतुलन लाता है और अपने साथ जुड़ी आनदानुभूति के आसंग से कविता के पाठक को आनंद देता है।”⁶⁴ केदारनाथ अग्रवाल की कविता में आम आदमी की सहज अभिव्यक्ति है। ग्रामीण जीवन का चित्र है। प्रकृति की अनुपम छटा विद्यमान है ‘मित्र संवाद’ के पत्रों की भाषा ‘गद्य-काव्य’ की तरह है। एक लयात्मकता उसमें आद्योपांत बनी रहती है।

“वड्सर्वर्थ ने अपने आमुख के आरंभ में ही अपनी कविता को एक प्रयोग कहा है। यह ठीक-ठीक राहों का अन्वेषण तो नहीं है किंतु यह देखने की चेष्टा अवश्य है कि चुनी हुई राह उन्हें कहाँ ले जाती है।

“दूसरी बात का सबध कविता के मुहावरे से है। वैसे तो साहित्यकारों की हर पीढ़ी और हर साहित्यकार खुद भी अपने लिए अपनी बात को कहने के लिए एक नये और खास मुहावरे

की तलाश करते हैं, किंतु वडर्सवर्थ इसके कारण को स्पष्ट और सबल रूप से रेखांकित करते हैं। अपनी सरल तथा विषय के उपयुक्त काव्यभाषा के सदर्थ में वे कहते हैं, 'इसने अनिवार्यतः मुझे बहुत से ऐसे मुहावरों और अलंकारों से बचा लिया है जिन्हें लंबे समय से पीढ़ी-दर-पीढ़ी कवियों की आम विरासत समझा जाता है। कई अभिव्यक्तियाँ ऐसी हैं जो अपने-आप में उपयुक्त तथा मनोरम हैं, किंतु उन्हें घटिया कवियों ने मूर्खतापूर्ण तरीके से इतनी बार दुहराया है कि उनके साथ बेहद वितृष्णा जुड़ जाती है और आसग की किसी भी युक्ति से उस पर काबू पाना संभव नहीं होता।

क्या प्रतीकों के देवता इसी प्रकार कूच करते हैं।' ⁶⁵

कविता क्या है? के बाद आते हैं, कविता की परंपरा पर। रामविलास शर्मा ने परंपरा का मूल्यांकन किया है।

मित्र सवाद में भी कविता की परंपरा को उद्घाटित किया गया है। कालिदास की चर्चा गाहे-बगाहे पत्रों में होती रहती है। रामविलास शर्मा के प्रिय कवि तुलसी हैं। तुलसी आचार्य राम चन्द्र शुक्ल के भी प्रिय कवि हैं। रामविलास शर्मा तुलसी पर किताब लिखना चाहते थे। पत्रों में इसकी भी चर्चा है। आचार्य राम चन्द्र शुक्ल ने तुलसी पर सुव्यवस्थित पुस्तक लिखी थी। रामविलास शर्मा के छुटपुट निबंधों में तुलसी की मर्मज्ञता पर दृष्टि पड़ती है। मित्र सवाद के पत्रों में तुलसी की चर्चा गहरे 'काव्य-विमर्श' और काव्य मर्मज्ञता का दस्तावेज है। तुलसी के साथ सूर और कबीर के माध्यम से भक्तिकालीन परिस्थितियों पर जीवित चर्चा है। 'शुद्ध साहित्य' पर विमर्श है तो रसवाद पर टिप्पणी। कहने का अभिप्राय यह है कि 'मित्र-सवाद' में कविता पर एक पूरा लंबा आख्यान है। यह आख्यान कालिदास से शुरू होकर आधुनिककाल में निराला तक आता है।

नामवर सिंह लिखते हैं, "आचार्य शुक्ल के छायावादी अनुषंग का ज्वलंत उदाहरण है कबीर को कवि रूप में मान्यता न देना। कबीर रवीन्द्रनाथ के प्रिय कवि थे, उन्होंने कबीर की सौ कविताओं का अनुवाद किया। इस प्रकार रवीन्द्रनाथ की अनुशंसा से कबीर आधुनिक रोमांटिक कवियों के बीच एक रहस्यवादी कवि के रूप में प्रसारित हुए। आचार्य शुक्ल को रहस्यवाद पसंद न था फिर भी उन्होंने कबीर के भक्ति-भावापन्न पदों में काव्य-गुण को स्वीकार किया। किंतु शेष कृतित्व के बारे में उन्होंने कोई उत्साह नहीं दिखाया।" ⁶⁶ जिसे नामवर सिंह छायावादी अनुषंग का ज्वलंत उदाहरण मानते हैं वह आचार्य शुक्ल का प्रकृति प्रेम है। आचार्य शुक्ल का प्रकृति प्रेम उनकी आलोचकीय बुद्धि से इस कदर तादात्म्य रखता है कि वे जायसी के बड़े और सबसे बड़े प्रशंसक हैं। बारहमासा वर्णन पर लट्टू है। कबीर की प्रतिभा पर आचार्य प्रवर को शक नहीं था। हाँ जहाँ हठ योग तंत्र-मंत्र आदि का सहारा कबीर ने कविता में लिया है वहाँ उनकी आलोचना शुक्ल जी करते हैं, जो कि जायज भी है।

कबीर के बारे में आचार्य शुक्ल लिखते हैं, "उपासना के ब्रह्म स्वरूप पर आग्रह करने वाले और कर्मकांड को प्रधानता देने वाले पंडितों और मुल्लों दोनों को उन्होंने खरी खोटी सुनाई और राम रहीम की एकता समझकर हृदय को शुद्ध और प्रेममय करने का उपदेश दिया। देशाचर और उपासना विधि के कारण मनुष्य-मनुष्य में जो भेदभाव उत्पन्न हो जाता है उसे दूर करने का

प्रयास उनकी वाणी बराबर करती रही। यद्यपि वे पढ़े लिखे न थे पर उनकी प्रतिभा बड़ी प्रखर थी जिस से उनके मुह से बड़ी चुटीली और व्यंग्य चमत्कार पूर्ण बातें निकलती थी।⁶⁷ आचार्य शुक्ल को कबीर की उलटबासियों से परहेज है। कबीर पर वह आगे लिखते हैं, “अनूठी अन्योक्तियों द्वारा ईश्वर प्रेम की व्यजना सूफियों में बहुत प्रचलित थी। जिस प्रकार कुछ वैष्णवों में ‘माधुर्य’ भाव से उपासना प्रचलित हुई थी उसी प्रकार सूफियों में भी ब्रह्म को सर्वव्यापी प्रियतम या माशूक मानकर हृदय के उद्गार प्रदर्शित करने की प्रथा थी। इसको कबीर दास ने ग्रहण किया। कबीर की वाणी में स्थान-स्थान पर भावात्मक रहस्यवाद की जो झलक मिलती है वह सूफियों के सत्संग का प्रसाद है।”⁶⁸ कम से कम आचार्य शुक्ल यह तो नहीं कहते कि कबीर के यहाँ भक्ति भावना नहीं है। कबीर को सूफियों के सत्संग का प्रसाद मिला। भारतीय परंपरा में प्रसाद को अच्छे अर्थ में ही ग्रहण किया जाता है। यदि किसी को गुरु का प्रसाद मिल जाए तो समझना चाहिए वह भाग्यशाली है। कबीर इन्हीं अर्थों में भाग्यशाली कवि थे। जायसी पर शुक्ल जी स्वतंत्र रूप से लिखते हैं, उन्हें सूफियों की परंपरा से जोड़ते हैं। विजयदेव नारायण साही उन्हें चाहे जो मने। जायसी एक अर्थ में सूफी परंपरा से जुड़े हुए रचनाकार थे तो कबीर पर शुक्ल जी लेकिन लगाते हैं वह दूसरे अर्थों में सूफी परंपरा से जुड़े हुए कवि थे।

कबीर की भाषा के विषय में शुक्ल जी लिखते हैं, “सांप्रदायिक शिक्षा और सिद्धांत के उपदेश मुख्यतः ‘साखी’ के भीतर है जो दोनों में हैं। इसकी भाषा सधुक्कड़ी अर्थात् राजस्थानी पंजाबी मिली खड़ी बोली है, पर ‘रमैनी’ और ‘सबद’ में गाने के पद हैं जिनमें काव्य की ब्रजभाषा और कहीं-कहीं पूरबी बोली का व्यवहार है। खुसरो के गीतों की भाषा भी हम ब्रज दिखा आये हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि गीतों के लिए काव्य की ब्रजभाषा ही स्वीकृत थी। कबीर का यह पद देखिए—

हौ बलि कब देखौगी तोहि।

अहनिस आतुर दरसल कारनि ऐसी व्यापी मोहि।

नैन हमारे तुम्हको चाहै, रती न मानै हारि।

सूर के पदों की भी भाषा यही है।⁶⁹ सूर के पदों की भाषा से तुलना करना अपने आप में भाषाई स्तर पर कबीर को बड़ा मानना है। आचार्य शुक्ल को कबीर की प्रतिभा की प्रखरता के विषय में जानकारी थी। महाकवि सूरदास पर शुक्ल जी ‘त्रिवेणी’ में लिखते हैं, “ध्यान देने की पहली बात यह है कि चलती हुई ब्रजभाषा में सबसे पहले साहित्यिक कृति इन्हीं की मिली है, जो अपनी पूर्णता के कारण आश्चर्य में डाल देती है। पहली साहित्यिक रचना और इतने प्रचुर, प्रगल्भ और काव्यागपूर्ण कि अगले कवियों की श्रृंगार और वात्सल्य की उक्तियाँ इनकी जूटी जान पड़ती हैं।”⁷⁰ अब दोनों पर टिप्पणी को देखने से पता चलता है कि कबीर पर शुक्ल जी कहीं भी ऐसा नहीं लिखते हैं, जिससे ऐसा स्पष्ट होता है कि कबीर कवि नहीं थे। शुक्ल जी के प्रिय कवि तुलसीदास थे। उन्हीं के बरक्स वह अन्य कवियों का मूल्यांकन करते हैं। इसके बावजूद कबीर की प्रखरता पर उन्हें संदेह न था।

‘मित्र-सवाद’ में 12957 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, “सूर कवि है, टीकाकार नहीं।”⁷¹ 22856 के पत्र में रामविलास शर्मा इस प्रकार लिखते हैं, “15 अगस्त को जब कृष्ण जी तशरीफ लाए तब आजु तौ बधाई बाजै मंदिर महर को।

किस-किस को प्रसन्नता हुई?
फूले फिर गोपी ग्वाल ठहर-ठहर कितु
गोपी ग्वालो को तो प्रसन्न होना ही था। कितु-
फूली फिरे धेनू धाम, फूली गोपी अग-अग,
फूले फले तरुवर आनद लहर के।

देखा? आनद की लहर में गायो, गोपियो और तरुवरो को जड और जगम, चर और अचर – दोनों को सूर ने कैसे लपेटा है, और जरा इस पक्ति का मुलाहजा हो

उमगे जमुन जल, प्रफुलित कुज-कुज,
गरजत कारे-कारे जूथ जलधर के।

सौ बार माथा टेको इस पक्ति के सामने। यही तो ब्रजवासी तुलसी से आगे बढ़ गया है। और नतीजा-

नृत्यन मदन फूले फले रति अग-अग,
मन के मनोज फूले हलधर वर के।

इस कवि ने ज्ञात या अज्ञात में प्रकृति के मर्म में उस अध इच्छा शक्ति का स्पन्दन सुना है जो आगे चलकर मनुष्य की चेतना के रूप में विकसित हुई।

सूर का समकालीन फ्रांसीसी कवि Ronsard उजड़ते जंगलो को देखकर कहता है।-

Farewell, Oaps, fair crown of bravest hill-side,
Jupiter's trees spring from old Dodona
Who first gave men a tree for their delight
जो इन वृक्षों को काट रहे हैं, उनके लिए कहता है-
A monstrous people
To slaughter so those who had cherished them

मुझे आश्चर्य और प्रसन्नता इस बात पर हुई कि भूत प्रकृति की अपरिवर्तनशीलता के बारे में मैंने तुम्हें जो Engles की बात लिखी थी वह इसने बहुत पहले पकड़ ली थी, साथ ही डार्विन ने Journal of Researchers में जिन Geological changes का वर्णन किया है और उनकी चर्चा काव्य में टेनीसन ने Mond और In Memoriam में की है, उन्हें इस महाकवि ने बहुत पहले देख लिया था। कवि और वैज्ञानिक का हृदय कितना समान है, देखो। दोनों ही द्रष्टा हैं, युग द्रष्टा ही नहीं, अतीत-अनागत के भी द्रष्टा हैं।

Oh hopeless man that trusteth in the auld
You gods, how true is that philosophy

(देखो, सचेत विचारक है।)

Which says that all things perish in the end,

And, changing from one form, assume another!

(यही है, सही द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद। वस्तुएँ perish भी करती हैं लेकिन यह Perishing की क्रिया भूत का नितांत अभाव नहीं है।)

Some day Tempe's vale will be a hill

(Tempe की घाटी का हवाला Keats के Ode on a Grecian Urn के आरंभ में देखो।)

Mount Althos peak will be an open plain;

Neptune (समुद्र) sometime will wave with growing Corn

(ईर्ष्या होती है, इस पंक्ति के लिखने वाले से।)

Matter endures through form be lost for ever.

मानते हो Ronsard का लोहा! निस्सन्देह Marx और Engles से पहले भी उच्च कोटि के भौतिकवादी विचारक थे।⁷² लोहा तो रामविलास शर्मा का भी मानना पड़ता है। सूर के बहाने अंग्रेजी के कवियों की जानकारी, फिर द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद पर चर्चा और भौतिकवादी विचारकों की खोज उनकी तत्वान्वेषिणी बुद्धि का प्रमाण है। कीट्स, रोन्सार्ड सभी पर उनकी गहरी पकड़ है। बीच-बीच में टिप्पणियाँ कवियों के मर्म को समझने में सहायक हैं। आलोचकीय बुद्धि का प्रमाण यही है कि कवियों को कितनी गहराई से समझा गया है। रामविलास शर्मा की क्या संस्कृत, क्या अंग्रेजी और क्या हिंदी सभी भाषा के कवियों पर गहरी पकड़ थी। उक्त पत्र में उनकी इस समझ को देखा जा सकता है।

12 दिसम्बर 59 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, "अब सौदा की हिंदी देखो—

"जिन्हों की छाती से पार बरछी

हुई है रन मे वो शूरमा हैं

बडा वो सावंत मन में जिसके

विरह का कांटा खटक रहा है

मुझे पसीना जो तेरे मुख पर,

दिखाई दे है तो सोचता हूँ।

ये क्यों कि सूरज को जोत आगे

हर एक तारा छटक रहा है।

"प्यारे, इस तरह की हिन्दी लिखो तब कविता वैसे ही गाँव-गाँव में पढ़ी जाए जैसे ब्रजभाषा के कवित्त लोग पढ़ते हैं। और भी—

"आवे गा व चमन में तडके ही मैकशी को।

शबनम से कह दे बुलबुल गुल के पियाले धो ले।

ऐसा ही जाऊँ—जाऊँ करते हो तो सिधारो।

इस दिल पै कल जो होनी सो आज ही वो हो ले।

‘लगता है गालिब की जबान में भी इतनी मिठास नहीं, पढ़कर बगाल के वैष्णव कवियों की या फिर अपने सूरदास की याद आती है।’⁷³

गालिब मुशी शिव नारायण आराम को एक पत्र में लिखते हैं—

‘साहिब, मैं हिन्दी गजले भेजू वहाँ से। उर्दू के दीवान छापे के नाकिस हैं, बहुत गजले उसमें नहीं हैं।’⁷⁴ गालिब उर्दू के बड़े रचनाकार व शायर थे। वह हिन्दी के साहित्य-वृद्धि में भी सहायक हुए। सूरदास चलती हुई ब्रजभाषा के स्वाभाविक विकास थे। सूरदास पुस्तक में आचार्य राम चन्द्र शुक्ल ने लिखा है, “जयदेव की देववाणी की स्निग्धपीयूष धारा, जो काल की कठोरता में दब गई थी, अवकाश पाते ही लोकभाषा की सरलता में परिणत होकर मिथिला की अमराइयो में विद्यापति के कोकिल कंठ से प्रकट हुई और आगे चलकर ब्रज की करील कुजों के बीच मुरझाए मनो को सींचने लगी। आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वीणाएँ श्रीकृष्ण की प्रेमलीला का कीर्तन करने उठी, जिनमें सबसे ऊँची, सुरीली और मधुर झनकार अधे कवि सूरदास की वीणा की थी। ये भक्त कवि सगुण उपासना का रास्ता साफ करने लगे।”⁷⁵

‘सूरदास कवि हैं।’ परिवार और समाज का चित्रण उनके यहाँ दिखलाई पड़ता है। रही बात विद्यापति की तो “भारत के उत्तर सामंतकाल में जो काल जागरण प्रारंभ हुआ, उसके एक प्रतिनिधि कवि विद्यापति हैं। वे भक्ति आंदोलन से जुड़े हुए नहीं हैं, इसके साथ ही उनकी गिनती रीतिवादी कवियों में नहीं हो सकती। हिन्दी प्रदेश में एक सिरे पर अमीर खुसरो, दूसरे सिरे पर विद्यापति हैं। एक ही लोकजागरण के दो अग्रदूत हैं। संस्कृत-फारसी की भूमि से हटकर इन्होंने लोक संस्कृति को अपनाया। विद्यापति में जो गेय तत्व है, उसकी तुलना केवल सूरदास के गेय तत्व से की जा सकती है। दोनों में आनंद का भाव, श्रृंगार का भाव प्रबल है। सूरदास की भक्ति इस आनंद में बाधक नहीं होती। थोड़ी सी शिव भक्ति विद्यापति में भी है। वह उन्हें उदार वैष्णव परंपरा से जोड़ती है। विद्यापति का श्रृंगार भाव एक युवा कवि का सहज श्रृंगार भाव है। इसमें स्वतः स्फूर्त गीतिकाव्य का प्रवाह है। उन्होंने मैथिली भाषा को एक ऐसा रूप दिया, जिससे वह अपने जनपद के बाहर भी काफी लोकप्रिय हुई। उड़िया बंगला और असमिया के गीति साहित्य का विकास विद्यापति को अलग रखकर समझ में नहीं आ सकता। वह एक पूरे अंचल को प्रभावित करते हैं। इसका एक बहुत बड़ा कारण उनकी भाषा का वह विशेष रूप है जो जनपदीय है। एक हद तक अंतर जनपदीय यथार्थवाद रूझान भी विद्यापति में काफी शक्तिशाली था। मैथिली की अपेक्षा यह उनकी अपभ्रंश रचना में देखा जा सकता है। भारत में लोक जागरण का अध्ययन करेगा सामंत विरोधी प्रवृत्तियों का अध्ययन करेगा, वह विद्यापति की ओर आकर्षित होगा। उन्होंने शास्त्र पढ़कर रचनाएँ नहीं कीं। पढ़ा भी हो तो उससे अपनी प्रतिभा को कुठित नहीं होने दिया। सामंती व्यवस्था की शास्त्रीयता कवि के व्यक्तित्व को दबाती है, उसे निश्चित विषयों पर निश्चित नियमों के अनुसार लिखने को बाध्य करती है। विद्यापति से आधुनिक साहित्य में कवि के व्यक्तित्व का भरपूर अभिव्यक्ति शुरू होती है। इसीलिए मैं उन्हें भारतीय साहित्य में प्रतिबिम्बित लोकजागरण का अग्रदूत मानता हूँ।”⁷⁶

“विद्यापति के काव्य में शृंगार के भोगपक्ष का निःसंकोच और लालित्यपूर्ण वर्णन हुआ है। वयःसंधि, नखशिख, अभिसार, सुरत, दूती वचन आदि के प्रसंगों में बड़े सजीव और मार्मिक चित्रण उन्होंने किये हैं। रसशास्त्री चाहे तो उनमें नायिका भेद, विभाव, अनुभाव आदि का विवरण पा सकते हैं। जो चित्र उन्होंने दिये हैं वे भी कामशास्त्र आदि को पढ़कर या नायिका भेद आदि के साहित्य को देखकर नहीं दिये। उनके मूल में कवि का व्यक्तिगत अनुभव है। या तो उन्होंने भोगा या अपनी आँखों से देखा है। अतः विद्यापति का शृंगारी रूप बहुत स्पष्ट है।”⁷⁷ कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

“सैसव जौबन दरसन भेल। दुहु पथ हेरत मनमिज गेल॥
 मदन का भाव पहिल परचार। भिन जल देल भिन्न अधिकार॥
 कटि का गौरव पाओल नितंब। एक ख खीन अशोक अवलंब॥
 प्रगत हास अब गोपाल भेल। उरज प्रगट अब तन्हिम लेल।” (वयः संधि)
 पीन पयोधर, दूबरि गाता,
 मेरु उपजल कनकलता।
 ए कान्हू, ए कान्हू, तोरि दुहाई,
 अति अपूरब देखिलि साई। (नखशिख)
 कुंज-भवन संग निकसलि रे रोकल गिरिधारी।
 एकदि नगर बस माधव हे जनि कर बटमारी॥
 छांड कन्हैया, मोर आंचरु रे फाटत नवसारी।
 अपजस होएत जगत भरि हे जनि करिअ उधारी॥
 संग क सखि अगुआइलि रे हम एकसरि नारी।
 दामिनी आए तुलाएल हे एक राति अंधारी
 भनई विद्यापति गाओल रे सुनु गुनमति नारी।
 हरि को संग किछु डर नहिं हे तोहे परम गमारी। (संयोग)

माधव, करिअ समुखि—समधाने
 तुअ अभिसार कएलिं जत सुन्दरि कामिनि करु के आने॥
 बरिस पयोधर धरनि बारि भरि रयनि महाभय भीमा
 तइओ चललि धनि दुअ गुन मन गुनि तसु साहस नहिं सीमा।
 देखि भवन—भिति लिखित भुजंग पति तसु मन परम तरासे।
 ते सुबदान कर झपड़त फान—मान विहास आधाल तुम पास॥
 निअ पहु परिहरि, आएलि कमल मुखि परिहरि निअ कुल गारी॥
 तुअ अनुराग मधुर महु—मातलि किहु न गुनलि वर नारी।
 ई रस रसिक विनोद क विंदक कवि विद्यापति गावे।

काम-प्रेम दुहु एकमत भये रहु कखने की न करावे।।⁷⁸

विद्यापति के यहाँ प्रेम का लोकग्राह्य रूप है। एक कवि की सहज अनुभूति है। अनुभूति की तीव्रता प्रेम की प्रचंडता को प्रतिपादित करती है। जबकि सूर के प्रेम की उत्पत्ति में रूप लिप्सा और साहचर्य दोनों का योग है। बालक्रीडा के सखा-सखी आगे चलकर यौवन क्रीडा के सखा-सखी हो जाते हैं। गोपियों ने उद्धव से साफ कहा — 'लरिकाई को प्रेम कहौ अलि कैसे छूटै, केवल एक साथ रहते-रहते भी दो प्राणियों में प्रेम हो जाता है। कृष्ण एक तो बाल्यावस्था से ही गोपियों के बीच रहे, दूसरे सुंदरता में भी अद्वितीय थे। अतः गोपियों के प्रेम का क्रमशः विकास दो प्राकृतिक शक्तियों के प्रभाव से होने के कारण बहुत ही स्वाभाविक प्रतीत होता है। बालक्रीडा इस प्रकार क्रमशः यौवनक्रीडा के रूप में परिणत होती गई कि सधि का पता ही नहीं चलता। रूप का आकर्षण बाल्यावस्था से ही आरंभ हो जाता है। राधा और कृष्ण की विशेष प्रेम की उत्पत्ति सूर ने रूप के आकर्षण द्वारा ही कही है।

खेल न हरि निकसे ब्रज खोरी।

गए श्याम रवि तनय के तट अग लसति चदन की खोरी।

औचक ही देख तह राधा, नैन बिसाल भाल दिये रोरी।

सूर श्याम देखत ही रीझै, नैन नैन मिलि पर ठगोरी।⁷⁹

प्रेम का विद्रोही स्वरूप सूर की कविता में दिखलाई पड़ता है। "मध्यकाल के सामंती समाज में घर और परिवार की चहारदीवारी में घुटती नारी की स्थिति पर गौर करे, नारी शरीर के भोग की सामंती मानसिकता पर ध्यान दे, और तब नारी मन के भीतर छिपी हुई उसकी प्रेम की प्यास को पहचाने। अपनी सामाजिक और मानसिक मुक्ति के लिए छटपटाती हुई नारी की कुचली हुई अस्मिता को सूर अपने प्रेम-श्रृंगार वर्णन के माध्यम से उसकी समस्त आकांक्षाओं के साथ हमारे सामने मूर्त करते हैं। यह नारी मन में छिपी प्रेम की आकुल प्यास है जिसे सूर ने पहचाना, उभारा और गहराई तक जाकर सराहा है।"⁸⁰

4974 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, "कबीर के मन के कितने पतं खुले थे (कि कितनी पतें खुली थी) और इसका प्रभाव उनकी कविता पर क्या पड़ा? इस दोहे में देखो—

पिजर प्रेम प्रकासिया, अतर भया उजास।

मुख करतूरी महमही, बानी फूटी बास।

और किसी कवि की बात याद नहीं आती जिसने अपनी बानी के सुगंधित होने की बात लिखी हो। कबीर ने यह सब मन की असामान्य सहज स्थिति में लिखा था। दिमाग को कुरेदने से ये हीरे जवाहरात कहाँ निकलते हैं। और राम रूप पर विह्वल होने वाले तुलसीदास ने दुख की थाह न पाकर जैसे एक दिन कहा था— कियो न कहु करिवो न कछू कहिबो न कछू मरिबोई रह्यो है — उसी तरह सुन्न महल में बैठकर अनहद नाद सुनने वाले कबीर ने एक बार कहा

जरा का माई जनमिया, कदे न पाया सुख।

डारी डारी में फिरा, पातै तातै दुख।।

दुख के इस बोल पर हम रहस्यवादियों का सारा आनंद प्रकाश निछावर करते हैं।⁸¹ गोस्वामी तुलसीदास का उद्देश्य वाल्मीकि और भवभूति के राम को पुनर्प्रतिष्ठित करना नहीं था। राम चरित मानस' में जिस राम का काल्पनिक चित्र तुलसी ने खींचा है, वह पारलौकिक है। विशिष्ट गुणों से युक्त है। ऐतिहासिक आधार पर व्यक्ति है। उनमें करुणा की असीम भावना विद्यमान है। 'गरीब निवाज' है। दरिद्रता रूपी रावणका नाश करने वाले और वडवाग्नि से भी भयकर पेट की आग बुझाने वाले है। तुलसी के राम, उनके व्यक्तिगत संघर्ष और युग की विषमता के प्रतीक है। इसके विपरीत कबीर मूलतः निर्गुणों पासक है। उनका ईश्वर या ब्रह्म सर्वत्र है। वे उसे रूपायित करने के लिए 'राम' के रूप में स्वीकारते हैं। कबीर के राम पुराण-प्रतिपादित अवतार नहीं थे, यह निश्चित है। वे न तो दशरथ के घर उतरे थे और न लका के राजा का नाश करने वाले हुए, न तो देवकी की कोख से पैदा हुए थे न यशोदा ने उन्हें गोद खेलाया था, न तो वे ग्वालों के संग घूमा करते थे और न तो उन्होंने गोवर्धन पर्वत को ही धारण किया था, न तो उन्होंने वामन होकर बलि को ही छला था और न वे तदोद्धार के लिए वाराह रूप धारण करके धरती को अपने दातों पर ही उठाया था, न वे गडक के शालिग्राम हैं, न वराह, मत्स्य, कच्छप आदि वेषधारी विष्णु के अवतार, न वे नर नारायण के रूप में बदरिका आश्रम में ध्यान लगाने बैठे थे और न परशुराम होकर क्षत्रियों का ध्वंस करने गये थे, और न तो उन्होंने द्वारिका में शरीर छोड़ा था और न वे जगन्नाथ-धाम में बुद्ध रूप में ही अवतरित हुए।⁸² यह राम तत्त्व ही परमतत्त्व है, जो एक प्रकाश पुंज है। किंतु उसे मनवाणी से नहीं पाया जा सकता। वह अवाग मानसागोचर है। ऐसे राम की प्राप्ति के लिए कबीर में उल्लास और उत्साह रहता है। वह कबीर के हृदय में निवास करने वाले राम हैं, और उनके हृदय में बसने वाले इस राम का समाज से गहरा सरोकार है इसलिए उनका भी समाज से गहरा रिश्ता होता है।

भक्तिकालीन कवियों सूर, कबीर और तुलसी के विषय में रामविलास शर्मा कहते हैं, मेरी मान्यता यह है कि सूर, कबीर और तुलसी तीनों भिन्न-भिन्न सामाजिक परिवेशों का बहुत अच्छी तरह से बहुत गहराई से चित्रण करते हैं। कबीर जिस दुनिया में रहते हैं वह बाजार वाली दुनिया है, वहाँ माल लेकर बेचने के लिए जाना पड़ता है। इसलिए कबीर बनिये को भी गाली देते हैं। केवल बाभन को गाली नहीं देते, केवल मुल्ला को गाली नहीं देते। वे शहर के रहने वाले हैं बहुत से लोगों से मिलते हैं, खेती का कहीं-कहीं जिक्र आता है कबीर में लेकिन खेती की दुनिया से काफी दूर हैं, शहर की जो दुनिया है, जो बाजार वाला अर्थ तंत्र है, उससे वे काफी परिचित हैं। और उसमें भी जो कारीगर तबका है, उसके जीवन को वे अच्छी तरह से जानते हैं। तो, कारीगर वाले तबके के, उस वर्ग के प्रतिनिधि हैं कबीरदास। खेती की दुनिया से वे सूरदास से भी काफी दूर हैं। (सूरदास के ग्वाल और गोपियों) वन में, चरागाह में, गाय चराने जाते हैं, यानि विनिमय है लेकिन तुरंत उसी गाँव में नहीं, उसी परिवेश में नहीं जहाँ सूरदास रहते हैं। मोटे तौर से कहे कि पशुचारण सभ्यता के जो अवशेष 16वीं सदी में थे, वे सूरदास में परिलक्षित होते हैं। यह उनका सामाजिक परिवेश है। गाँव के पास जो आदमी सबसे ज्यादा रहता है, वह तुलसीदास हैं। (कृषि निरावहि चतुर किसान) ऐसी एक पवित्र वर्षा के वर्णन में आ गई है। मालूम होता है कि अकस्मात् आ गई है लेकिन तुलसीदास के लिए वह काफी सहज है। किसान स्वयं काम कर रहा है, वह जमींदार नहीं है और वह जमींदार का जन भी नहीं है। उसे

जमीन का मालिक होना चाहिए, नहीं तो चतुर किसान कैसे हुआ? इस किसान को तुलसीदास अच्छी तरह जानते हैं। जो गाँव का परिवेश है उसे तुलसीदास अच्छी तरह जानते हैं।”⁸³

26.10.74 के पत्र में केदार लिखते हैं, “इधर विश्वनाथ त्रिपाठी की पुस्तक ‘लोकवादी तुलसीदास पढ़ी। बड़े मनोयोग से लिखी है यार ने। पढ़कर मैं भी लट्टू हो गया तुलसी पर। घरू आदमी हो घरू स्वर में त्रिपाठी ने तुलसी का स्वाभाविक मानवीय स्वरूप उधारा है। आदमी तुलसी कवि भी बड़े प्रिय थे और भक्त भी एक निष्ठ थे। पर जब धर्म और दर्शन के चक्कर में वह पंडिताई करते थे तो गिर जाते थे। उनका कवि भी बकवादी हो जाता था। ऐसा मुझे अब भी लगता है। इस पुस्तक को पढ़ने के बाद भी।

“मैंने सोचा था कि इस पुस्तक से मेरा भ्रम टूटेगा। सिद्ध होगा कि तुलसी यथास्थिति बनाये रखने के समर्थक न थे। वह भ्रम न टूटा। बल्कि इस किताब से और भी साफ हो गया कि तुलसी अवध के राज्य के आदर्शों से भरपूर बंधे थे और कदापि क्रांतिदर्शी न थे। हाँ, इस पुस्तक से तुलसी की मानवीय संवेदनाशीलता की गहरी अभिव्यक्ति का बोध हुआ सो ठीक है। तभी तो तुलसी आज तक लोक मानस में प्रतिष्ठित हैं— किसानों की संस्कृति के संरक्षक के रूप में। तभी तो शोषक और शासक तुलसी का अभिनंदन समान रूप से करते हैं। यहीं पर तुलसी की भक्ति उन्हें भवसागर में लंगर लगाकर, आगे बढ़ने से रोक देती है और वह ठहरे हुए रहकर राम का आचरण लिखते हैं”⁸⁴

मध्यकालीन कवि तुलसीदास को केन्द्र में रखकर आधुनिक काल के दो बड़े आलोचकों ने आलोचनाएँ लिखीं। ‘तुलसी’ शब्द ‘तु+ल+सी’ के योग से बना है। तु अर्थात् असीम सत्ता, ल अर्थात् लक्ष्मण और स अर्थात् सीता: कुल मिलाकर जो असीम सत्ता (भगवान राम), लक्ष्मण और सीता तीनों का दास हो वह है तुलसीदास। तुलसीदास को केन्द्र में रखकर आचार्य राम चन्द्र शुक्ल ने ‘गोस्वामी तुलसी दास’ शीर्षक से एक पुस्तक लिखी। लगभग 50 वर्ष बीत जाने के बाद डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने ‘लोकवादी तुलसीदास’ शीर्षक से तुलसी का नये सिरे से मूल्यांकन किया।

तुलसीदास जी मध्यकाल के महत्वपूर्ण कवियों में से एक थे। राम का भक्त बनकर उनके माध्यम से पूरे युग का खाका खींचना उनकी प्रमुख विशेषता है। हालांकि तुलसी का राम राज्य एक ‘यूटोपिया’ है, फिर भी राम राज्य एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था है। ऐसी सामाजिक व्यवस्था जिसमें कोई दुखी नहीं है, सभी लोग एक दूसरे से प्रेम करते हैं।

तुलसीदास मध्यकालीन महत्वपूर्ण कवियों में से एक हैं। आचार्य राम चन्द्र शुक्ल हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ आलोचकों में से एक हैं। उन्होंने हिन्दी साहित्य का प्रथम सुव्यवस्थित इतिहास लिखा। भक्तिकालीन कवियों में से उन्होंने सर्वाधिक तुलसीदास पर लिखा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को तुलसी अति प्रिय थे। तुलसी की जीवन-दृष्टि ने आचार्य राम चन्द्र शुक्ल को एक सम्यक् दृष्टि प्रदान की। शुक्ल जी तुलसी को केन्द्र में रखकर अन्य कवियों का मूल्यांकन करना शुरू करते हैं। आचार्य शुक्ल की दृष्टि निर्माण में तुलसीदास का महत्वपूर्ण योगदान था। तुलसीदास वर्ण-व्यवस्था के पोषक कवि थे। इसलिए आचार्य शुक्ल भी वर्ण-व्यवस्था के समर्थक आलोचक

हुए। आचार्य शुक्ल बिल्कुल मर्यादावादी दृष्टि के आलोचक प्रतीत होते हैं। इनका मर्यादावाद तुलसी के राम के मर्यादावाद की तरह है।

आचार्य शुक्ल ने अपनी समीक्षा पुस्तक का नाम 'गोस्वामी तुलसीदास' रखा है। गोस्वामी का अभिप्राय इन्द्रियो के स्वामी से है। उन्होंने इन्द्रियो के स्वामी के रूप में तुलसी का मूल्यांकन किया है। उक्त पुस्तक में आचार्य शुक्ल ने एक अध्याय लोकनीति और मर्यादावाद लिखा है जो कि बाद में डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी को 'लोकवादी तुलसीदास' के लिए जमीन देता है। त्रिपाठी जी ने तुलसी का मूल्यांकन आधी शताब्दी बाद नये सिरे से किया।

आचार्य राम चन्द्र शुक्ल ने जिस समय तुलसीदास पर लिखा, वह समय भारत की गुलामी का था। हिन्दुस्तानी जनता अंग्रेजों के क्रूरतम शासन से अभिशप्त थी। भारत को आजाद होने में अब कुछ ही वर्ष शेष थे। भारतीय राजनीतिक पटल पर गाँधी का आगमन हो चुका था। तुलसी का राम राज्य गांधी जी के गांधीवादी राज्य व्यवस्था का अभिन्न हिस्सा बन चुका था। लगातार 700 वर्षों की गुलामी से जनता त्रस्त थी। इस गुलामी को देखकर आचार्य शुक्ल का हृदय व्यथित हुआ। राजनीति में तुलसीदास के राम राज्य को गांधी जी प्रतिष्ठित कर रहे थे, साहित्य में इसे प्रतिष्ठित करने का बीड़ा आचार्य शुक्ल ने उठाया।

तुलसी के समय से लेकर आचार्य शुक्ल तक बस यही परंपरा चली आ रही थी – 'कोउ नृप होहि हमहि का हानी'। इस ओर आचार्य की दृष्टि गयी। लगभग चार शताब्दी बाद तुलसी पुनः प्रासंगिक हुए। आचार्य जी ने उन पर विस्तार से लिखा। शुक्ल जी की दृष्टि का तुलसी पर केन्द्रित होने का कारण था कि उन्होंने 'राम राज्य' के रूप में एक बेहतर सामाजिक व्यवस्था दी थी। गोस्वामी जी 'राम चरित मानस' में एक 'यूटोपिया' का निर्माण करते हैं। राम चन्द्र जो कि दबी-कुचली जनता को साथ लेकर सोने की लका के लकापति रावण से युद्ध करते हैं और अंततः विजयी भी होते हैं। आचार्य शुक्ल ने 'राम चरित मानस' की इस सूक्ष्मता को पकड़ा। आचार्य जी के समय में गांधी जी भारत के महानायक बनकर उभर रहे थे। हिन्दुस्तान की जनता गांधी जी के नेतृत्व में लड़ रही थी। जनता अस्त्र विहीन थी। सत्य और अहिंसा तत्पुगीन जनता का सबसे बड़ा हथियार था। अंग्रेजी सत्ता रावणी सत्ता का प्रतीक लगती है, जहाँ सिर्फ शोषण और उत्पीड़न था। कहा जाता है कि अंग्रेजी सत्ता का सूर्यास्त नहीं होता था। गांधी जी के रूप में तुलसी के राम प्रासंगिक हो चुके थे। गांधी जी ने समाज के हर तबके को साथ लिया। कुछ ऐसा ही कार्य तुलसी के राम ने भी किया था। आचार्य शुक्ल की तत्पु ग्राहिणी बुद्धि ने इसे देखा और समझा तभी तो उनको सबसे पहले तुलसीदास याद आते हैं।

दूसरी ओर कुछ बिन्दुओं के कारण तुलसी की आलोचना तो होती ही है, साथ ही शुक्ल जी इससे बच नहीं पाते। शुक्ल जी ने गोस्वामी जी का मूल्यांकन करते हुए लिखा है कि गोस्वामी जी के समाज का आदर्श वही जिसका निरूपण वेद, पुराण स्मृति आदि में है अर्थात् वर्णाश्रम की पूर्ण प्रतिष्ठा है। वर्णाश्रम व्यवस्था के समर्थक तुलसीदास का समर्थन करते हुए आचार्य शुक्ल लिखते हैं, "उच्च वर्ग में अधिक मान या अधिक अधिकार के साथ कठिन कर्तव्यों की योजना और निम्न वर्गों में कम मान और कम सुख के साथ अधिक अवस्थाओं में आराम की योजना जीवन निर्वाह की दृष्टि से सामंजस्य रखती थी।

“बादहिं शूद्र द्विजन सन हम तुमतें कुछ घाति।

जानहिं ब्रह्म सो बिप्रवर आँखि दिखयाहिं डाँटि।।

‘शूद्र’ शब्द से जाति की नीचता मात्र से अभिप्राय नहीं है, विद्या, बुद्धि, शील, शिष्टता, सभ्यता सबकी हीनता से है।⁸⁵ यहाँ पर शुक्ल जी में अंतर्विरोध दिखलाई पड़ता है।

“यदि उच्च वर्ग का कोई मनुष्य अपने धर्म से च्युत है, तो उसकी विगर्हणा, उसके शासन और उसके सुधार का भार राज्य के या उसके वर्ग के ऊपर है, निम्न वर्ग के लोगों पर नहीं। अतः लोकमर्यादा की दृष्टि से निम्न वर्ग के लोगों का धर्म यही है कि उस पर श्रद्धा का भाव रखें; न रख सकें तो कम से कम प्रकट करते रहें। इसे गोस्वामी जी का ‘सोशल डिसिप्लीन’ समझिए। इसी भाव से उन्होंने प्रसिद्ध नीतिज्ञ और लोक व्यवस्थापक चाणक्य का यह वचन—

“पतितोपि द्विजः श्रेष्ठो न च शूद्रो जितेन्द्रियः।

अनुवाद करके रख दिया—

पूजिय बिप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ध्यान प्रवीना।

जिसे कुछ लोग उनका जातीय पक्षपात समझते हैं। जातीय पक्षपात से विरक्त उस महात्मा को क्या मतलब हो सकता था—

लोग कहें पोचु सो न सोचु न संकोचु मेरे,

व्याह न बरेखी जाति पांति न चहत हौं।⁸⁶

एक स्थल पर शुक्ल जी गोस्वामी का बचाव पुनः इस प्रकार करते हैं, ‘नीच निचाई नहिं तजैं जौ पावै सत्संग’ इस विषय में आचार्य शुक्ल लिखते हैं, “यह उक्ति नीच या शठ की भीषणता दिखाने के लिए है। इसके बाद वह पुनः लिखते हैं कि “काव्य का उद्देश्य शुद्ध विवेचन द्वारा सिद्धांत निरूपण नहीं होता, रसोत्पादन या भाव संचार होता है। बुद्धि की क्रिया कवि जन आंशिक सहायता ही लेते हैं।⁸⁷ आचार्य शुक्ल उक्त पुस्तक में तुलसी के बचाव की मुद्रा में है। तुलसी के लिए एक बात तय है कि वह वर्ण व्यवस्थावादी थे। अब यह दूसरी बात है कि उनकी वर्ण – व्यवस्था का संबंध किससे है। आचार्य शुक्ल के युग में गांधी वर्ण-व्यवस्था के हिमायती नहीं थे। ‘राम चरित मानस’ लिखते समय तक तुलसी के अन्दर वर्ण-व्यवस्था का समर्थन कूट-कूट भरा था। समय बदला और तुलसी का भी मोह भंग हुआ, उन्हें लिखना पड़ा— ‘धूत कहौ, अवधूत कहौ... काहू की बेटा से बेटा न व्याहब’। इन सब प्रसंगों पर आचार्य की दृष्टि नहीं जाती है। ‘मांगि कै खैबो मसीद को सोइबो, लैबे को एक न दैबे को दोऊ।’ और ‘मन मोदनिकी भूख बताई’ की चर्चा वह यथार्थ चित्रण के रूप में नहीं बल्कि भाषा का अधिकार के संदर्भ में करते हैं।

‘लोकवादी तुलसीदास’ की रचना डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने स्वतंत्र भारत में की थी। त्रिपाठी जी ने लगभग 50 वर्ष बाद तुलसी को अलग तरह से मूल्यांकित करने का प्रयास किया है। वही तुलसी दास जो कि आचार्य शुक्ल के यहाँ लोकनीतिवादी, मर्यादावादी हैं, त्रिपाठी जी के यहाँ महान देश प्रेमी और मुख्यतः किसान-जीवन के कवि हो जाते हैं। त्रिपाठी जी को तुलसी की लोकप्रियता का कारण यह लगता है कि “उन्होंने अपनी कविता में अपने देखे हुए जीवन का बहुत गहरा व्यापक चित्रण किया है। उन्होंने राम के परंपरा प्राप्त रूप को अपने युग के अनुरूप

बनाया है। उन्होंने राम की संघर्षकथा को अपने समकालीन समाज और अपने जीवन की संघर्ष कथा के आलोक में देखा है। उन्होंने वाल्मीकि और भवभूति के राम को पुनर्स्थापित नहीं किया है। अपने युग के नायक राम को चित्रित किया है।⁸⁸ त्रिपाठी जी तुलसी के तत्कालीन और समकालीन समाज से जोड़कर देखते हैं, उन्होंने लिखा है, “तुलसी की विशेषता यह है कि उन्होंने राम को सामाजिक जागतिक और समकालीन नैतिक मूल्यों के आदर्शों का जीवंत प्रतीक बना दिया है। त्रिपाठी जी राम कथा की विशिष्टता के रूप में संघर्षमयता और मर्यादा को देखते हैं।”⁸⁹

जब आचार्य शुक्ल ने तुलसी का मूल्यांकन किया था तब वह समय भारत की पराधीनता का था और जब डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने मूल्यांकन का कार्य किया उस समय भारत आजाद था। भारत को आजाद हुए कुछ वर्ष ही बीते थे। उस समय देश काल महत्वपूर्ण हो गया था। इसलिए त्रिपाठी जी ने तुलसी के राम को उनके देश से जोड़ा। किसी भी कृति का उद्देश्य समाज की दशा व दिशा तय करना है। ‘तुलसी का देश’ लिखकर त्रिपाठी जी ने तत्कालीन जनता को देश-प्रेम की भावना का संदेश भेजा है।

त्रिपाठी जी तुलसी को अपने देश और काल की सीमा में ‘लोकवादी कवि’ मानते हैं। परंतु वर्ण व्यवस्था के प्रति दुराग्रह के कारण उनकी लोकवादिता खंडित हो जाती है। इसे त्रिपाठी जी भी स्वीकारते हैं। आचार्य शुक्ल की तरह तर्क पेश नहीं करते। ‘ढोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी, सकलताड़ना के अधिकारी’ इस प्रसंग में त्रिपाठी जी लिखते हैं, “तुलसीदास को शूद्रों के निन्दक के रूप में नहीं, वर्ण व्यवस्था के समर्थक के रूप में देखना ज्यादा उचित है। वस्तुतः तुलसीदास तत्कालीन अव्यवस्था को तोड़कर एक सामाजिक व्यवस्था देने का प्रयत्न करते हैं और चूंकि वे लोक के साथ वेद यानि पुरातन को भी लेकर चलना चाहते हैं इसलिए उनका सामाजिक आदर्श वर्ण व्यवस्था का ही बना रहता है। वर्ण व्यवस्था के अनुसार पूजा विप्र की होनी चाहिए शूद्र की नहीं। अतः विप्र गुणहीन न हों तो पूजा उसी की होनी चाहिए, गुणवान होने पर शूद्र की नहीं। उनका सामाजिक आदर्श वर्ण-व्यवस्था का आदर्श है। जिसमें ‘पूजिय बिप्र सकल गुण हीना। शूद्र न पूजिय परम प्रवीना।’ वाली बात है।”⁹⁰

डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी तुलसी के ‘सुराज’ को ‘जनतंत्र’ नहीं मानते, उसको राम राज्य मानते हैं। इसके पक्ष में वह तर्क देते हैं कि ‘उस समय काल में तुलसी जनतंत्र और समाजवाद का स्वप्न नहीं देख सकते थे। वे ऐसी समग्र शासन-व्यवस्था का ही स्वप्न देख सकते थे जिसमें सब सुखी हैं, सब वर्णाश्रम व्यवस्था को मानते हैं।’⁹¹

तुलसी की द्वन्द्वात्मकता की बात करते हुए त्रिपाठी जी ने उसे भौतिकवादी नहीं, भाववादी बतलाया है। इसी भाववादिता के कारण तुलसी का दृष्टिकोण लोकवादी हो उठता है। इस ओर त्रिपाठी जी ने इशारा किया है।

एक बात और जो त्रिपाठी जी को शुक्ल जी से इतर ले जाती है, वह राम कथा का प्रतीकात्मक अर्थ ग्रहण करना है। “रावण राम का विरोधी है। वह तुलसी के सारे मूल्यों के विरोध का प्रतीक है। वह दुराचारी है, परद्वेषी और परपीडक है। लेकिन अत्यंत शक्तिशाली एवं साधन सम्पन्न भी है। रावण उस अन्याय का प्रतीक है जो इतना शक्तिशाली होता है कि युग के सारे विकास, समस्त सद्गुण एवं सारी संभावनाओं को दबोचे बैठा रहता है और जिसका विनाश

इतिहास में साधन हीन किंतु आगे बढ़ने वाली मानवता की शक्तियाँ करती हैं। राम इन्हीं मानवीय शक्तियों के प्रतीक हैं।⁹²

“जिस प्रकार राज्य-व्यवस्था की दृष्टि से तुलसी का आदर्श राम राज्य है, उसी प्रकार विवाह की दृष्टि से तुलसी का आदर्श प्रेम-विवाह प्रतीत होता है। इसीलिए उन्होंने विवाह के पूर्व सीता और राम का मिलन पुष्प वाटिका में कराया है। राम को देखकर सीता के हृदय में जो आकर्षण विक्षोभ होता है और उसका जो चित्रण तुलसीदास ने किया है वह कन्या के हृदय में छिपी हुई मासूम कामना से परिचित सहृदय कवि ही कर सकता है।⁹³ तुलसी के सहृदयता की बात तो आचार्य शुक्ल भी करते हैं, लेकिन प्रेम-विवाह की चर्चा वह नहीं करते।

जब त्रिपाठी जी तुलसी के नारी विषयक विचारों की चर्चा करते हैं तब उन्हें निराला की याद आ जाती है— ‘ऐसे शिव से गिरिजा विवाह/ करने में मेरी नहीं चाह।।’ तुलसी को नारी निंदक मानने के सवाल पर त्रिपाठी जी तर्क देते हैं, “जो लोग तुलसी को नारी निंदक मानते हैं उन्हें यह जानकर आश्चर्य होगा कि तुलसी काशी की प्रत्येक नारी को पार्वती के समान मानते हैं—

“लोक बेद हूँ विदित बाराणसी की बड़ाई। बासी नर नारी ईस अंबिका सरूप है।”⁹⁴

तुलसी की प्रगतिशीलता पर डॉ. त्रिपाठी लिखते हैं, “इहाँ बसब रजनी भल नाहीं। पति की इच्छा के विरुद्ध या उनकी अनुमति के बिना मायके ठहरना पत्नी के लिए अनुचित यानि उसके वश में नहीं है। इसी विवशता और पराधीनता को मध्यकालीन भारतीय समाज नैतिकता में रूपांतरित करके स्त्री को पूरी चारदीवारी के अंदर रखता है। अनुसूया ने सीता को जो उपदेश दिया है उसमें कई बातें आज भी अनुचित नहीं हैं। पतिव्रता का अनादर कोई व्यवस्था नहीं करेगी। लेकिन कुल मिलाकर अनुसूया का सीता को दिया गया उपदेश उस मध्यकालीन एकांगी नैतिकता पर आधारित है जो पुरुष और स्त्री को समाज में बराबरी का स्थान नहीं देता था। इस विषमता को राम का चरित्र तोड़ता है। इस विषमता युक्त व्यवस्था की एकांगिता और हृदयहीनता से तुलसी को भी चोट पहुँचती थी।”⁹⁵

डॉ. त्रिपाठी ने तुलसी की जीवनवृत्त के बारे में भी प्रकाश डाला है जबकि शुक्ल जी को उनकी जीवनी से कोई खास मतलब नहीं जान पड़ता था। कवितावली के कुछ पंक्तियों को आधार बनाकर त्रिपाठी जी ने तुलसी के जीवन को जानने का प्रयास किया है।

‘राम चरित मानस’ के पात्रों के विषय में त्रिपाठी जी लिखते हैं, “राम चरित मानस के पात्र लौकिक पात्र हैं। वे देश-काल, घटनाओं, परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से विकसित होते रहने वाले गत्वर पात्र हैं।”⁹⁶

शुक्ल जी के प्रिय कवि तुलसीदास के यहाँ जनता का रूप है। कवि कबीर के यहाँ ‘लोक’ की व्याप्ति है। “गोस्वामी का खेती न किसान को भिखारी को भीख बनि बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी...” में ऐतिहासिक समाज की सच्चाई है। संवेदना है। संवेदना का अतिक्रमण आज की परंपरा से जुड़ता है। वर्तमानता की समझ हम उसमें पा सकते हैं। आज के लोकतांत्रिक युग में जनता के प्रतिबिम्ब को हम उनकी कविता में देख सकते हैं। तुलसी की

प्रगतिशीलता पर शक की सुई आलोचक चलाते हैं। कोई उन्हें वर्ण व्यवस्थावादी मानता है, कोई अन्यान्य चीजों से उन्हें संबद्ध करता है। वर्ण व्यवस्थावादी होना 'श्रम विभाजन' के सिद्धांत की स्वीकृति है। 'श्रम विभाजन' आज भी है। आज उसका रूप परिवर्तित हो गया है। पुनः 'कर्म' पर आधृत हो गया है। तुलसी संकीर्ण अर्थों में जनता के कवि न होकर व्यापक दायरे में जनता के कवि हैं। जनता से उनका गहरा सरोकार है। विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं, "राम चरित मानस की कथा का जो विन्यास हुआ है उसमें अयोध्या, चित्रकूट और लंका के सामान्य-जन को बहुत महत्वपूर्ण स्थान मिला है। किसी घटना या पात्र की अनुकूलता या प्रतिकूलता का प्रभाव जनता की चेष्टाओं द्वारा तुलसी प्रकट करते चलते हैं। ग्रीक त्रासदियों के कोरस के समान कृति के बीच-बीच में सामान्य जन आते हैं और वे घटनाओं पर अपनी प्रतिक्रिया चेष्टाएँ प्रकट कर जाते हैं, 'मानस' में सामान्य जन भीड़ मात्र नहीं है, वे प्रायः विवेकवान और सहृदय हैं। ये सामान्य जन ही वन मार्ग में सीता, लक्ष्मण और राम को मिले थे। तुलसी के राम चरित मानस में चित्रित जो पात्र जितना ही शोषित, दलित, नीची समझनेवाली जाति का है, वह राम के उतना ही निकट है – शबरी भामिनी है, हनुमान ने राम-सीता, दोनों को अपने उपकारों से ऋणग्रस्त बना रखा है, केवट राम-सखा है, जटायु राम के पिता के समान है। लेकिन सामान्य जन से यहाँ तात्पर्य उन लोगों से है, जो राम के सीधे संपर्क में नहीं आते। वे घटनाओं से अलग हैं, लेकिन समूची कृति में ताप सूचक यंत्र का काम करते हैं। वे घटनाओं से विक्षुब्ध, पुलकित, उत्साहित, निराश और व्यग्र होते हैं। तुलसी ने इन सामान्य जनों की प्रतिक्रिया कथा में अनेक स्थलों पर प्रकट करके उन्हें 'मानस' की संरचना का अनुप्रेक्षणीय तत्व बना दिया है। इससे उनकी वह लोकवादी दृष्टि भी प्रकट होती है जो किसी व्यक्ति के चरित्र और किसी घटना का मूल्यांकन लोक और समाज की दृष्टि से करती है।"⁹⁷ तुलसी गहरे अर्थों में जन कवि थे।

त्रिपाठी जी तुलसी के काव्य को मध्यकालीन उत्तर भारत का सबसे प्रामाणिक संदर्भकोश मानते हैं और लिखते हैं, "उसमें तुलसी द्वारा देखा हुआ और समझा हुआ भारत मौजूद है।"⁹⁸ आचार्य शुक्ल द्वारा तुलसी पर लिखी हुई आलोचना को त्रिपाठी जी ने एक मुकम्मल जहान दिया। दरअसल एक अच्छे आलोचक को विषय में प्रवीण होना चाहिए। जब कोई व्यक्ति संबंध विषय के संबंध में कुछ जानता ही न हो तो वह उसके रहस्यों, सौंदर्य-स्थलों एवं रूपों को कैसे उद्घाटित कर पायेगा। आलोचक को किसी पूर्वग्रह या दुराग्रह से ग्रस्त नहीं होना चाहिए। इन दोनों गुणों के रहने के बावजूद आलोचक में अपने कथन को स्पष्ट, सरल एवं मधुर ढंग से व्यक्त करने की क्षमता भी हो इसके लिए आलोचक में दो बातों का होना अत्यंत आवश्यक है। एक तो उसका भाषा पर अभूतपूर्व अधिकार हो और दूसरे आलोचक में अनुभूति की तीव्रता हो। किसी भी व्यक्ति में अनुभूति की तीव्रता जितनी अधिक होगी, उसकी अभिव्यक्ति भी उतनी ही सटीक एवं सफल होगी।

साहित्यिक सिद्धांत और आलोचना साहित्य पर निर्भर रहती है, परंतु आलोचक एक कलाकार होता है जो यह दिखलाता है कि आलोचना में चिंतन और ज्ञान की प्रक्रिया अधिक महत्वपूर्ण है। चिंतन और ज्ञान की इकाईयों से मिलकर आलोचना का ढांचा तैयार होता है। इस ढांचे का स्वतंत्र अस्तित्व भी होता है। जैसे 'लोकवादी तुलसीदास' का स्वतंत्र अस्तित्व है।

6.2.74 के पत्र में राम विलस शर्मा लिखते हैं, "इधर भाषा विज्ञान से जी ऊबने पर हम तुलसी दास पढ़ते रहे। राम-लछिमन-भरत-सीता-हनुमान से बहुत अच्छे लगते हैं तुलसीदास। सतह पर काफी सेवार बहता दिखाई देता है, नीचे बहुत जोरदार रुढ़ियों की चट्टानों से

टकराती हुई धारा है। 'लोक न न डर परलोक को न सोच देव सेवा न सहाय गर्व धाम को न धन को इस उक्ति में सभी रूढ़ियों के ऊपर से उनकी कविता धारा बह चली है। जब वह Ecstasy में होते हैं तब उनमें मन के साथ उनका शरीर, का रोम-रोम भाव में डूब जाता है—सजल नयन गदगद गिरा गहबर मन पुलक शरीर' एक पंक्ति में Ecstasy का ऐसा चित्रण दूसरी जगह नहीं देखा।⁹⁹

अगले पत्र 13274 में केदारनाथ अग्रवाल लिखते हैं, "तुलसीदास अच्छे तो हैं ही। राम-लक्ष्मण-भरत-सीता-हनुमान तो उन्हीं के बनाये हैं। इस युग में तुलसी का सेवार ही सब तरफ उतराया फिर रहा है। भारतीय संस्कृति के नाम पर वही-वही तो श्रेष्ठ माना जाता है। बेचारे सतह के नीचे धसे तुलसी का असली मर्म तो कोई समझता ही नहीं। न उसे कोई ऊपर लाता है।"¹⁰⁰

तुलसी के मर्म को उद्घाटित करने का कार्य डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी की 'लोकवादी तुलसीदास' करती है। तुलसी ने रामचरित मानस, विनय पत्रिका और कवितावली के माध्यम से तत्सुगीन संस्कृति को जनता के समक्ष रखने का स्तुत्य प्रयास किया है।

मित्र-सवाद' में रामविलास शर्मा के छोटे भाई मुशी को लिखे पत्र भी हैं। केदारनाथ अग्रवाल 26847 के पत्र में मुशी को लिखते हैं, "सच मानो यह 'शुद्ध साहित्य' की आवाज गलत है। इससे न जीवन का कल्याण होता है न समाज का। फिर जब भौतिक जगत का ही अंश यह मस्तिष्क है तब हमारी विचार और भावधारा भी तो भौतिक जगत की अंश है। मानसिक जगत ऐसी जगह है नहीं। फिर यह कहना कि उस जगत की ही सत्ता की वजह से यह भौतिक जगत स्थित है सर्वथा भ्रममूलक है। थोड़े में कहूँगा कि पिनक का साहित्य ही 'शुद्ध साहित्य' में गिना जाता है।"¹⁰¹ शुद्ध साहित्य जैसी कोई चीज ही नहीं होती। साहित्य तो साहित्य है। साहित्य सवेदनात्मक होता है। रीतिकालीन साहित्य शुद्ध साहित्य है। शुद्ध साहित्य का पैमाना क्या है? क्या रस, छंद अलंकार को सायास डाल देने से कोई साहित्य शुद्ध हो जाता है? नहीं जहाँ सवेदना को कवि के अन्तस्थ का स्वर मिला हो, वही साहित्य है। दरअसल शुद्ध साहित्य की चर्चा ही फिजूल है।

16947 के पत्र में केदारनाथ अग्रवाल लिखते हैं, "रसवाद के बारे में तुम्हारा क्या मत है?"¹⁰² रसवाद पर संक्षिप्त चर्चा करने के पूर्व तुलसी (शायद शुद्ध साहित्य की श्रेणी में नहीं) पर सतीश चन्द्रा का विचार देखना अप्रासंगिक न होगा। उनके अनुसार—

"तुलसीदास का हिन्दी भाषी क्षेत्रों ही नहीं वरन् अन्य क्षेत्रों के लोगों के विचारों और जीवन-शैली पर अद्भुत प्रभाव है। तुलसीदास के विचारों के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टिकोणों का ध्यानपूर्वक विश्लेषण आवश्यक है, जिससे आने वाली पीढ़ी पर उनके प्रभावों का अध्ययन किया जा सके। तुलसीदास जैसे महनीय व्यक्तित्व को प्रगतिवाद या प्रतिक्रियावाद के दायरों में बाधना बहुत कठिन है। चूँकि तुलसीदास एक ऐसे समय में रह रहे थे और रचनाकार्य कर रहे थे जो तेजी से परिवर्तित हो रहा था और जिसमें कई नई और पुरानी अवधारणाएँ एक दूसरे के विरुद्ध खड़ी हो रही थी इसलिए तुलसी की रचनाओं में विरोधाभास होना आश्चर्यजनक नहीं है। जो भी हो तुलसीदास ऐसे युगद्रष्टा व्यक्ति के रूप में उभरे जिसने

संकीर्ण दायरों से उभरने वाली समस्याओं को हल करने का प्रयत्न किया और जो वस्तुतः एक मानववादी थे।¹⁰³

रसवाद रस-सिद्धांत से संबंधित है। संस्कृत साहित्य में साहित्य के मूल्यांकन हेतु आलोचना शब्द का प्रयोग नहीं किया गया। संस्कृत काव्य शक्तियों ने काव्य का मूल्यांकन उसकी 'आत्मा' को ही लेकर किया है। निश्चित विवेचन किया है, वह सराहनीय है। संस्कृत काव्य शास्त्रियों का यह सूक्ष्म विवेचन हमारा मार्गदर्शक भी साबित होता है। फिर उनकी दृष्टि हमेशा 'काव्य-आत्मा' के खोज पर रही है। उन्होंने 'काव्य की आत्मा' को ही महत्वपूर्ण माना। हालांकि 'काव्य की आत्मा' को खोजने में उन्होंने सफलता भी प्राप्त की और अंततः 'रस-सिद्धांत' को उन्होंने खोज निकाला।

इस प्रकार दोनों मित्रों में पत्र-व्यवहार द्वारा कविता क्या है, कैसी होनी चाहिए से लेकर, मध्यकालीन कवियों पर सूत्रात्मक रूप से दृष्टि डली गयी है। एक प्रकार से मध्यकालीन के कवियों और उनकी कविताओं का सांस्कृतिक मूल्यांकन है। रसवाद पर चर्चा है। शुद्ध साहित्य के बहाने रीतिकालीन कवियों की खबर है। इन्हीं के कारण 'मित्र-संवाद' के पत्रों की सार्थकता है।

उप अध्याय—तीन

निराला, प्रगतिशील कविता और नई कविता

कविता पर बहस नई नहीं है। कविता बदलती गयी कविता के प्रतिमान बदलते गये। कविता का समाज भी बदलता गया। कविता का परिवेश समाज से गहरे रूप से प्रभावित हुआ। भवभूति ने उत्तर राम चरित' में लिखा है, "विन्देम देवतां वाचममृतात्मात्मनः कलाम्।" अर्थात् "अमृत स्वरूपा और आत्मा की कलारूप वाग्देवी हमें प्राप्त हो।"¹⁰⁴ भवभूति के इस वर्णन के अनुसार, कविता अमृतस्वरूपा है। कविता आत्मा की कला है और कविता सबसे बढ़कर वाग्देवी रूपा है। जहाँ भारत में इस प्रकार के चिंतन-मनन चल रहे थे वहीं पर पश्चिम में अरस्तू 'अनुकरण सिद्धांत' पर विचार कर रहे थे। आधुनिक काल में कविता संबंधी नये मत की स्थापनाओं के बाद आलोचकों ने पुनः इस पर बहस चलायी। सबसे पहले हिन्दी साहित्य के प्रथम वैज्ञानिक इतिहास लेखक आचार्य राम चन्द्र शुक्ल ने कविता संबंधी बहस को पुनः व्यवस्थित करने का प्रयास किया।

कविता की परिभाषा वह इस तरह करते हैं, "जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं। इस साधना को हम भावयोग कहते हैं और कर्मयोग और ज्ञानयोग का समकक्ष मानते हैं।"¹⁰⁵ "काव्य और कलाओं के माध्यम से सिद्ध होने भावयोग या अनुभूतियों को शुक्ल जी ज्ञानयोग और कर्मयोग के समकक्ष मानते थे, मुक्त हृदय मनुष्य अपनी सत्ता को लोकसत्ता में लीन किये रहता है। इस अनुभूतियोग के अभ्यास से हमारे मनोविकारों का परिष्कार तथा शेष-सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक संबंध की रक्षा और निर्वाह होता है। (रस मीमांसा, पृ.6) अपने भाव-विवेचन में शुक्ल जी ने जो करुणा को अत्यधिक महत्व दिया है उसका कारण यह भी है कि वे करुणा को ही लोक सत्ता से व्यक्ति सत्ता को मिलाने वाले भाव मानते हैं। यही वह भाव है जो अविलम्ब आश्रय

को आलम्बन के साथ जोड़ता है। आत्म प्रसार का कारण बनता है और अतः जीवन में लोक-मंगल का विधान करता है।¹⁰⁶ शुक्ल जी भाव और मनोविकार सबधी विवेचन बड़ी सूक्ष्मता के साथ करते हैं। वे सभी विषयों का अध्ययन विश्लेषण सामाजिकता के सदर्भ में करते हैं। दरअसल शुक्ल जी की लोकमंगल की चिन्ता एक ऐसी मानवीय दृष्टि से उद्भूत है जिसके कारण काव्य की भावभूति को वे न 'लोकोत्तर' बनाना चाहते हैं, न 'लोकेत्तर' वे उसे केवल 'लोक सामान्य' भर बनाना चाहते हैं। शुक्ल जी कविता की भावभूमि की व्याप्ति लोक और जीवन के सभी पक्षों तक मानते थे। काव्य के विभागों की चर्चा करते हुए उन्होंने उसमें जीवन के प्रयत्न-पक्ष और उपभोग पक्ष साधनावस्था और सिद्धावस्था दोनों को समेटकर सर्वोपरि महत्ता साधनावस्था को दी। साधनावस्था के अतर्गत उन्होंने 'विरुद्धों के सामंजस्य' में ही 'लोकधर्म' का सौंदर्य देखा।¹⁰⁷ शुक्ल जी के कविता के प्रतिमान की परख गोस्वामी तुलसीदास के बरक्स थी। गोस्वामी ने भी कविता को 'सुरसरि सम सब कहँ हित होई' कहा। समय की करवटों के परिणामस्वरूप कविता की समझ बदलती गयी। दरअसल आधुनिक काल की कविता आदोलनों की कविता है। सबसे पहले भारतेन्दु युग आया भारतेन्दु युग की कविता में ब्रजभाषा की प्रधानता थी। द्विवेदी युग में कविता के क्षेत्र में खड़ी बोली को प्रतिष्ठा मिली। उसके बाद छायावाद का दौर कविता की परंपरा को पुष्ट करता है। प्रगतिवादी आदोलन कविता को समाज से जोड़ने की वकालत करता है। उसके एक पुरस्कर्ता स्वयं पेशे से वकील ही थे। प्रगतिवाद के समानांतर ही अज्ञेय का प्रयोग वादी दौर भी कविता में नये-नये प्रयोगों को अन्वेषित करने का कार्य करता है। इसके बाद आती है नयी कविता और उसके नये आलोचक यही पर कविता की परंपरा की बात होती है। बहस का माहौल बनता है।

केदार लिखते हैं, "कालिदास सफल कवि है। सुरतवाद निस्संदेह बहुत है उसके काव्य में। लेकिन शान का कवि है। जिसे तुमने सोधी मिट्टी की महक कहा है। मैं तो संस्कृत नहीं जानता लेकिन अनुवाद से ग्रथावली पढ़ते समय उसके श्लोकों के सस्वर पाठक का बहुत मजा ले चुका हूँ। मुझमें भी वही मोह है इसलिए मैं सुरतवाद की मिठास में पड़ा जाता था। भाई जान चीज ही ऐसी है। मुझे तो उसकी क्लैसिकल कला से बहुत कला मिली है। मैंने सीखा है इस महान कवि से थोड़े में बात करना या भाव व्यक्त करना, श्रेष्ठ कला सहित। आज तो हिन्दी में बहुत कम नये कवि उसे पढ़ते हैं इसलिए गद्य के गुपफन में कविता को जन्म दे रहे हैं। शायद काव्य की कला ही लोप होती जा रही है। इस पर भी आलोचक इस बात से अवगत नहीं जान पड़ते। वे कहते हैं कि नये मनुष्य की कला का गद्यमय होना अनिवार्य हो गया है इसलिए हमें उनके प्रति मन्न होना चाहिए।"¹⁰⁸ केदार की चिन्ता वाजिब है। कोई भी चीज 'नवीनतम' तभी हो सकती है, जब उसका परंपरा के साथ जुड़ाव हो। यदि परंपरा के साथ जुड़ाव नहीं होगा तो कोई भी चीज नवीन हो ही नहीं सकती। नामवर सिंह लिखते हैं, 'किसी काव्य कृति का कविता होने के साथ ही 'नई' होना अभीष्ट है। वह 'नई' हो और 'कविता' न हो, यह स्थिति साहित्य में कभी स्वीकार्य नहीं हो सकती। फिर नई कविता का विरोध आज नयेपन के आग्रह के कारण उतना नहीं हो रहा है, जितना इस कारण जो बाह्यत और सारधारणत कविता नहीं लगता, उसे उसके अतर्गत कविता कहा जाता है।"¹⁰⁹ बात कविता के नई लगने की अथवा न लगने की नहीं है। बात कविता में भावों की शाश्वतता की है। रामविलास शर्मा लिखते हैं, "नये प्रतिमान स्थापित करने के लिए सबसे पहले यह देखना जरूरी है कि नयी कविता और पुरानी कविता में फर्क क्या है। मुकाबला वाल्मीकि और कालिदास से तो है नहीं, मुकाबला है छायावादियों से खासकर जयशंकर प्रसाद से। फर्क नयी कविता और छायावादी कविता में देखना है। छायावादी

स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह था, नयी कविता सूक्ष्म के प्रति अति सूक्ष्म का विद्रोह है।¹¹⁰ जो भी हो कविता तो कविता है। बिना भावों के कविता नहीं बन सकती है। नामवर सिंह लिखते हैं, “नई कविता छायावाद के समान ही ‘अनुभूति’ पर बल देते हुए भी भावों की शाश्वतता के प्रति उत्तनी आश्वस्त नहीं है। इसलिए नये कवि अनुभूति से अधिक अनुभूतियों के परिवर्तित संदर्भ पर विशेष बल देते हैं। स्पष्टतः इनका बल रागात्मकता से अधिक रागात्मक संबंधों पर है।¹¹¹ इस धारणा को पुष्ट करने के लिए नामवर सिंह अज्ञेय के दूसरे सप्तक की भूमिका को प्रमाण स्वरूप पेश करते हैं, “यह कहा जा सकता है कि हमारे भूल स्वीकार किये जा सकते हैं। पर यह भी ध्यान में रखना होगा कि राग वही रहने पर भी रागात्मक संबंधों की प्रणालियाँ बदल गई हैं और कवि का क्षेत्र रागात्मक संबंधों का क्षेत्र होने के कारण इस परिवर्तन का कवि कर्म पर बहुत गहरा असर पड़ा है।... जैसे-जैसे वाह्य वास्तविकता बदलती है — वैसे-वैसे हमारे उससे रागात्मक संबंध जोड़ने की प्रणालियाँ भी बदलती हैं— और अगर नहीं बदलती तो उस वाह्य वास्तविकता से हमारा संबंध टूट जाता है। कहना न होगा कि जो आलोचक इस परिवर्तन को समझ नहीं पा रहे हैं, वे उस वास्तविकता से टूट गये हैं जो आज की वास्तविकता है। उसे रागात्मक संबंध से जोड़ने में असमर्थ वे उसे केवल वाह्य वास्तविकता मानते हैं जबकि पीछे हम उससे वैसा संबंध स्थापित करके उसे आंतरित सत्य बना लेते हैं। और इस विपर्यय से साधारणीकरण की नई समस्याएँ आरंभ होती हैं।¹¹² इस पर रामविलास शर्मा लिखते हैं, “आप पूछेंगे, रागात्मक संबंधों को मानकर अज्ञेय ने क्या वाह्य जगत की वास्तविकता स्वीकार नहीं कर ली? यदि वास्तविकता हमारी इच्छाओं की चिंता न करके बदलती रहती है तो सत्य न माना जाए? ... अज्ञेय ने अपना तथ्य सत्य वाला भेद छोड़ा नहीं है। वास्तविकता बदलती है यानि तथ्य बदलते हैं। अज्ञेय के अनुसार जो लोग आज की वास्तविकता से रागात्मक संबंध जोड़ने में असमर्थ हैं, वे उसे केवल वाह्य वास्तविकता मानते हैं जबकि हम उससे वैसा संबंध स्थापित करके उसे आंतरिक सत्य बना लेते हैं। (पृ.25-26)। रागात्मक संबंधों के स्पर्श से वास्तविकता यों बदलती है। वह वाह्य वस्तुगत, आपकी इच्छाओं से स्वतंत्र वास्तविकता न रहकर आंतरिक सत्य बन जाती है। तथ्य अर्थ से आलोकित होकर आत्मसत्य बन जाता है।¹¹³ पुनः टिप्पणी करते हुए रामविलास शर्मा लिखते हैं, “अब आप नामवर सिंह की कठिनाई देखिए। वह नयी कविता में दो धाराएँ शामिल करते हैं— एक प्रगतिशील, दूसरी उसकी विरोधी। इन दोनों को सही साबित करने के लिए उन्हें दो प्रतिभा चाहिए जिनके परस्पर विरोध को दबाकर वह संतुलन स्थापित कर सकें। इन दोनों प्रतिमानों के दो आधार हैं— वस्तुगत सत्य और आत्मगत सत्य। वस्तुगत सत्य के समर्थन के लिए आत्मगत सत्य का खंडन जरूरी है और आत्मगत सत्य का खंडन अज्ञेय के खंडन के बिना संभव नहीं है।¹¹⁴ कविता के लिए आत्मगत सत्य भी आवश्यक है और वस्तुगत सत्य भी। जब वैयक्तिक अनुभूति निवैयक्तिक हो जाती है तभी कविता की सार्थकता होती है। निराला की ‘सरोज-स्मृति’ किस पाठक को द्रवित नहीं करती। अनुभूति व्यक्तिनिष्ठ हैं, लेकिन रचना कालजयी, कविता, सीमा को अतिक्रमित करते हुए कालजयी बनी है। उसे देशकाल, व्यक्ति की सीमा में कैद नहीं किया जा सकता।

नामवर सिंह लिखते हैं, “गलत है, ‘कविता’ संबंधी बुनियादी सवाल की ओट में किसी पुराने सिद्धांत का सहारा लेना। और निश्चय ही ऐसी चुनौती का जवाब श्री लक्ष्मीकांत वर्मा की तरह नयी कविता के प्रतिमान बनाकर नहीं दिया जा सकता, बल्कि जैसा कि साही ने कहा है, ‘समूची नई कविता को ठीक-ठीक देखने के लिए नई कविता के प्रतिमान की जरूरत नहीं है, बल्कि कविता के नये प्रतिमान की जरूरत है।¹¹⁵ दरअसल प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नई कविता

एक-दूसरे से कही न कही जुड़े हुए है। प्रश्न नई कविता के प्रतिमान का हो या कविता के नये प्रतिमान का, अनुभूति की विलक्षणता से कविता रची-पगी होती है। अनुभूति की तीव्रता के मानस को गहरे रूप में प्रभावित करती है। नयी कविता के इन बहसों को छोड़कर 'आधुनिक भाव-बोध' की बात की जाय तो सार्थकता झलकती है। अनुभूति की तीव्रता परिष्कृत होकर आधुनिक भावभोध को नई कविता में उकेरती है।

राम स्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं, "प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नयी कविता के दौर ऐसे घुले-मिले हैं कि इनके सहयोगी कवि इनमें से एक से अधिक को छूटे काटते चलते हैं। इससे एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह मिलता है कि विचारधारा का आग्रह किसी कवि व्यक्तित्व को उतनी दूर तक निर्मित नहीं करता जितनी कि रचनात्मकता सवेदनशीलता उसे बनाती है। और जिसमें से क्रमशः उनकी पहिचान उभरती है।"¹¹⁶ विचारधारा होनी चाहिए लेकिन विचारधारा का पूर्वग्रह किसी कवि को बौना ही साबित करता है।

प्रगतिशील लेखक संघ के विषय में 20 11 36 के पत्र में निराला, रामविलास शर्मा को लिखते हैं, 'यहाँ एक दल ऐसा है, जो उच्च शिक्षित है, शायद सोशलिस्ट भी है। इसके कुछ लोग योरप से भी हो आये हैं। स्त्री और पुरुष, हिन्दू और मुसलमान दोनों। इन्होंने प्रोग्रेसिव राइटर्स मीटिंग या एसोशियेशन नाम की संस्था कायम की है। ये उच्च शिक्षितजन कुछ लिखते भी हैं, इसमें मुझे संशय है। शायद इसीलिए लिखने का एक नया आविष्कार इन्होंने किया है, और वह इनमें जोर पकड़ता जा रहा है।"¹¹⁷ हिन्दी की प्रगतिवादी आंदोलन की शुरुआत सन् 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के साथ होती है। 'मित्र-सवाद' की शुरुआत लगभग एक वर्ष पूर्व प्रारंभ होती है। पत्र के प्रारंभ में ही 'महाकवि निराला' उपस्थित है "तुम्हारा कार्ड मिला। यथावकाश निराला जी को लेकर पं. शुकदेव बिहारी जी मिश्र के यहाँ कल सायंकाल गया था। निराला जी के लिखवाये लेख पर उन्होंने हस्ताक्षर कर दिये हैं।"¹¹⁸

'मित्र-सवाद' में नये-कवियों को सीखने की सलाह बार-बार दोनों मित्र देते हैं। कभी निराला से तो कभी कालिदास की परंपरा से सीखने को लेकर दोनों का संरोकार है। संस्कृत के प्रथम कवि की वाणी उनकी शोक सतप्त सवेदना का परिणाम है। शोक से ही 'श्लोक' निःसृत हुई। उनकी सवेदनाशीलता और तीव्रानुभूति का परिणाम 'क्रौंच-वध' कविता है। हिन्दी के महाप्राण 'शोक-सतप्त' हुए, लेकिन उनका शोषण समाज के साहित्यिक मठाधीशों ने किया था। उनकी पीड़ा का परिणाम 'सरोज-स्मृति' और 'राम की शक्तिपूजा' है और साथ ही साथ तुलसीदास में युगबोध की गहरी व्याख्या। निराला की अनुभूति नितांत निजी अनुभूति थी न कि सामाजिक। वाल्मीकि ने 'क्रौंच-वध' को कविता का प्रतिमान बनाया तो निराला ने अपनी भोगी हुई मनीषा को सूक्ष्म बिम्बो-शब्दों में उपजाया। वहाँ पर एक बहेलिये ने एक जोड़े 'क्रौंच' को करुणा कलित किया था, निराला के यहाँ पूरे समाज ने निर्ममता के साथ एक पिता के हृदय को आघात पहुँचाते हुए, उसके कवि मन को आहत किया था। निराला की तीनों कविताएँ एक स्तर पर उनके जीवन को समझने व परखने का ऐतिहासिक दस्तावेज बन जाती हैं। निराला की रचना परिस्थिति, काल व परिवेश का अतिक्रमण कर जाती है, तब वह बड़ी रचना के रूप में हमारे सामने आती है। निराला के जीवन को डॉ. रामविलास शर्मा और कवि केदार ने समझा। रामविलास शर्मा ने साहित्य समाज की ओर केदारनाथ अग्रवाल ने मस्तिष्क को उर्वर बनाया। मित्र-सवाद में मित्रों की चर्चा विषय को परत-दर-परत गहराई प्रदान करती चली जाती है।

‘मित्र-संवाद’ में ‘राम की शक्तिपूजा’ पर विमर्श है। ‘राम की शक्ति पूजा’ पर विचार करने के लिए ‘सरोज स्मृति’ को भी सामने रखना पड़ता है। ‘सरोज-स्मृति’ पर राम की शक्ति पूजा एक दूसरे की पूरक कृति है। ‘मित्र-संवाद’ के पत्रों के शुरुआती क्रम 1935 में ही निराला ने ‘सरोज-स्मृति’ लिखीं। एक वर्ष बाद ‘राम की शक्ति पूजा’ और तदनन्तर तुलसीदास 1938 की रचना उन्हें कविताई के चरमोत्कर्ष पर ले जाती है।

‘शक्तिपूजा’ की रचना के संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं, “निराला ने गतकर्म सराज को अर्पित कर दिये फिर नया कर्म आरंभ किया, उन्होंने ‘राम की शक्तिपूजा’ लिखी। जिस प्रकार ‘सरोज स्मृति’ में उनकी निजी व्यथा में समष्टिगत व्यथा घुल-मिल गयी है उसी प्रकार ‘शक्तिपूजा’ में राम की व्यथा व्यक्तिगत होने के साथ-साथ समष्टिगत भी है। लेकिन अंतर व्यक्तिगत बोध के उजागर होने को लेकर है। जाहिर तौर पर ‘सरोज स्मृति’ में निराला का व्यक्तिगत बोध अधिक प्रभावशाली व मर्मभेदी है। कवि की इन दोनों कविताओं का बीज अंधकार में है। सरोज स्मृति का अंधेरा श्रावण नभ का घटा टोप अंधेरा है, वहाँ आँसुओं की वर्षा करने वाला श्रावण नभ और उससे उत्पन्न होने वाला त्रासद व्यथापूर्ण अंधकार है। ‘शक्तिपूजा’ के अंधकार में भी कुछ इसी प्रकार की स्तब्धता है क्योंकि जिस प्रकार सरोज की मृत्यु अप्रत्याशित है उसी प्रकार विश्वव्यापी राम की पराजय भी आश्चर्यजनक है।

“श्रावण नभ का स्तब्धान्धकार”¹¹⁹

‘उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार’, ... ’ है अमानिशा उगलता गगन घन अंधकार’ ...
‘ऐसे क्षण अंधकार – घन में जैसे विद्युत...’¹²⁰

अब दूसरा चित्र
“एक साथ जब शत घात घूर्ण
आते थे मुझ पर तुले तूर्ण
देखता रहा मैं खडा अपल
वह शरक्षेप वह रण कौशल।”¹²¹

‘सरोज स्मृति’ का जीवन-संघर्ष स्वयं निराला का जीवन संघर्ष है। उनके अपने जीवन-संघर्ष में युग-संघर्ष भी मिला हुआ है। ठीक उसी तरह जैसे कि ‘तोड़ती पत्थर’, ‘दीन’, ‘विधवा’ आदि कविताओं में युग की पीड़ा व युग का संघर्ष है। उनका जीवन संघर्ष ‘राम की शक्तिपूजा’ में दिखलाई पड़ता है— “आज का तीक्ष्ण शर-विधृत – क्षिप्त कर वेग प्रखर

शत-सेल-सम्बरणशील-क्षिप्त कर गर्जित स्वर।”¹²² (राम की शक्ति पूजा) यही संघर्ष मुक्तिबोध के अंधेरे में भी दिखलाई पड़ता है। ‘सरोज स्मृति’ के समान ‘अंधेरे में’ की रचना-दृष्टि भी यथार्थवादी है। ‘अंधेरे में’ का एक चित्र देखिए—

‘जिन्दगी के
कमरों में अंधेरे
लगाता है चक्कर
कोई एक लगातार।”¹²³

जिन कटु सामाजिक वास्तविकताओं ने निराला के पिता-हृदय को आहत किया था वे पुत्री की स्मृति के संदर्भ में जस का तस उजागर हो जाते हैं। उनका कटु सामाजिक वास्तविकताओं का गहरा सरोकार आर्थिक साहित्यकार एवं सांस्कृतिक समाज से था। देखिए—

“लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर

हारता रहा मैं स्वार्थ समर”¹²⁴ (आर्थिक स्तर)

(यह हिन्दी का स्नेहो पहार

है नही हार मेरी, भास्वर

यह रत्नहार, लोकेत्तर वर”¹²⁵ (आर्थिक दृष्टिकोण से अभिशप्त साहित्य के लिए

“ये काव्य कुब्ज कुल कुलांगार

खाकर पत्तल में करें छेद।”¹²⁶

और

“मेरी ऐसे दहेज देकर

मैं मूर्ख बनू यह नहीं सुहार।”¹²⁷ (सांस्कृतिक स्तर पर व्यक्त सामाजिक यथार्थ)

निराला का पूरा का पूरा जीवन आर्थिक अभावों का जीवन था। लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर। हारता रहा मैं स्वार्थ समर। ‘हो गया जीवन में रण में गया हार। (वन बेला) यहाँ पर निराला का यह सिर्फ व्यक्तिगत बयान ही नहीं है अपितु बयान सामाजिक है। जिसके पास पैसा नहीं, उसके पास कुछ नहीं। वह आर्थिक अभावों को ही सभी प्रकार की समस्याओं का बीज मानते थे। आज भी सामाजिक सच यही है।

‘शोक गीत’ होने पर भी सौंदर्य का उदात्त चित्रण अंततः निराला के कवि व्यक्तित्व की ओर ध्यान आकृष्ट करता है। कविता में नायिका की सुंदरता का वर्णन करना एक बात है और स्वयं की पुत्री का सौंदर्य वर्णन दूसरी बात है। निराला दूसरे कारण महत्वपूर्ण हैं—

“कर पार, कुंज तारुण्य सुधर

आई लावण्य भार थर थर

कापा कोमलता पर सरस्वर

ज्यों मालकोश नव वीणा पर।”¹²⁸

नव युवती सरोज स्वयं अपने ही सौंदर्य के भार से कांप रही है जैसे नव वीणा पर मालकोश झंकृत हो उठा हो। मालकोश एक राग है। आगे चलकर सरोज की वाणी में मधुर संगीत की व्यंजना हुई है।

“फूटा कैसा प्रिय कंठ स्वर

उत्कल रागिनी की बहार।”¹²⁹

इतना तो है ही साथ ही साथ वह जन्म से गायिका भी है— ‘बन जन्म सिद्ध गायिका। मेरे स्वर की तरह रागिनी — बुद्धि।”¹³⁰ सरोज निराला की पुत्री है इसलिए निराला ने प्रसाद आदि

की तरह मांसल वर्णन नहीं किया है जितना कि — “नील परिधान बीच सुकुमार। खुल रहा मृदुल अधखुला अंग। खिला हो ज्यों बिजली का फूल। मेघ बन बीच गुलाबी रंग।”¹³¹ में दिखलाई पड़ता है। निराला जी ने सौंदर्य वर्णन करते समय भारतीय नारी की छवि को अपने मस्तिष्क में रखा है।

निराला ‘सरोज स्मृति’ में कहते हैं, ‘धन्ये, मैं पिता निरर्थक था। कुछ भी तेरे हित न कर सका।’ यही स्वर ‘शक्तिपूजा’ में भी प्रतिध्वनित हैं, “उद्धार प्रिया का न हो सका।” निराला पुत्री के लिए कुछ नहीं कर पा रहे थे और राम अपनी परिणीता के लिए। असल में निराला की सभी रचनाओं में उनका स्वयं का भी जीवन मुखरित हो उठा है। निराला जीवन के आर्थिक पथ पर हमेशा हारते रहे। वस्तुतः निराला की जीवन कथा दुःख की ही कथा है। तभी तो ‘मित्र संवाद’ और ‘कवियों के पत्र’ में साहित्यकार संसद की बात चलती है। निराला की सहायता के लिए रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल निराला पहल करते हैं और उसमें कुछ हद तक सफल भी होते हैं।

निराला की कविता ने बाद के कवियों के लिए जमीन तैयार की। यह सिर्फ निराला प्रेम ही नहीं दोनों मित्र बार-बार क्यों एक-दूसरे की चर्चा में निराला को लाकर खड़ा करते हैं। व्यस्त स्तर पर अप्रकट किंतु संवेदनात्मक स्तर पर प्रकट। निराला की मनीषा से दोनों स्वयं पाठ लेते हैं और आगे के कवियों को सीखने में उत्साह बढ़ाते हैं। दरअसल निराला सही अर्थों में प्रथम प्रगतिशील कवि थे। इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोड़ती युवती का शरीर श्याम तन था। मुझे नहीं मालूम कि इससे पहले साहित्य में ‘श्याम तन’ की किसी स्त्री का वर्णन हुआ है। निराला प्रथम कवि थे जिन्होंने साहित्य में ‘श्याम तन’ वाली स्त्री को जगह दिलाई। छायावादी अन्यान्य कवियों से इतर निराला काव्य रचना में तल्लीन थे।

मित्र संवाद के पत्रों में निराला गहरे रूप से रचे बसे हैं। जब भी विमर्श प्रारंभ होता है, निराला की याद दोनों मित्रों को आ ही जाती है। नामवर सिंह लिखते हैं, “कहने के लिए तो संवाद सिर्फ दो के ही बीच चलता है किंतु बातचीत के बीच निराला का जिक्र अक्सर आता है और प्रसंगवश अमृतलाल नागर, नरोत्तम नागर, शमशेर, नागार्जुन और त्रिलोचन भी आते हैं। सिर्फ नाम से नहीं, बल्कि ये सभी लोग इस अंदाज से आते हैं जैसे रंगमंच पर एक-एक करके नाटक के चरित्र आते हैं, जाते-जगते अपनी अलग अदा के साथ। इस दृष्टि से ‘मित्र संवाद’ का ‘निराला मंडल’ एक जीता-जागता खुला ‘रंग-मंडल’ भी है।”¹³²

“निराला में आधुनिक कविता का पूरा इतिहास सन्निहित है। छायावाद के वे श्रेष्ठ कवि हैं। प्रगतिवादी विचार-धारा जैसे उनके यहाँ कविता का रूप ग्रहण करती है वैसे अन्यत्र देख पाना कठिन है। ‘जल्द जल्द पैर बढ़ाओ,’ ‘झींगुर डटकर बोला,’ ‘राजे ने अपनी रखवाली की।’ और लंबी कविता ‘कुकुरमुत्ता’ इसके प्रमाण हैं। प्रयोग मूलक कविताएँ तो निराला ने अपने उत्तरकाल में कई लिखीं, यहाँ तक कि नयी कविता का शब्द खेल उनके यहाँ मिल जाएगा— ताक कमसिन वारी/ताक कमसिन वारी। जिसे उन्होंने छुआ वह कविता बन गया। आधुनिक काल में काव्य भाषा के आलाप से लेकर तराना तक वे स्वयं हैं।”¹³³ निराला किसी मंच के सदस्य नहीं थे, किंतु उनकी कविताएँ जीवंत दस्तावेज हैं। आगे राम स्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं।

“प्रगतिवादियों में कवि-हृदय केदारनाथ अग्रवाल हैं। नागार्जुन की स्मरणीय कविताओं में एक वह है जो उन्होंने केदार पर लिखी है। और यह आकस्मिक नहीं कि सुमन, केदार, शमशेर और अज्ञेय इन सबके प्रिय कवि निराला हैं जहाँ अपने वैचारिक भेदभाव को भूलकर वे मिलते हैं। निराला इस परिदृश्य पर जैसे बिहारी द्वारा परिलक्षित, ‘दीर्घ दाघ निदाघ’ हों।”¹³⁴ और यह भी आकस्मिक नहीं कि रामविलास शर्मा जैसा आलोचक उन्हें मिला।

‘मित्र संवाद’ में ‘राम की शक्तिपूजा’ पर लम्बी बहस है। ‘राम की शक्तिपूजा’ निराला जी की महत्वपूर्ण रचना है। ‘पूजा’ पर लिखते हुए केदार एक आलोचक की हैसियत रखते हैं। वे रामविलास शर्मा के पास पत्र लिखते हैं और एक-एक लाइन पर प्रश्न खड़ा करते हैं। केदार की जिज्ञासु प्रवृत्ति उन्हें बड़ा कवि बनाती है। उनकी जिज्ञासा को शांत करने के लिए रामविलास शर्मा अपने लेख को पढ़ने की सलाह देते हैं। “निवेदन है कि एक बार राम की शक्तिपूजा पर मेरा लेख पढ़ जाइए।”¹³⁵

नामवर सिंह ‘मित्र-संवाद’ को पत्र-व्यवहार से निर्मित नाटक की बेहतर मिसाल मानते हैं, “पत्र-व्यवहार’ से निर्मित नाटक की बेहतर मिसाल तो ‘मित्र संवाद’ ही है, क्योंकि वह ‘हृदय-संवाद’ है और जैसा कि नाट्यशास्त्र में कहा गया है—

यथो हृदयसंवादी तस्य भावो रसादभवः।

शरीरं व्याप्यते तेन शुष्कं काष्ठमिवाग्निना।

ऐसा ‘हृदय संवादी’ अर्थ जिसके भाव से रस का उद्भव होता है उसकी निष्पत्ति भी, संयोग से निराला, में ही होती है— निराला के मृत्यु के प्रसंग में। विवरण निराला की साहित्य साधना के पहले भाग में भी है और मर्मस्पर्शी भी। लेकिन पराकाष्ठा पर पहुँचता है मित्र संवाद में। विशेषतः दो पत्रों में और ये दोनों पत्र रामविलास जी के हैं।¹³⁶ रामविलास शर्मा के पत्र मार्मिकता को उजागर करते हैं। नामवर सिंह ‘मित्र-संवाद’ को ‘हृदय-संवाद’ ठीक कहते हैं। वस्तुतः जितनी आत्मीयता, लगाव इन पत्रों में व्यक्त है उससे हृदय-संवाद की स्पष्ट झलक मिलती है। दोनों पत्रों को देखना जायज है—

“हॉ प्यारे, निराला जी अब नहीं रहे। न रोता हूँ, न हँसी आती है। कोलरिज के शब्दों में Agree without pang, void, dark and drear का अनुभव करता हूँ। बीच-बीच में लम्बी सॉस ले लेता हूँ। बस।

इस बात का अफसोस नहीं कि उन्हें इन दिनों देख न पाया। उन्हें जितना पहले देखा था, वही दिल को कचोटने के लिए काफी है। जिस निराला ने मेरी आंखों के सामने गीतिका के गीत, राम की शक्तिपूजा, तुलसीदास, कुल्लीभाट, बिल्लेसुर बकरिहा की रचना की थी, वह जीते जी ही मिट गया था। अंतिम बार जब मैंने देखा था तब मानो कुछ घंटों के लिए मानो वह निराला लौट आया था।... उसी को अंतिम स्मृति की तरह, मैं सुरक्षित रखूँगा।

‘मुक्ति मिली, विलंबसे। पूर्ण नरकवास उन्हें यहाँ मिल गया। लेकिन वीर आखीर तक लड़ा। पूर्ण विजयी होकर गया – रोग पर विजयी होकर नहीं, विरोध पर विजयी होकर, सबको अपना बनाकर।’¹³⁷

इस पत्र के बाद नामवर लिखते हैं, “दूसरा पत्र लगभग एक वर्ष बाद का है— निराला को पत्र पढ़ते हुए। “निराला जी के जितने पत्र थे, सबको एक सिरे से पढ़ गया हूँ। बड़ा विचित्र अनुभव होता है। दोस्तों के साथ अपने को भी देखता हूँ। मानों वर्षों की पर्त उघड़ती जाती है और मैं अपने से, तुमसे, निराला जी से फिर मिलता हूँ। मन पर उदासी नहीं छाती, न तो वह भाव जगता है कि फिर नौजवान हो जाय (जवान तो अब भी हैं) और न यह भाव पैदा होता है कि हाय वे दिन बीत गये, फिर कभी न लौटेंगे।

इसके विपरीत पुराने संघर्षों की झलक देखकर संतोष होता है कि वृथा नहीं जिए, भरसक भाषा और साहित्य के लिए काम किया।”¹³⁸ पत्रों का उदाहरण देने के बाद नामवर सिंह लिखते हैं, “पत्र के इन शब्दों को पढ़ते हुए निराला के साथ-साथ पत्र लेखक की छवि भी सामने आती है और मन उदात्त की भूमि पर होता है।”¹³⁹ इतना तो ठीक है। मन उदात्त की भूमि पर अवश्य आता है लेकिन पत्रों का अंतराल नामवर सिंह एक वर्ष मानते हैं और यहीं पर वह तथ्यात्मक भूल करते हैं। ‘आलोचना’ को पढ़ते समय मुझे लगा कि प्रकाशक की त्रुटि है लेकिन स्वयं नामवर सिंह के लेखन से रू-ब-रू हुआ तो मिला कि भूल तथ्यात्मक है। वैसे भी बड़े आलोचक से यह भूल तो होती रहती है। रामविलास शर्मा भीतर से निराला जी से जुड़े हुए थे। उनकी मृत्यु पर वे अपने को एक वर्ष तक कैसे रोक पाते? यह असंभव था। पत्रों का अंतराल लगभग तीन माह का है। तीन माह में ही निराला के पत्रों की आत्मीयता को रामविलास शर्मा तीन माह में महसूस कर लिये।

रामविलास शर्मा निराला की मृत्यु को किस तरह सहन करते हैं। इस पर डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने प्रकाश डाला है—

“यही हाल उधर डॉ. शर्मा का भी है। निराला की मृत्यु पर वे केदारनाथ अग्रवाल को लिखते हैं— “दोस्त यहाँ 75 वर्ष के एक ठाकुर टीकम सिंह हैं। उनका लडका तारा सिंह हमारे साथ अध्यापक था। उम्र में मुझसे कम, उस इकलौते की अकाल मृत्यु हो गयी। शव पड़ा था। लोग रो रहे थे। बूढ़ा गाँव से आया। सबको ढाढ़स बंधाने लगा। किसी ने कहा— चादर हटा कर बेटे का मुँह देख लो। बोले— इस मुँह को क्या देखना? वह हंसता बोलता चेहरा, मन में बसा है वही बना रहे। (20.10.61 का पत्र)

यहाँ डॉ. रामविलास शर्मा 75 वर्षीय ठाकुर टीकम सिंह से निराला की मृत्यु के दुःख को जूझने की शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। दुःख के अवसरों पर ये दोनों मित्र इतना संतुलित हो जाते हैं कि मानो योगी हों। सुख के अवसर पर इतना बेलाग उल्लसित होता है मानों प्राइमरी स्कूल के सहपाठी यार हों।”¹⁴⁰ निराला का इस संसार से चले जाना दोनों मित्रों को अपार कष्ट देता है। लेकिन दोनों मित्र आपसी संवाद से अपने कष्टों को एक-दूसरे के साथ बांटते हैं। केदार 24.3.57 में रामविलास शर्मा को लिखते हैं—

“निराला जी पर कुछ पंक्तियां लिखी हैं। देखो वे ये हैं—

मान व अपमान के हलाहल को पान किया।

नीचे रह, ऊँची कर कविता को प्रान दिया।”¹⁴¹

निराला कहीं-कहीं दोनों मित्रों के मानसिक जगत में हमेशा विद्यमान रहते हैं। सुमित्रानन्दन पंत का भी आकर्षण निराला के प्रति जीवन भर बना रहा। रामविलास शर्मा के अनुसार, “जो भी पंत और निराला के संबंधों को समझना चाहें, उसे ‘छायावाद: पुर्नमूल्योक्तन’ वाले व्याख्यान अवश्य पढ़ने चाहिए।”¹⁴² डॉ. शर्मा पुनः लिखते हैं, “निराला के प्रति पंत के मन में स्पर्धा का भाव जब भी जैसे भी रहा हो, निराला के लिए उनके मन में स्नेह की कमी नहीं थी। उन्होंने सुझाया था कि मैं निराला पर ‘रूपाभ’ में लेख लिखूँ। समय से लेख न मिलने पर 14 दिसम्बर 1998 के पत्र में उन्होंने शिकायत भी की थी। प्रगतिशील कवियों को व्यंग्यपूर्ण साहित्य से प्रेम था। इसका प्रमाण पंत जी के इस पत्र में उनका वाक्य है, ‘सेटायर्स और प्रहसन भी भेजिए।’ निराला पर मेरा लेख जब उन्हें मिल गया तो उन्होंने लिखा, ‘निराला जी पर आपका लेख मुझे विशेष रूप से पसंद आया।’¹⁴³ कहने का अभिप्राय है कि निराला ने समकालीन कवियों और कविता को प्रभावित किया।

“निराला, पंत, महादेवी वर्मा, छायावाद के ये तीनों स्तंभ इस समय इलाहाबाद में थे। इनमें सबसे हालत खराब निराला की थी। इलाहाबाद में और बहुत से साहित्यकार रहते थे। परंतु निराला की हालत कैसे सुधारी जाए कैसे उनकी सहायता की जाए, इसके बारे में सबसे ज्यादा महादेवी वर्मा सोचती थीं और इसके लिए उन्होंने कुछ उपाय भी किये। 10 फरवरी 1945 के पत्र में उन्होंने साहित्यकार संसद के बारे में सूचना दी। हिन्दी लेखकों की ओर से यह सहकारी प्रयास था। यद्यपि महादेवी जी ने पीड़ा के ऊपर बहुत लिखा है परंतु जीवन का अर्थशास्त्र वह बहुत अच्छी तरह से समझती थीं। उनका एक सारगर्भित वाक्य है—

“आर्थिक व्यवस्था ठीक होते ही उनके जीवन की अनेक कठिनायों दूर हो जाएंगी। किंतु यह आर्थिक सुविधा उन्हें अपने साहित्य से प्राप्त होनी चाहिए, किसी अन्य प्रकार से नहीं।

“वाक्य के पहले भाग में उन्होंने आर्थिक समस्या सुलझने का महत्व बताया। उसके बाद उन्होंने सावधान किया कि दूसरों से दान लेकर निराला की सहायता नहीं करनी। हिन्दी लेखकों के सम्मान की रक्षा करनी है तो उनके साहित्य से ही जो धन उन्हें मिले, वह उन्हें देना चाहिए। निराला भी ऐसा ही सोचते थे। इस पत्र में निराला परिषद का उल्लेख है। उसके बारे में उन्होंने लिखा—

“निराला साहित्य के अध्ययन के लिए उसकी उपयोगिता हो सकती है। परंतु उनके व्यक्तिगत जीवन के लिए इसकी क्या उपयोगिता होगी, यह स्पष्ट नहीं है। इस समय आवश्यकता थी निराला के व्यक्तिगत जीवन में सुधार करने की। साहित्य का अध्ययन बाद में भी हो सकता था।

“उनकी शंका उनकी यथार्थपरक दृष्टि की सूचना देती है।”¹⁴⁴ ‘मित्र संवाद’ में इसकी विस्तृत चर्चा है। निराला हिन्दी के अभिमान थे।

यह सच है
तुमने जो दिया दान-दान वह
हिन्दी के हित का अभिमान वह
जनता का जन ताका ज्ञान वह
सच्चा कल्याण वह अथच है
यह सच है—

हिन्दी के हित का अभिमान निराला के कवि-व्यक्तित्व का सबसे बोलता हुआ रंग है। जाने कितनी तरह से वे अपना तादात्म्य साधते दिखाई पड़ते हैं उस हिन्दी से जो लगता है उनके लिए समग्र भारतीय अस्मिता की वाहक भाषा है— सात्विक कठोरता जिसकी खास अपनी पहचान है और बंगला से कही ज्यादा संस्कृत का सीधा उत्तराधिकार जिसे प्राप्त है। गांधी और निराला के विवाद की तो बहुत चर्चा होती है लेकिन हम उसमें एक दूसरे पक्ष को भुला देते हैं कि चरखे को लेकर रवीन्द्र और गांधी का जो विवाद चला था उसमें निराला ने किस दृढ़ता के साथ गांधी का साथ दिया है, किस कड़ाई के साथ रवीन्द्रनाथ के तर्क को काटा है। हम यह नहीं देखते कि निराला के भीतर वह कौन सी फास थी जिसने उन्हें गांधी जी से उलझने को प्रेरित किया। हकीकत यह है कि कही न कही जो जातीय चेतना की लय टूट गयी थी और वे हिन्दी को इसका सबसे सीधा और अनिवार्य माध्यम मानते थे। नैतिक कल्पना के स्तर पर तो गांधीजी से उनके हृदय के तार बराबर मिले हुए थे। किंतु उन्हें इस बात का दर्द कही गहरे में सालता था कि हमारा इतना महान जननायक जो देशवासियों के नैतिक अतसत्त्व को जगाने का अभियान छेडे हुए है, वह उसी देश की सुरत अतशक्ति को जगाने का जो दूसरा बड़ा माध्यम है— राष्ट्रभाषा हिन्दी और उसका साहित्य, उसके प्रति भी उतना ही सचेत और सवेदनशील क्यों नहीं है? उसके प्रति भी उसमें चलताऊ रुख क्यों होना चाहिए? यह था निराला का असली दर्द।

गांधीजी से इस प्रसंग में उनका विरोध अत्यंत गहरे राग और लगाव से उपजा विरोध था। यह मात्र संयोग से कुछ है कि अपनी प्रतिभा के निर्माण-काल में निराला बंगाल में रहे और बंगला में उनके आख-कान खुले और इस अंतराल में उन्होंने समूचे देश को जोड़ने वाली भारत की समग्र अस्मिता को वाणी देने वाली हिन्दी में अपने प्राणों की लय को उत्तरोत्तर साधा और पाया। इस तरह खड़ी बोली की अतर्निहित विरासत का साक्षात्कार उन्होंने मध्यकालीन भाषा की जगह उसे पाकर किया, समूचे देश के 'कल्चरल क्लियरिंग हाउस' की तरह।¹⁴⁵ निराला का संघर्ष युग का संघर्ष था। युग की विषमताओं से उनकी टकराहट उनकी रचनात्मक ऊर्जा का कारण बनती है। उन्होंने कष्टों को देखा, विरोध को सहा और बीमारी को रगड़ा। ज्यों-ज्यों उनका विरोध प्रखर होता गया त्यों-त्यों उनकी रचना प्रक्रिया यथार्थ की जटिलताओं से बद्ध होती गयी। छायावादी कविता वह भी विशेषकर निराला की कविता का समाज से जितना सीधा सरोकार है, शायद पहले कभी नहीं था। निराला की कामना है—

टूटे सफल बंध
कलि के, दिशा-ज्ञान-गत हो वहे गंध।
रुद्र जो धार रे, शिखर निर्झर झरे,

मधुर कलख भरे शून्य शत—शत रंध्र

‘राम की शक्तिपूजा’ की चर्चा एक बार पुनः। क्योंकि रचनात्मकता के स्तर पर केदार का कवि व्यक्तित्व, रचना, प्रक्रिया इससे जुड़ती है। रामविलास शर्मा लिखते हैं, “राम की शक्तिपूजा” को आत्मसात करने में केदार के सामने कुछ कठिनाइयाँ रही हैं। उन्हें आप 27.11.58 के पत्र में देख सकते हैं। प्रश्न उस कविता को आत्मसात करने का नहीं है, प्रश्न है गद्य में उस कविता के स्तर को छू लेने का। मेरी समझ में जहाँ—तहाँ केदार का गद्य ‘राम की शक्तिपूजा’ के उदात्त स्तर को स्पर्श कर आता है। केदार का मूल स्वर लिरिक कवि का है, वही उनके गद्य का मूल स्वर भी है। कविता में वह बाहर की दुनिया देखते हैं, मन के भीतर झाँकते भी रहते हैं। अपने मन के भीतर पैठने की यह क्रिया उनके गद्य में और भी ज्यादा होती है। उनके पत्र आत्मवक्तव्य का श्रेष्ठ साधन हैं। यह आत्माभिव्यक्ति परिवेश से कटी हुई नहीं, दृढ़ता पूर्वक उससे जुड़ी है। कवि का व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया का अध्ययन करना हो तो इन पत्रों से ज्यादा अच्छी सामग्री दूसरी जगह न मिलेगी। व्यक्ति का मन और उसका परिवेश, इनका परस्पर घात—प्रतिघात यह परिदृश्य है इन पत्रों में।”¹⁴⁶

कवि केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं पर बात शुरू करने से पूर्व भक्ति पर नामवर सिंह की टिप्पणी देखी जाए, “यह कोरी निराला—भक्ति नहीं है और न ही आम व्यक्ति—पूजा। इस ‘ट्रेजडी’ का हीरो निश्चय ही निराला है, लेकिन निराला का अर्थ है ‘हिन्दी के हित का अभिमान वह।’ इसलिए ‘निराला—मंडल’ सामान्य मित्र मंडल नहीं, बल्कि एक लक्ष्योन्मुख साहित्यिक सैन्य दल है जहाँ सारे नाते कवि—लेखक के सर्जन संघर्ष से निर्धारित—निश्चित होते हैं— ‘नाते सबै राम के मनियत सुहृद सुसेक जहाँ लौ।’¹⁴⁷ निराला मंडल में एक से एक प्रतिभाशाली कवि, लेखक, विचारक थे। साहित्यिक युग को निराला ने प्रभावित किया।

केदारनाथ अग्रवाल प्रमुख प्रगतिवादी कवियों में से एक थे। उनकी प्रगतिशीलता किताबी नहीं थी। न ही वे किसी पार्टी के मेम्बर बने। केदारनाथ अग्रवाल स्वयं तो प्रगतिशील थे ही, वे दूसरों को प्रोत्साहित भी करते थे। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं, “आपातकाल में राजकुमार सैनी के भाई बलबीर सैनी ने पत्रिका निकाली प्रतिबद्ध ‘कविता केदार जी ने उसे खूब सहयोग दिया। उसमें छपी नये कवियों की —प्रगतिशील कवियों की कविताओं की प्रशंसा में पत्र लिखे। केदारनाथ अग्रवाल सिर्फ फर्ज अदायगी के लिए बहुत कम पत्र लिखते थे। वे अन्य लोगों से मिलने जुलने में जीवन रसपाते थे। व्यक्ति और कविता उनके जीवन बोध के स्रोत थे। पत्र उसी की अभिव्यक्ति। प्रकृति से वे कितना जीवन रस सींचते थे इसका प्रमाण तो उनकी कविताएँ ही हैं। बहरहाल जो हमें इतना अभिभूतकारी गुण लग रहा था वह उनका सहज जीवन व्यापार था। प्रगतिशीलता उनका सहज जीवन आचरण थी। उनकी प्रगतिशीलता किताबी नहीं थी। वामपंथी पार्टी की नीतियों से कुछ विशेष लेना देना नहीं था। प्रगतिशीलता उनकी निजता थी।”¹⁴⁸ पत्र में कविता की समझ को केदार निरंतर पुख्ता करते गये। रामविलास शर्मा उनकी त्रुटियों पर बराबर लिखते गये। ऐसा ही एक पत्र है— “इस पत्र में तुमने वह छायावादी वेदना प्रकट की है कि महादेवी वर्मा भी मात हो जाएँ”¹⁴⁹ बात सिर्फ कविता की ही नहीं है। बात गद्य की भाषा की भी है। बात छायावादी वेदना न प्रकट करने की है। “क्रम से यदि कोई केदार के पत्र पढ़े तो वह प्रति छायावादी, प्रतिमास प्रति वर्ष कवि का जीवंत चित्र देख सकेगा। परिवेश से कवि का संबंध

उस पर उसकी प्रतिक्रिया, उसकी शारीरिक और मानसिक स्थिति, इन पत्रों में मिलेगा, कसान की तरह 'भददरा' शब्द का प्रयोग करते हुए कहते हैं— "भददर जाड़ा से दिल्ली जड़ा रही है। यहाँ तो सुबह शाम कुछ ठंड रहती है। दिन तो गरमाए रहता है।

"दिल्ली की ठंड की कल्पना करके वह बांदा के मौसम से संपन्न है। (2.2.63) लेकिन बादा मे गर्मी भयानक होती है।

"बेहद गर्मी है। जानलेवा है। बांदा तो भट्टी हो गया है। धधक रहा है। (8.6.93) मौसम बदलता है। चाहे बादा मे हो और चाहे दूर मद्रास में, वसंत आने पर मन उमंग से भर जाता है। होली का दिन है।

"उत्तर प्रदेश के यहाँ आये लोग तो रंग अबीर और गुलाब से लाल हो रहे हैं और मद्रास के बौरे मौसम में भंग बूटी छान कर भोले बाबा की जय बोल रहे हैं। मथुरा की होली को साकार कर प्रसन्न हो रहे हैं। अभी तो हम रंग से बचे, सफेद, बैठे पत्र लिख रहे हैं। पर बेटे की ससुराल मे आज दोपहर का भोजन है। इसलिए तब तो बच पाना संभव न होगा और रंगीन हो जायेगे। मजा तो आता ही है इस बुढ़ौती में भी जब तन मन दोनों रसिया उठते हैं। भला कोई बात है कि परिवेश में फूल रंग मारें और हवा नाचे और धूप गुदगुदाती रहे और दूँठ की तरह बेजान खड़ा रहे। (25.3.78) यह केदार की मस्ती का आलम है।"¹⁵⁰ भाषा देखिए। गद्य की अद्भुत भाषा। पढ़ने पर एक लय बनी रहती है। रिदम है। बेहद गर्मी है। जान लेवा है। बांदा तो भट्टी हो गया है। धधक रहा है। मौसम बदलता है। अब जानलेवा और धधकना को साथ रखें जो वस्तु जानलेवा होगी, वह धधकेगी। भट्टी में ऊष्मा होती है। क्या सिर्फ भट्टी सामान्य अर्थों मे भट्टी है? नहीं भट्टी तमाम एकत्रित समाज का प्रतीक है। उसमें धधकने की क्षमता है। जब समाज का निम्न तबका एक होकर धधकेगा तो उसकी ऊष्णता से संपत्तिशाली बुर्जुवा नष्ट हो जायेगा। समाज की नीची-शोषित जाति का एकत्रित होना जानलेवा होगा। बात सिर्फ बांदा की ही नहीं है बात दूर मद्रास की है। शोषित, पीडित, उत्पीडित जातियों की है। कैसा बसंत? बसंत की चाह सभी मे होती है। होली का त्यौहार ही क्यों आता है? दरअसल होली को भारतीय परंपरा व संस्कृति मे तथाकथित नीची जातियो का त्यौहार माना गया है। केदार सभी अर्थों में प्रगतिशील कवि है। उनके यहाँ प्रकृति और उसका स्वरूप जनसामान्य की उत्कट जीजिविषा को प्रकट करता है। एक अर्थ में वह प्रगतिशीली गद्यकार भी हैं। प्रगतिशीलता उनमें कूट-कूट कर भरी हुई है। आप केदार की सभी चीजों को जनता के सूक्ष्म अनुभवों से जो देख सकते हैं। दूसरे अर्थ में केदार शुक्ल जी के 'जनता' से जुड़ते हैं। आचार्य शुक्ल के यहाँ भी जनता है। जनता का द्वन्द्व है। अंतर्विरोध है। अंतर्विरोध रचनाकार को उत्कृष्ट बनाता है।

केदारनाथ अग्रवाल के यहाँ भी प्रकृति जनता का उद्घोष करती है। जनता की आवश्यकताओं के रूप में आती है। केदार के प्रिय कवि निराला के यहाँ भी चीजें अंततः 'जनता से ही जुड़ती हैं। "केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में प्रकृति और नारी का सौंदर्य बहुत चित्रित है। वे जीवन रस का छककर पान करने वाले कवि हैं।... जीवन और प्रकृति में इतना सौंदर्य देख पाने की आँखें चाहिए और फुर्सत चाहिए। ऐसी आँखें विचारधारा देती हैं। किंतु सिर्फ विचारधारा से ही सौंदर्य देख पाने की क्षमता नहीं मिलती। उसमें कवि का जीवन आचरण चिंतन का

योगदान होता है। आप एक खास तरह की विचारधारा के तहत एक खास तरह की जिदगी जीकर ही एक खास तरह का सौंदर्य देख सकते हैं। यह खास तरह का जीवन आचरण ऊपरी चीज नहीं है। वह बहुत आंतरिक है और कुशल फावडा भी है जिससे काट कर, गोडकर, तोडकर, सोहकर, स्थितियों में से सौंदर्य मणियाँ निकाली जाती है। वे गहन आंतरिक प्रक्रिया से फूटकर निकलती हैं, लेकिन यह गहन आंतरिक प्रक्रिया वाह्य जीवन प्रक्रिया से अतस्सृजित होती है।¹⁵¹ विचारधारा केदार की सवेदना में अनुस्यूत होकर मुखरित होती है। मानसिक स्तर पर सवेदना जनता का उद्गार होकर फूट पडती है। कवि केदार का जीवन आचरण यो ही निर्मित नहीं हुआ है। उसमें रामविलास शर्मा की मित्रता और उनके टोका-टोकी का तर्क परक चिंतन है। उससे समझ है। उनमें 'राम की शक्तिपूजा' से सीखने की उत्कट इच्छा है। कविता में सामान्य जन का मर्मस्पर्शी चित्रण है। प्रिया की विह्वलता है। प्रकृति का नारी स्वरूप विद्यमान है। यह सही है कि वह जीवन रस का छककर पान करने वाले कवि है। सवेदनात्मक धरातल पर केदार की कविता में संपूर्ण जनता की संस्कृति है— अभिजात्य नहीं, शोषित। कास्तकार नहीं किसानों की संस्कृति का चित्रण केदार की कविता का प्रतिपाद्य है। रामविलास शर्मा केदार को किसान पर नहीं किसानों के लिए कविता लिखने की सलाह देते हैं—

मुक्त छंद भदेस नहीं है।, वह एक Literary माध्यम है। भदेसी भाइयों को पढाकर देखो। तुम्हारी बातें किसान हृदय की होती हैं। बोली में वही सरलता होती है। फिर किसान के लिए छंद की रूकावट क्यों हो? उसके लिए ऐसा लिखो कि हल जोतते करवी काटते वह गुनगुना सके। तुम्हारा गीत उसके जीवन को ही न व्यक्त करे, उसे नया जीवन भी दे। मुक्त छंदों में भदेस पन पूरा नहीं होता केवल तुम किसानों से खडी बोली में बात कर सकते हो। उसी के ढंग से अपनी बात कह सकते हो। मैं चाहता हूँ नवशिक्षित और अशिक्षित किसान तुम्हारी कविता पढकर कहे, यह मेरे भाई ने लिखी है। मेरी ही बात कही है। उसे याद कर ले और अपने भाइयों को सुनाये। उसकी राय मेरी राय से बहुत महत्वपूर्ण होगी। लेकिन जोर नहीं, जब नहीं, कतई नहीं। सिर्फ प्यार। तुम जो कुछ भी लिखे सिर माथे पर।¹⁵² सलाहों का यह सिलसिला आदि से अत तक मित्र सवाद को गहराई प्रदान करता है। किसानों की संस्कृति से समाज प्रभावित होता है। खेतों में हाड-तोड मेहनत किसान जीवन का ऐतिहासिक सच है। प्रेमचन्द का संपूर्ण साहित्य इसकी वकालत करता है। गोदान का होरी किसान जीवन की सच्चाई को जनता के समक्ष रखता है। एक भोली आकाशा गाय पालने की धरी की धरी रह जाती है। किसान अपनी निजता को छोडकर मजदूर बनने के लिए बाध्य है। गोदान को प्रेमचन्द ने सन् 1936 में पूरा किया। मित्र सवाद 35 से शुरू हुआ। यह महज संयोग नहीं है कि जब गोदान पूरा हो रहा था तो मित्र सवाद शुरू हो रहा था। किसानों की वकालत करने वाला उपन्यासकार समाज के यथार्थपरक सच को ओपन्यासिक जीवन में पूरा कर रहा था तो दूसरा आलोचक किसान जीवन की सच्चाई को अपने मित्र से कविता में उकेरने की सलाह दे रहा था। और यह भी एक संयोग है कि प्रेमचन्द की साहित्यिकता को आलोचक रामविलास शर्मा ने ही उद्घाटित किया। मित्र से इसकी आगे की कडी बनने की सलाह देते हैं। जैसे उनकी चाह है कि मित्र सवाद मात्र 56 वर्षों का सांस्कृतिक दस्तावेज न होकर प्रेमचन्द युग से शुरू हो। किसान जीवन का दस्तावेज हो। परंपरा में उसका रचाव-बसाव हो। अंग्रेजों के दमन शोषण व उत्पीडन के ऐतिहासिक सच से मित्र सवाद जुड़े।

“हंस के अपने आखिरी संपादकीय में प्रेमचन्द ने महाजनी सभ्यता अर्थात् इसी पूँजीवादी सभ्यता का खुलासा किया है। पूँजीवादी व्यवस्था के बाजारूपन, उसकी निर्ममता और मूल्यहीनता पर यह संपादकीय एक ‘फर्दे जुर्म’ की तरह है। कठोर व्यक्तित्व को इस सभ्यता की आत्मा कहते हुए उन्होंने उसे धिक्कारा है, लानत दी है व्यावसायिकता ‘बिजनेस इज बिजनेस’ को उन्होंने इस सभ्यता का मूल मंत्र माना है। हर तरफ बिजनेस-मियाँ बीबी में बिजनेस, बाप-बेटे में बिजनेस, भाई-बहन में बिजनेस, दोस्त-दोस्त में बिजनेस, गरज यह कि इस सभ्यता में सारे मानव संबंध बिजनेस सभ्यता में तब्दील हो गये हैं। जिन मूल्यों के नाते मनुष्य अपने को पशुजगत से अलग करता है। आज वे पशुजगत में भले मिल जायें, अपने को पशुओं से अलग मानने वाले मनुष्य में जिनका नितांत अभाव दिखाई पड़ रहा हो। (दो बैलों की कथा— प्रेमचन्द साक्ष्य हैं)। ऐसे समाज और ऐसी दुनिया में दो मित्रों का ऐसा निश्छल, पारदर्शी और सहज संवाद, मैत्री का ऐसा स्थायी भाव, एक-दूसरे को समझने और स्वीकार करने की ऐसी निष्कुंठ, निर्मल वृत्ति, अपनी कमजोरियों पर बात करने का ऐसा माददा, हास-परिहास की ही नहीं, एक-दूसरे की अपने ऊपर की गई टिप्पणियों पर ठठाकर हँस सकने का ऐसा हौसला, अजूबा नहीं तो और क्या है? आज तो लोग दूसरों की कमजोरियों पर हँसते हैं, कुत्सा और कमीनेपन में हँसते हैं। आत्मा की गहराइयों से फूटी और मन को मुक्त कर देने वाली हँसी आज कहाँ है? कहाँ है एक-दूसरे को सह पाने का माददा, एक दूसरे से सीख सकने की वृत्ति, एक दूसरे से निभा पाने की निष्ठा, आज कहाँ है? कहाँ है आज वह सब जो मनुष्य की मनुष्यता को चरितार्थ करता है। आज यदि सतह पर कुछ है तो आपसी मनोमालिन्य, अपने को तीसमारखाँ समझने की वृत्ति, घोर व्यक्तिवाद, किसी की सफलता पर ईर्ष्याभाव, उखाड़-पछाड़, टंगड़ीमारी, दूसरों का उपहास, स्वार्थ और लेनदेन।”¹⁵³ आज है तो पूँजीपतियों द्वारा किसानों पर कब्जा कर लेना। उन्हें मजदूर बना देना। आज है किसानों की आत्म हत्या। घोर व्यक्तिवाद, ‘पूँजीवाद’ का परिणाम है। ‘ग्लोबलाइजेशन’ की प्रक्रिया ने ‘पूँजी संचय’ की वृत्ति को बढ़ावा दिया है। अर्थ को प्रभावित किया है। मित्र संवाद के दोनों मित्र स्वभावतः प्रगतिशील हैं। 56 वर्षों की ऐतिहासिकता को विस्तृत फलक में समेटे मित्र संवाद समाज की सांस्कृतिक-प्रक्रिया की निरंतरता का अमूल्य दस्तावेज है। कहीं दोनों मित्र संवाद में बात करते हैं तो कहीं रचना-प्रक्रिया व आलोचना की सस्कृति को अन्यान्य रचनाओं में उद्घाटित करते हैं।

केदारनाथ अग्रवाल ‘फूल नहीं रंग बोलते हैं’ ‘मेरी ये कविताएँ’ शीर्षक के अंतर्गत लिखते हैं, “मेरी कविताओं में मेरा अनुभूत व्यक्तित्व तो है ही। साथ ही साथ उसमें युग-बोध और यथार्थ बोध भी है। प्रत्येक कविता आत्मा-वेषिणी होते हुए भी यथार्थ वेषिणी भी है। एक ओर वह व्यक्तित्व में भरपूर डूबी हुई है। दूसरी ओर वह व्यक्तित्व से हटी हुई— तटस्थता भी है। उसकी तटस्थता उसकी सिद्धि है और वही तटस्थता उसे मेरे व्यक्तित्व से बाहर, काव्य क्षेत्र में जीवित रखती है। वहाँ पहुँचकर वह दूसरों की हो जाती है। वह दूसरा उसे ग्रहण करता है और अपने भीतर ले जाता है। वहाँ भीतर वह रचना प्रक्रिया नहीं होती जो मुझे भोगनी पड़ी थी। पाठक तो मूर्तमान कविता पाता है और वह उसके समग्र वस्तु और शिल्प से मुग्ध होता है। कवि का स्थिति से पाठक की स्थिति भिन्न होती है। कविता के पहले कवि को पूरी प्रक्रिया भोगनी पड़ती है और तब वह कविता पाता है और अपने कृतित्व का आस्वाद लेता है। ...सूक्ष्म संवेगों की मेरी कविताएँ सूक्ष्म हैं। उन्हें बड़ी करना गलत होगा। वहीं वे छंदबद्ध हैं। कहीं मुक्त छंद हैं उनके

लिए मैंने नहीं, सवेगो ने ही लय और रूप खोजा है।”¹⁵⁴ मित्र संवाद की पूरी प्रक्रिया है। संवाद में भी जीवन का सूक्ष्म अनुभव है। जैसे एक उपन्यासकार जीवन के सूक्ष्म अनुभवों को काल्पनिकता का जामा पहनाकर उपन्यास रच लेता है उसी प्रकार मित्र संवाद के दोनों मित्र दिन प्रतिदिन की घटित घटनाओं को सवेदनात्मकता का जामा पहनाकर पत्र साहित्य रच देते हैं। पत्र लिखना एक चीज है और पत्र साहित्य रचना दूसरी चीज। रामविलास शर्मा की सलाह पर केदार खेत का दृश्य रचते हैं—

‘आसमान की ओढ़नी ओढ़े,
धानी पहने,
फसल घघरिया,
राधा बनकर धरती नाची,
नाचा हसमुख
कृषक सँवरिया।’¹⁵⁵

केदार कृष्ण सवरिया के नाचने की कल्पना करते हैं। परंतु आज का किसान सवरिया हसमुख नहीं मलिनमुख है। सूखे की स्थिति बढ़ती जा रही है। पिछले दो-तीन वर्षों में अकाल व सूखे की घटनाएँ बढ़ी हैं। फसलों की कमी हुई है। केदार की कविताओं में श्रम है। श्रम तो कबीर की कविताओं में भी है। लेकिन वहाँ श्रम पेशे का श्रम है, केदार की कविताओं में सामान्य जन जीवन का श्रम है। विश्वनाथ त्रिपाठी के अनुसार, “सुख, सौंदर्य, श्रम ये केदारनाथ अग्रवाल के जीवन एवं काव्यमूल्य के ढाँचे के विभिन्न अवयव हैं। निस्संदेह इनका स्रोत समाजवादी विचारधारा है। यह सुख समाजिकता से अलग या उसकी विरोधी नहीं। बस इसका अनुभव निजी है। वह अनावश्यक सचय से, निष्क्रियता से, दूसरों का हक मार लेने से नहीं मिलता। सुख केदारनाथ अग्रवाल के लिए मानवीयता का स्वाद है, अस्तित्व का रस है। उनका जीवन आचरण और कविता भी उसी की प्राप्ति के लिए अनुशासित और अनुकूलित थी। प्रेम हो तो साधना भी सिद्धि का आनंद देती है। इसीलिए

“सबसे आगे हम हैं। पॉव दुखाने में
सबसे पीछे हम हैं पॉव पुजाने में।”¹⁵⁶

मानवीयता का स्वाद ही केदार की कविताओं को प्रगतिशीलता से जोड़ता है। जो चीजे मानवीय होंगी निश्चित रूप से वे सार्वकालिक होंगी। सार्वदेशिक होंगी। इसीलिए केदार सार्वदेशिक और सार्वकालिक कवि है। उनकी कविता ‘मानवीयता’ को उद्घाटित करती हुई समाज का सच्चा चित्रण प्रस्तुत करती है।

मई, 1943 में रामविलास शर्मा लिखते हैं, “मैंने तुम्हें कुछ छंदोबद्ध कविताएँ लिखने की सलाह दी थी। मुक्त छंद लिखने में तुम्हें आसानी होती है, और उसका एक अपना आनंद भी है लेकिन बहुधा मुक्त छंद की पक्तियाँ उस तरह जनता के कंठ में नहीं उतरती जिस तरह छंदोबद्ध कविताएँ। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारी कविताएँ ऐसी भी हों जो साधारण जनता को यो ही याद हो जाए। लोकगीतों के ढंग की कविता छंद में होगी ही। तुम मुक्त छंद में भी लिखो परंतु इसका भी ध्यान रखो।

“लोकगीतों के अलावा बांदा, बुंदेलखण्ड, चित्रकूट आदि पर यथार्थवादी ढंग की कविताएँ भी हों। तुलसीदास ने चित्रकूट पर वर्षा का वर्णन किया है, परंतु उससे कौन चित्रकूट को पहचान सकेगा। नयी हिन्दी कविता में ऐसे यथार्थ प्रकृति चित्रण की आवश्यकता है जिससे हम अपने देश को पहचान सकें।”¹⁵⁷ इस सलाह के बाद केदार ने दोनों तरह की कविताएँ लिखीं। गीत लिखे— यथार्थवादी कविताएँ भी लिखीं, एक तरह से नयी हिन्दी कविता में यथार्थवादी प्रकृति चित्रण को स्थापित भी किया। मुक्त छंद के विषय में निराला जी ने परिमल की भूमिका में काफी विस्तार से लिखा है—

“मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है, और कविता की मुक्ति छंदों में शासन से अलग हो जाना। जिस तरह मुक्त मनुष्य काफी किसी तरह भी दूसरे के प्रतिकूल आचरण नहीं करता, उसके तमाम कार्य औरों को प्रसन्न करने के लिए होते हैं— फिर भी स्वतंत्र, इसी तरह कविता का भी हाल है। मुक्त काव्य कभी साहित्य के लिए अनर्थकारी नहीं होता, प्रत्युत उससे साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है, जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है। जैसे बाग की बंधी और वन की खुली हुई प्रकृति दोनों ही सुंदर हैं, पर दोनों के आनंद तथ दृश्य दूसरे-दूसरे हैं। जैसे आलाप और ताल की रागिनी इसमें कौन अधिक आनन्द प्रद है, यह बतलाना कठिन है, पर इसमें संदेह नहीं कि आलाप वन्य प्रकृति तथा मुक्त काव्य स्वभाव के अनुकूल है।...

“छन्द भी जिस तरह कानून के अंदर सीमा के सुख में आत्मविस्मृत हो सुंदर नृत्य करते, उच्चारण की श्रृंखला रखते हुए श्रवण—माधुर्य के साथ ही साथ श्रोताओं को सीमा के आनंद में भुला रखते हैं, उसी तरह मुक्त छंद भी अपनी विषम गति में एक ही साम्य का अपार सौंदर्य देता है, जैसे एक ही अनंत महासमुद्र के हृदय की सब छोटी-बड़ी तरंगें हों, दूर प्रसारित दृष्टि में एकाकार एक ही गति में उठती और गिरती हुई।...

“अतुकांत कविता में प्रथम श्रेय आल्हखंड के लिखने वाले को हिन्दी में प्राप्त है। इस तरह की कविता अतुकांत काव्य का गौरव पद भले ही अधिकृत करती हो, वह मुक्त-काव्य या स्वच्छंद कदापि नहीं। जहाँ मुक्ति रहती है वहाँ बंधन नहीं रहते— न मनुष्यों में, न कविता में। मुक्ति का अर्थ ही है बंधनों से छुटकारा पाना। यदि किसी प्रकार का श्रृंखला बद्ध नियम कविता में मिलता गया, तो वह कविता उस श्रृंखला में जकड़ी हुई ही होती है, अतएव उसे हम मुक्ति के लक्षणों में नहीं ला सकते, न उस काव्य को मुक्त काव्य कह सकते हैं...

“दृढ़ नियमों से बंधी हुई कविता कदापि मुक्त छंद नहीं हो सकती। मुक्त छंद तो वह है, जो छन्द की भूमि में रहकर भी मुक्त है।”¹⁵⁸ निराला मुक्त छंद की व्याख्या कर रहे हैं। मुक्त छंद का अपना अलग लय होता है। केदार इन्हीं अर्थों में मुक्त छंद की कविताएँ लिखते हैं। निराला की मुक्त छंद की व्याख्या के बाद चीजें स्पष्ट हैं। छंद की भूमि में रहकर ही मुक्त छंद लिखा जा सकता है। केदारनाथ अग्रवाल की कुछ कविताएँ हैं—

“यह जो
नाग दिये के नीचे
चुप बैठा है,
इसने मुझको

काट लिया है,
 इस काटे का मंत्र
 तुम्हारे चुम्बन में है,
 तुम चुम्बन से
 मुझे जिला दो।¹⁵⁹
 केदार की कविता 'धूप है। धूप कुछ इस तरह है—
 "धूप चमकती है चाँदी की साड़ी पहने
 मैके में आये बेटी की तरह मगन है
 फूली सरसों की छाती से लिपट गयी है
 जैसे दो हमजोली सखियाँ गले मिली हैं
 भैया की बाहों से छूटी भौजाई—सी
 लहंगे की लहराती लचती हवा चली है
 सारंगी बजती है खेतों की गोदी में
 दल के दल पक्षी उड़ते हैं मीठे स्वर के
 अनावरण यह प्राकृत छवि का अमर भारती।"¹⁶⁰
 इसी तरह एक कविता है— 'पैतृक सम्पत्ति'—
 जब बाप मरा तब यह पाया
 भूखे किसान के बेटे ने:
 घर का मलवा, टूटी खटिया,
 कुछ हाथ भूमि — वह भी परती
 चमरौधे जूते का तल्ला,
 छोटी, टूटी बुढ़िया औगी,
 दर की गोरसी, बहता हुक्का,
 लोहे की पत्ती का चिमता।"¹⁶¹

भूखे किसान के बेटे को विरासत में यही चीजें मिलती हैं, चमरौधे जूते का प्रयोग निराला की कविता 'सरोज स्मृति में भी है।

गाँवों में किसानों पर केदार 'कटुई का गीत' लिखते हैं—
 काटो—काटो काटो करबी
 साइत और कुसाइत क्या है
 जीवन की बढ़ साइत क्या है
 काटो काटो काटो करबी
 मारो मारो मारो हँसिया

हिंसा और अहिंसा क्या है

जीवन से बढ़ हिंसा क्या है।¹⁶²

केदार छायावादी कवियों की तरह 'मैं' पर भी कविता लिखते हैं। जहाँ निराला कहते हैं, मैंने मैं शैली अपनायी " वही केदारनाथ अग्रवाल लिखते हैं,

'हारा हूँ सौ बार

गुनाहो से लड़-लड़कर,

लेकिन बारम्बार लड़ा हूँ

मैं उठ-उठ कर,

इससे मेरा हर गुनाह भी मुझसे हारा

मैंने अपने जीवन को इस तरह उबारा।¹⁶³

केदार 'गुनाहो से हार' न मानने वाले कवि हैं। वह सघर्ष के कवि हैं। जीवन में व्याप्त विषमताओं से सघर्ष के कवि हैं। प्रकृति के विभिन्न आयामों को उद्घाटित करने में समर्थ कवि हैं।

"नदी एक नैजवान ढीठ लड़की है

जो पहाड़ से मैदान में आयी है

जिसकी जॉघ खुली

और हसो से भरी है

जिसने बला की सुंदरता पायी है।

पेड़ हैं कि इसके पास ही रहते हैं

झुकते, झूमते, चूमते ही रहते हैं

जैसे बड़े मस्त नौजवान लड़के हैं।¹⁶⁴

डॉ विश्वनाथ त्रिपाठी के अनुसार, "सुख, सौंदर्य, श्रम ये केदारनाथ अग्रवाल के जीवन एवं काव्य मूल के ढाँचे हैं।" केदार के यहाँ एक तड़प भी है। पीड़ा है। उस पीड़ा की अभिव्यक्ति निम्न पक्तियों में है—

दर्द था एक

जो तुमने दिया,

हजार सुखों के बीच

जो मैंने पिया,

रात में तड़पा

और दिन में जिया,

न किसी ने जाना।

तुमने क्या किया।¹⁶⁵

तडप से निकलकर प्रकाश में जीने की जीजिविषा है। एक आस है। हजार सुख है। उसके बीच कष्ट है। यही मानव का सच है। यदि दुःख न हो तो मनुष्य सुख की अनुभूति करते-करते जड़ हो जाएगा। सुख का महत्व तभी है जब कष्ट है। वह एक ही दर्द था। रात में सिर्फ तडप थी। रात की विशेषता अंधेरा है। अंधेरे में वस्तुएँ दृश्य नहीं होतीं, लेकिन दिन में चीजे दिखलाई पड़ती हैं। केदार की कविता में जहाँ निराशा है तुरंत वही आशा भी है। इसीलिए वे 'आशा के कवि' हैं। अवसादग्रस्तता उनकी कविता का सच नहीं है। हाँ पीड़ा अवश्य है। पीड़ा का दर्द है। उसमें उत्साह है। उत्साह जीवन का उत्स है। 'उत्साह' श्रम करने पर ही आता है। बिना श्रम के उत्साह ही नहीं सकता। श्रम से सुख मिलता है। इसलिए केदार की कविता के विभिन्न अवयव सुख, सौंदर्य, श्रम हैं।

केदार मित्र संवाद में लिखते हैं, "युग का साहित्य जंगल के कोने में रचा हुआ नहीं होता। और न वह अंतर्मन से उगला हुआ वैयक्तिक विकार होता है। साहित्य को भी समाज के डाल की जरूरत है।"¹⁶⁶ वस्तुतः युगीन साहित्य संवेदनात्मक धरातल पर ऐतिहासिक सच होता है। बिना समाज के साहित्य प्रासंगिक नहीं हो सकता। दरअसल समाज व साहित्य एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। एक-दूसरे को समझने का माध्यम हैं। केदारनाथ अग्रवाल के 'युग की गंगा' पर रामविलास शर्मा लिखते हैं, "प्रगतिशील साहित्यिक आंदोलन के प्रमुख कवि केदारनाथ अग्रवाल का पहला कविता संग्रह 'युग की गंगा' भारत के स्वाधीन होने से पहले मार्च 1947 में प्रकाशित हुआ था। बहुत अच्छा कविता संग्रह होने के अलावा भारत और हिन्दी साहित्य के इतिहास को समझने के लिए यह एक बहुमूल्य दस्तावेज है।"¹⁶⁷

भारत के गुलामी के दौर से लेकर आजादी तक और उसके उत्तरार्द्ध में हरिजनों को जिंदा जलाया जाता रहा है। ये हरिजन गरीब किसान हैं। लगभग मजदूरी उनकी नियति है। रामविलास शर्मा लिखते हैं, "सन् 46 में ये भी उचित मजदूरी पाने के लिए लड़ रहे थे। प्रतीको का सहारा न लेकर केदार ने उनके संघर्ष का सीधा चित्रण किया था—

डंका बजा गाँव के भीतर। सब चमार हो गये इकट्ठा। एक
उठा बोला दहाड़ कर; 'हम पचास हैं; मगर हाथ सौ
फौलादी है। सौ हाथों के एका का बल बहुत बड़ा है। हम
पहाड़ को भी उखाड़ कर रख सकते हैं। जमींदार यह अन्यायी
है। कामकाज सब करवाता है। पर पैसे देता है छै ही।

(कहें केदार, पृ.21) खेत मजदूर का संघर्ष रोक कर शांतिपूर्वक जमींदारी खत्म करने का वादा किसने किया था?"¹⁶⁸ आज जब 'चमार' इकट्ठे हो गये हैं। आज उनके पास राजनीतिक शक्ति है। शक्ति का विस्तार है। हाथ उठाकर फौलादी हैं। वर्तमान स्थिति इतिहास की जटिलताओं से आक्रांत होकर परिवर्तित हुई है। जमींदार आज चाहकर भी अन्याय नहीं कर सकता। लोकतंत्र में कानूनों की जकड़बंदी के फलस्वरूप अत्याचार कम हुए हैं। रामविलास शर्मा के अनुसार, "निराला की निगाह में कांग्रेस के सबसे प्रगतिशील नेता जवाहर लाल नेहरू का वास्तविक रूप यह था—

"लेडी जमींदारों को आँखों तले रक्खें हुए,
मित्रों के मुनाफे खाने वालों के अभिन्न मित्र,

देश के किसानों, मजदूरों के भी अपने सगे

विलायती राष्ट्र से समझौता के लिए।

“नेहरूवाद का ऐसा संक्षिप्त और सारगर्भित चित्रण हिन्दी में दूसरी जगह नहीं है। कम्युनिस्टों का एक बहुत बड़ा समुदाय मार्क्सवाद की जगह इसी नेहरूवाद को प्रतिबद्धित करने में लगा था, लगा रहा है। सरदार पटेल ने अहिंसावादी ढंग से रियासती की समस्या हल कर दी। उससे कश्मीर को लेकर भारत और पाकिस्तान का आपसी तनाव खत्म हो गया या उस तनाव में फौजी टक्कर का रूप लिया? खुद कश्मीर के भीतर संप्रदायवाद बढ़ा या घटा? पंजाब के विभाजन से पाकिस्तान बना कर स्थायी शांति कायम कर ली या खालिस्तान बनाने की एक और मांग सामने आयी? शांतिपूर्वक जमींदारी प्रथा खत्म करने से हरिजनों का उद्धार या हरिजनों पर अत्याचार बढ़ा? यहीं नहीं, द्विज शूद्र संघर्ष ने हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष में इजाफा किया या नहीं? स्वाधीनता आंदोलन जनवादी क्रांति का रूप ले रहा था। इस क्रांति को रोकना जरूरी था— विलायती राष्ट्र से समझौते के लिए, समझौते के जरिये सत्ता के शांतिपूर्ण हस्तांतरण के लिए। भारत में आज जो भी विघटनकारी शक्तियाँ दिखाई देती हैं, उन सबकी जड़ें सत्ता के इसी शांतिपूर्ण हस्तांतरण में हैं, जनवादी क्रांति के अवरोध में हैं। साम्राज्यवाद और भारतीय पूँजीवाद में चाहे जितना अंतर्विरोध हो, यदि उसमें साम्राज्यवाद से किसी भी मोर्चे पर समझौता किया तो इससे खुद भारतीय पूँजीवाद के विकास का मार्ग सुगम नहीं हुआ, जनवादी क्रांति के लक्ष्य पूरे होना तो बहुत दूर की बात है।”¹⁶⁹ आज भले ही समाज में तथाकथित नीची जातियों के लोगों के पास सत्ता आ गई हो लेकिन उसका दमन चक्र जारी है। आज भी बिहार और उत्तर प्रदेश में या कि अन्यान्य स्थलों पर हरिजनों को जिंदा जलाया जाता है। जनवादी क्रांति नहीं आयी है। हाँ पूँजीवाद जरूर दृढ़ हुआ। पूँजी के जोर से स्वार्थपरता बढ़ी है। चाहे कांग्रेस हो अथवा भारतीय जनता पार्टी सभी ने स्वार्थपरक राजनीति की है। भारतीय जनता पार्टी स्वदेशी के नारे को भूलकर विदेशी पूँजी को प्रश्रय दे रही है। मित्र संवाद के समाप्त होने के साथ ही भारत में एक दुर्घटना घटी। लगभग डेढ़ वर्षों पर वाद बाबरी मस्जिद के विध्वंस ने सांप्रदायिकता की राजनीति को बढ़ावा दिया है। 56 वर्षों की सांस्कृतिक प्रक्रिया निरंतर क्षरित हो रही है। आज भारत स्वतंत्र है। स्वतंत्रता के साथ ही जमींदारों का तो अंत हुआ है, लेकिन उसका स्वरूप बदला है। आज शोषण का तरीका बदला है। आज पूँजीपतियों के रूप में नया शोषक वर्ग उभर कर सामने आया है। पूँजीपतियों का ‘धन’ पर एकाधिकार है। अमरीका उसका पुराना हिमायती है।

रामविलास शर्मा लिखते हैं, “केदार को इस बात का श्रेय है कि उन्होंने 1948 में ही भारतीय जनता को अमरीकी साम्राज्यवाद के नये खतरे के प्रति सावधान किया था। डालर को लक्ष्य करके लिखा था—

यहाँ हमारी जन्मभूमि पर यदि आयेगा डालर... । वह
अपने साम्राज्यवाद के घोर नशे में। भारतीय पूँजीपतियों
से सांठ गांठ कर, क्रम दिल्ली की राजनीति को कर लेगा,
नेहरू और पटेल आदि की मति हर लेगा। (कहें केदार, पृ.50)

अमरीकी साम्राज्यवाद एक ओर नवस्वाधीन देशों को कर्ज के जाल में फंसा रहा था, दूसरी ओर वह समाजवादी देशों को एटम बम से डराने की कोशिश कर रहा था। एटमबम के

सहारे अमरीका संसार की स्वाधीनता—प्रेमी जनता को दबा नहीं सकता, यह विश्वास व्यक्त करते हुए केदार ने 1952 में लिखा था—

झूठ नहीं सच होगा साथी।
करने को जो चाहे कर ले
चलनी पर चढ़ सागरतर ले
चिउंटी पर चढ़ चांद पकड़ ले
लड़ ले ऐटम बम से लड़ ले
झूठ नहीं सच होगा साथी। (कहें केदार, पृ.38)¹⁷⁰

यह कविता सच है। एक कवि की सोच है। वास्तविकता कुछ दूसरी ही है। कविता 1952 में लिखी हुई है। वह आकस्मिक नहीं है कि 1952 में मित्र संवाद में केदारनाथ अग्रवाल का एक भी पत्र नहीं है। दो पत्र रामविलास शर्मा के हैं—

“छोटे हाथों का करतब देखा।...

“हवा सन्नाटा खींचे है। पसीने से बदन भीग गया है। अस्वाभाविक अंधेरे से 5 का वक्त 8 का लगता है। धूल और गर्द की आंधियों आ चुंकी थीं। ये पानी से भरे बादल हैं जो अपने दबाव से हवा का सांस लेना बंद कर चुके हैं। ये बरसेंगे और इस धरती को वहाँ तक सींच देंगे जहाँ से हर दरख्त और सब्जे की जड़ों को रस मिलेगा— इसमें किसे संदेह हो सकता है।”¹⁷¹ पहले पत्र में रामविलास शर्मा छोटे हाथों का करतब देख रहे हैं। छोटे हाथ प्रतीकात्मक हैं। ये पानी से भरे बादल हैं जो अपने दबाव से हवा का सांस लेना बंद कर चुके हैं, ये भी प्रतीक है। ‘बादल’ कौन है? बादल केदार और रामविलास शर्मा के पत्रों, कविताओं में बहुत आता है। लगभग बार-बार। केदार सन् 1952 में कविता के माध्यम से साम्राज्यवाद की वकालत करते हैं तो रामविलास शर्मा बादलों के माध्यम से धरती को सींचने का, धरती को हरा-भरा करने का जिक्र करते हैं।

आज डालर का जोर है। आये दिन भारत कर्जे के जाल में फँसता जा रहा है। पुराने मित्र रूस को छोड़कर अमरीकी पूँजीवाद की बर्बरता का झेलने के लिए अभिशप्त होता जा रहा है। साम्राज्यवाद का मुकाबला हम नहीं कर पा रहे हैं। “अमरीकी साम्राज्यवाद का मुकाबला करने में सबसे आगे रहा है वियतनाम। 1968 में इस मुकाबले के बारे में केदार ने लिखा था—

डालर ने सोचा था,
हो ची मिन्ह भुनगा है,
उसका देश केंचुआ है,
उसके लोग मुरदा हैं,
जाहिल आबादी है,
चुटकी से मसल देगा भुनगे को
ऐंड़ी से कुचल देगा केचुएँ को
जल्दी से जीत लेगा मुरदों को

जाहिल आबादी को पीट लेगा
लेकिन
उन भुनगे ने
डालर को मसल दिया
केचुए ने
डालर को कुचल दिया
मुरदों ने डालर को पीस दिया,
जाहिल आबादी ने
डालर का खून किया।

(कहें केदार, पृ.153) साम्राज्यवादियों की हार पर ऐसा उल्लास बहुत कम कविताओं में व्यक्त हुआ है। क्रोध और हर्ष के भाव एक ही में घुल मिल गये हैं। आवेश में अवध का किसान इसी ढंग से उपमाएँ जोड़ते हुए बोलता है। जिस बात को शब्द नहीं कह पाते, उसे शब्दों की गति कह देती है।¹⁷² अवध के किसानों की वकालत प्रेमचन्द का साहित्य भी करता है। 'होरी' हो चाहे 'सूरदास' सभी लगभग अवध की मिट्टी से उद्भूत संघर्षशील व्यक्ति थे। सभी ने शोषण के खिलाफ संघर्ष किया। आवेश में चीजें जल्दी-जल्दी तीव्रता के साथ नहीं हैं। उसकी अनुभूति जन साधारण की संवेदना से जुड़ जाती है और वह जन क्रांति का स्वरूप ग्रहण कर लेती है।

"अमेरिकी साम्राज्यवाद के विरुद्ध वियतनामी जनता के संघर्ष ने अन्य देशों के स्वाधीनता आंदोलनों को, और वहाँ के प्रगतिशील बुद्धिजीवियों को, किस हद तक प्रभावित किया, इसका प्रमाण बांग्ला देश मुक्ति संग्राम पर केदार की कविता है।

"मैंने समझा। जन सत्ता की यह लड़ाई। लड़कर तुझको
मुक्ति मिलेगी— चाहे जितनी चले लड़ाई। चाहे
बरसों-बरसों चालू रहे लड़ाई— चाहे कोई साथ न
आये— चाहे कोई मदद न आये। होची मिन्ह भी याद
आ गये इस अवसर पर। और लड़ाई उनके वाले वियतनाम
की याद आ गयी। मैंने समझा वही लड़ाई तुझको भी
अब लड़नी होगी। उसी तरह से तुझको भी अब जुटना होगा।
उसी तरह तेरी जनता को उठना होगा। (कहे केदार, पृ.181)

(लड़ाईचली लेकिन दूसरे ढंग से, जनता जीती लेकिन साम्राज्यवाद के सहयोगी अब भी शक्तिशाली थे। शेख मुजीब की हत्या कर दी गयी। तब से वहाँ फौजी शासन है।¹⁷³ आज विश्व के तमाम राष्ट्रों में लड़ाई जारी है। शासक वर्ग मारे जा रहे हैं। कट्टर पंथी शासन कर रहे हैं। भारत में भी कट्टरपंथी तत्वों का गद्दी पर कब्जा है।

रामविलास शर्मा केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं का मूल्यांकन करते हैं। उसे समझते हैं; दूसरों को समझाते हैं। कविता कैसी होनी चाहिए इस पर टिप्पणी करते हैं। "केदार की

कविताओं की उनकी आलोचना में उनकी काव्य मर्मज्ञता, उनकी दृष्टि की पहुंच और पकड़ का कायल होना पड़ता है, प्रायः केदार भी हुए हैं।¹⁷⁴ वस्तुतः रामविलास शर्मा की काव्य मर्मज्ञता का पता उनकी कविता की आलोचना से चलता है। चाहे भक्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास हों, चाहे निराला अथवा प्रगतिशील कवि केदारनाथ अग्रवाल, सभी पर उनकी पकड़ गहरी है। गोस्वामी जी पर किताब लिखना चाहते थे, पूरी नहीं हुई। किंतु उनकी साहित्य-साहित्य साधना का परिणाम 'निराला की साहित्य साधना और 'प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल है। क्या भाषा, क्या गद्य, क्या उपन्यास, क्या निबंध सभी पर वह बेबाक बयानी करते हैं। सटीक। मारक। जोकि उसकी आलोचना दृष्टि की विलक्षणता का परिणाम है। मित्र संवाद में ताजमहल कविता पर रामविलास शर्मा लिखते हैं,

“तुम्हारी कविता सुंदर है लेकिन बराबर नहीं उतरी। पहली पंक्ति गद्य है। श्वेत कमल की उपमा सुंदर है लेकिन निर्मल नक्षत्रों की चर्चा से कमल की Image बहुत जल्दी ओझल हो जाती है— चन्द्रोदय, नक्षत्र, कमल— तीनों के एक साथ आने से पाठक किसी भी Image पर जम नहीं पाता। चन्द्रोदय वाली Image पर पूरा बंद होना चाहिए। दूसरे बन्द में मानव मन का जल और करुण सागर का बादल एक ही बात कहते हैं, पत्थर की विह्वलता सुन्दर है लेकिन बाद वाली पंक्ति बहुत कमजोर है— विह्वल होकर भी मुखमंडल होना यह बात स्पष्ट नहीं हुई। तीसरा बंद अभी बना है — उसकी ताजगी की अनुभूति। सुन्दर। पत्थर में सपना ठीक। तीसरी पंक्ति व्याख्यात्मक है, चौथी, अनावश्यक टिप्पणी। इस बन्द में केवल उसकी ताजगी और प्रस्तर के सस्मित सपने पर मन जमाना था। तीसरा बन्द शिल्पियों को किसने छला है? क्या ताज का सौंदर्य उन्हीं का हृदय सौंदर्य नहीं है? फिर ताज उन पर भार रूप क्यों है? चौथा बंद बिल्कुल अस्पष्ट।”¹⁷⁵ इस पर केदारनाथ अग्रवाल अपनी कविता के पक्ष में तर्क पेश करते हैं।

“मैं तुम्हारी आलोचना से प्रभावित अवश्य हुआ हूँ लेकिन सहमत नहीं हूँ कि पहले स्टेन्जा की पहली लाइन गद्य है।... पाठक को इस बात की अनुभूति प्राप्त करने में कोई प्रयास नहीं करना पड़ेगा।”¹⁷⁶

केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में आद्योपांत प्रकृति के भिन्न-भिन्न स्वरूप विद्यमान है। केदार भले ही रामविलास शर्मा से तर्क करें लेकिन अंत में वह रामविलास शर्मा द्वारा उद्घाटित कमजोरियों पर दृष्टि डालते हैं और कविता में रचनात्मक सुधार लाते हैं। नामवर सिंह लिखते हैं, “सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह है कि पत्रों में रामविलास शर्मा ने प्रशंसा से अधिक केदार जी की कविताओं की निर्मम आलोचना की है— यहाँ तक कि कुछ कविताओं की धज्जियाँ उड़ा दी हैं। कहीं-कहीं केदार जी ने अपने बचाव में बहस भी की है लेकिन अंततः अपनी भूलें स्वीकार कर ली हैं।”¹⁷⁷ केदार ने भूलों को सुधारा है तभी तो वह एक बड़े कवि बन सके। भूलों को सुधार कर ही व्यक्ति आगे बढ़ता है। व्यक्ति या साहित्यकार अपनी ऐतिहासिक भूलों को नहीं दुहराता है।

डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं, “बेसुध होकर कायांतरण या रूपांतरण केदारनाथ अग्रवाल की प्रधान प्रवृत्ति है, यह प्रवृत्ति संवेदन रूप है। इसलिए वह शिल्प या प्रणाली भी है। यह है तन्मयता एवं तल्लीनता की स्थिति। यह स्थिति सौन्दर्यानुभूति की है। द्रवित होकर चित्त की तदाकार परिणति होती है। जैसे धातु ताप से द्रवित होकर किसी सांचे में ढल जाये।

तदाकार अर्थात् प्रिय के आकार में परिणति 'मैं भी हो गई लाल' या 'जानत तुम्हहि होई जाई' वाली बात समझिए। केदारनाथ अग्रवाल के यहाँ तदाकार की स्थितियाँ पर्याप्त हैं। यहाँ तक कि — मरने के बाद भी प्रिय देश की मिट्टी, हवा, फसल में रूपांतरित होकर मैं उसी में लीन रहूँगा— यह भावना कवि को मरण की कल्पना में भी शांति, संतोष देती है।... केदार के यहाँ प्रकृति मनुष्य के लिए अमर होने के साधन है। यहाँ ढाँचा भक्ति का ही है केवल इष्ट बदल गया है। इष्ट का रूप मानवता ने ले लिया है। व्यापक सकर्मक देश-प्रेम ने। यहाँ देश-प्रेम एवं प्रकृति प्रेम मानवता प्रेम के लिए पर्याय है। जैसे साधक इष्टमय होकर परम पद या अमरता पाता था वैसे मनुष्य देश प्रेम, प्रकृति प्रेम में देशमय-प्रकृतिमय होकर अमरता प्राप्त करता है यानि मृत्यु के चंगुल से मुक्त हो जाता है। धार्मिक साधना वैयक्तिक थी। यह साधना सामाजिक-ऐतिहासिक है। अतः इसमें आत्मस्थ होना नहीं — वाह्यस्थ भी होना पड़ता है आत्मस्थ होने के साथ-साथ। इसमें स्वांतः सुलाय बहुजन सुखाय बन गया है।¹⁷⁸ बिल्कुल तुलसी के राम चरित मानस की तरह। तमाम आपत्तियों के बावजूद तुलसी का राम चरित मानस बहुजन हिताय है। कबीर की कविता का सरोकार प्रश्नों के उधेड़बुन से है। और तुलसी की कविता का साक्षात्कार प्रश्नों की तर्कपरक व्यवस्था से है।

केदार की कविताओं में प्रेम का सहज चित्रण है। उन्मुक्त 'हे मेरी तुम' पत्नी प्रेम की जीवंतता को स्फुटित करता है। जहाँ केदार ही नहीं वरन प्रगतिशील कवियों के यहाँ प्रेम की स्वच्छन्दता दिखलाई पड़ती है। "प्रगतिशील कवि जहाँ स्वच्छंद प्रेम का चित्रण करता है, वहाँ भी संयम और स्वस्थ मनोवृत्ति का परिचय देता है। स्फूर्तिदायक प्रथम परिचय का एक चित्र त्रिलोचन के कुंठाहीन हृदय में देखिए—

यों ही कुछ मुसकराकर तुमने
परिचय की वह गाँठ लगा दी
था पथ पर मैं भूला-भूला
फूल उपेक्षित कोई फूला
जाने कौन लहर थी उस दिन
तुमने अपनी याद जगा दी
कभी-कभी यों हो जाता है
गीत कहीं कोई गाता है
गूँज किसी उर में उठती है
तुमने वही धार उमगा दी।
जडता है जीवन की पीड़ा
निस्तरंग पाषाणी क्रीड़ा
तुमने अनजाने वह पीड़ा
छवि के शर से दूर भगा दी।

प्रगतिशील कवि का प्रेम इतना स्वस्थ और स्फूर्तिदायक इसलिए है कि वह प्रेम को संपूर्ण जीवन का अंग समझकर अनुभव करता है। प्रयोगवादी कवि की तरह वह संपूर्ण जीवन से

प्रेम-संबंध को काटकर देखने का आदी नहीं हैं। जिस तरह उसके प्रेम संबंध को सामाजिकता सुधारती चलती है, उसी तरह उसका प्रेम संबंध सामाजिक भावना को भी बल देता है।¹⁷⁹ केदारनाथ अग्रवाल का भी प्रेम अकुंठ है। सामाजिक परंपरा को पुष्ट करता है— उसका प्रेम। उनकी बौद्धिकता यथार्थपरक है। उनका प्रेम उनके रचनात्मक धरातल को ऊँचाई प्रदान करता है।

जीवन में प्रेम सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य है। माँ, पिता, भाई, बहन सभी के संबंधों को पारिवारिक स्तर पर पुष्ट करके सामाजिक सरोकारों को गहराई प्रदान करता है। प्रेम का जितना महत्व है उतना ही महत्व जीवन का भी है। जीवन का अंतिम सच है मृत्यु। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं, “जीवन से प्रेम करने वाले मृत्यु पर अवश्य विचार करते हैं। गालिब, रवीन्द्रनाथ, निराला, प्रसाद आदि की भांति केदार की कविताओं में भी मृत्यु के विविध उल्लेख हैं। केदार मरना नहीं चाहते। लेकिन मृत्यु तो अवश्यम्भावी है। तब कवि मृत्यु के बावजूद जीवित रहने के तरीके सोचता है। केदार की एक कविता मुझे काफी असमंजस में डालती है। कविता अच्छी लगती है। थोड़ा बहुत समझ में भी आती है। लेकिन उसके अन्य पाठ बहुत दूर तक ले जाते हैं।

नहीं आया जहाँ कोई नृत्य करने
वहाँ जाओ काल की गहराइयों में
मुक्त होकर प्यार करने।
नहीं आया जहाँ कोई दीप धरने
वहाँ जाओ तम की घाटियों में

कवि अपरिचित भूमि पर रचना—प्रवृत्त होना चाहिता है। ‘जहाँ न जाए रवि, वहाँ जाए कवि’ वाली बात।¹⁸⁰ मुक्त होकर प्यार करने अर्थात् जहाँ स्वच्छन्दता हो, कोई अड़चन न हो वहाँ जाकर प्रेम करने की सलाह केदार देते हैं। ‘काल की गहराइयों में’ — काल में गहराई आना गूढ़तम अव्यक्त संवेदनात्मकता का प्रतीक है। गहरा स्पर्श बोध है काल के प्रति। वहाँ आज तक जहाँ किसी ने नृत्य नहीं किया। नृत्य आधुनिक युग के मध्यम वर्ग के आपाधापी का प्रतीक है। तीन—पाँच की नाच मध्यम क्या उच्च ‘वर्ग सभी की पूँजीवादी हृदयहीनता के दुष्परिणाम को उद्घाटित करती है।’ नहीं आया जहाँ कोई दीप धरने’ में दीप पूँजीवादी वर्ग सामंती वर्ग का प्रतीक बनती है। दीप नहीं धरने में कवि केदार का अपना तर्क है। फिर केदार वहाँ जाने की सलाह देते हैं जहाँ मौन तम की घाटियों में ज्योति की झंकार हो अर्थात् सर्वहारा वर्ग का गहरा सामाजिक स्पर्श हो। जहाँ की मिट्टी किसान, शोषित, पीड़ित की महक को सोंधेपन के साथ महकाती है।

जहाँ केदारनाथ अग्रवाल सहित सभी प्रगतिशील कवियों ने सामाजिकता—संस्कृति को दिलचस्पी के साथ उगाहा है यहीं अज्ञेय जैसे प्रयोग वादी कवि ‘जिजीविषा’ की तलाश में रह जाते हैं। उनकी एक कविता है —

“अर्थ हमारा
जितना है, सागर में नहीं

हमारी मछली में है

सभी दिशा में सागर जिसको घेर रहा है।¹⁸¹

अज्ञेय की कविता का 'मछली' प्रिय प्रतीक है। 'मछली' अर्थात् अस्तित्व। मछली अर्थात् जिजीविषा। जल के बाहर निकाल ली गई मछली तड़पती, ँठती और हॉफती। क्या चहती है वह? जीना। मुक्ति। यह मुक्ति और जीने की लालसा ही अज्ञेय की काव्य की सही जमीन है।¹⁸² इसके बरक्स केदार की कविताओं में प्रकृति का सामाजिक सरोकार है।

सन 1942 के आसपास अज्ञेय और उनके सहयोगियों के संरक्षण में उक्त दोनों काव्य-धाराओं का विरोध करते हुए प्रयोगवादी काव्य-प्रवृत्ति का उदय हुआ। प्रयोगवादी काव्य में अतिशय बौद्धिकता विकृत सौंदर्यबोध, पलायन, अंतर्मुखी यथार्थ चेतना, असामाजिक अंहवादी, पराजय, निष्क्रियता, विद्रूप शृंगार, आत्मबोध, घुटन, कुंठा, पीड़ा, मृत्युबोध आदि प्रवृत्तियों का स्वर मुखरित है। "प्रगतिशील कवि का आशा में दीप्ति होती है। प्रयोगवादी कवि की तरह वह दुःख या सुख कुछ भी अकेले-अकेले नहीं झेलना चाहता।

आज मैं अकेला हूँ

अकेले रहा नहीं जाता

जीवन मिला है यह

रतन मिला है यह

धूल में कि फूल में

मिला है तो मिला है यह

मोल-तोल इसका

अकेले कहा नहीं जाता।

ओखी धार दिन की

अकेले बहा नहीं जाता?

यही सामाजिकता प्रगतिशील कवि में वास्तविक देश प्रेम जगाती है। अंहलीन प्रयोगशील कवियों का ध्यान शायद ही कभी देशप्रेम के गीत लिखने की ओर जाता हो, क्योंकि वे देशप्रेम को पुरानी चीज समझते हैं। उनके विचार से यह पूर्ववर्ती राष्ट्रीय जागरण वाले युग की भावना है और अब उसकी कोई आवश्यकता नहीं है।¹⁸³ जबकि निराला और केदार के यहाँ राष्ट्रीयता के मुद्दे को बार-बार कविता में उठाया गया है।

"केदार किसान के प्राकृतिक परिवेश के कवि हैं। इस परिवेश में मनुष्य के श्रम की उपज शामिल है।"¹⁸⁴ केदार जीवट और जीवन के कवि हैं। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं, "केदार जीवन दूसरों से संपर्क में पाते हैं। यह लोकसत्ता में अपनी सत्ता को पाना है। इस संपृक्ति से व्याप्ति निर्मित होती है। केदार के लिए चूमना, अलिंगन करना, मिलना, जीवन का लक्षण और प्रमाण है। कविता में केदार कवि-मित्रों से असंपृक्त रहने पर उदासी, निराशा और ऊब का बयान करते हैं। किसी साहित्यिक मित्र या कवि के आगमन पर उल्लसित हो जाते हैं। बिल्कुल उसी उत्तेजना और तल्लीनता के साथ जैसे प्रिया के मिलन से—

“इसलिए आतुर रहता हूँ
कभी-कभी तो कोई आए
छटे छमासे चार-पाँच दिन तो रह जाएँ
मेरे साथ बिताए
काव्य कला, साहित्य-क्षेत्र की छटा दिखाए
और मुझे रस से भरा जाए, मधुर बनाए
फिर जाए, जीता मुझको कर जाए।

‘जीता मुझको कर जाए’ के साथ केदार की उन पंक्तियों को याद कीजिए जैसे धूप को देखकर जीने का अहसास, तुम चुंबन से मुझे जिला दो। मित्रों की बाट केदार यों जोहते हैं मानो खेतिहर बादल की बाट जोहे, भारत, सूरज की बाट जोहे—

जैसे खेतिहर बाट जोहता है बादल की
जैसे भारत बाट जोहता है सूरज की।

मित्र की प्रतीक्षा का यह सादृश्य विधान अभूतपूर्व है। श्रम-सौंदर्य की चेतना के बिना यह उपमा नहीं प्रस्तुत की जा सकती। यहाँ प्रतीक्षा, आतुरता उस सुखद अनुभूति के लिए है जो मिलने पर सार्थकता प्रदान करेगी। यहाँ प्रियता का आधार श्रम एवं लोकमंगल है। ऐसे लोक का मंगल जिसमें खेतिहर भी है। जिस लोकमंगल में श्रमिक का मंगल भी है। खेतिहर की बादल-प्रतीक्षा में कितनी आतुरता होती है। यह देश-प्रेमी समझते हैं। सूरज भी प्रकाश, कर्मठता, श्रम और मंगल का प्रतीक है। खेतिहर श्रमिक के लिए बादल और सूरज दोनों उसके श्रम को सार्थक बनाने वाले हैं। वे प्रिय हैं। यह निठल्लों का प्रेम नहीं। जन कवि की प्रिय-मिलन की उत्कंठा है। केदार की यह उक्ति आत्माभिव्यक्ति है, अतिशयोक्ति नहीं।¹⁸⁵ केदार में जीवन उत्कट है। इस उत्सव में किसान-संस्कृति का अद्भुत सामंजस्य है। मजदूरों के सच का बयान है—

“जो जीवन की धूल चाटकर बड़ा हुआ है
तूफानों से लड़ा और फिर खड़ा हुआ है,
जिसने सोने को खोदा—
लोहा मोड़ा है,
जो रवि के रथ का घोड़ा है,
वह जन मारे नहीं मरेगा, नहीं मरेगा —
नहीं मरेगा।
जो जीवन की आग जलाकर बना है,
फौलादी पंजे फैलाए नाग बना है,
जिसने शोषण को तोड़ा,
शासन को मोड़ा है,
जो युग के रथ का घोड़ा है,

वह जन मारे नहीं मरेगा—
नहीं मरेगा।

कहने की आवश्यकता नहीं कि आधुनिक युग में श्रमिकजन की अनश्वरता का यह आख्यान जितना ओजस्वी है, उतना ही प्रभावशाली।¹⁸⁶

इस प्रकार केदार ने रामविलास शर्मा से सीखा— पत्रों से, बातों में। निराला की छवि दोनों मित्रों के सीखने की प्रक्रिया में सहायक होती है। नये कवियों के नएपन से रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल को थोड़ा सा परहेज है, फिर भी केदार की कविताएँ किसान संस्कृति को समेटे हुए, अकुंठ प्रेम का दस्तावेज हैं।

रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल में पत्रों के आदान-प्रदान के दौरान विवाद भी होता है। नामवर सिंह लिखते हैं, “इस विलक्षण संबंध की सबसे जीवंत अभिव्यक्ति ‘मित्र-संवाद’ के अंतर्गत उर्वशी-विवाद में होती है। उर्वशी की प्रशंसा में रामविलास का लेख दो किस्तों में प्रकाशित हुआ। केदार उससे प्रभावित न हुए। लिखा— “कला के नाम पर मैथिलीशरण शैली का निर्वाह है। (16.3.62) जवाब में रामविलास जी ने लिखा, “अरे लाला, कहों मैथिली शरण और कहों दिनकर! तुमने तो सरे बाजार डांडी मार दी। टकसाली माल नहीं है? पल्लव कामायनी और राम की शक्तिपूजा के बाद किसने टकसाली माल दिया है। चारों तरफ नई कविता के झाड़-झंखाड़ देखो, फिर उर्वशी के कवि की पीठ ठोंको। कम से कम उसकी मेहनत तो सराहो। (24.3.62)

इस पर लाला के तेवर देखिए— “श्रीपती जोग लिली बांदा से लाला केदारनाथ की जै गोपाल पहलवान श्री रामविलास आगरा वाले को पहुँचे। चिट्ठी आपकी आयी।... हम ठहरे लाला। सो हमने उसका हृदय से सुआगत किया। डर गये कहीं दिनकर का हिमायती पहलवान न इसके अंदर से पेट फाड़कर निकल आये। यही हमारी कमजोरी थी। वरना हम तो ऐसे वैसे को गिनते कब हैं। हमारे बटखरे छोटे हों तो भी बड़ा काम करते हैं। बड़े-बड़े पहलवानों को राशन कम तौलते हैं।”¹⁸⁷

नामवर सिंह पुनः लिखते हैं, “इस मजाकिया अंदाज के बाद साहित्य चर्चा, “पल्लव तो पल्लव ही था। कामायनी कोर्स में लग गयी है, मानो भारत उसे पढ़ चुका था। राम की शक्तिपूजा अकेली है। वही जनता के साथ जीवन में जीती है। हम उसका लोहा मानते हैं। उसके साथ कहों उर्वशी ठहरेगी। वह तो ख्याल की रंगीनियों की छलना है जो स्वस्थ सौंदर्य के साथ घर-बाहर छायावाद में ठहर ही नहीं सकती।

“अंत में उर्वशी की भीड़-भाड़, “उर्वशी नहीं कोई उरवशा बोल रहा है। पुरुरवा नहीं टहलुवा बोल रहा है।... कहीं तो ऐसा भी प्रयोग है कि तंद्रा ‘फट’ गई। जल ‘फोड़’ कर द्वीप निकल आये। ... निर्भेद गगन में चन्द्रमा मंद-मंद चलता है। जब बादल होता है तभी वह चलता है और तभी चंद्रमा चलता प्रतीत होता है। अन्यथा नहीं। यह अक्ल का दोष है।.. पृष्ठ 89 पर टहनी चीर दी गयी है। आपने टांगें चीरना-लट्ठा चीरना सुना होगा। यह नया प्रयोग है। (26.3.62)

“इस छिद्रान्वेषण का जवाब कोई दमदार अंग काव्योश ही हो सकता है और सहृदय समालोचक उसी अस्त्र का इस्तेमाल करते हुए उर्वशी से पांच पक्तियाँ उद्धृत करते हैं और अपने कवि मित्र से कहते हैं, “भगवान कसम, तुम ये पक्तियाँ लिखते तो तुम्हारे मुख चुम्बन के लिए हलवा छोड़कर तुरत बादा चल पड़ता। (14.4 62)

“इसके बावजूद कवि कायल नहीं होता और दो टूक फैसला देता है,

‘यह काव्य केवल बकवास है। शुरू से आखिर तक। अच्छी दिलचस्प गुप्तगू है। दोनों एक-दूसरे को जानना चाहते हैं और अपने को जनाना चाहते हैं। पर न जानने में ही मजा लेते रहते हैं उर्वशी और पुरुरवा तो रटे रटाए सूत्रों में बात करते हैं। मैंने ऐसी बहुत बातें पढ़ी हैं। (16 4 62)

“इस प्रकार पूरे महीने भर चलने वाला उर्वशी-सवाद अतः तक अनिर्णित ही रहता है और दोनों मित्र असहमत बने रहने पर सहमत दिखाई पड़ते हैं।”¹⁸⁸

नामवर सिंह ‘कविता के नये प्रतिमान’ में लिखते हैं, “यदि केवल तार सप्तक के कवियों के विचारों तक ही अपने को सीमित रखे, तो अत्यंत रोचक तथ्य उपलब्ध होते हैं। अज्ञेय को उर्वशी के काव्यगुण पर कुछ कहने की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई, किंतु सयोग से तार सप्तक के पांच कवियों ने उस पर अपना मत व्यक्त किया है— रामविलास शर्मा, प्रभाकर माचवे, नेमिचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल और मुक्तिबोध। इनमें केवल रामविलास शर्मा और भारत भूषण अग्रवाल को उर्वशी पसंद आई और महत्वपूर्ण भी लगी। रामविलास शर्मा के अनुसार “दिनकर जी उदात्त भावनाओं के कवि हैं। उनके स्वरों में ढलकर उर्वशी की प्राचीन कथा सहज ही रीतिकालीन श्रृंगार से ऊपर उठ गयी है। निराला जी के बाद मुझे किसी वर्तमान कवि की रचना में ऐसा मेघमद्र स्वर सुनने को नहीं मिला जैसा दिनकर की उर्वशी में। इस काव्य में जीवन-संबंधी ऐसे अनेक प्रश्न प्रस्तुत किये गये हैं जिनमें वर्तमान युग का कवि ही कर सकता था। उर्वशी में नारी-सौंदर्य के अभिनदन के अतिरिक्त मातृत्व की प्रतिष्ठा भी है। आज के कुठावादी मरुप्रदेश में आस्था के ये स्वर मुझे अच्छे लगते हैं—

“चिंतन कर यह जान कि तेरे

क्षण-क्षण की चिंता से,

दूर-दूर तक के भविष्य का

मनुज जन्म लेता है।

उठा चरण यह सोच कि

तेरे पद के निक्षेपों की

आगामी युग के कानों में

ध्वनियां पहुंच रही हैं।”¹⁸⁹

दरअसल रामविलास शर्मा को कुंठावादी और निराशावादी स्वर पसंद नहीं है। वह आशावादी हैं। दिनकर के उर्वशी की प्रशंसा रीतिकालीन श्रृंगार परंपरा से उठने के कारण करते हैं। रीतिकालीन कविता रामविलास शर्मा को पसंद नहीं है क्योंकि यह सामंती चरित्र के आख्यान की कविता है।

जहाँ मित्र-संवाद में केदारनाथ अग्रवाल और रामविलास शर्मा उर्वशी में वादी-संवादी स्वर में टकराते हैं वहीं नेमिचन्द्र जैन डॉ. देवी शंकर अवस्थी को लिखते हैं, "आभार मुझे शायद संतुलित विचारों के लिए बधाई' भेजने के लिए भी मानना चाहिए मैं नहीं जानता कि 'संतुलित विचार' के लिए मेरी ख्याति है। पर यदि सचमुच ऐसा है तो बात प्रसन्नता की ही है। क्योंकि मुझे नहीं लगता कि संतुलित होना इतना 'व्याघाती' है जितना आप सोचते हैं। मेरे विचार में तो किसी भी समीक्षात्मक मूल्यांकन संबंधी कार्य की पहली ही शर्त है संतुलन – वह आंतरिक विवेक जो आलोचना वस्तु के संबंध में बहुत-कुछ पूर्वाग्रह से छूटकर, अपनी ही बहुत सी प्रियतर से मुक्त होकर सोचना संभव बनता है। क्षमा कीजिए यह बात निःसंदेह Platitude जैसी हो गयी, पर आपने जिस प्रकार व्यंग्य के साथ संतुलित विचार कर सकने पर आपत्ति की है उसे देखते हुए इस से बचना संभव नहीं दीखता। एक और Platitude दुहराऊँ तो कुछ ऐसे सत्य होते हैं इतने उजागर होने पर भी विद्वज्जनों को नहीं दीखते और उन्हें बार-बार दोहराना अवश्य होना है। मैं मानता हूँ कि आलोचक या समीक्षक का कार्य किसी रचना पर अपनी पूर्व-निर्धारित मान्यताएँ थोपना या उनकी छलनी में छानकर रचना का सार निकाल लेना नहीं बल्कि, उसमें जो कुछ रचनाकार ने प्रस्तुत करना चाहा है या वह कर पाया है उस सबको प्रकाशित कर सकना होना चाहिए।"¹⁹⁰ नेमिचन्द्र जैन पहले आलोचक का दायित्व समझते हैं, फिर दिनकर और उर्वशी पर लिखते हैं— "मैं नहीं सोचता इसमें कोई अंतर्विरोध है और यदि है भी तो वह एक लेखक की Conscious और Unconscious Impuls का है जो बहुत-सी कलाकृतियों में होता है। मुझे लगा कि दिनकर ने जो Unconsciously कुछ आरोपित किया है वह दुर्बल या मिथ्या है पर जो उनकी अनुभूति की उपज है वह आकर्षक और सुंदर भी है। मैंने अपने लेख में 'उर्वशी' के में दोनों ही पक्ष दिखाने चाहे हैं, अच्छाई-बुराईयों का संतुलित विवेचन नहीं। यह मेरे आलोचक की ईमानदारी का प्रश्न है कि यदि जो कुछ मेरी दृष्टि में उर्वशी में मिथ्या और वाह्य और आरोपित है, उसकी मैंने, आपके शब्दों में, बखिया उधेड़ी है, तो मैं उतनी ही ईमानदारी से उस सबकी प्रशंसा भी करूँ जिसने मुझे अभिभूत और प्रभावित भी किया, मेरे मन को छुआ, जिसे मैं बार-बार पढ़कर तृप्ति और आनंद पाता रहा। मेरी यह पक्की धारणा है कि जो सिद्धांत हमें किसी रचना में जो कुछ अच्छा है उस तक पहुँचने से, उससे प्रभावित और अभिभूत होने से रोकते हैं वे चाहे जितने आधुनिक और मान्यता प्राप्त और प्रतिष्ठित हों, वास्तव में वे यदि बेकार और झूठे नहीं तो अपर्याप्त और एकांगी अवश्य हैं।"¹⁹¹ नेमिचन्द्र जैन उर्वशी के दोनों पक्षों पर प्रकाश डालते हैं और उर्वशी की अनुभूति अचेतन अनुभूति की वे प्रशंसा करते हैं। निश्चित रूप से उर्वशी बड़ी रचना है। इसमें किसी को परहेज नहीं होना चाहिए।

उप अध्याय—चार

गद्य साहित्य का विश्लेषण

मित्र संवाद में मित्रों के बीच रामविलास शर्मा की कई किताबों की चर्चा है। 8.6.76 के पत्र में महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण की चर्चा है। 26.11.90 के पत्र में स्वाधीनता आंदोलन की गदर परंपरा और स्वदेशी की चर्चा है। 13.11.56 के पत्र में केदार लिखते हैं, “भारतेन्दु युग पर भक्ति का विकास और सूरदास और जायसी पर शुक्ल जी को तुम्हीं ने परखा और चमकाया है। मैं इतना अज्ञ था कि अब तक इस महान् हिन्दी आलोचक का बल और पौरुष नहीं देख सका था। अजब की बुद्धि है।”¹⁹² शुक्ल जी हिन्दी आलोचना के शिखर पुरुष हैं। हिन्दी आलोचना को सशक्त करने में आचार्य राम चन्द्र शुक्ल, पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी और डॉ. रामविलास शर्मा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

23.11.56 के पत्र में पुनः केदार लिखते हैं, “शुक्ल जी वाली तुम्हारी आलोचना की किताब पढ़ गया। केवल अंतिम चैप्टर रह गया है। पूरी पुस्तक खूब है। बधाई लो। तुमने जो निष्कर्ष निकाले हैं वह ही हमारी (हमारे) प्रगतिशील साहित्य के लिए सत्य है।”¹⁹³

मित्र संवाद का क्रम 2000 के जून में टूटा। रामविलास शर्मा का मौलिक—चिंतन उन्हें रामचन्द्र शुक्ल की अगली कड़ी साबित करता है। प्रथम सुव्यवस्थित इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा। रामविलास शर्मा ने क्रमशः भारतेन्दु, महावीर प्रसाद द्विवेदी, निराला, आचार्य शुक्ल पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से लिखा। क्रमबद्धता आधुनिक युग का इतिहास बन जाती है। आधुनिक—चिंतन रामविलास शर्मा की मार्क्सवादी चेतना की सही समझ पर पुख्ता होती है। रामविलास शर्मा की मान्यताओं से असहमति हो सकती है लेकिन उनके चिंतन और ज्ञान पर किसी संदेह की गुंजाइश नहीं होनी चाहिए।

नन्द किशोर नवल लिखते हैं, “ऐसी बात नहीं है कि रामविलास शर्मा इन बातों को नहीं जानते। वे जानते हैं, लेकिन उनकी व्याख्या अपने ढंग से करते हैं।”¹⁹⁴ तो क्या उसकी व्याख्या दूसरे ढंग से करते। आलोचक की स्वयं की आंख होती है। अपनी आंख से देखने पर ही उसमें मौलिकता आती है। दूसरे की दृष्टि व्यक्ति को लकीर का फकीर बना देती है। रामविलास शर्मा की इसी दृष्टि के कारण उनकी शैली विलासपूर्ण है। श्रेष्ठ है। जानते तो रामविलास शर्मा इतना है कि उन्हें समझने में व्यक्ति की उम्र गुजर जाए फिर भी आलोचक उन्हें न समझ सके। बात सिर्फ जानने या न जानने की नहीं है बात है उनकी दृष्टि को समझने की है। फर्क नुख्ता—चीना का है।

पी.एन. सिंह उक्त अंक में लिखते हैं, “रामविलास शर्मा पर लिखना चुनौती पूर्ण है। पहली चुनौती यह है कि उनका लोकप्रिय व्यक्तित्व विरोधाभासी है। एक ही साथ इतना विवादित लेकिन श्रद्धास्पद, विस्तीर्ण लेकिन गंभीर, पिष्टपेषी लेकिन दृष्टि संपन्न, ‘सनातनी’ लेकिन आधुनिक, सांस्कृतिक लेकिन राजनीतिक और राष्ट्रवादी लेकिन हिन्दी वादी, कोई दूसरा नहीं दीखता। अगर अमृतराय, राजेन्द्र यादव, हृषीकेश आदि पर विश्वास करें तो उनका आलोचक, व्यक्तित्व शिलाधर्म था जो प्रगतिशील प्रतिभाओं को कुचलता रहा जिसने प्रगतिशील आलोचना

को कल्लगाह बना डाला। लेकिन मित्र संवाद पर नामवर सिंह की टिप्पणी या बच्चन सिंह और अमरकांत के संस्मरणों को पढ़ें तो उनके व्यक्तित्व का जो स्वरूप उभरता है वह अत्यंत कोमल, आर्द्र, प्रेरक और आकाशधर्मी है।

दूसरी चुनौती यह कि रामविलास शर्मा ने इतना और इतनी उद्धरण बहुल स्पष्टता के साथ लिखा है कि उन पर लिखना बेमानी लगता है। जिस मुद्दे को उन्होंने उठाया उसकी विवेचना इस सीमा तक की कि उसमें कुछ जोड़ पाना दुष्कर है। इसी मायने में उनकी बहुत सारी कृतियां एवं सथापनाएं क्लैसिक हैं।¹⁹⁵ रामविलास शर्मा सही अर्थों में मार्क्सवादी आलोचक, विचारक और चिंतक हैं, “रामविलास शर्मा का लेखन मूलतः प्रतिबद्ध लेखन है। वे एक क्रांतिधर्मी मार्क्सवादी विचारक, हिन्दी के प्रगतिशील समालोचक, भारतीय समाज एवं संस्कृति के विलक्षण विश्लेषक, हिन्दी जाति जैसी अवधारणा के पुरस्कर्ता, भाषाविद्, इतिहासविद् और न जाने क्या क्या थे। उनके कुछ स्थायी लेखकीय सरोकार थे जिनके प्रति वे समर्पित रहे। ये सरोकार कमोबेश निम्नांकित हैं—

1. समाजवादी क्रांति और इसके लिए अनुकूल सामाजिक चेतना का निर्माण
2. सामंती अवशेषों (जाति-पात, ऊँच-नीच, सांप्रदायिकता, इत्यादि की तीखी आलोचना और नव साम्राज्यवादी पूंजीवाद का विखंडन।
3. भारतीय समाज, संस्कृति और हिन्दी साहित्य में अंतः सलिला के रूप में विद्यमान और विकासमान यथार्थवादी एवं प्रगतिशील धारा की पहचान और रेखांकन।
4. बहुजातीय भारत के वृहत्तर दायरे में हिन्दी जातीय बोध का निर्माण।

दरअसल, ये चारों जुड़े-बंधे हैं। उनका गंतव्य तो समाजवादी क्रांति था। उसके लिए अनुकूल सामाजिक चेतना का निर्माण हो सके, उनका समालोचक और संस्कृति विश्लेषक व्यक्तित्व सक्रिय रहा। वे आधुनिकता और समाजवादी क्रांति को देशज संदर्भों में समझना-समझाना चाहते थे और इसके लिए साहित्य और संस्कृति की मुख्य परंपरा में निहित प्रगतिशील तत्वों को रेखांकित करते रहे जिसे प्रगतिशील आंदोलन ने अपने आरंभिक उत्साह केदौर में खारिज सा कर दिया था।¹⁹⁶ वह किसान-संस्कृति के संरक्षक थे। ग्रामीण जीवन से उद्भूत रचनाकार थे। उनकी गर्व ईपन अदा उनके भाषा के स्तर पर भी दिखलाई पड़ती है। ग्रामीण जीवन से उनका गहरा लगाव था। 23.6.64 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, “एक मेरे सहयोगी अपना थीसिस पीएच.डी. के लिए Submit कर रहे हैं। इधर रोज सबेरे उठकर उसी का संशोधन करता था। जितना परिश्रम संशोधन में करना पड़ता है, उतने में वैसे – और उस से कुछ अच्छे ही दो थीसिस में लिख डालता। नाम रिसर्च का, विचार अध्ययन, लेखन— कौशल सभी में दिवालियापन Guide क्या करे? कल यह कार्य समाप्त हो जाएगा तब खुलकर सॉस लूंगा। शेक्सपियर वाली कितबिया छूट गयी थी, फिर शुरू करूंगा।”¹⁹⁷ अब जरा कितबिया शब्द पर ध्यान दीजिए। इस शब्द का प्रयाग अवध प्रदेश – खांटी अवधी व्यक्ति ही कर सकता है। रामविलास शर्मा का वह प्रयास ताउम्र चलता रहा कि हिन्दी में क्षेत्रीय शब्दों की प्रधानता होनी चाहिए। मिले-जुले सांस्कृतिक स्वरूपसे ही व्याकरण और हिन्दी भाषा सशक्त होगी। इसके प्रति उनकी चेतनता आदि से अंत तक रही।

मार्च 1974 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, “कभी-कभी अध्यापकों वाली दुनिया के आदमी अच्छे नहीं लगते। गँव के अनपढ़, गँवार याद आते हैं, इनसे अच्छे लगते हैं। कल प्रेमचन्द के कुछ पत्र प्रसाद के नाम देखे। श्री रत्नशंकर ने हमारी एक रूसी छात्रा को नकल करके भेजे थे। सन् 1930 में प्रेम चन्द ने प्रसाद के अतीत गौरव गान की कड़ी आलोचना की थी पर कंकाल को बड़ा गर्म आँसू कहा था। चपर कनातियों की दुनिया में प्रेमचन्द खो गये हैं—पाठकों में जिंदा हैं, मुर्दा लेखकों की महफिल में लापता हैं। सन् 1930 से सन 1974 के पत्र को पढ़कर लगा कि प्रेमचन्द को रंगभूमि में तनकर ललकारते हुए सामने देख रहा हूँ। अच्छे लड़े, आखिरी दम तक लड़े — और खूब चौपट किया देश को दगाबाज सियासतनबीस ने।”¹⁹⁸ पत्र की चर्चा ‘मित्र-संवाद’ में है। प्रेमचन्द और प्रसाद भी मित्र थे। आंखों देखी घटना ‘रंगभूमि’ में यथार्थपरक ढंग से हमारे सामने आती है। इस उपन्यास का नायक सूरदास है। उसकी जाति रैदास है। अर्थात् वह दलित है। भाग्य की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि वह अंधा और भिखारी दोनों है। बावजूद इसके वह अपनी और गांव की जमीन के लिए संघर्ष करता है। इस उपन्यास में रामविलास शर्मा ने सूरदास को सबसे प्रभावशाली पात्र माना है। उनका मानना जायज है क्योंकि सूरदास के लिए अन्याय और अनीति असह्य थी। रामविलास जी ने सांप्रदायिक सौहार्द की दृष्टि से भी इस उपन्यास पर विचार किया है। वह लिखते हैं, “रंगभूमि शायद हिन्दी का पहला उपन्यास है जिसमें एक ईसाई लड़की और एक हिन्दू लड़के का प्रेम दिखलाया गया है।... आगे चलकर ‘कर्म भूमि’ में उन्होंने मुसलमान लड़की सकीना से हिन्दू लड़के अमरकांत का प्रेम दिखलाया है।”¹⁹⁹ वर्तमान दौर में सांप्रदायिक उन्माद जब जोरों पर है तब प्रेमचन्द और रामविलास शर्मा दोनों लोगों का दृष्टिकोण प्रासंगिक हो जाता है। मुजफ्फर नगर के ही नहीं, अपितु देश के अन्यान्य दरिन्दों को प्रेमचन्द के सकीना और अमरकांत से सीख लेनी चाहिए। जातीय बंधनों को प्रेम और विवाद के आड़े नहीं आने देना चाहिए।

8.3.64 के पत्र में केदारनाथ अग्रवाल लिखते हैं, “कचहरी ने मेरे कच तो नहीं हरे? मेरा समय जरूर हर लिया। बड़े पेटू हैं। पेट ही नहीं भरना चाहे जितना समय दो। खाये चली जाती है। मालूम होता है कि जनम की भूखी रही है। शायद यह इसी तरह हमेशा से सब का समय खाती चली आयी है और खाती चली जाएगी। इस पर भी हम कुछ-न-कुछ लिख ही लेते हैं। एक उपन्यास पढ़ा। ‘Halen of Iray’ दूसरे पर चल रहे हैं ‘The Age of Reason’ D.H. Lorens की पुस्तक ‘Mornings in Mexico and Etruscan places’ भी पलटते चलते हैं। कुछ Novels by Albarto Maravia के पढ़ चुके हैं। मगर दोस्त! वाह रे प्रेमचंद तुम जैसा कोई दूसरा न मिला। कलम है कि सबको मात देती है।

कल ही कचहरी में एक क्लर्क ‘गोदान’ पढ़ते-पढ़ते बोला कि ऐसा सजीव चित्रण करते हैं (कि पढ़ता हूँ तो एक-एक स्थल) पढ़ते रह जाता हूँ।”²⁰⁰ वस्तुतः प्रेमचन्द बड़े रचनाकार थे। “किसानों के प्रति प्रेमचन्द विशेष आत्मीयता का अनुभव करते थे। उनकी रचनाओं में चित्रित जीवन को देखकर हमें ऐसा लगता है कि मानो वे आपबीती कह रहे हों। उन्होंने अपनी कृतियों में किसानों के जीवन का सांगोपांग चित्रण किया है। किसान अंधविश्वास और रूढ़ियों से ग्रस्त है। पूर्वजन्म और भाग्यवाद पर आस्था रखने के कारण वह अपनी दयनीय स्थिति से समझौता भी कर लेता है। शताब्दियों से उसका शोषण होता रहा है। जब-तब उसने संगठित होने का इरादा

किया है, उसे कुचल दिया गया है। इसीलिए वह शासन-व्यवस्था से नितांत भयभीत रहता है। इन सभी दोषों के बावजूद किसान का चरित्र निर्मल होता है। वह कभी भी विश्वासघात नहीं करता। प्रेमचन्द ने किसान के गुण-अवगुण का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए कहा है— “किसान पक्का स्वार्थी होता है, इसमें संदेह नहीं। उसकी गांठ से रिश्वत के पैसे बड़ी मुश्किल से निकलते हैं। भाव-ताव में भी वह चौकस होता है। जब तक पक्का विश्वास न हो जाये, वह किसी के फुसलाने में नहीं आता। (गोदान) नागरिक जीवन की तुलना में प्रेमचन्द ग्रामीण जीवन को कहीं अधिक श्रेष्ठ बतलाते हैं— “ग्रामीण जीवन में एक प्रकार की ममता होती है जो नागरिक जीवन में नहीं पाई जाती। एक प्रकार का स्नेह-बंधन होता है जो सब प्राणियों को, चाहे छोटे हो चाहे बड़े, बांधे रहता है। (सेवासदन)

‘गोदान कृषक-जीवन का महाकाव्य है और होरी की दुखद कथा भारत के लाखों करोड़ों किसानों की कथा है।’²⁰¹ दोनों मित्रों को प्रेमचन्द प्रिय हैं। उनकी रचनाएं मित्रों को सामाजिक-संस्कृति को उद्घाटित करने वाली दस्तावेज लगती हैं।

3.12.53 के पत्र में केदार लिखते हैं, “उपन्यास Students एक टशन नावेल पढ़ा है, कई पढ़ूंगा। रोज रात को आँखें फोड़ता हूँ। समय तो जरूर खराब होता है पर जिस्मानी और रूहानी ताकत भी बला की मिलती है। बढ़िया है यह उपन्यास। इसमें वाहिम नाम का चरित्र है। वह ऊँचा गया है। उसने सरजियाई की असली शकल को स्पष्ट रूप से सबके सामने पेश किया और इस कमाल के लिए धन्यवाद है लेखक को। वाहिम ने Formalism की भी बखिया उछाड़ी है। मुझे तो वाहिम में रामविलास शर्मा का रूप मिला। वही पैनापन वही बेलौसवाद जिससे हमारे साहित्यिक बंधु घबड़ा गये थे। किंतु भाई रूस में इसकी कदर है। हमारे भारत में ईमानदारी का अभी मूल्य नहीं है। यदि उपन्यास पढ़ चुके हों तो राय लिखना। ऐसा बढ़िया है कि बस। न भगवतीचरण को सफलता मिली है, न धर्मवीर भारती को। एक ने ‘3 वर्ष’ लिखा। बिल्कुल कमजोर, बीमार। दूसरे ने ‘गुनाहों का देवता’। वह भी घृणास्पद। ‘Students’ में 100 % यथार्थ है। दुर्बलताएं हैं चरित्रों में। किंतु वे उपन्यास की बिक्री बढ़ाने के लिए नहीं। ‘बीज’ अमृत राय का उपन्यास है। उसे पढ़ गया हूँ। मौजूदों में यह हमारी सफाई का दावेदार है। इसलिए स्वस्थ है, सबल है और एक कदम आगे है। पिछले दशक के निरूपण में यह सफल है। खामियां हैं, पर इसे नीचे नहीं गिरातीं।”²⁰² यहाँ पर केदार की आलोचनात्मक बुद्धि की सूक्ष्मता स्पष्ट है। यथार्थवाद को ही साहित्य में उद्घाटित करना रचनाकार का रचनात्मक धर्म है। होरी हो या सूरदास सभी परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से टकराते हैं। इसी टकराहट के परिणामस्वरूप रचना उत्कृष्ट धरातल पर पहुँचती है। प्रगतिशील रचनाकारों के लिए यथार्थ साहित्य का जरूरी हिस्सा है। रामविलास शर्मा की आलोचनात्मक दृष्टि में पैनापन है।

डॉ. नित्यानन्द तिवारी कहते हैं, “मुरलीबाबू ने अपने एक लेख में रामविलास शर्मा के एक पत्र का हवाला दिया है। मैं केवल उसका लेख करके खत्म करूंगा। उन्होंने अपने छोटे भाई को शायद चिट्ठी लिखी थी जो कि ज्ञान के बारे में ही शायद थी। जिसमें कि किसका भरोसा करना चाहिए? किसका नहीं? तो सॉप और रस्सी में जो देखा हुआ है उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता। क्या पता ये सॉप है या रस्सी है। इस प्रकार ज्ञान का इस तरह का एक आर्गुमेंट, एक तर्क दिया जाता है। मुरली बाबू ने उल्लेख किया है रामविलास जी ने लिखा है कि लकड़ी से

खोद दे। मालूम हो जाएगा कि रस्सी है कि सॉप। तो इसका मतलब यह है कि देखा हुआ कई तरह का होता है देखा हुआ अकर्मक होता है और देखा हुआ सकर्मक होता है। तो जो सकर्मक रूप से देखते हैं पूरे समाज में जिनकी भूमिका जहाँ-जहाँ जैसी रही है उस रूप में ज्ञान की व्याख्या की जानी चाहिए।²⁰³ रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल ने मित्र-संवाद में ज्ञान की व्याख्या की है।

28.7.59 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, "ऑचल पढा। उसके बाद परती: परिकथा पढी। रेणु अपने पहले उपन्यास में नीम प्रयोगवादी था। दूसरे में सोलहों कलाएं पूरी हो गयी हैं।"²⁰⁴

इसके बाद 11.8.59 के पत्र में केदार लिखते हैं, "रेणु मुझे कभी अच्छा न लगा। मैं तो दोनो पुस्तकें पढ ही नहीं पाता। वैसे हम उन उपन्यास सम्राट से अपनी इस कमजोरी की माफी माँगने को तैयार हैं। उनके उन गोलन्दाजों से भी क्षमा के प्रार्थी हैं जो उन्हें बलात हिन्दी के महान कथाकार प्रेमचन्द के ऊपर, बैठाते हैं।"²⁰⁵

मैला-ऑचल आंचलिक उपन्यास है। दोनों मित्र भले ही मैला आंचल के विषय में उक्त धारणा रखते हो लेकिन मैला - आंचल की लोकप्रियता और सार्वभौमिकता असंदिग्ध है। फणीश्वर नाथ रेणु लिखते हैं, "यह है मैला आंचल एक आंचलिक उपन्यास। कथानक है पूर्णिया। पूर्णिया बिहार राज्य का एक जिला है, इसके एक ओर है नेपाल, दूसरे ओर पाकिस्तान और पश्चिम बंगाल। विभिन्न सीमा-रेखाओं से इसकी बनावट मुकम्मल हो जाती है। जब हम देखने में सथाल परगना और पच्छिम में मिथिला की सीमा-रेखाएं खींच देते हैं। मैंने इसके एक हिस्से के एक ही गांव को पिछड़े गांवों का प्रतीक मानकर इस उपन्यास कथा का क्षेत्र बनाया है।

इसमें फूल भी है भूल भी, धूल भी है, गुलाब भी, कीचड़ भी, चदन भी, सुंदरता भी है, कुरूपता भी- मैं किसी से दामन बचाकर नहीं निकल पाया।"²⁰⁶

"हिन्दी उपन्यास-साहित्य में जिन चन्द कथाकृतियों ने युगांतर उपस्थित किया है, 'मैला ऑचल' उन्हीं में से एक है। 1954-55 में इस उपन्यास का प्रकाशन एक 'घटना' की तरह था। इसकी कथाभूमि उत्तरी बिहार का पूर्णिया अंचल है और कथाकार आजादी के कुछ बरस बाद का। एक सामाजिक और राजनीतिक चेतना सम्पन्न लेखक की हैसियत से रेणु यहाँ उस परिवर्तन को बड़ी बारीकी से चित्रित करते हैं, जो आजादी के फलस्वरूप गांवों में आया है और जो सिर्फ परिवेशगत ही नहीं, बल्कि भीतरी व्यक्ति के मनोजगत में भी घट रहा है। इसके लिए लेखक ने लोक-संस्कृति, लोक-विश्वासों और लोगों के जीवनक्रम पर पड़ने वाले प्रभावों को गहरी आत्मीयता से उकेरा है। इसका समूचा कथावृत्त अपनी रोचकता और मार्मिकता में व्याप्त लोकरूपों को आत्मसात किए हुए है। वस्तुतः रेणु की आंचलिक सलग्नता, उनकी रागात्मक कथा दृष्टि और रचनात्मक भाषा-शैली इस उपन्यास के पात्रों और परिवेश को पाठकीय अनुभव का जीवत और अविस्मरणीय अंग बना देती है।"²⁰⁷ बावजूद इसके प्रेमचंद के समक्ष उनका कद छोटा ही है। "प्रेमचंद के साहित्य में किसान अपनी मूलभूत समस्या जमीन की समस्या को लेकर (अर्थात् जमीन उसकी जो उसे जोते) क्यों सबसे अगली पक्ति में विराजमान है, क्यों प्रेमचंद

बार-बार उसे अपने हर उपन्यास कहानी में सामने लाते हैं, क्यों वे जमींदारी शोषण को बिना किसी लागलपेट के उसके निर्मम और असली रूप में उभारते हैं, क्यों वे अंग्रेज और उसके सहायक देशी सामंतवाद तथा उसके चाकरों, पुलिस कानून, महाजन कचहरी, अदालत किसी से एक क्षण के लिए भी अपनी मानसिक संगति नहीं बिठा पाते, उन्हें उनके समूचे छद्म तथा समूची शक्ल में पेश करते हैं? इन सवालों का जवाब हमें प्रेमचन्द की उस सामंत-विरोधी राष्ट्रीय चेतना में मिलता है जो सीधे हिन्दी प्रदेश के नवजागरण के सामंत-विरोधी साम्राज्य-विरोधी चरित्र से संबंधित है। प्रेमचन्द के साहित्य में जो किसान आये हैं। उन किसानों की लूट और उनकी तबाही प्रेमचन्द ने अपनी आँखों से देखी थी। और कहना न होगा कि गदर की समाप्ति के बाद अंग्रेजों और उनके अधीनस्थ देशी जमींदारों का पंजा अवध तथा उत्तर प्रदेश के उन किसानों की गर्दन पर ही सबसे मजबूती से सवार होता है जिनके पुरखों ने अंग्रेजी राज के खिलाफ गदर में हिस्सा लिया था। प्रेमचन्द अवध के किसानों की जिंदगी से सीधे परिचित थे।²⁰⁸

पुनः शिवकुमार मिश्र लिखते हैं, “हिन्दी प्रदेश का नवजागरण एक नई सामाजिक चेतना को भी लेकर सामने आता है। यह सामाजिक चेतना भी अपने आधार में मूलतः सामंत-विरोधी चेतना है। हिन्दी प्रदेश की हिन्दू मुसलमान जनता के धार्मिक रूढ़िवाद पर, नारी जाति की सामाजिक आर्थिक गुलामी पर, हिन्दू-मुसलमानों में भेद करने वाली मानसिकता पर, हिन्दी-उर्दू के सवाल की धर्म के आधार पर निपटने वाली मनोवृत्ति, सस्ते प्रेम रोमांस और ऐयाशी से भरे महफिली साहित्य पर, सवर्ण और असवर्ण के भेद को सामने लाकर मनुष्यता के एक विशाल हिस्से को उसकी अस्मिता से वंचित करने वाले सामाजिक-धार्मिक विधि विधान पर, उसकी अमानवीयता पर वे अपनी इसी प्रकार सामंत-विरोधी, मानववादी सामाजिक चेतना के तहत कठोर से कठोर प्रहार करते हैं तथा उसके लिए जिम्मेदार ताकतों का बिना झिझक पर्दाफाश भी करते हैं।”²⁰⁹

26.12.59 के पत्रों में रामविलास शर्मा लिखते हैं, “एक इधर अमरकांत का ‘सूखा पत्ता और भैरव प्रसाद का ‘सती मैया का चौर’ ये दो उपन्यास पढ़े। पहला बहुत बचकाना है। दूसरा थुलथुल लम्बोदर – एक दम पोला।”²¹⁰ दरअसल प्रेमचन्द की प्रतिभा के समक्ष बाकी के उपन्यासकार कहीं नहीं ठहरते हैं। यथार्थ की जमीन को तराशना प्रेमचंद के औपन्यासिक कला को बेधक बनाता है।

13.2.74 के पत्र में केदारनाथ अग्रवाल लिखते हैं, “इलाहाबाद में जो सम्मेलन हुआ वह तो बांदा-सम्मेलन की उल्टी प्रतिक्रिया के लिए ही आयोजित किया गया जैसा लगा। वही लोग जो यहाँ आम जनता से जुड़ने सूझने की बात कर रहे थे वहाँ केवल प्रकाशक और लेखकों के आपसी संबंधों को लेकर उबलते रहे। शायद ही हरि शंकर परसाई के अतिरिक्त किसी ने दो टूक बात कही हो और समाजवादी साहित्य के निर्माण की बात सोची हो। महादेवी वर्मा का ऐलान भी भारतीय संस्कृति के नाम पर अच्छा नहीं रहा। यहाँ बांदा में भी उन्होंने इसी संस्कृति का अधूरा और एकांगी स्वरूप सबके सामने रखा था।”²¹¹

हरिशंकर परसाई व्यंग्यकार हैं। भक्तिकालीन कवियों में कबीर व्यंग्य के तीखे प्रहार को लेकर कविता के मार्ग पर चलते हैं। अपने व्यंग्यों द्वारा उन्होंने तत्कालीन समाज को झकझोरा।

तत्कालीन समाज में प्रचलित आडम्बरपूर्ण व्यवस्था का मजाक उड़ाया। परंतु उस समय व्यंग्य का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं था। दरअसल व्यंग्य जिस गद्य विधा के साथ मिलती थी, बिल्कुल वही रूप धारण कर लेती थी। कभी यह निबंध में, कहानी में, नाटक में, प्रविष्ट कर एकाकार हो जाती थी। हिन्दी गद्य के शुरुआती दौर में व्यंग्य का पुट भारतेन्दु, प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट की रचनाओं में और लेखन में दिखलाई पड़ता है। बाल मुकुन्द गुप्त लिखित – शिवशम्भु के चिट्ठों में जो निर्भीकता और प्रखरता है, वह आज की व्यंग्य साहित्य की बराबरी में कमातर नहीं है।²¹² कबीर के बाद हिन्दी कविता में नागार्जुन से बड़ा व्यंग्यकार अभी तक कोई नहीं हुआ। नागार्जुन के काव्य में व्यक्तियों के इतने व्यंग्य चित्र हैं कि उनका एक विशाल अलबम तैयार किया जा सकता है।²¹³ जिस प्रकार कबीर से प्राप्त व्यंग्य परंपरा को नागार्जुन ने पुष्पित-पल्लवित किया था उसी प्रकार बाल मुकुन्द गुप्त से प्राप्त व्यंग्य को हिन्दी-गद्य में हरिशंकर परसाई ने समृद्ध किया। अब तक चली आ रही उपेक्षित व्यंग्य परंपरा को परसाई ने एक सशक्त विधा के रूप में स्थापित किया। व्यंग्य के दोनों पक्ष कला और भाव का चरम उन्नयन परसाई अपनी लेखनी द्वारा करते हैं। वास्तविकता यह है कि व्यंग्य लिखने के मूल कारण दर्द और गहरी टीस को परसाई ने बड़े निकटता से झेला था। यही कारण है कि परसाई का व्यंग्य हमारे शरीर को रोमांचित करने के साथ ही साथ हमारे मन और मस्तिष्क को बेधता भी है, 'एक घृणित रोमांच' जिससे हमारा शरीर कुछ पल के लिए निश्चेष्ट हो जाता है, बिल्कुल मूकदर्शक हो जाता है।

"हरिशंकर परसाई वर्तमानता के रचनाकार हैं।"²¹⁴ "वर्तमानता की विशिष्टता इतिहास की विशिष्टता का परिणाम है। वर्तमान की विशिष्टता वस्तुतः वर्तमान की ऐतिहासिकता है। वर्तमान में पात्रों के परिवेश की सादृश्यता होने पर भी बड़ी बारीकी से अपने पात्रों के व्यवहारों की विशिष्टता को चित्रित कर पाठक का ध्यान उसकी भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में ले जाने में परसाई जी काफी कुशल हैं।"²¹⁵

परसाई के शुरु के दिन काफी कठिनाई भरे थे। बचपन में उन्होंने प्लेग के मार को भी झेला था। इन्हीं दिनों माता की मृत्यु ने भी परसाई के मन पर गहरा प्रभाव डाला था। कालांतर में पिता की मृत्यु के बाद घर की जिम्मेदारी ढोने की अनिवार्यता इनके मथे आ पड़ी थी। इन सभी कठिनाइयों का परसाई ने दृढ़तापूर्वक सामना किया था। इन्हीं सब दौर से गुजरते हुए परसाई का व्यंग्यकार व्यक्तित्व फूट पड़ा। अपने गर्दिश के दिनों के बारे में परसाई लिखते हैं, "गर्दिश कभी थी, अब नहीं है, आगे नहीं होगी— यह गलत है। गर्दिश का सिलसिला बदस्तूर है, मैं निहायत बेचैनमन का संवेदनशील आदमी हूँ। मुझे चैन कभी नहीं मिल सकता, इसलिए गर्दिश नियति है।"²¹⁶ निश्चित रूप से इस प्रकार का जीवन जीने वाले व्यक्ति के लेखन का स्वाभाविक मार्ग, सामान्यतौर पर दास्ताएवस्की और मुक्तिबोध का मार्ग हो जाएगा।

परसाई वर्ग विहीन समाज के पोषक थे। देखिए— "नया साल आ गया। पहले मैं 15 अगस्त से नया साल गिनता था। मन में दर्द उठता है कि हाय, इतने साल हो गये, फिर भी जवाब मिलता है— 'कोई जादू थोड़े ही है'। पर तरह-तरह के जादू तो हो रहे हैं। अफसर के इतने बड़े मकान बन जाते हैं, कि वह राष्ट्रपति को किराये पर देने का हौसला रखता है। किस जादू से गोदाम में रखे गेहूँ का हर दाना सोने का हो गया। ... जनवरी से साल बदलने में दर्द

न उठता, न हाथ होती और न फिर भी सवाल उठता। आखिरी में कुछ यादें जरूर होती हैं। 23 जनवरी की याद दिलाती है कि सुभाष बाबू ने कहा था 'तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा'। खून तो हमने दिया, मगर आजादी किसे दी गयी।²¹⁷ स्वतंत्र भारत में सोशलिस्टों की स्थिति का चित्रण परसाई ने किया है।

सामान्यतः परसाई का व्यंग्य लेखन गंभीर किस्म का व्यंग्य लेखन होता है। उनकी रचना एकांत चाहती है। ऐसा एकांत जो पाठक को पढ़ने के बाद सोचने के लिए मजबूर कर दे। परसाई अपनी रचनाओं में व्यवस्था पर ऐसा कुठाराघात करते हैं कि पढ़ते समय मन में एक अजीब किस्म की बेचैनी शुरू हो जाती है। ऐसी व्यवस्था पर मन कचोट उठता है। परसाई की कलम ने जीवन के सभी क्षेत्रों का संस्पर्श किया है।

परसाई की रचनाओं के आधार पर व्यंग्य, विडम्बनाओं पर लिखा गया ऐसा लेखन है, जो किसी भी प्रकार का हो सकता है और निश्चित रूप से पढ़ने के बाद सोचने के लिए मजबूर कर देता है।

22.10.57 के पत्र में केदारनाथ अग्रवाल लिखते हैं, "मैंने 'हंस' में एक सड़क सत्तावन गलियां पढ़ा। मुझे बेहद पसंद आया है। यथार्थ और जीवन दोनों गले मिलकर तमाम तरह से चल फिर कर सामने आ जाते हैं। चरित्र बिगड़-बिगड़ कर बनते चले जाते हैं और सब से खूबी तो यह है कि इस उपन्यास के युवक लेखक ने बड़ी संजीदगी से शब्दों पर आधिपत्य रखकर व कथानक पर आधिपत्य रख कर, जीवन को अंकित किया है। पहले जरूर कथानक पर वर्णन का भार महसूस होता है। शुरू के पृष्ठों में यही कमी खलती है। बकीया तो बहुत उम्दा चला है।"²¹⁸

21.8.70 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, "उसके बाद मैं भवभूति के चक्कर में फँस गया। साप्ता. हिन्दु. वालों ने लेख मँगा था। सोचा, एक हफ्ते में लिख डालूंगा। उनके तीन नाटक— महावीर चरितम्, मालती माधवम् और उत्तर राम चरितम् मैंने एक साथ पढ़े। कुछ रहस्यों का पता लगा। एक विशेष अनुभूति के बीज पहले नाटक में हैं, दूसरे में वह अनुभूति विकसित है, तीसरे में उसका संस्कृत रूप है। मजे की बात यह कि भवभूति अपने श्लोक, श्लोक की कुछ पंक्तियां गद्यांश एक नाटक से उठा कर दूसरे में सजा लेते हैं। यह सज्जन निराला से दस गुना ज्यादा अहंकारी थे, कुछ दशाओं में अति विनम्र। सानुप्रास सघोष वर्णन युक्त संस्कृत पदावली उन्हें प्रिय थी। लेकिन जब सहज लिखते हैं तब 'नयनों के डोरे लाल' हो जाते हैं। शेक्सपियर के चार बड़े नाटकों में जिस शोकाभिभूत अर्द्धविक्षिप्त अवस्था का वर्णन किया है, वह भवभूति में है। वह एक पत्नी अथवा एक प्रेमिका वाले प्रेम के अनुपम कवि हैं। जैसा उत्कट प्रेम है, वैसा ही घनघोर उनका मर्मभेदी शोक है। हमने उनकी वर्कशाप देख ली जिसमें उन्होंने माइकेल एंजेलो की तरह प्राथमिक रेख चित्र बनाये हैं। वे पूर्ण अभिव्यक्ति के साथ-साथ मालती माधव में सजा दिये गये हैं। सुकुमार भावों और रक्तरंजित क्रूर दृश्यों दोनों की पराकाष्ठा है। केवल भवभूति को पढ़ने के लिए मनुष्य को संस्कृत जानना चाहिए। कालिदास की वहाँ गति नहीं है: वाल्मीकि से वह अनुभूति की विषतिवृत्ता में आगे हैं। उनमें काफी बचपन है। सजावट का प्रेम है। और इसके साथ वह जो — परिच्छेदाति: सकल वाचना नाम विषय: है। उसका विश्लेषण संभव नहीं, शब्दों में अभिव्यक्त संभव नहीं। Concentration और Compactness जहाँ है, वहाँ दांते और मिल्टन मात

हैं। उनका Imagination ऐसा प्रबल है कि परोक्ष को प्रत्यक्षवत् देखता है। Hallucination की सीमा को छूता हुआ। Hamlet: Me think I see my father. Heratic: where my lord? Ham - In my imagination, वैसा।²¹⁹ संस्कृत के नाटकों के साथ अंग्रेजी की तुलना और एक स्तर पर आलोचना का रूप उक्त पत्र की विशिष्टता है। दोनों एक दूसरे को जानकारी देते हैं। सलाह देते हैं। एक-दूसरे के ज्ञान को पुख्ता करने के साथ पाठकों का ज्ञान भी बढ़ाते हैं।

मित्र संवाद के कुछ पत्रों में केदार की आलोचना शक्ति के भी दर्शन होते हैं। कहीं-कहीं वह सलाह का स्वरूप अख्तियार कर लेते हैं। 18.1.70 के पत्र में वह लिखते हैं, "साहित्य न मेरी बपोती है न किसी और की। वह सार्वजनिक कृतित्व होता है। अपना हो कर भी सब का हो जाता है। तब फिर उसका वास्तविक मूल्यांकन होना ही चाहिए। कोई भी कवि या महाकवि आलोचना से बच कर कैसे जी सकता है, मैं नहीं समझ पाता। आलोचना तो कवि या महाकवि का भीतर-बाहर सब सामने लाकर रखती है।"²²⁰ आगे इसी पत्र में वह फिर लिखते हैं, "साहित्यिक ईमानदारी की जरूरत है। ईमानदारी के लिए समझ की जरूरत है। कविता बेईमानी का ब्याह नहीं कि 'मंडप तरे' से किसी की बेटी ले आये, चाहे खुद योग्य हों या न हों, या कि वह योग्य हो या न हो। कोई कविता हो, वह वरण से पाई जाती है, हरण से नहीं। काश लोग बाग हमारे लोग और दूसरे लोग भी इसे समझ पाते और कविता लिखने में जी-जान लगा देते। मैं नहीं कहता कि कवि गलती ही नहीं करेगा - मेहनत करने पर भी कभी कभार गलत लिख सकता है। इस पर भी तो अधिकांश तो सही दृष्टि से लिखे। फैशन और नकल और नयापन कभी भी स्वयं में कोई महत्व नहीं रखता। पचाकर ही पराये को अपनाया जा सकता है, उन्हीं परिस्थितियों में पड़कर। यहाँ तो कविता वाले सोच-विचार कर काम ही नहीं लेते। झट से पालने में पड़े बच्चे की तरह जो भी हाथ में आया मां का स्तन समझ कर चिचोरने लगते हैं। वास्तव में बड़ा बौद्धिक दिवालियापन है। राम ही रक्षा करें।"²²¹ एक स्तर पर यहाँ आलोचक की सूक्ष्मता और दूसरे स्तर पर चिंता भी दोनों जायज हैं। गद्य की भाषा अद्भुत है। चिचोरना अवधी का शब्द है।

5.10.61 के पत्र में केदार लिखते हैं, "गांधी-जयंती के दिन शाम के समाप्त होने पर, लालटेन की रोशनी में कुछ देर के बाद तुम्हारी पुस्तक को पूरा पढ़ सका। यह पुस्तक नहीं ग्रंथ है। ग्रंथ नहीं गौरव ग्रंथ है। यह तुम्हारे विवेक की अनूठी उपलब्धि है। तुमने इतिहास के युगों में जाकर वहाँ ध्वनियों को पाया और उनकी उत्पत्ति का और विकास का सामाजिक धरातल खोजा और स्वर और व्यंजनों के सामान्य रूपों और उनकी भाव प्रकृति का पता लगाया। मूल शब्द भंडार के आधार पर अनेकानेक सर्वमान्य भ्रांतियों को तुम्हीं ने तोड़ा। बोलियों के संबंध में भी तुमने कमाल किया है। उनके योग का महत्व कहाँ और कब किस तरह प्रकट हुआ, इसे भी तुमने अच्छे ढंग से रखा है। लघु जातियों और महाजातियों के निर्माण की क्रिया का स्वरूप भी तुमने सही बतलाया है। परिनिष्ठित भाषा की व्याख्या भी खूब है। आद्य भाषा की थ्योरी तो फट से फूट गयी। अब तक बहुत से भाषा वैज्ञानिक पहाड़ की तरह खड़े थे। सब तुम्हारे विवेक के नीचे हो गये। कारकों की बारकों में भी तुमने पहुँच कर उनका भी भेद लिया है। यह भी सुंदर है। सर्वनाम संज्ञा का प्रतिनिधित्व करते-करते थक गये थे। कोई उन्हें महत्व ही नहीं देता था। तुमने उन्हें भी उठाकर सफल किया। धातुएं अपना असली हिन्दी रूप खोये बैठी थीं। तुमने उन्हे

उबारा। अब बेचारी वे धातुएं जो परम पूजिता थीं मंद पड़ गयी हैं। 'वे' का महत्व और न जानता था तुमने बताया। न जाने तुमने कितना नहीं और क्या नहीं लिखा। पढ़कर दिमाग साफ हो जाता है। मालूम होता है कि अब तक इस विशेष क्षेत्र में उल्लू ही बोलते थे। अब तो वहाँ मर्द बोला है। हमारी भाषा हिन्दी तुम पर गर्व कर रही है। विषय बड़ा ही सरस है। हिन्दी से प्रेम हो तो यह ग्रंथ भी अनुपम है। जिस शैली में तुमने लिखा है वह सहज बोधगम्य है। तर्क से भरपूर है। उदाहरणों से प्रमाणित है। हास-परिहास और व्यंग्यों से नाटकीय है।²²² लगभग 'भाषा और समाज' पर यह पत्र पूरी समीक्षा है।

हिन्दी से प्रेम हो तो 'भाषा और समाज' अनुपम ग्रंथ हैं। निस्संदेह आज हिन्दी न सिर्फ भारतवर्ष की भाषा है, बल्कि उसका अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप भी निर्मित हो चुका है। भारतीय परिवेश में वह तीन रूपों और भूमिकाओं में देखी-परखी जाती है— संघ की राजभाषा के रूप में, हिन्दी भाषी राज्यों की राज्यभाषा के रूप में तथा राष्ट्रीय पैमाने पर सम्पर्क और राष्ट्रभाषा के रूप में। विश्व-धरातल पर उसके फैलते स्वरूप को देखकर अब निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि हिन्दी ने महत्वपूर्ण और चौथी भूमिका अपने विश्व-संदर्भ की बना ली है।

उप अध्याय—पाँच

मित्र-संवाद' का गद्य विधान

'मित्र संवाद' का गद्य रचनात्मक बुनावट को नया आयाम देता है। डॉ. रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल 'मित्र संवाद' में अनौपचारिक हुए। यही अनौपचारिकता रचना को और उत्कृष्ट धरातल पर पहुँचाती है। पत्रों में सरल, सरस संवाद है। डॉ. रामविलास शर्मा के यहाँ जो सबसे बड़ी चीज है वह वातावरण का परिपूर्णता के साथ उपस्थित हो जाना है। रामविलास कही भी अपनी ओर से चीजों को नहीं भरते, बोझिल बनाने का प्रयास नहीं करते हैं, बस चीजें जैसी हैं जस का तस वहीं रख देते हैं। यही चीज केदार बाबू के साथ भी है। मित्र हैं और मित्र की शैली में ही बातचीत 'संवाद' का धरातल तैयार करते हैं। शिल्प के स्तर पर 'मित्र-संवाद' बेजोड़ है।

डॉ. कमल पुंजाणी लिखते हैं, "शिल्प या शिल्प-विधि अंग्रेजी के 'टेक्नीक' शब्द का हिन्दी अनुवाद है। इसका तात्पर्य रचना पद्धति से है। वृहत हिन्दी कोश के अनुसार 'शिल्प से अभिप्राय हाथ से कोई वस्तु तैयार करने अथवा दस्तकारी या कारीगरी से है। इस दृष्टि से शिल्प-विधि का अर्थ होगा, किसी चीज को बनाने या रचने का ढंग या तरीका। साहित्य अथवा कला के संदर्भ में इसका अर्थ होता है साहित्यिक कृति अथवा कलात्मक वस्तु रचने का ढंग या तरीका। कला की रचना में जिन रीतियों और विधियों का उपयोग किया जाता है, वे ही उस कला की शिल्प-विधि के नाम से पुकारी जाती है।"²²³

"शैली में लेखक के व्यक्तित्व की प्रधानता को स्वीकार करने के अतिरिक्त, इसे अभिव्यक्ति का विशिष्ट ढंग भी कहा गया है। इस अर्थ में शैली से अभिप्राय रचनाकृति के वाह्य परिधान से है जिसका निर्धारण भाषा और शब्दों के विशिष्ट प्रयोग द्वारा होता है।"²²⁴

इस प्रकार "दोनों का संबंध रचना के अभिव्यक्ति पक्ष से है।"²²⁵ पत्रों में रचनाकार का व्यक्तित्व अनौपचारिक होता है। यदि पत्र किसी आत्मीय को लिखा गया होगा तो वह

अनौपचारिक होगा। कलात्मक स्तर पर उत्कृष्ट होगा। “जैसा कि श्री मार्तण्ड उपाध्याय ने कहा है, “पत्र लिखना भी एक कला है। जो बात व्यक्ति अपने सामने बातचीत में नहीं कह सकता या नहीं कहना चाहता, उसे पत्र द्वारा बड़ी कुशलता से कह देता है। कई बार कही बात का उतना प्रभाव नहीं पड़ता, जितना लिखी बात का पड़ता है।”

“इस दृष्टि से देखें तो पत्र-साहित्य में भी अन्य कला-रूपों की तरह शिल्प और शैली का समावेश होता है। यद्यपि पत्र-लेखक पत्र लिखते समय उसे कला या साहित्य समझकर नहीं लिखता, किंतु लेखक का प्रयोजन, उसकी रुचि, योग्यता आदि तत्व ही किसी पत्र को कला की वस्तु बनाकर सुरक्षित रख सकते हैं। इस प्रकार शिल्प और शैली के कारण ही पत्रों में मधुरता और मोहकता आ जाती है।”²²⁶

‘मित्र-संवाद’ के पत्र डॉ. रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल के हैं। दोनों मित्र स्वभावतः प्रगतिशील हैं। वे मार्क्सवादी विचारधारा का अनुगमन करते हैं। समाजवाद की सही समझ दोनों के यहाँ मिलती है। डॉ. रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल के पत्र सामाजिक-संस्कृति को व्याख्यायित करते चलते हैं। लेखकों का प्रयोजन दुनिया-जहान की घटनाओं को मूल्यांकित करना है। दोनों एक-दूसरे से व्यक्तिगत स्तर पर बात करते हैं, लेकिन पत्रों में सार्वभौमिक और सार्वकालिक बातें रहती हैं। इसी स्तर पर पहुँचकर कोई रचना बेजोड़ हो जाती है। डॉ. रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल की सहज, संप्रेषित होने वाली शैली मधुर और मोहक है।

3.9.57 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, “तुम अभी मदन-मनोज के कवि हो। गरजत कारे भारे जूथ जलधर के, वह भी यमुना से श्याम जल पर। धरती से आकाश तक प्रकृति पुलकित है और उसके पुलक फूट पड़े हैं। उसकी सघनता में। सूर ने बादलों की फोटू नहीं खींची, कृष्ण जन्म पर गोपी-ग्वालों-गायों और तुम्हारे नृत्यत मदन के साथ उन्हें भी यमुना के जल पर पुलकित दिखलाया है। सावन-भादों से अधिक प्रकृति को कभी रोमांचित देखा है? और तुम कहते हो- काव्य की विशेषता नहीं है। मालूम होता है, दिल की सरसों सूख गयी है।”²²⁷

इस पत्र में रामविलास शर्मा की शैली को पहचाना जा सकता है। ‘सूर ने बादलों की फोटू नहीं खींची’ में फोटू को देखिए। ‘यदि रामविलास शर्मा कही अन्यत्र इसे लिखते हो ‘फोटू’ न लिखते लेकिन मित्र के पास ‘फोटू’ लिखते हैं। बातचीत का नितांत अनौपचारिक ढंग ‘मित्र-संवाद’ के पत्रों की विशेषता है। कहीं कोई बनावटी अंदाज नहीं। बस है तो मौलिकता, हृदय से फूट पड़ने वाले शब्द। ‘दिल की सरसों सूखना’ मुहावरा है। ‘गोपी-ग्वाल-गायों की चर्चा रामविलास शर्मा के ग्रामीण जीवन से गहराई से जुड़े होने का प्रमाण है। एक ही पत्र में परंपरा का अवलोकन, ग्रामीण जीवन से साक्षात्कार और न जाने क्या-क्या है? कहने का आशय है कि पत्रों के एक-एक वाक्य दुनिया से साक्षात्कार करते हैं।

5.9.57 के पत्र में केदारनाथ अग्रवाल लिखते हैं, “उमंगे जमुन-जल, प्रफुलित कुंज-कुंज, गरजत कारे भारे जूथ जलधर के।’ यही पंक्ति तुम्हें खूब भाई। वैसे बढ़िया है। लेकिन जो मानी तुम इसमें भरना चाहते हो वही नहीं है। ‘उमंगे जमुन-जल’ और ‘गरजत’ वाले टुकड़े दूर जा पड़े हैं। यह नहीं है कि वह जमुना के जल पर झुक कर गरज रहे है।— मोहित होकर या अन्य भाव से, किसी हर्षातिरेक में। फिर भी जिस दृष्टि से तुमने भाव ग्रहण किया है वह सचमुच उत्तम

है। मैं तो इसे तब ग्रहण ही नहीं कर सका था। वह तो मुंशी ने दिल्ली में ही मुझे बता दिया था। आज अभी पत्र भी मिला। सूर को चाहिए था कि वह जलधरों को झुके हुए दिखाते व उनके बिम्बों से जमुना को दुगुनी प्रसन्न दिखाते। शायद सूर वह भूल गये थे। जितनी पैनी दृष्टि से तुम मेरी रचनाओं की आलोचना कर सकते हो उतनी ही पहली दृष्टि से सूर की भी करो। शायद तुम स्वयं सूर से अधिक अर्थ ग्रहण कर सके हो। चाहे जितना कहो मैं मान नहीं सकता। दिल की सरसों न सूखी है न सूखेगी। वह तो सावन भादों में भी बादलों और बिजलियों के बीच अब भी लहरा रही है।²²⁸ इस पत्र में केदार अपना तर्क प्रस्तुत कर रहे हैं। वे रामविलास शर्मा के भाव ग्रहण की प्रशंसा करते हैं। 'बादल' और 'बिजली' का प्रयोग जीवन की झंझावातों के प्रतीक है।

आगे उक्त पत्र में केदार लिखते हैं, "मेरी समझ में 'नृतयन मदन फूले' — वाली दोनों पक्तियों अब भी हृदय कर लेती है। यह बात नहीं है कि मैं मदनाकुल हूँ। तुम कह सकते हो ऐसा मगर बात यह नहीं है। वास्तव में यह पंक्ति बढ़िया गई है। देखो न इसकी गठन को। सामीप्य का और अंतरंग का इतना प्रिय वर्णन कहीं न मिलेगा। भाई, मैंने तो नहीं पढ़ा। तुम जानो तो ठीक है।"²²⁹ वस्तुतः 'मित्र-संवाद' में सामीप्य और अंतरंगता का जितना बढ़िया वर्णन है वह अन्यत्र दुर्लभ है। यहाँ पर 'सामीप्य' 'पाती' के माध्यम से होता है और अंतरंगता के जरिये गद्य की बुनावट परत-दर-परत उत्कृष्ट और मार्मिक होती चली जाती है। 'अंतरंग' होकर ही वयक्ति अनौपचारिक हो सकता है। अनौपचारिकता 'हृदय-संवाद' की सलवटों को गाढ़ा बनाता है।

केदारनाथ अग्रवाल आलोचक नहीं हैं। लेकिन यहाँ भी वह अपनी कविता के पक्ष में खड़े होते हैं वहाँ उनकी 'आलोचकीय' बुद्धि का तर्क देखा जा सकता है। लेकिन उनमें कम विलास शर्मा से सीखने का जबर्दस्त उत्साह है। शिव कुमार मिश्र लिखते हैं, "पत्रों में कहीं मित्र को कीट्स को बार-बार पढ़ने की सलाह देते हैं, कहीं मिल्टन, शेक्सपीयर, व्हिटमैन, शैली आदि को उसके सामने माडल के रूप में पेश किया गया है, और उन्हें पढ़ने को कहा गया है। सिर्फ कहा ही नहीं गया, अपनी तरफ से, और मित्र के आग्रह पर, किताबें भी भेजी गयी हैं। रामविलास बड़े हैं। अतः उनका सलाह देना केदार को अच्छा लगता है। बार-बार केदार से कहा गया है कि जिस लोक जीवन से उनका गहरा परिचय है, वे उसमें ज्यादा में, उसके सौंदर्य को, उसके यथार्थ को सहज स्वाभाविक रूप में चित्रित करें। एक पत्र में उन्होंने बैरागी बन जाने को तो नहीं कहा गया, परंतु नारी पर बहुत अधिक दृष्टि डालने और रमने से सावधान किया गया है। गांव-देहात पर अधिक ध्यान टिकाने की सलाह दी गयी है। बड़े सहज भाव से केदार ने इसे अपनी 'स्कूलिंग' माना है। लेकिन यह 'स्कूलिंग' महावीर प्रसाद द्विवेदी की मैथिलीशरण गुप्त को दी गयी 'स्कूलिंग' कतरई नहीं है। रामविलास के कई बार एकदम शुरुआती पत्रों में ही केदार से साफ-साफ कहा है— "मेरी राय एक दोस्त की राय है। उसे सुनो, झगड़ो, करो हमेशा वही जो जचे। कलाकार की यही परख है और समझदार की यह कि औरों की भी सुने। फिर भी केदार बड़े सहज मन से इस 'स्कूलिंग' को लिया है, और उससे गुजरे हैं। रामविलास ने भी यह 'स्कूलिंग' उन्हें दोस्त मानते हुए की है, उनकी रचनात्मक सामर्थ्य और उसकी संभावनाओं के पूरे अहसास के साथ, बड़े मुक्त और निश्छल मन से। यह भी, कि यहाँ मित्र को भी आमंत्रण है अपनी रचनाओं पर ऐसी ही बेबाक टिप्पणियाँ करने का। उन्हें सहने, स्वीकार करने, मानने, न

मानने, के वैसे ही अधिकार के साथ। केदार के भी रामविलास शर्मा के लेखों-कविताओं पर 'क्रिटिकल कमेंट्स' हैं, पर कम, किंतु है जरूर। दोनों ही एक-दूसरे के लेखन पर रीझे-खीजे, हसे और ठठाये हैं, बहसों की हैं। विचार के स्तर पर, चलने वाला यह सघन संवाद, 'मित्र-सवाद' के अधिकांश को घेरे है। और इस संवाद के लिए वह उसकी रीढ़ के समान है।²³⁰ यही उसके शिल्प की बुनावट को कलात्मक स्तर पर निखारता है। आगे शिव कुमार मिश्र लिखते हैं, 'वस्तुतः 'स्कूलिंग' भी यह महज केदार की नहीं है, हम चाहें तो हम भी इससे गुजर कर कृतज्ञ हो सकते हैं। काश! हम अपने आग्रहों-दुराग्रहों और अपने अहं से उबरकर उससे कुछ सीख पाएँ। आज तो स्थिति यह है कि अपने लेखन पर मित्र की एक जरा सी 'क्रिटिकल' टिप्पणी भी मन में कुच कर जाती है और कभी-कभी तो संवाद ही नहीं, मैत्री को भी तोड़ देती है।'²³¹ मित्र संवाद में दोनों मित्र एक-दूसरे की 'स्कूलिंग' करते हैं। 'सिखावन' रामविलास शर्मा के यहाँ अधिक है। सोधी मिट्टी की महक रामविलास शर्मा को अधिक प्रिय है। "केदार का सौभाग्य था जो इस स्कूलिंग से गुजरे, और कृतज्ञ हुए। आज न तो ऐसी 'स्कूलिंग' ही सुलभ है, और न वह कृतज्ञता। अब तो सुर भी बदला हुआ है जमाने का। महाजनी सभ्यता है न यह।"²³² आज पूँजीवादी समाज में अधिकांश चीजें महज औपचारिक हो गयी हैं। आज जब व्यापारिक मानसिकता लोगों के जेहन, को मानव-मूल्यों को ध्वस्त करने के लिए बाध्य करती है, तो ऐसे में 'मित्र सवाद' की बुनावट 'समाज' की मानसिकता को अनौपचारिक बनाने में कारगर साबित हो सकती है।

गद्य की बुनावट के स्तर पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एक अलग तरह की शैली का प्रारंभ करते हैं। आचार्य शुक्ल 'श्रद्धा-भक्ति' निबंध में लिखते हैं, "किसी मनुष्य में जन साधारण से विशेषगुण व शक्ति का विकास देख उसके संबंध में जो एक स्थायी आनंद पद्धति हृदय में स्थापित हो जाती है उसे श्रद्धा कहते हैं। श्रद्धा महत्व की आनंदपूर्ण स्वीकृति के साथ-साथ पूँज्य बुद्धि का संचार है। यदि हमें निश्चय हो जाएगा कि कोई मनुष्य बड़ा वीर, बड़ा सज्जन, बड़ा गुणी, बड़ा दानी, बड़ा विद्वान, बड़ा परोपकारी या बड़ा धर्मात्मा है तो वह हमारे आनंद का एक विषय हो जाएगा। हम उसका नाम आने पर प्रशंसा करने लगेंगे, उसे सामने देख आदर से सिर नवायेगे, किसी प्रकार का स्वार्थ न रहने पर भी हम सदा उसका भला चाहेगे, उसकी बढ़ती से प्रसन्न होंगे और अपनी पोषित आनंद पद्धति में व्याघात पहुँचाने के कारण उसकी निंदा न सह सकेंगे। इससे सिद्ध होता है कि जिन कर्मों के प्रति श्रद्धा होती है उनका होना ससार को वञ्चित है। यही विश्वकामना श्रद्धा की प्रेरणा का मूल है।"²³³ 'मित्र-सवाद' में भी एक - मित्र की दूसरे के प्रति श्रद्धा है। एक-दूसरे के प्रति श्रद्धा होना दुनिया के लिए जरूरी है तभी समाज का सवादात्मक साक्षात्कार संभव है। निश्चित रूप से रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल का व्यक्तित्व बड़ा है उनकी रचनात्मकता से हमें सीखने का मौका मिलता है। अच्छा गद्य रचनात्मकता के नये धरातल को किस प्रकार पुष्ट करता है, 'मित्र-सवाद' इसका अप्रतिम दस्तावेज है।

आचार्य शुक्ल की शैली जहाँ एक प्रकार की है वही हिन्दी साहित्य की आलोचना के दूसरे पड़ाव पर खड़े आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं, "महापुरुष ही जातियों को बनाते हैं। वे देश को विशेष दिशा की ओर मोड़ देते हैं, साहित्य के स्रष्टा और विज्ञान से विधाता होते हैं। कबीरदास योगियों की अक्खड़ता, भक्तों की निरीहता और भारतीय साधकों की सामान्य

विशेषता—आध्यात्मिक दृष्टि के साथ ही अपना एक मस्ताना व्यक्तित्व लेकर पैदा हुए थे। सब कुछ को छोड़कर चल देने की घर फूंक मस्ती और फक्कड़ाना लापरवाही ने कबीर दास को भारतीय साहित्य का सबसे आकर्षक महापुरुष बना दिया है। अपने इसी अनन्य—साधारण व्यक्तित्व के कारण कबीरदास नवयुग की सृष्टि कर सके थे। कौन कह सकता है कि तुलसीदास केवल परिस्थितियों की उपज थे और वे न भी होने होते तो क्या किसी कखग. ने वैसा ही राम चरित मानस लिख दिया होता? वस्तुतः ग्रंथकार केवल परिस्थितियों की ही देन नहीं है, उसका व्यक्तित्व वह महत्वपूर्ण वस्तु है जो समाज में यथा प्राणदान करती है और परिस्थितियों को अपनी अभीष्ट दिशा में मोड़ देती है।²³⁴

हिन्दी आलोचना के तीसरे पड़ाव पर स्वयं रामविलास शर्मा उपस्थित हैं जिन्होंने सहज भाषा में चीजों को विश्लेषित करने की परंपरा का सूत्रपात किया। केदारनाथ अग्रवाल स्वभावतः कवि है, आलोचना उनका धर्म नहीं है। वह कविता के मर्म को समझते हैं। इसलिए जहाँ भी वह आलोचना करते हैं उनकी कवित्व बुद्धि से तादात्म्य होता रहता है। असल में उनके यहाँ कविता की दुनिया ही आलोचना की दुनिया है। रामविलास शर्मा के यहाँ आलोचना की दुनिया में शब्दों का सरल, सहज सस्कार है। अब देखिए बिना दिमाग पर जोर डाले सीधे संप्रेषित होने वाली आलोचना की भाषा — “भारतेन्दु ने जिस संस्कृति का निर्माण किया, वह जनवादी थी। उन्होंने धर्म, संस्कृति, साहित्य, शिष्टाचार पर पुरोहितों — मौलवियों का इजारा तोड़ने के उपाय बताये। विधवा विवाह का समर्थन किया, बाल-विवाह का विरोध किया। कुलीनता, जाति-प्रथा, छुआछूत आदि का जोरदार खंडन किया, लोगों के धार्मिक अंधविश्वासों की कड़ी आलोचना की और स्त्री शिक्षा पर खासतौर से जोर दिया। इस जनवारी संस्कृति के तत्व भारतेन्दु को अपने देश से मिले थे, वे उनके अपने चिंतन का फल थे।”²³⁵ रामविलास शर्मा का गद्य ऐसा ही है। अच्छा गद्य कैसे लिखे, रामविलास शर्मा से सीखा जा सकता है। और केदारनाथ अग्रवाल के यहाँ गद्य कविताओं का पूरक है। उनके यहाँ एक को दूसरे से विलगाना कठिन है। रामविलास शर्मा के गद्य में वातावरण, देशकाल उपस्थित रहता है। यही उनके गद्य की अद्भुत सामर्थ्य है। 19.30.46 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, “निराला का हाल क्या लिखें? राशन का जमाना, खाना—पीना, अस्त—व्यस्त। कभी साग उबाल कर खा लिया, कभी कुछ फटे हाल पहले जैसे या बदतर। दिमाग उन्ही के शब्दों में फूल स्विंग पर है। लेकिन इधर उनकी कविताएँ ज्यादा साफ और निखरी हुई हैं।”²³⁶ पहले वातावरण, परिस्थित, फिर कविता पर आलोचनात्मक टिप्पणी उनके यहाँ आदि से अत तक मिल जाएँगी।

22.4.46 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, “तुम्हारे गालों की सुर्खी और उस पर बालों की सफेदी खूब है। जरूर देखने आऊँगा। लेकिन अभी गाय भैंस लगती है, फिर भी यह सफेदी क्यों? क्या रात को चिराग जल्दी ही गुल हो जाता है,”²³⁷ ऐसी भाषा अन्यत्र दुर्लभ है। आत्मीयता, अनौपचारिकता से ही ऐसी भाषा का संस्कार संभव है।

15.9.46 के पत्र में केदारनाथ अग्रवाल लिखते हैं, “यह पत्र इससे भेज रहा हूँ कि तुम कहीं यह न सोच बैठना कि केदार मर गया है। अपने जिंदा होने का सबूत है यह छोटा पत्र।”²³⁸ इस प्रकार एक—दूसरे की आत्मीयता से उपजा संवाद दिलचस्पी पैदा करता है। ‘संवाद’ इन पत्रों का केन्द्र बिन्दु है। नाटकीयता इनका गुण है। ‘मित्र संवाद’ में वातावरण का भी नाटकीयता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान है। परिस्थितियों नाटकीयता के संवर्द्धन में सहायक हैं। नामवर सिंह

लिखते हैं, "पत्र-व्यवहार से निर्मित नाटक की बेहतर मिसाल तो 'मित्र सवाद' ही है, क्योंकि वह हृदय - सवाद' है और जैसा कि 'नाट्य शास्त्र' में कहा गया है-

योऽर्थो हृदयसवादी तस्य भावो रसोद्भवः ।

शरीर व्यापते तेन शुष्क काष्ठामिवान्निनः ।।

ऐसा 'हृदय सवादी' अर्थ जिसके भाव से रस का उद्भव होता है।²³⁹ आगे नामवर सिंह लिखते हैं दुनिया की तो नहीं कह सकता, लेकिन रामविलास-कंदार की दोस्ती की मिसाल हिन्दी के इतिहास में नहीं है और कहना न होगा कि दोस्ती का यह नमूना भी भारत के किसानों-मजदूरों ने रखा है लेकिन इसमें कुछ योग निराला-प्रेमचन्द की साहित्यिक परंपरा का भी है।²⁴⁰ दरअसल कोई भी साहित्यकार बड़ा तभी बनता है जब परंपरा से सीखते हुए मानसिकता का विकास हो। प्रेमचन्द का गद्य भी सरल सहज सप्रेष्य है। प्रेमचन्द व निराला की परंपरा को पुष्ट करते हुए रामविलास शर्मा और कंदारनाथ अग्रवाल युग पुरुष बन जाते हैं। ऐसे युगपुरुष जिन्होंने शब्दों-वाक्यों और गद्य का नया धरातल तैयार किया।

डॉ नामवर सिंह लिखते हैं, "मित्र सवाद के अंतर्गत कविता में शब्द-प्रयोगों के औचित्य-अनौचित्य पर जिस एकाग्रता से विचार किया गया है उसके सामने अंग्रेजी की 'नई आलोचना' फीकी पड़ जाती है और प्राचीन संस्कृत काव्यशास्त्र के 'काव्य प्रकाश' जैसे ग्रंथ और उन पर लिखी हुई टीकाएँ याद आ जाती हैं।"²⁴¹ असल में यह चीज 'मित्र-सवाद' के गद्य-विधान को महत्वपूर्ण साबित करती है। मित्र सवाद में सिर्फ कविता में शब्द-प्रयोगों के औचित्य-अनौचित्य की चर्चा नहीं है वरन् समाज के अन्यान्य क्षेत्रों में भी शब्द-प्रयोगों के औचित्य-अनौचित्य की चर्चा है जो कि 'मित्र-सवाद' के गद्य की विशेषता है।

नामवर सिंह लिखते हैं, "मित्र सवाद अतंतु जीवन का गद्य है। गालिब ने अगर अपने पत्रों के जरिये उर्दू गद्य की नींव डाली और उसे परवान चढ़ाया तो रामविलास शर्मा और कंदारनाथ अग्रवाल के पत्रों ने हिन्दी में 'गद्य की विलुप्त कला को बचा लिया।"²⁴²

डॉ विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं, 'गालिब के लिए 'पाती आधा मिलन' नहीं, मिलन है। लिखते हैं मैं इस तनहाई में सिर्फ खुतूत के भरोसे जीता हूँ याने जिसका खत आया मैंने जाना कि वो शख्स तशरीफ लाया।"

उनके पत्रों में दृश्यता भरी होती है। वह पत्र क्या लिखते हैं, बातें करते हैं। पत्र की विधा की सीमाएँ तोड़कर मानो वह शख्स उनके सामने है और वह बतिया रहे हैं। वह पत्र शुरू करते हुए देश की सीमाएँ लाघकर सीधे उस व्यक्ति के पास पहुँचते हैं, जिसे पत्र लिख रहे हैं। सर्जना की तरह एक मायालोक रचते हैं-

कोई है जरा युसूफ मिर्जा को बुलाइयो। लो साहब वो आये। मियाँ मैंने कल खत तुमको भेजा है, मगर तुम्हारे एक सवाल का जवाब रह गया है। अब सुन लो।

चूँकि पत्र लेखक लिख नहीं रहा है, बातें कर रहा है इसलिए 'सुन लो'। 'पढ़ लो नहीं।"²⁴³ ऐसा ही गद्य मित्र सवाद में भी है। 26.3.62 के पत्र में कंदारनाथ अग्रवाल लिखते हैं,

श्रीपत्री जोग लिखी बादा से लाला कंदारनाथ की जै गोपाल पहलवान श्री रामविलास शर्मा आगरा वाले को पहुँचे। चिट्ठी आपकी आई। समाचार जाना। आपका पोस्टकार्ड नारद

महाराज की तरह आ धमका। हम ठहरे लाला। सो हमने उसका हृदय से सुआगत किया। डर गए कही दिनकर का हिमायती पहलवान न इसके अदर से पेट फाड़कर निकल आये। यही हमारी कमजोरी थी। वरना हम तो ऐसे वैसे को गिनते कब है। हमारे बटखरे छोटे हो तो भी बड़ा काम करते है। बड़े-बड़े पहलवानो के राशन को कम तौलते है।”²⁴⁴ आ धमका देखिए जैसे कि कोई शशरीर उपस्थित हुआ है। इसलिए रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल के लिए भी ‘पाती आधा मिलन’ नहीं मिलन है। मिलन होने के कारण ही ‘मित्र सवाद’ का गद्य ‘बोलता गद्य’ है। अद्भुत। मार्मिक। सहज सप्रेष्य। शमशेर के कविता की एक पक्ति— ‘बात बोलेगी हम नहीं। तो ‘मित्र सवाद’ के गद्य में यूँ तो ‘दोनों मित्र’ बात करते है लेकिन भेद तो अतत ‘बोलता हुआ गद्य’ ही खोलता है। ‘मित्र सवाद’ का गद्य ‘शिक्षा’ प्रदान करता है। अच्छा गद्य लिखने का ‘मुहावरा’ बन जाता है। ‘शिक्षा’ व्यक्ति की मानसिकता के शुद्धीकरण का माध्यम है। तो इस अर्थ में ‘मित्र सवाद’ व्यक्ति की मानसिकता के ‘शुद्धीकरण’ का माध्यम हो सकता है।

‘मित्र सवाद’ के पत्रों में औपन्यासिक शिल्प है। ऐसा औपन्यासिक शिल्प जिसकी परिणति ‘ट्रेजिक’ है। इस सवाद में लोगो की रचनाकारो की मृत्यु का जिक्र है। आर्थिक कठिनाई का जिक्र है। राजनीतिक उलझाव पर चर्चा है। पंजाब की हत्याओं पर बहस है। महाराष्ट्र में दिन दहाड़े लडकी का स्कूल में जिंदा जलाये जाने की टीस है। देश में व्याप्त अपसंस्कृति पर क्षोभ है। कुल मिलाकर दुखद घटनाओं को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में सम्मृक्त होकर देखा जाना है। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी के अनुसार, “ऐसा गालिब के पत्रों में भी है, जहाँ एक औपन्यासिक विषय वस्तु का निर्वहन हो सकता है। ‘मित्र सवाद’ भी ऐसा ही है।”²⁴⁵

आज हिन्दी में कहानी और उपन्यास के पाठक अधिक है। मित्र सवाद के प्रत्येक पत्रों में कहानी पन है। संपूर्णता में औपन्यासिकता मित्र सवाद का मर्म है। अशोक वाजपेयी लिखते है “ऐसी तो कोई अच्छी और पठनीय पुस्तक है ही नहीं जो उपन्यास के शिल्प और संरचना पर विस्तार से और समग्रता से विचार करती हो। इसका कुछ तीखेपन से मुझे अहसास हाल में हुआ जब प्रसिद्ध लातीनी अमेरिकी कथाकार मारियो वरगास लोसा की एक छोटी-सी पुस्तक अग्रेजी अनुवाद में ‘लेटर्स टू ए यंग नावलरिस्ट (एक युवा उपन्यासकार को पत्र) हाथ में आई। नाम से ही ऐसे पत्राचार का, बीसवीं सदी के शुरू में रीनर मारिया रिल्केने लिखा ‘क्लैसिक लेटर्स टू ए यंग पोएट’ याद आये तो अनुचित नहीं है।

“लोसा ने अज्ञातनाम युवा उपन्यासकार को ग्यारह पत्र और एक पुनश्च लिखे है। एक पत्र एक अध्याय है। कुछ के शीर्षक है, शैली, समय, सच्चाई की सतह, मानने की शक्ति, आख्यानकार और आख्यान-स्पेस, स्थान-परिवर्तन और गुणात्मक छलांगे, छिपा तथ्य, सप्रेषण के वाहन। मुख्य बात यह है कि कितनी ही प्रबल प्रेरणा क्यों न हो, उपन्यास अपने आप नहीं बन जाता उसे बनाना पड़ता है, उपन्यास लिखा जाता है। उसमें समय, स्थान, शैली, संरचना आदि की समस्याएँ उठती हैं जिन्हें हल करना होता है। बिना बुनियादी बेचैनी के लिखना संभव नहीं है लेकिन उस बेचैनी को रूपाकार देना, वह भी उपन्यास का, एक कठिन, दीर्घसूत्री काम है जिसकी अनेक विधियाँ और संभावनाएँ हैं। ये पत्र उन विधियों और युक्तियों का, उन समस्याओं और उनके अभी तक संभव हुए समाधानों का कई उपन्यासों और उपन्यासकारों के ठोस साक्ष्य से

विश्लेषण करते और उनके बारे में अक्सर एक नई समझ उकसाते हैं। बोर्खेस, सैलीन, कोर्ताजार, काफ़्का, राब्ले ग्रिये, हेमिंग्वे, पलाबेयर, जेम्स ज्वायस, वर्जीनिया, कुल्फ, सर्वातीस, मार्क्वेज, फाकनर आदि अनेक उपन्यासकारों की कृतियों का बेहद नया और उत्तेजक विश्लेषण इन पत्रों में जहाँ-तहाँ प्रसंगवश है।²⁴⁶ मित्र संवाद के पत्रों में कई उपन्यासकारों की चर्चा है। रामविलास शर्मा की आलोचकीय बुद्धि का जबर्दस्त प्रभाव उनके पत्रों में देखा जा सकता है। बड़ी बात यह है कि 'मित्र संवाद' की औपन्यासिकता सायास नहीं बल्कि अनायास है। बुनियादी बेचैनी तो मित्रों में है लेकिन वे उपन्यास लिखने नहीं बैठते। वे तो हृदय की बातें करते हैं। बेचैनी की सुगबुगाहट को शब्द देते हैं। जीवन के स्पंदन को धड़काते हैं। पत्रों में रक्त संचार करते हैं तभी तो क्रमबद्धता में रक्त संचार मूर्त हो उठता है और पाठक की बेचैनी को बढ़ा देता है। मित्र संवाद के पत्र पाठक को सोचने पर मजबूर करते हैं। सामाजिक भितर घात की कलई को खोलते ये पत्र अंततः पाठक की संवेदना को उद्भूत करते हैं। जिस तरह गद्य की अन्य विधाएं पाठक के मर्म को व्याख्यायित करती हैं समाज के सच को आवाज देती हैं उसी प्रकार मित्र संवाद के पत्र संपूर्णता में सामाजिक सांस्कृतिक आख्यान बन जाती है। एक दस्तावेज। एक अध्ययन।

"रचनाकार की रचना प्रक्रिया जानने, उनके साहित्यिक स्वरूप को पहचानने वाले आज भी इन नवीन विधाओं – जीवनी, आत्मकथा, लघुकथा, पत्रादि का महत्व समझते हैं, क्योंकि इन विधाओं के द्वारा ही रचनाकार का सोच-विचार और मूल्यों को जाना जा सकता है, जिनसे अनुप्राणित और प्रेरित होकर रचनाकार की रचना का प्रसव होता है। अतः इससे स्वतः ज्ञात होता है कि इन नवीन विधाओं का जिन्हें हाशिए पर डाल दिया गया है— आस्मिता की दृष्टि से विशेष महत्व है। पत्र में व्यक्ति और रचनाकार निर्द्वन्द्व, निर्बंध तथा उन्मुक्त स्वतंत्र भाव विचार से अपनी, भावनाओं एवं विचारों को दिल खोलकर रख देता है। वह अपने जीवन में भोगे हुए यथार्थ, घर-परिवार में घट रही घटनाओं तथा उनकी चिंता एवं बाहर समाज, राष्ट्र और अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में फैले विसंगतियों के कूड़े आदि को बिना दुराव-छुपाव के अपने आत्मीय जनो के समक्ष स्पष्टता से शांति से, आक्रोश से, घृणा से खोलकर रख देता है, जिनमें उनके सोच-विचार एवं भावना का चरित्र विद्यमान रहता है। यही कारण है कि पत्र दिल के आइने हैं, जिनमें व्यक्ति या रचनाकार का वैचारिक-चित्र स्पष्ट रूप से दिखाई दे जाता है।"²⁴⁷ मित्र संवाद के पत्र दिल की धड़कन हैं। जिनके नस-नस में जर्-जर् की आवाज है। 'मित्र संवाद' के पत्रों में वैयक्तिकता, अंतरंग अनौपचारिकता और सहृदयता है। इसमें तीसरे की मध्यस्थता नहीं है। लिखने वाले मित्रों के मन पर किसी प्रकार का अंकुश नहीं है।

'मित्र संवाद' के पत्रों में जीविकोपार्जन की समस्या, अन्य व्यक्तियों के प्रति सहृदयता, काव्य-सृजन के प्रति विचार, गद्य लेखन के प्रति सोच आदि अनेक विषय हैं जिन पर उन्होंने निर्द्वन्द्व भाव से लिखा जिनका समकालीन समाज और साहित्य को पहचानने-समझने तथा मूल्यांकन करने के लिए विशेष महत्व है। अतः रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल को समझने के लिए उनके पत्रों को समझना निहायत जरूरी है। किसी भी रचनाकार को समझने के लिए उसके पत्रों से गुजरना जरूरी होता है। पत्रों में व्यक्ति अथवा रचनाकार का असली चरित्र उजागर होता है। चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, कमल किशोर गोयनकर को 2 जनवरी 1980 के पत्र में लिखते हैं, "मेरी राय से अच्छे लेखकों की प्रासंगिकता जल्दी समाप्त नहीं होती। काल और

परिस्थितियों के बदल जाने पर भी जीवित मानवों से उनका तारतम्य और एकात्म बना रहता है।²⁴⁸ केदार का संपूर्ण साहित्य आज भी क्यों उतना ही ताजा लगता है क्योंकि सामाजिक-सांस्कृतिक को बिना किसी लाग-लपेट के उन्होंने उकेरा है। रामविलास शर्मा के साथ भी ऐसा ही है।

किस प्रकार पत्रों में व्यक्ति कहानी लिख सकता है, समर लोक के 'डाक विशेषांक' में देखा जा सकता है। सुधा अरोड़ा की कहानी की शुरुआत कुछ इस तरह होती है—

“प्यारी मां और बाबा,

चरण स्पर्श

मुझे मालूम है बाबा, लिफाफे पर मेरी हस्तलिपि देखकर लिफाफे को खोलते हुए तुम्हारे हाथ कांप गये होंगे। तुम बहुत एहतियात के साथ लिफाफा खोलोगे कि भीतर रखा हुआ मेरा खत फट न जाए। सोचते होंगे कि एक साल बाद आखिर मैं तुम लोगों को खत क्यों लिखने बैठी...²⁴⁹ इस प्रकार पत्र की शैली में पूरी कहानी लिखी जाती है। जब मित्र संवाद के पत्रों में भी खासकर पारिवारिक पत्रों में मृत्यु की चर्चा होती तो वे 'कारुणिक' कहानी का स्वरूप ग्रहण कर लेते हैं। तो इस अर्थ में मित्र संवाद के पत्र जहाँ तहाँ कहानी भी है। कहानीपन का गुण उसमें है। पत्रों में उल्लास का वातावरण भी है।

इन पत्रों में आलोचना की उत्कृष्टता दर्शनीय है, “काव्य कला के संबंध में निराला जी की छटपटाहट को समझने के लिए यहाँ एक ऐसी विधा को उदाहरण बनाया गया है, जिसे शास्त्री शब्दावली में पत्र कहते हैं। पं. जानकी वल्लभ शास्त्री के नाम लिखे गये एकाधिक पत्रों में निराला जी ने काव्य कला का सवाल उठाया है और ऐसा प्रतीत होता है कि इस बिन्दु पर वे अपने समकालीन आलोचकों के रवैये से खफा थे। यही कारण है कि वे अपना क्षोभ पहले उन्हीं के प्रति प्रकट करते हैं, लिखते हैं, “मैंने देखा, हिन्दी के आलोचक पहले दर्जे के उजबक हैं।

“सृजनधर्मी रचनाकारों द्वारा आलोचकों की खिंचाई करने का यह पहला उदाहरण नहीं है। किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि इस कडुवाहट के पीछे आलोचना की बेईमानी नहीं, बल्कि रचना की प्रशंसा अथवा उपेक्षा करने वालों का रवैया ही रहा है। संभवतः निराला यह महसूस करते थे कि कला के सच्चे पारखी नहीं हैं— खासकर शायद उनके आस पास केवल झूठी सच्ची तारीफ या आलोचना के जरिये किसी को चढ़ाने और किसी को गिराने की नीयत से भरे हुए लोग हैं। उपर्युक्त कथन के ठीक आगे वे कहते हैं, “जब तक मैं कला का आधुनिक रूप खोल कर न रखूँगा, वे ‘कला—कला’ करके ही कला की इति करते रहेंगे।²⁵⁰ रामविलास शर्मा ने भी ऐसा ही किया। आज भी स्थिति कुछ बदली नहीं है। आलोचना की वही नीयत आज भी साहित्यिक परिदृश्य को छिछला कर रही है। किसी को उठाना तो किसी को गिराना वर्तमान आलोचना को क्षतिग्रस्त करता है। जबकि रामविलास शर्मा में आलोचना की साफगोई है। नामवर सिंह लिखते हैं, “मित्र संवाद साहित्य की आलोचना के बहुमूल्य सूत्रों की खान है क्योंकि वह दो संवेदन—सजग कवि आलोचकों की कार्यशाला का बेजोड़ रोजनामचा है: साठ वर्षों की साहित्य साधना में प्राप्त अनुभवों का दस्तावेज।²⁵¹

मित्र संवाद में आलोचना की सर्जनात्मक लेखन का आनंद प्राप्त होता है। संवाद होने के कारण यह अद्भुत गद्य है। मित्र संवाद में देशज शब्दों का प्रयोग भी यत्र-तत्र मिल जाता है। दोनों मित्रों में गहरी दिल्लगी है इसलिए कभी-कभी मजाक का भी वातावरण बनता है जो कि विनोदी प्रकृति का होता है। मित्र संवाद का हास्य ऐसा हास्य है जो कि पाठक को गुदगुदाता है। ऐसा इसलिए कि दोनों मित्रों में कोई औपचारिकता नहीं है बल्कि यहाँ तो एक-दूसरे की रचना पर लट्टू होने की खूबियाँ हैं। अनौपचारिक बातचीत की खूबियाँ ग़ालिब के यहाँ भी हैं। मित्र संवाद के गद्य में अद्भुत बिम्ब विधान है। कुल मिलाकर मित्र संवाद का गद्य विधान आत्मीयता, अनौपचारिकता से उपजा हुआ है, जिसमें दुनिया की कई चीजों पर सूक्ष्म और कई चीजों पर गहराई से विश्लेषण मिलता है।

संदर्भ

- ¹ सपादक कल्पना राजा राम — भारतीय संस्कृति, स्पेक्ट्रम बुक्स प्रा लि, जनपुरी, नई दिल्ली, संस्करण 2002, पृ स 261।
- ² वही, पृ स 261।
- ³ एस एल दोषी, पी सी जैन — सामाजिक विचारक, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 1997, पुनर्संस्करण, 2002, पृ स 123।
- ⁴ सपादक अखिलेश, तद्भव, अक-4, अक्टूबर 2000, लखनऊ, पृ स 111।
- ⁵ सपादक प्रभाष जोशी — जनसत्ता 18 अगस्त 2002, दिल्ली, (स्वस्थ और सुंदर की भयावहता, विश्वनाथ त्रिपाठी)।
- ⁶ वही।
- ⁷ सपादक मार्कण्डेय, कथा पत्रिका, अक-8, मार्च 1997, डी मिण्टो रोड, इलाहाबाद, पृ. सं. 106।
- ⁸ सपादक नामवर सिंह, आलोचना सहस्राब्दी अक-2, 2000, जुलाई-सितंबर, पृ स 7।
- ⁹ सपादक मार्कण्डेय, कथा पत्रिका, लेखक— शिवकुमार मिश्र, लेख-साक्षी है शताब्दी के छ दशकों का समय, अक-8, मार्च 1997, डी मिण्टो रोड, इलाहाबाद, पृ. सं. 103, 104।
- ¹⁰ नामवर सिंह, इतिहास और आलोचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण, 1978, पृ स 26।
- ¹¹ अमृत राय, विचारधारा और साहित्य, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1984, पृ स 23।
- ¹² वही, पृ स 25।
- ¹³ मैनेजर पाण्डेय, शब्द और कर्म, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ स 12।
- ¹⁴ ओम प्रकाश ग्रेवाल, साहित्य और विचारधारा, आधार प्रकाशन, पचकूला, प्रथम संस्करण, 1994 पृ स 18।
- ¹⁵ मेरे साक्षात्कार, रामविलास शर्मा, किताबघर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1994, पृ स 148।
- ¹⁶ मैनेजर पाण्डेय, शब्द और कर्म, पृ स 12।
- ¹⁷ वही, पृ स 13।
- ¹⁸ वही, पृ स 13।
- ¹⁹ वही, पृ स 5।
- ²⁰ वागर्थ— सपादक प्रभाकर श्रोतीय, अप्रैल 1999, लेखक विष्णु कांत शास्त्री, पृ स 37।
- ²¹ वही, पृ स 51, लेखक प्रसन्न कुमार चौधरी।
- ²² वही, पृ स 53, वही।
- ²³ मैनेजर पाण्डेय, शब्द और कर्म, पृ स 17।
- ²⁴ वही, पृ स 23।
- ²⁵ नामवर सिंह, वाद-विवाद-सवाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1989, द्वितीय 1991, पृ स 22।
- ²⁶ मार्क्स-एंगेल्स, साहित्य तथा कला, प्रगति प्रकाशन, मास्को, 1923, पृ स 22।

-
- ²⁷ डॉ. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य के समाज शास्त्र की भूमिका, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़ प्रथम संस्करण, 1989, पृ. सं. 117।
- ²⁸ संपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ. सं. 130।
- ²⁹ डॉ. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य के समाज शास्त्र की भूमिका, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़ प्रथम संस्करण, 1989, पृ. सं. 13-14।
- ³⁰ संपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ. सं. 393।
- ³¹ वही, पृ. सं. 395।
- ³² निर्मला जैन, साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण, 1986, पृ. सं. 31।
- ³³ संपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ. सं. 429। "He has read capital and failed to notice that he had before him a model of scientific, materialistic analysis of one the most complex formation of society, a model recognized by all and surpassed by none And here he sits and exercises his mighty brain over the profound problem In which of his works did Marx expound his materialist conception of history "
- ³⁴ वही, पृ. सं. 430।
- ³⁵ निर्मला जैन, साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन, पृ. सं. 34।
- ³⁶ वही, पृ. सं. 35।
- ³⁷ वही, पृ. सं. 35।
- ³⁸ वही, पृ. सं. 36।
- ³⁹ वही, पृ. सं. 43।
- ⁴⁰ वही, पृ. सं. 45।
- ⁴¹ गजानन माधव मुक्तिबोध – नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली द्वितीय संस्करण, 1993, पृ. सं. 124।
- ⁴² मेरे साक्षात्कार, रामविलास शर्मा, पृ. सं. 149।
- ⁴³ वही, पृ. सं. 117।
- ⁴⁴ संपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ. सं. 111-112।
- ⁴⁵ वही, पृ. सं. 134।
- ⁴⁶ वही, पृ. सं. 137।
- ⁴⁷ वही, पृ. सं. 136।
- ⁴⁸ वही, पृ. सं. 223-224।
- ⁴⁹ वही, पृ. सं. 225।
- ⁵⁰ वही, पृ. सं. 227।
- ⁵¹ वही, पृ. सं. 429।
- ⁵² संपादक विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, रस मीमांसा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, सवत् 2048, षष्ठ संस्करण, पृ. सं. 5।
- ⁵³ वही, पृ. सं. 16।

-
- ⁵⁴ वही, पृ. सं.18 ।
- ⁵⁵ वही, पृ. सं.19 ।
- ⁵⁶ वही, पृ. सं.19 ।
- ⁵⁷ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – चिंतामणि (विचारात्मक निबंध), मंजूषा सहित पहला भाग, इंडियन प्रेस पब्लिकेशंस प्रा. लि., इलाहाबाद, संस्करण, 1994, पृ. सं.155–156 ।
- ⁵⁸ वही, पृ. सं.157 ।
- ⁵⁹ निर्मला जैन, कुसुम बॉठिया– पाश्चात्य साहित्य चिंतन राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 1990, दूसरी आवृत्ति, 1996, पृ. सं.86–87 ।
- ⁶⁰ वही, पृ. सं.97 ।
- ⁶¹ वही, पृ. सं.97 ।
- ⁶² वही, पृ. सं.99 ।
- ⁶³ वही, पृ. सं.100 ।
- ⁶⁴ वही, पृ. सं.101 ।
- ⁶⁵ वही, पृ. सं.105 ।
- ⁶⁶ नामवर सिंह, कविता के नये प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1968, आवृत्ति 1997, पृ. सं.31 ।
- ⁶⁷ रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, संवत्, 1986, 'हिन्दी शब्द सागर' की भूमिका के रूप में प्रकाशित, पृ. सं.80 ।
- ⁶⁸ वही, पृ. सं.81 ।
- ⁶⁹ वही, पृ. सं.82 ।
- ⁷⁰ संपादक कृष्णानन्द त्रिवेणी (रामचन्द्र शुक्ल के तीन विचारात्मक निबंधों का सार), पृ. सं.41 ।
- ⁷¹ संपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र संवाद, पृ. सं.171 ।
- ⁷² वही, पृ. सं.117–118 ।
- ⁷³ वही, पृ. सं.236–237 ।
- ⁷⁴ संपादक अर्श मलसियानी, गालिब के पत्र, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, तृतीय संस्करण, शक 1921 (1999), पृ. सं.111 ।
- ⁷⁵ संपादक विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, सूरदास (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल), नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संवत् 2054, पृ. सं.92 ।
- ⁷⁶ मेरे साक्षात्कार: रामविलास शर्मा, पृ. सं.128 ।
- ⁷⁷ डॉ. मनोहर लाल गौड़ – विद्यापति (कीर्तिलता और पदावली का संकलन), प्रकाशन विद्यामंदिर, ब्रह्मनाल, वाराणसी, संशोधित संस्करण, 1976, पृ. सं.29 ।
- ⁷⁸ वही, पृ. सं.16, 17, 25, 35 ।
- ⁷⁹ संपादक विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, सूरदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. सं.100 ।
- ⁸⁰ शिव कुमार मिश्र, भक्तिआंदोलन और भक्तिकाव्य, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 1996, पुनर्मुद्रण, 1998, पृ. सं.89 ।
- ⁸¹ संपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र संवाद, पृ. सं.383–384 ।

-
- ⁸² हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, छात्र संस्करण, 1990, पुनर्मुद्रित 1998,, पृ स 100।
- ⁸³ मेरे साक्षात्कार रामविलास शर्मा, पृ स 60-61।
- ⁸⁴ संपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 385।
- ⁸⁵ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, चतुर्दश संस्करण सवत् 2053 विक्रमी,, पृ स 16।
- ⁸⁶ वही पृ स 29।
- ⁸⁷ वही पृ स 32।
- ⁸⁸ डॉ विश्वनाथ त्रिपाठी, लोकवादी तुलसीदास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1974, दूसरा संस्करण 1991, पृ स 5, (भूमिका से)।
- ⁸⁹ वही पृ स 12।
- ⁹⁰ वही पृ स 76।
- ⁹¹ वही पृ स 100।
- ⁹² वही पृ स 31।
- ⁹³ वही पृ स 59।
- ⁹⁴ वही पृ स 55।
- ⁹⁵ वही पृ स 59।
- ⁹⁶ वही पृ स 118।
- ⁹⁷ वही पृ स
- ⁹⁸ वही पृ स 145।
- ⁹⁹ संपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 372।
- ¹⁰⁰ वही पृ स 375।
- ¹⁰¹ वही पृ स 88।
- ¹⁰² वही पृ स 89।
- ¹⁰³ Editor Dr. Nagendra (foreword) - Tulsidas: His mind and art, National Publishing House, Delhi, First Published, 1977. "Tulsidasa has had a pervading influence on the life and thought of the Indian people, not only in the Hindi speaking region but far beyond it. The various facets of Tulsi's thought social, economic, cultural and religions - need careful analysis in order to assess the nature of his impact on succeeding generations. It is difficult to encapsulate a seminal figure such as Tulsidasa into being either a progressive or a reactionary. Since Tulsidasa lived and worked in an age of rapid change in which many old and new ideas were contending against each other, it should not be surprising for us to find contradictory tenets, in his writing. Nevertheless, Tulsidasa emerges as a man of composite vision who tried to resolve, the often contradictory ideas prevalent in his age, rising above narrow dogmas and sectarian beliefs, and as a man who was fundamentally humanist in his approach."
- ¹⁰⁴ संपादक डॉ नगेन्द्र, डॉ तारकनाथ बाली, भारतीय काव्य सिद्धांत, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली, संस्करण 1990 पृ स 30।

-
- ¹⁰⁵ रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि (विचारात्मक निबन्ध) मज्जूषा सहित, पृ.स.97।
- ¹⁰⁶ डॉ. निर्मला जैन, हिन्दी आलोचना की बीसवीं सदी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 1992, पहली आवृत्ति, 1998. पृ.स.34।
- ¹⁰⁷ वही पृ.स.34-35।
- ¹⁰⁸ संपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ. स.120।
- ¹⁰⁹ नामवर सिंह, कविता के नये प्रतिमान, पृ. स.17।
- ¹¹⁰ रामविलास शर्मा, नयी कविता और अस्तित्ववाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1989, पृ.स.56-57।
- ¹¹¹ नामवर सिंह, कविता के नये प्रतिमान, पृ. स.25।
- ¹¹² वही, पृ. स.25।
- ¹¹³ रामविलास शर्मा, नयी कविता और अस्तित्ववाद, पृ.स.58-59।
- ¹¹⁴ वही, पृ. स.59।
- ¹¹⁵ नामवर सिंह, कविता के नये प्रतिमान, पृ. स.27।
- ¹¹⁶ रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य और सवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद,, संस्करण, 1991, पृ. स.227।
- ¹¹⁷ रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य साधना, खंड-3, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1969, पृ. स.72-76।
- ¹¹⁸ संपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ. स.21, 29.7.35 का पत्र।
- ¹¹⁹ सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, अनामिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, छात्र संस्करण, 1993, आवृत्ति, 1998, पृ. स.९७।
- ¹²⁰ वही, पृ. स.110।
- ¹²¹ वही, पृ. स.90।
- ¹²² वही, पृ. स.109।
- ¹²³ संपादक निर्मला जैन, अतस्तल का पूरा विप्लव, अधरे में, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 1994, पहली आवृत्ति 1999, पृ. स.45।
- ¹²⁴ सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, अनामिका, पृ. स.90।
- ¹²⁵ वही, पृ. स.90।
- ¹²⁶ वही, पृ. स.95।
- ¹²⁷ वही, पृ. स.96।
- ¹²⁸ वही, पृ. स.93।
- ¹²⁹ वही, पृ. स.94।
- ¹³⁰ वही, पृ. स.94।
- ¹³¹ जयशंकर प्रसाद, कामायनी, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1994, पृ. स.29।
- ¹³² प्रधान संपादक नामवर सिंह, आलोचना त्रैमासिक, जुलाई-सितंबर 2000, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. स.४।

- ¹³³ रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य और सवेदना का विकास, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद सस्करण, 1991, पृ स 225 ।
- ¹³⁴ वही, पृ स 225 ।
- ¹³⁵ सपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 207, 11 12 58 का पत्र ।
- ¹³⁶ सपादक नामवर सिंह, आलोचना सहस्त्राब्दी, अक, जुलाई-सितंबर 2000, पृ स 8 ।
- ¹³⁷ सपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 263-264, 20 10 61 का पत्र ।
- ¹³⁸ वही, पृ स 269, 17 1 62 का पत्र ।
- ¹³⁹ सपादक नामवर सिंह, आलोचना सहस्त्राब्दी, अक, जुलाई-सितंबर 2000, पृ स 8 ।
- ¹⁴⁰ सपादक अखिलेश, तद्भव, अक-4, अक्टूबर 2000, लखनऊ, पृ स 105 ।
- ¹⁴¹ सपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 157 ।
- ¹⁴² वही, पृ स 22 ।
- ¹⁴³ सपादक रामविलास शर्मा, कवियों के पत्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ स 23,
- ¹⁴⁴ वही, पृ स 25-26 ।
- ¹⁴⁵ रमेश चन्द्र शाह, पूर्वग्रह, सपादक अशोक वाजपेयी, भारतभवन, भोपाल का प्रकाशन, अक 106, नवंबर 1997, 4
- ¹⁴⁶ सपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 13-14 ।
- ¹⁴⁷ सपादक नामवर सिंह, आलोचना, जुलाई-सितंबर 2000, पृ स 8-9 ।
- ¹⁴⁸ विश्वनाथ त्रिपाठी, पेड का हाथ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सस्करण, 2002, पृ स
- ¹⁴⁹ सपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 33, 13 8 39 का पत्र ।
- ¹⁵⁰ सपादक रामविलास शर्मा, कवियों के पत्र, नई दिल्ली, पृ स 38-39 ।
- ¹⁵¹ विश्वनाथ त्रिपाठी, पेड का हाथ, पृ स 5 ।
- ¹⁵² सपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 55, 8 12 43 का पत्र ।
- ¹⁵³ सपादक मार्कण्डेय, कथा अक-8, लेखक शिव कुमार मिश्र, (साक्षी है शताब्दी के 6 दशको का समय), इलाहाबाद, मार्च, 1997, पृ स 104 ।
- ¹⁵⁴ केदारनाथ अग्रवाल, फूल नहीं रग बोलते हैं, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, अगस्त 1977 पृ स 4 ।
- ¹⁵⁵ वही, पृ स 31 ।
- ¹⁵⁶ विश्वनाथ त्रिपाठी, पेड का हाथ, पृ स 7 ।
- ¹⁵⁷ सपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 45 ।
- ¹⁵⁸ सूर्यकांत त्रिपाठी, निराला, परिमल की भूमिका से, पृ.सं. 13 ।
- ¹⁵⁹ केदारनाथ अग्रवाल, फूल नहीं रग बोलते हैं, पृ स 51 ।
- ¹⁶⁰ वही पृ स 63 ।
- ¹⁶¹ वही, पृ स 74 ।
- ¹⁶² वही, पृ स 75 ।

-
- ¹⁶³ वही, पृ स 84 ।
- ¹⁶⁴ वही, पृ स 122 ।
- ¹⁶⁵ वही, पृ स 132 ।
- ¹⁶⁶ सपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 179, 11 58 का पत्र ।
- ¹⁶⁷ डॉ रामविलास शर्मा, प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1986, पृ स 32 ।
- ¹⁶⁸ वही, पृ स 34 ।
- ¹⁶⁹ वही, पृ स 34–35 ।
- ¹⁷⁰ वही, पृ स 36 ।
- ¹⁷¹ सपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 100–101, 15 5 52 का पत्र ।
- ¹⁷² डॉ रामविलास शर्मा, प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल, पृ स 37 ।
- ¹⁷³ वही, पृ स 38 ।
- ¹⁷⁴ सपादक मार्कण्डेय, कथा अक–8, लेखक शिव कुमार मिश्र, (साक्षी है शताब्दी के 6 दशको का समय), पृ स 108 ।
- ¹⁷⁵ सपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 133, 15 12 56 का पत्र ।
- ¹⁷⁶ वही, पृ स 134, 20 12 56 का पत्र ।
- ¹⁷⁷ सपादक नामवर सिंह, आलोचना सहस्राब्दी, अक, जुलाई–सितंबर 2000, पृ स 9 ।
- ¹⁷⁸ सपादक अकिचन, गूज, पृ स 65 ।
- ¹⁷⁹ नामवर सिंह, आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तिया, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, नवीन संस्करण 1998, पृ स 78 ।
- ¹⁸⁰ सपादक अकिचन, गूज, लेखक डॉ विश्वनाथ त्रिपाठी, (रचना समाधि अमरता का तर्क, जनकवि केदारनाथ अग्रवाल के काव्य शिल्प और रचना विधान पर), पृ स 65–66 ।
- ¹⁸¹ विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, आधुनिक हिन्दी कविता (प्रसाद से अज्ञेय) राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1977, पृ स 120 ।
- ¹⁸² वही, पृ स 120 ।
- ¹⁸³ नामवर सिंह, आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तिया, पृ स 79 ।
- ¹⁸⁴ रामविलास शर्मा, प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल, पृ स 58 ।
- ¹⁸⁵ सपादक अकिचन, गूज, पृ स 68 ।
- ¹⁸⁶ सपादक नामवर सिंह, आलोचना, अक, जुलाई–सितंबर 2000, पृ स 70 ।
- ¹⁸⁷ वही, पृ स 11–12 ।
- ¹⁸⁸ वही, पृ स 12 ।
- ¹⁸⁹ नामवर सिंह, कविता के नये प्रतिमान, पृ स 69–70 ।
- ¹⁹⁰ सपादक डॉ कमलेश अवस्थी, हमको लिख्यो है कहा, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2001, , पृ स 312 ।
- ¹⁹¹ वही, पृ स 313–314 ।

-
- ¹⁹² सपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 124 ।
- ¹⁹³ वही, पृ स 127 ।
- ¹⁹⁴ सपादक नामवर सिंह, आलोचना, अप्रैल-जून, 2001, पृ स 25 ।
- ¹⁹⁵ वही, पृ स 74 ।
- ¹⁹⁶ वही, पृ स 74-75 ।
- ¹⁹⁷ सपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 299 ।
- ¹⁹⁸ वही, पृ स 376-377 ।
- ¹⁹⁹ रामविलास शर्मा, प्रेमचन्द और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला छात्र सस्करण, 1993, आवृत्ति, 1995, 1998, पृ स
- ²⁰⁰ सपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 291 ।
- ²⁰¹ सपादक डॉ राम दरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास के सौ वर्ष, गिरनार प्रकाशन, महेसाना, गुजरात प्रथम सस्करण 1984, पृ स 200 ।
- ²⁰² सपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 103 ।
- ²⁰³ सपादक डॉ जय नारायण, कल के लिए, अप्रैल-जून 2002, अनुभूति विकास भवन, बहराइच पृ स ४६ ।
- ²⁰⁴ सपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 227 ।
- ²⁰⁵ वही, पृ स 228 ।
- ²⁰⁶ फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आचल, प्रथम सस्करण की भूमिका से, पहला सस्करण 1984, सातवी आवृत्ति 2001, पृ स 5 ।
- ²⁰⁷ वही, आवरण पृष्ठ ।
- ²⁰⁸ शिव कुमार मिश्र, प्रेमचन्द विरासत का सवाल, पीपुल्स लिटरेसी, दिल्ली प्रथम सस्करण 1981 पृ स 10 ।
- ²⁰⁹ वही, पृ स 10 ।
- ²¹⁰ सपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 238 ।
- ²¹¹ वही, पृ स 373 ।
- ²¹² द्वारका प्रसाद वर्मा, हरिशकर परसाई का व्यग्य लेखन, एम फिल जे एन यू की उपाधि के लिए लघु शोध प्रबध, 1983 ।
- ²¹³ नामवर सिंह, नागार्जुन, प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला सस्करण 1984, पुनर्मुद्रित, 1996, पृ स 9 ।
- ²¹⁴ डॉ विश्वनाथ त्रिपाठी, देश के इस दौर में, पृ स 10 ।
- ²¹⁵ द्वारका प्रसाद वर्मा, हरिशकर परसाई का व्यग्य लेखन,, पृ स 73 ।
- ²¹⁶ कमला प्रसाद, आखन देखी, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम सस्करण, 1981, पृ स 24 ।
- ²¹⁷ हरिशकर परसाई, पगडडियो का जमाना, राजकमल प्रकाशन, पहला सस्करण, 1997, पहली आवृत्ति, 1998, पृ स 10 ।
- ²¹⁸ सपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 174 ।
- ²¹⁹ वही, पृ स 351 ।
- ²²⁰ वही, पृ स 345 ।
- ²²¹ वही, पृ स 346 ।

-
- 222 वही, पृ स 262 ।
- 223 डॉ कमल पुजाणी, हिन्दी का पत्र साहित्य, पृ स 290 ।
- 224 वही, पृ स 291 ।
- 225 वही, पृ स 291 ।
- 226 वही, पृ स 292 ।
- 227 सपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 168 ।
- 228 वही, पृ स 169–170 ।
- 229 वही, पृ स 170 ।
- 230 सपादक मार्कण्डेय, कथा अक-8, लेखक शिव कुमार मिश्र, (साक्षी है शताब्दी के 6 दशको का समय), पृ स 109 ।
- 231 वही, पृ स 109–110 ।
- 232 वही, पृ स 111 ।
- 233 मूल लेखक, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि विचारधारात्मक निबन्ध , पृ स 12 ।
- 234 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, साहित्य सहचर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 1994, पृ स 14–15 ।
- 235 रामविलास शर्मा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 1953, पाँचवाँ संस्करण, 1999, पृ स 94 ।
- 236 सपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 76 ।
- 237 वही, पृ स 77 ।
- 238 वही, पृ स 79 ।
- 239 प्रधान सपादक नामवर सिंह, आलोचना त्रैमासिक 2000, अक-2 जुलाई-सितंबर, पृ स 8 ।
- 240 वही, पृ स 9 ।
- 241 वही, पृ स 10 ।
- 242 वही, पृ स 13 ।
- 243 आजकल, दिसम्बर 1997, लेखक डॉ विश्वनाथ त्रिपाठी, गिरनी थी हमपे , पृ स 11 ।
- 244 सपादक रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी, मित्र सवाद, पृ स 275 ।
- 245 परिशिष्ट साक्षात्कार से ।
- 246 सपादक प्रभाष जोषी, जनसत्ता, हिन्दी दैनिक, 25 अगस्त, 2002, नई दिल्ली ।
- 247 सपादक मेहरुन्निसा परवेज, समरलोक, वर्ष-4, अक-2, जुलाई-सितंबर 2002, पृ स 23 ।
- 248 वही, पृ स 85 ।
- 249 वही, पृ स 32 ।
- 250 सपादक आलोक प्रकाश पुत्तू, अक्षर पर्व, जनवरी 1999, लेखक अब्दुल बिरिमिल्लाह (काव्य कला पर निराला) पृ स 5 ।
- 251 सपादक नामवर सिंह, आलोचना त्रैमासिक, जुलाई-सितंबर 2000, पृ स 13 ।

अध्याय – पाँच

मित्र–संवाद के पत्रों का महत्व

अध्याय — पाँच

मित्र-संवाद के पत्रों का महत्व

फ्रांत्स काफ़्का का कहना है, "हालाँकि इस पत्र की सफलता इसी बात पर निर्भर है, क्योंकि एक तरफ़ इन प्रयासों में मेरे पास मौजूद सभी सकारात्मक शक्तियाँ शामिल हैं, दूसरी तरफ़ और बड़ी तेज़ी से। इस बारे में कोई भी स्पष्टीकरण मुझे इसलिए भी मुश्किल लग रहा है क्योंकि मैंने सारे विषय पर दिन-रात सोचा है और इसकी इतनी गहराई में गया हूँ कि अब इस पर एक निगाह डालना भी परेशान करता है। इस बारे में सफ़ाई देना, मेरे विचार में सारे विषय को लेकर आपकी गलतफ़हमी के कारण कुछ ही आसान हो सका है। ऐसी भीषण गलतफ़हमी को थोड़ा-सा कम करना बहुत मुश्किल नहीं लगता है।" कई सुखी आलोचकों को पत्र के साहित्य होने पर ऐतराज है। 'मित्र-संवाद' और ग़ालिब के पत्र जिज्ञासुओं को पढ़ना चाहिए पत्र के साहित्य होने की प्रामाणिकता को जिस संवाद के पत्र परिलक्षित करते हैं। ग़ालिब के पत्र तत्कालीन समाज का रहस्योद्घाटन करते हैं तो 'मित्र-संवाद' के पत्र आधुनिक भारत की तस्वीर के धुँधलके को छोटते हैं। भारत के त्रासद-स्थिति तक पहुँचने का दस्तावेज़ बनते हैं।

सन् 1935 में भारतीय राजनीति में गांधी का बोलबाला था। प्रेमचंद 'कफ़न', 'पूँस की रात' से होते हुए 'गोदान' के पड़ाव पर थे। निराला, 'सरोज-स्मृति' और 'राम की शक्ति-पूजा' का सधान कर रहे थे। प्रसाद 'कामायनी' में आने वाली भयावहता को चित्रित कर रहे थे। दोनों मित्रों की नज़र अपने युग पर थी। रोज़ी-रोटी और छात्र-जीवन के शुरुआती मुहाने पर दोनों मित्र खड़े थे। युग के घात-प्रतिघात से मित्रों की विलक्षणता और बुद्धि का निखरना जारी था। प्रगतिशील सघ के गठन की नींव पड़ने लगी थी। तभी सवाद की जमीन भी दोनों मित्र कंदारनाथ अग्रवाल और रामविलास शर्मा तराशने लगे। समय का यथार्थपरक चित्रण अनेक पत्रों में जीवन्त होकर उतरने लगा।

साहित्य की अन्यान्य विधाएँ तो रचनाकार पाठक को ध्यान में रखकर लिखता है, लेकिन पत्रों में सीधा-सीधा सवाद होता है। जो देखा लिख दिया। "वैसे तो साहित्य के सभी रूपों में आत्माभिव्यक्ति की प्रवृत्ति न्यूनाधिक रूप में सनिहित होती है, किन्तु पत्र साहित्य में वह प्रत्यक्ष एवं यथार्थ की सर्वाधिक छाप लिए रहती है। दूसरे शब्दों में लेखक के व्यक्तित्व का उनके द्वारा लिखे गये पत्रों के साथ, प्रत्यक्ष और आत्मदर्शी सबध होता है। अतः लेखक का व्यक्तित्व जितने स्वच्छ और स्पष्ट रूप से उसके पत्रों में प्रतिबिम्बित होता है, उतना साहित्य की अन्य विधाओं में नहीं।"²

'मित्र सवाद' में रामविलास शर्मा और कंदारनाथ अग्रवाल का व्यक्तित्व स्पष्टतया परिलक्षित है। "रामविलास जी कभी लल्लो-चप्पो नहीं करते थे। इस मामले में वे नामवर जी से बिल्कुल विपरीत थे। मुँह देखी भी नहीं करते थे। मैंने एक समीक्षा की थी जो बच्चन की आत्मकथा पर थी। बड़ी ध्वसात्मक समीक्षा थी। लोगो ने, बड़े-बड़े लोगो ने उसके बारे में मुझसे बड़ी बातें की। यह समीक्षा 'समीक्षा' में छपी थी जिसका संपादन भैरव प्रसाद गुप्त ने किया था। तो सबके मन में इच्छा होती है कि जिसे आप बड़ा समझते हैं वह आपकी तारीफ़ करे। मेरे मन

मे भी थी। मैंने उत्साह के अतिरेक में समारम्भ की एक प्रति रामविलास जी के पास भेजी और चिट्ठी लिखी कि यह मेरा लेख छपा है और बताइये कि मुझमें आपका प्रशंसक होने की पात्रता है कि नहीं। उनका फौरन जवाब आया कि प्रशंसक होना बड़ी बात नहीं है, विश्लेषण की क्षमता होना बड़ी बात होती है।³ तो ऐसा या रामविलास शर्मा का व्यक्तित्व और उनके लिखने की कला। सिखाने के गुरु में वह उस्ताद थे। रामविलास शर्मा ने अपने युग के कई लोगो को सुझाव दिया। केदार जी को कविता की कसावट, बुनावट के बारे में बतलाया।

रामविलास जी का व्यक्तित्व आकाशधर्मी था। वह सभी को सिखाते थे। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं, 'आप डॉ. रामविलास शर्मा को अन्य साहित्यकारों के परिवेश में रखकर देखें तो जो समकालीन साहित्यकार हैं उनमें से बहुत कम ऐसे मिलेंगे जो शील, सदाचार, चरित्र और स्वाभिमान में उनकी सगत में बैठने लायक हो या जिनको उनके साथ रखा जा सके। मैं ये नहीं कहता कि कोई नहीं है, बहुत लोग ऐसे हैं लेकिन ऐसे लोग दुर्लभ हो गये हैं और इसमें भी कोई शक नहीं है कि जितने लोग हैं इस समय उनमें डॉ. रामविलास शर्मा अग्रणी थे। एक बहुत छोटी सी बात है जिसका उल्लेख मैंने कई बार किया है कि डॉ. शर्मा को जो पुरस्कार मिले उसमें से केवल सम्मान लिया पैसा नहीं लिया। इतना निर्लोभी व्यक्तित्व भी कम दिखाई पड़ता है। ये कम लोग जानते हैं कि डॉ. शंकर दयाल शर्मा जो भूतपूर्व राष्ट्रपति थे, उनको रामविलास शर्मा जी विद्यार्थी जीवन में फ्रेंच भाषा की परीक्षा में 'वाइवा' कैसे दिया जाता है, ये सिखाते थे। प्रो. एस.एन. अय्यर ने डॉ. शंकर दयाल शर्मा से कहा कि अगर तुमको ठीक से वाइवा देना है तो तुम रामविलास शर्मा के पास जाकर सीख लो। लेकिन कभी भी इन दोनों को दिल्ली में साथ नहीं देखा गया। ये चीजे सामान्य या साधारण चीजे नहीं हैं।⁴ आजकल के लोगो में स्वार्थ परता घर कर गई है। कई आलोचक तो ऐसे हैं जो सत्ता सुख भोगना चाहते हैं। सत्ता के करीब बने रहना चाहते हैं। रामविलास शर्मा जैसा चरित्र उनमें कहाँ और वह बड़प्पन भी उनमें नहीं। पत्रों में उनके निर्लोभी, निर्भीक चरित्र को देखा जा सकता है।

डॉ. शर्मा ने बहुत कम वय में अपने बड़े भाई को एक पत्र लिखा था जिसमें उन्होंने कहा था कि देखने में मेरी पत्नी इतनी सुंदर भले ही न हो लेकिन वो मुझे इतना प्रेम देती है कि मेरे लिए ससार की सबसे सुंदर स्त्री है। मैं उसे इतना प्रेम, आदर और इतनी आत्मीयता दूँगा कि आज जो लोग उसका तिरस्कार और उपेक्षा करते हैं वे उससे ईर्ष्या करेंगे। डॉ. शर्मा की शादी बहुत कम उम्र में हो गयी थी, लगभग बचपन में ही हो गयी थी। उन्होंने इसका निर्वाह किया। मैं ऐसे केवल दो व्यक्तियों को जानता हूँ जिनके चरित्र के विषय में आज के जमाने में भी किसी ने उगली नहीं उठाई। एक थे आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी और दूसरे डॉ. रामविलास शर्मा। ये बहुत अभिभूतकारी बात है। इसी तरह से मुख्य बात होती है सबंध का निर्वाह। जैसे उन्होंने निराला जी से सबंध का निर्वाह किया, अपनी पत्नी से सबंध का निर्वाह किया वैसे ही उन्होंने मार्क्सवाद से सबंध का निर्वाह किया। इस दलितवाद के युग में, उत्तर आधुनिकता के युग में डॉ. रामविलास शर्मा अडिग भाव से मार्क्सवादी बने रहे।⁵ तो ऐसे थे रामविलास शर्मा। पत्रों में उनका पूरा व्यक्तित्व परिलक्षित होता है। सबंधों के निर्वहन में उनका कोई सानी नहीं। वह बेजोड़ है। केदारनाथ अग्रवाल से उनका सबंध आजीवन बना रहा।

मित्र कैसे हैं? इसकी ललक रामविलास शर्मा को सालती रहती है। गूँज में छपे मित्र-संवाद शीर्षक के अंतर्गत 92 1991 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, यह जानकर

दुःख हुआ कि तुम्हारे यहाँ चोरी हो गयी थी। संतोष की बात इतनी है कि तुम्हारे शरीर को क्षति नहीं पहुँची। दिल्ली में यह आम बात है। हर महीने ऊँचे दर्जे की कालोनियों में दो-चार बूढ़ों और बूढ़ियों की हत्या करते ही रहते हैं। बांदा के लिए चोरी, डकैती, कत्ल नई चीज नहीं हैं समय ऐसा है, पैसे के लिए लोग कुछ भी कर सकते हैं। अच्छा हो कि तुम किसी भरोसे के आदमी को सुलाया करो। इस उम्र में अकेले रहना निरापद नहीं।⁶ चिंता के साथ ही साथ सलाह भी है। उम्र के पड़ाव पर किस तरह जान का खतरा बना रहता है, रामविलास शर्मा के पत्र में देखा जा सकता है। भरोसे के आदमी रहे कहीं — बहुत कम भरोसे के लोग होते हैं, जिसके समक्ष व्यक्ति हृदय खोलकर रख सके। रामविलास शर्मा को केदारनाथ अग्रवाल की इतनी चिंता थी तभी तो वह लिखते हैं, “जान है तो जहान है, यह सोच कर अपनी सुरक्षा का ध्यान रखना।”⁷

अपने सुख-दुःख का सामाचार केदारनाथ अग्रवाल देते हैं। वह लिखते हैं, “मैं, घर पर ही— अपने दफ्तर वाले बड़े कमरे में दिन-रात रहता हूँ। गरमी 44 डिग्री तक पहुँच गयी है— बेहद गरम दिन-रात होते हैं। दिन में दोनों दरवाजे भीतर से बंद कर लेता हूँ। बिजली रही तो पंखा हवा देता है— पलंग पर लेटा-लेटा हवा खा लेता हूँ— न रही तो हाथ का — बांस का बरसों पुराना पंखा घुमा-घुमा कर हवा खा लेता हूँ। परंतु दिन को पानी वाला कूलर नहीं चलाता— बस रात को 9 बजे से एक-दो बजे तक चलने देता हूँ और मसहरी लगाये सोता रहता हूँ। गरमी को इस प्रकार झेल लेता हूँ। चिंता न करना।”⁸ केदार भी जानते हैं कि रामविलास शर्मा को मेरी चिंता है तभी तो चिंतित न होने की बात कहते हैं।

रामविलास शर्मा के पत्रों में ज्ञान का अथाह भंडार है। सच पूछिये तो उनके पत्रों को पढ़कर ही हिन्दी साहित्य के विषय में काफी कुछ जाना जा सकता है। 16.5.1993 के पत्र में वह लिखते हैं, “भारतीय नवजागरण और यूरुप’ पुस्तक आधी हो गई है, बाकी आधी साल के अंत तक पूरी हो जायेगी। यूरुप के रैनसेंस से तुलना के लिए एक अध्याय हम तमिलनाडु के नवजागरण पर लिख रहे हैं। भारत की जातियों में आधुनिक भाषाओं के माध्यम से, सबसे पहले सांस्कृतिक विकास तमिल जाति का हुआ। इटली की तरह साहित्य के साथ वह कलाओं में भी समृद्ध है। इटली से भिन्न यहाँ नृत्य कला का भी खूब विकास हुआ। नटराज की मूर्तियों में शिल्पियों ने नृत्य की गति को बांध दिया है, वह अद्भुत है।”⁹ अद्भुत तो रामविलास शर्मा के पत्र है। एक-एक पंक्ति जैसे एक-एक ग्रंथ के विस्तार का निचोड़ हो। हिन्दी साहित्य में इस तरह के दो रचनाकार हैं— एक तो रामविलास शर्मा और दूसरे बिहारी। बिहारी रीतिकाल के प्रमुख कवि थे। ‘रीति’ धारा के पुरस्कर्ता। लगभग 720 दोहों के रचनाकार; उनका स्थान अमर है। एक-एक पंक्ति जैसे संपूर्ण ग्रंथों का निचोड़ है। बिहारी को लोग क्यों याद करते हैं? उनके ऊँचे स्थान का कारण उनके दोहे हैं जो कि देखने में छोटे अवश्य हैं लेकिन गंभीर घाव करते हैं। रामविलास शर्मा के पत्रों की एक-एक पंक्ति साहित्यिकता, मार्मिकता और रचनात्मकता के स्तर पर बेजोड़ है।

जाति के विषय में रामविलास शर्मा ‘भाषा और समाज’ पुस्तक में लिखते हैं, “भाषा बोलने वाला समुदाय विकास की विभिन्न अवस्थाओं में एक रूप नहीं रहता। मनुष्य पहले छोटे गण-समाजों में संगठित होते हैं, फिर ये विभिन्न गण-समाज अपने गण संघ बनाते हैं। गण-संघ बनाने के समय किसी भी गण-विशेष की भाषा की वही स्थिति न रहेगी जो उसके अलगाव के समय में थी। परस्पर विनिमय के बढ़ने के साथ भाषा-तत्वों का विनिमय भी बढ़ता है।

गण-व्यवस्था समाप्त होने पर सामंती व्यवस्था का चलन होता है। रक्त सबंध पर आधारित गण-समाज टूट जाते हैं या बड़े समाजों में समेट लिये जाते हैं। वर्णाश्रम धर्मवाला यह छोटे पैमाने का उत्पादन करने वाला समाज जनपदों में गठित होता है। पुनर्व्यापार के प्रसार और पूँजीवादी सबंधों के निर्माण के साथ ये जनपद अलगाव की स्थिति में नहीं रह जाते। सामंती व्यवस्था में जनपद टूट जाते हैं या और बड़े संगठनों में समेट लिये जाते हैं। इस नये संगठन का नाम है जाति (नेशन)।¹⁰

रामविलास शर्मा 'कवियों के पत्र' में लिखते हैं, "सुमन कभी-कभी अवधी में पत्र लिखते थे या हिन्दी के बीच में अवधी वाक्यों और शब्द बंधों का प्रयोग करते थे। जब-तब मैं भी उन्हें अवधी में पत्र लिखता था। अवधी में लिखा जाए या मानक हिन्दी में, इस तरह की समस्या अनेक जनपदीय लेखकों के सामने उस समय थी। इसी विषय पर विस्तार से मैंने 'भाषा और समाज' में लिखा था। मई 1948 में मैंने सुमन को लिखा था, "तुम तो जनपदवादी हो न।"

"फिर हिन्दी जाति की अवधारणा प्रस्तुत करते हुए मैंने कहा था, "हमारे पुरखे जनपदीय बोलियों में लिखते थे। फिर उन्होंने बोली छोड़ दी और उनकी सतान खड़ी बोली में लिखने लगी। यह किस कारण? कारण यह – याक नई नैशनैलिटी बनाते रहे, ई बरे।

'जो नई नैशनैलिटी बन रही थी, वह हिन्दी भाषा अथवा जाति थी।'¹¹

रामविलास शर्मा जी को हिन्दी जाति की चिंता थी। हिन्दी क्षेत्र की जातीय अस्मिता के विषय में वह कहते हैं, "हिन्दी क्षेत्र 'काउबेल्ट' है। यहाँ मनुष्य नहीं पशु रहते हैं यदि मनुष्य होते तो 'काउबेल्ट' कहने वालों का जमकर विरोध करते। यहाँ के बुद्धिजीवी अन्य प्रदेशों से सौ साल पीछे हैं। महाराष्ट्र या बंगाल में जातीय चेतना का जो प्रसार हुआ, उसे ये प्रांतीयता कहकर मन को तसल्ली दे लेते हैं। अपनी राष्ट्रीयता पर अभिमान करते हैं, परंतु दिल्ली के विश्वविद्यालयों से अंग्रेजी नहीं हटा सकते। बड़े-बड़े पूँजीपति हिन्दी प्रदेश में रहते हैं, राष्ट्रीय दैनिक अंग्रेजी में निकालते हैं। अयोध्या, काशी, प्रयाग हिन्दी प्रदेश में हैं। इस प्रदेश का कोई सांस्कृतिक इतिहास नहीं लिखा गया। भारतीय संस्कृति के नाम पर पड़ोस और पुरोहितों के प्रतिनिधियों ने तीर्थों से राजनीतिक लाभ उठाया है। संप्रदायवाद, जातिवाद के आधार पर सरकारें हमारे प्रदेश में बनी हैं। भारत का कोई प्रदेश सात राज्यों में विभाजित नहीं है— हिन्दी प्रदेश को छोड़कर भारत का विभाजन हुआ तो पंजाब के दो भाग हुए। यहाँ सात राज्यों की राजभाषा हिन्दी है। इनमें किसी राज्य को तोड़ने की बात कही जाए, तो समर्थन मिल जाएगा। यदि इन राज्यों को जोड़ने की बात कही जाए तो विरोध होगा। लोग कहते हैं, इतने बड़े राज्य का शासन कैसे चलाया जाएगा। अंग्रेज बहुत समझदार थे, इसलिए भारत का विभाजन कर गये। फिर पूर्वी बंगाल अलग। अब शासन में और सुविधा होगी। अब यदि कश्मीर अलग हो जाए, दक्षिण भारत अलग हो जाए तो सुविधा ही सुविधा हो जाएगी।"¹² हिन्दी जाति के प्रति ऐसी चिंता रामविलास शर्मा ही कर सकते थे। आज हमारे देश की राजनीतिक स्थिति बद से बदतर हो गयी है। हालात 'ट्रैजिक' हो चुके हैं। एक राष्ट्र के न बन पाने की स्थिति रामविलास शर्मा के अंतर्स्थ को कचोटती है तभी उक्त बात वह व्यंग्यात्मक लहजे में कहते हैं। भारत के अलगाव के मुद्दे पर वह सवेदनशील होकर सोचते थे। उनका चरित्र राष्ट्रीय था। राष्ट्रवादिता उनमें कूट-कूट कर भरी थी। ध्यान रहे यह राष्ट्रवादिता कट्टर पंथियों के राष्ट्रवाद से भिन्न थी। उनके राष्ट्रवादी चिंतन में गरीब और

मजदूर थे। तभी तो वह कहते हैं, "भारत की लगभग एक तिहाई जनता हिन्दी प्रदेश में रहती है। वह आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से पिछड़ी हुई है। अगर वह इसी दशा में रहती है तो पूरा देश उन्नति नहीं कर सकता। इस दशा को बदलने के लिए हिन्दी जनता को राजनीतिक रूप में शक्तिशाली बनना है। इसके लिए दो कार्य आवश्यक हैं— पहला सात राज्यों को मिलकर एक जातीय प्रदेश का निर्माण, हिन्दी जाति प्रदेश। और दूसरा यहाँ के गरीब किसानों, खेतिहर मजदूरों, शहर के गरीब मध्यवर्ग के लोगों, दिहाड़ी पर काम करने वाले मजदूरों को संगठित करके वर्तमान अर्द्ध औपनिवेशिक व्यवस्था को बदलने के लिए संघर्ष करना। यह व्यवस्था अर्द्ध औपनिवेशिक इसलिए है कि यहाँ देशी पूँजीवाद से विदेशी पूँजीवाद ज्यादा शक्तिशाली है। हिन्दी और सभी भारतीय भाषाओं से अंग्रेजी का स्थान ऊँचा है तथा सामंती व्यवस्था के अवशेष धार्मिक अधविश्वासों जाति बिरादरी वगैरह — अब भी जड़ जमाये हुए हैं। इस परिस्थिति को बदलने के लिए हिन्दी जनता का संगठित प्रयास आवश्यक है।"¹³

"रामविलास जी साहित्य पर विचार करते हुए अन्य आलोचकों की तरह अक्सर या ज्यादातर तर्कों के सहारे अपनी स्थापनाएँ प्रस्तुत नहीं करते थे, वे तथ्यों के समांतर तर्कों को रखते थे। उनकी स्थापनाएँ अक्सर अकाट्य होती थीं। वे हिन्दी के आधुनिक दौर के पहले लेखक हैं, जिनके लेखन को दूसरे के द्वारा व्याख्यायित करने की जरूरत नहीं है। हिन्दी का हर पाठक उनकी किताबों को पढ़कर उन्हें समझ सकता है। रामविलास जी हिन्दी के आधुनिक दौर के पहले लेखक हैं, जिन्होंने वामपंथी पार्टियों और संगठनों के ढोंग को ताक पर रखते हुए भारत में मार्क्सवाद का स्वरूप क्या हो, यह तय करते रहे—और हिन्दी भाषा की ताकत और हिन्दी जनता के निहितार्थ को लिख-लिख कर जीवन भर सबको समझाने का प्रयत्न किया। गांधी के बाद किसी दूसरे विचारक ने व्यापक सरोकारों के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी भाषा को उतना गौरवान्वित नहीं किया जितना रामविलास जी ने। मार्क्सवाद से जीवन के अंतिम छोर तक जितनी गहरी रचनात्मकता सहित वे जुड़े रहे, वैसा अन्यत्र कहीं दिखाई नहीं देता। जितना वे अपनी लगन के प्रति ईमानदार थे उतना ही अपनी निष्ठा के प्रति वफादार थे। सुनियोजित लिखना चाहा और लिखा, मित्रता की और निभाई। जन कवि केदारनाथ अग्रवाल से उनकी गहरी दोस्ती थी और उनको उन्होंने बहुत प्रोत्साहित किया।"¹⁴ रामविलास शर्मा ने समकालीनों को प्रोत्साहित किया। जो भी उनसे सीखना चाहता था वे उसे सिखाते थे।

वैसे तो 'मित्र संवाद' का सिलसिला 91 में आकर खत्म होता है। 'मित्र संवाद' में सकलित होने के अर्थ में यह उक्ति है। लेकिन यह सिलसिला अंत तक चलता रहा। सन् 1991 से लेकर सन् 1995 तक के पत्र 'गूँज' पत्रिका में 'मित्र संवाद' शीर्षक से ही सकलित है। इस प्रकार मात्र 56 वर्ष का दस्तावेज न होकर 60 वर्षों का दस्तावेज 'मित्र संवाद' बन जाता है। 'मित्र संवाद' पुस्तक में कुल 619 पत्र हैं। गूँज पत्रिका ने कुल 21 पत्रों को संपादित किया है। कुल मिलाकर (619+21 यानि 640 पत्र) छः सौ चालीस पत्र होते हैं, जिनका शीर्षक 'मित्र संवाद' है। बिहारी के दोहों से थोड़ा सा कम। अब आप देखेंगे तो पायेंगे इन 640 पत्रों में 60 वर्षों का युग बोलता है। पत्र तो निहायत आत्मीय हैं लेकिन सार्वजनीनता इनकी बेधकता और सवेदनाशीलता को उद्घाटित करती हैं। 'मित्र संवाद' का पहला पत्र 29.7.1935 को रामविलास शर्मा लिखते हैं और अंतिम पत्र भी रामविलास शर्मा ही 5.4.1995 को लिखते हैं। हालांकि 'मित्र संवाद' (केदारनाथ अग्रवाल और रामविलास शर्मा के पत्रों का सकलन) का अंतिम पत्र केदार ही

लिखते हैं। जबकि 'मित्र संवाद' (केदारनाथ अग्रवाल और रामविलास शर्मा के बीच पत्राचार की एक झलक)¹⁵ में शुरूआत केदारनाथ अग्रवाल करते हैं अंत में डॉ. रामविलास शर्मा।

दोनों मित्रों ने उस जमाने को भी देखा था जब साइकिल क्या ऊँट गाड़ी भी मुश्किल से ही मिल पाती थी। दोनों मित्रों ने पैदल युग से लेकर मोटर-गाड़ी-ट्रेन युग को देखा था। पूरे का पूरा युग उनकी नज़रों के सामने से खौफ़ज़दा होकर गुजर गया। दोनों मित्रों ने समय को जीत लिया था। उनके हृदय में पीड़ा भी थी। दोनों एक-दूसरे से अपनी पीड़ा का इजहार पत्रों में करते हैं। केदार के प्रौढ़ावस्था में ही उनके दामाद की मृत्यु हो गयी थी। पुत्री विधवा हो चुकी थी। रामविलास शर्मा के सामने उनके पुत्र ललित का देहौत हो गया था। इस पर केदारनाथ अग्रवाल लिखते हैं, "आज श्री जसवीर त्यागी के पत्र से ज्ञात हुआ कि प्रिय ललित का देहौत हो गया है। दुःखद समाचार है। पर यह तो हम सब मनुष्यों को भोगना पड़ेगा और हम लोग भी न रहेंगे। इस दुनिया में, मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम इस दुःखद घटना से अपना धैर्य न खोओगे और दिल्ली से वहाँ तक जाने की कोशिश भी न करना। शरीर से पूरे शिथिल हो – किसी तरह जी रहे हो। प्रिय विजय वगैरह पहुँच गये होंगे।"¹⁶ दोनों एक-दूसरे को दुःख के समय ढाँढस बंधाते हैं। इतना होने के बावजूद कहीं पर भी वे लोग टूटे नहीं हैं। बिल्कुल निराला की तरह। निराला से दोनों मित्रों ने विपरीत परिस्थितियों में धैर्य न खोते हुए साहित्यिक सेवा करने का गुर सीखा था। सीखते भी क्यों न – जो कि निराला उस परिवार के वरिष्ठ थे और शायद दोनों मित्र के आदर्श।

निराला की पुत्री का 'देहौत' हुआ तो सरोज-स्मृति जैसी रचना आम जनता के समक्ष आयी। वह एक मन निराला का था जो अंत तक नहीं थका। निराला की तरह रामविलास शर्मा का मन नहीं थका। विष्णु चंद्र शर्मा लिखते हैं, "किसी एक कवि में इतने निराला समाये हुए नहीं हैं जितने कवि रामविलास शर्मा में। उनकी कविता का परिवेश, कविता का बिम्ब-विधान, छंद और भाषा, सभी में आज हम एक-एक निराला को पहचान सकते हैं। दूसरा कोई आलोचक नहीं है जिसे पढ़कर आपको निराला की ही याद न आए। निराला का काव्यानुमान जिस तरह रामविलास शर्मा की आलोचना में पिरोया या दौड़ता हुआ मिलता है, वैसा किसी दूसरे आलोचक में नहीं। आचार्य राम चन्द्रशुक्ल ने जैसे जायसी और तुलसी के काव्य-शिल्प से अपनी आलोचना का मानदण्ड रचा या संगठित किया, बहुत हद तक रामविलास शर्मा ने निराला की जीवनी और कविता की व्याख्या से अपनी आलोचना को पुष्ट और अपने मार्क्सवादी आलोचना का धरातल तैयार किया। मैं जब-जब डॉ. शर्मा से मिलता रहा, तो एक मन मेरा उनमें छिपे निराला की खोज किया करता था। उनसे भेंट मैंने साहित्यिक संघ में की थी। फिर बजड़े की गोष्ठी में आ. शुक्ल पर उनका वक्तव्य सुना था। दोनों जगह वह आलोचक निराला की जमीन पर अपनी बात जोर देकर कह रहे थे और उनकी दृढ़ता उनके मानदंड का रूप ले रही थी।"¹⁷ इस प्रकार रामविलास शर्मा का साहित्यिक संधान अनवरत चलता रहा।

उम्र की ऐसी दहलीज पर जब लोग थक-हारकर, दुनियादारी की उलझनों में पड़कर लिखना-पढ़ना छोड़ देते हैं तब भी रामविलास शर्मा का साहित्यिक विमर्श जारी रहता है। 20.8.98 के पत्र में रामविलास शर्मा लिखते हैं, "यहाँ बिजली अक्सर चली जाती है। तीसरा पहर। हम कुर्सी निकाल कर बाहर बैठे। सड़क पर यूकलिप्टस के पेड़ों पर बादल उठें, बादल क्या थे, धुएँ का सागर था जो लहराता हमारे घर की तरफ चला आता था। हवा चली। हमने स्वयं को हवा

को समर्पित कर दिया। उसने तन-मन का ताप हर लिया। हम हरे हो गये। फिर पानी बरसा और बरसता ही रहा। अंगूर की बेल पत्तियाँ लहलहा उठीं, उनका रंग गाढ़ा हो गया, इतना कि कमरे में अँधेरा छा गया। माली ने आकर पत्तियाँ छांट दीं। आसमान में बादल छट गये, धूप निकल आई।¹⁸ यह पत्र सामान्य पत्र नहीं है। बिजली अक्सर चले जाने का अभिप्राय जीवन के दुःख से है। तीसरा पहर अर्थात् उम्र का तीसरा पहर, चौथा तो मृत्यु ही होता है। यूकलिप्टस के पेड़ ऊँचे होते हैं पत्ते ऐसे कि उनसे छाया मिलती ही नहीं। बादल उठने के बाद हवा का चलना कितना सुखद होता है, इस पत्र में स्पष्ट है। बादल छटने के बाद धूप का होना अर्थात् कालिमा की गहराई से निकल प्रकाशित जीवन कितना आह्लाद कारी होता है, रामविलास शर्मा के पत्र से स्पष्ट है। 'माली ने आकर पत्तियाँ छांट दीं' में कौन सा माली। दरअसल वह माली कोई दूसरा नहीं बल्कि उनके भीतर की ऊर्जा और विपरीत परिस्थितियों से लड़ सकने की क्षमता है। यह पत्र पुत्र ललित की मृत्यु के बाद का लिखा है। जीवन के रहस्य को खोलता हुआ यह पत्र बेहद मार्मिक है। ऊपर से सामान्य दिखता यह पत्र अत्यंत उच्च कोटि की संवेदनशीलता को स्पन्दित करता है। तो यही होती है— रचनाकरों की पहुँच। कमरा कैसा? वह भीतर का कमरा है। रामविलास शर्मा का व्यथित हृदय है। मुक्तिबोध के यहाँ भी 'कमरा' आता है। 'अँधेरे में' की शुरुआत करते हुए वह लिखते हैं—

“जिन्दगी के...

कमरों में अँधेरे

लगाता है चक्कर

कोई एक लगातार;

आवाज पैरों की देती है सुनाई

बार—बार... बार—बार,

वही नहीं दीखता.. नहीं ही दीखता,

किन्तु, वह रहा घूम

तिलस्मी खोह में गिरपतार कोई एक,

भीत—पार आती हुई पास से,

गहन, रहस्यमय अंधकार ध्वनि—सा

अस्तित्व जनाता,

अनिवार कोई, एक

और मेरे हृदय की धक्—धक्

पूछती है— वह कौन

सुनाई जो देता, पर नहीं देता दिखाई।”¹⁹

इस कविता को देखें और रामविलास शर्मा के उक्त पत्र को देखें 'अंगूर की बेल की पत्तियाँ लहलहा उठीं, उनका रंग गाढ़ा हो गया, इतना कि कमरे में अँधेरा छा जाने' की चर्चा रामविलास शर्मा करते हैं। पत्र में माली है और कविता में 'अस्तित्व जनाता अनिवार कोई एक'।

रामविलास शर्मा माली को आते हुए देखते हैं जबकि मुक्तिबोध का हृदय धक्-धक् करता हुआ पूछता है कि वह कौन सी सत्ता है, जो सुनाई देती है जबकि दिखाई नहीं देती।

“ ‘अंधेरे में’ की फ्रैण्टेसी का उपयोग कवि ने काव्य की रचना-प्रक्रिया और उसकी सक्रिय वस्तुनिष्ठ भूमिका की अभिव्यक्ति के रूप में किया है। इस माने में सारी कविता ‘परम अभिव्यक्ति’ की खोज है। यह ‘परम अभिव्यक्ति’ कोई सिद्धों, संतों या रहस्यवादियों की नहीं है। मुक्तिबोध ने काव्य की सार्थकता के लिए ‘परम’ शब्द को प्रचलित उदात्तीकरण के वजन पर जीवन के अतर्गत, जीवन से दूसरे ओर उसमें प्रसारित होने के अर्थ में प्रयुक्त किया है। इस माने में, रहस्यवादी या आदर्शवादी ऊँचाई से भिन्न काव्य की सम्पूर्णता को एक प्रगतिवादी भाषा दी है। उनकी परम अभिव्यक्ति का अर्थ है— सत्चित, वेदना की सक्रिय और सर्जनात्मक अभिव्यक्ति।”²⁰ रामविलास शर्मा के माली का अर्थ भी यही है। सत्, चित्, वेदना की सक्रिय और सर्जनात्मक अभिव्यक्ति उक्त पत्र में है। कोई भी रचनाकार विस्तृत फलक पर एक-दूसरे से जुड़ता है। ‘अंधेरे में’ का और उक्त पत्र का माने एक ही है। रामविलास शर्मा का भी माली सिर्फ एक माली नहीं है बल्कि वह उनके भीतर की ऊर्जा है। वह उनका हथियार है। गरीब, शोषित, पीड़ित वर्ग का प्रतिनिधि है। अमीरी के गहरे बादल को छोटने वाला माली है। युग की विषमताओं से घात-प्रतिघात करने वाला माली है। सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधि चरित्र है। क्रांति का उद्घोषक है। एक स्तर पर जहाँ ढोंढस बंधाने वाला माली है, वहीं दूसरे स्तर पर समाज के एक-एक चरित्र को साहित्य की संवेदना पर उद्घाटित करने वाला माली है। समाज की विषमता तब छटेगी, जब सर्वहारा, किसान सभी एक होंगे।

धूप और सूर्य के प्रकाश की चर्चा निराला के यहाँ भी है। रामविलास शर्मा लिखते हैं, “तुलसीदास की शुरुआत होती है सूर्यास्त से किन्तु आगे चलकर कविता में चोंदनी है या सूर्य का प्रकाश, घना अंधेरा कहीं नहीं है। सरोज-स्मृति में प्रकाश-दर्शन का आश्वासन है, कविता में हल्की-फुलकी धूप है, निविड अंधकार जहाँ-तहाँ है। किन्तु राम की शक्ति-पूजा के आरंभ में रवि हुआ अस्त के बाद जो रात्रि शुरू होती है, उसमें आकाश अंधकार उगलता हुआ—सा दिखाई देता है। यह अंधकार साधारण प्रतीक-व्यंजना नहीं है, अंधकार अर्थात् दुःख, प्रकाश अर्थात् सुख, वैसा समीकरण यहाँ नहीं है। निराला अब ऐसी मनःस्थिति में है जब तीव्र आवेग उत्तेजक पदार्थों, आवेग उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों से अलग होकर — नये बिम्बरूपों में परिवर्तित हो जाते हैं। जैसे सविकल्प समाधि में योगी को तरह-तरह के मधुर स्वर सुनाई देते हैं, तरह-तरह के फूलों में खुशबू उसके मन पर छा जाती है, वैसे ही निराला का मन वेदना के तीव्र आघात सहता हुआ तरह-तरह के स्वर सुनता है, तरह-तरह के दृश्य देखता है। वह स्वर है राम की शक्तिपूजा के छंद का स्वर जो— जल राशि राशि जल पर चढ़ता खाता पछाड़ की तरह पक्ति के अंत में पछाड़ खाकर गिरता ही नहीं है, वरन अनेक पंक्तियों के विराम स्थलो को पार करता हुआ विशद जल प्रपात की तरह पाठक को अभिभूत कर देता है।”²¹

जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास का मूल्यांकन सिर्फ ‘रामचरित मानस’ को ध्यान में रखकर नहीं हो सकता उसी प्रकार रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल के ‘मित्र-संवाद’ का मूल्यांकन सिर्फ ‘मित्र-संवाद’ को केन्द्र में रखकर नहीं हो सकता। ‘राम चरित मानस’ के साथ ‘कवितावली’, ‘विनय पत्रिका’, ‘जानकी मंगल’, ‘पार्वती-मंगल’, ‘रामलला नहछू’ को भी ध्यान में रखना पड़ता है और ‘मित्र संवाद’ के साथ ‘कवियों के पत्र’ और रामविलास शर्मा द्वारा सम्पादित

तीन महारथियों के पत्र' को भी ध्यान में रखना पड़ता है। 'मित्र सवाद' पत्र-साहित्य में गालिब के पत्रों के बाद 'क्लैसिक कृति' है। यह हिन्दी पत्र-साहित्य की विशिष्ट कृति है। जिसमें हिन्दी के दो महान रचनाकारों का जीवन बोल उठता है। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी 'पाती को आधा नहीं बल्कि मिलन मानते हैं।' वस्तुतः ऐसा ही है— यदि किसी को सदेह हो तो उसे 'मित्र सवाद' को पढ़ना चाहिए। ऐसी सवाद धर्मिता दुर्लभ है। कहा जाता है कि केशव की सवाद योजना विशिष्ट है लेकिन मित्र सवाद की सवाद धर्मिता को बनाये रखने के लिए दो मित्र स्वयं हैं और बड़ी बात यह कि दोनों रचनाकार हैं। सृजनधर्मिता का आस्वाद दोनों चखना चाहते हैं।

कमल पुजाणी लिखते हैं, "देश विदेश में बसने वाले समयस्क और समान विचारधारा के व्यक्तियों से पत्रों के द्वारा मित्रता भी स्थापित की जा सकती है।"²² समयस्क तो है लेकिन एक की सृजनधर्मिता आलोचना की ओर अग्रसर है तो दूसरे की कविता की ओर। हों विचारधारा के स्तर पर दोनों का हृदय-सवाद निरंतर चलता रहता है। कमल पुजाणी लिखते हैं, "पत्र को जब हम कला और साहित्य के रूप में देखते हैं, तो अपनी कुछ विशेषताओं को भी ध्यान में लेते हैं। अन्य साहित्य रूपों की अपेक्षा पत्रों का महत्व इसलिए अधिक होता है कि उनमें भावना की अभिव्यक्ति बहुत-कुछ अकृत्रिम रूप में होती है और उनमें एक प्रकार की विश्वसनीयता होती है कि इन पर सर्वसाधारण की दृष्टि न पड़ेगी कि लेखक के व्यक्तित्व, कृतित्व और समकालीन परिस्थितियों के सबंध में जो प्रमाणिक तथ्य पत्र-साहित्य में उपलब्ध होते हैं, वे अन्य-साहित्य रूपों में नहीं। इससे अनुसंधान को बल मिलता है और अनुसंधित्सुओं की कुछ गुंथियाँ अपने आप सुलझ जाती हैं।"²³ 'मित्र-सवाद' में तत्कालीन परिस्थितियाँ लगभग 56 वर्ष की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, स्थिति स्पष्टतया परिलक्षित हैं। दिनकर उर्वशी विवाद हो अथवा राम की शक्ति पूजा पर बहस, सभी बिन्दुओं पर दोनों मित्रों की दृष्टि जाती है।

मित्र सवाद में सांस्कृतिक विचारों की कमी नहीं है बल्कि पूरे युग का सबंध तत्कालीन समाज और संस्कृति से है। कमल पुजाणी लिखते हैं, "सांस्कृतिक विचारों के लिए भी पत्र एक उत्तम माध्यम है। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के शब्दों में, "विश्व के प्रति अनंत मैत्री की भावना ही संस्कृति है।"

'युगविधायक महापुरुषों एवं साहित्यकारों की पत्र-मैत्री हमारे सम्मुख विश्व-मैत्री का आदर्श प्रस्तुत करती है। मार्क्स और एन्जल्स की पत्र-मित्रता विश्व इतिहास में सुप्रसिद्ध है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ द्वारा दीनबन्धु एण्ड्रूज को अर्गेंजी में लिखे गये पत्र 'लेटर्स टू ए फ्रेड' शीर्षक पुस्तक में संकलित है। यह पुस्तक लन्दन से प्रकाशित हुई है और 'मित्र के नाम पत्र' शीर्षक से इसका हिन्दी अनुवाद भी बहुत पहले प्रकाशित हो चुका है। विश्व-विख्यात रूसी साहित्यकार लियो ताल्सताय द्वारा सन् 1887 ई. में फ्रांसीसी नवयुवक रोमा रोला को जो पत्र लिखा गया था वह कला और सांस्कृतिक विचारों से ओतप्रोत था। उस पत्र ने युवक रोमा रोला की जीवन-धारा ही बदल दी। उन्हें इस बात की बिल्कुल आशा नहीं थी कि ताल्सताय जैसा महान लेखक उन जैसे एक मामूली विद्यार्थी के पत्र का उत्तर देगा, किन्तु ताल्सताय ने 38 पृष्ठ का जवाब भेज दिया। बस उसी दिन से रोमा रोला ने निश्चय किया कि यदि कोई आदमी अपने संकट के समय में अपनी अंतरात्मा से प्रेरित होकर पत्र लिखेगा तो उसका अवश्य उत्तर दूंगा। परिणामस्वरूप उन्होंने सहस्रों ही पत्र लिखे। रोमा रोला के ग्रंथों के समान उनके पत्रों का भी महत्व है, जिनके द्वारा उन्होंने सैकड़ों लेखकों का पथ-प्रदर्शन किया था और असंख्य दुःखितों तथा पीड़ितों के

हृदय को सात्वता प्रदान की थी। ताल्लसताय की उस एक चिट्ठी ने जो बीज बोया था, वह वट-वृक्ष के रूप में पल्लवित हुआ।²⁴ रामविलास शर्मा के ग्रंथों के समान उनके पत्रों का भी महत्व है। 'मित्र संवाद' के पत्रों में समूचा युग प्रतिबिम्बित होता है। "लियो ताल्लसताय का 7.9. 1910 को महात्मा गांधी के नाम लिखा पत्र भी सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण था। यह पत्र क्या था, अहिंसा पर विस्तृत भाष्य था। इस उत्कृष्ट पत्र को अपने पास सुरक्षित रखने के लिए लंदन के एक व्यापारी ने 2800 पौंड चुकाये थे। इस प्रकार सांस्कृतिक विचारों के विनिमय में पत्र बहुत बड़ी भूमिका निभा सकते हैं।"²⁵

हिन्दी में और भी कई पत्र-संकलन छपे हैं। इनमें 'पाती फिर आई' भाषा साहित्य-संस्कृति के सूत्र (पत्र-संग्रह) हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से छपा है इसका प्रकाशन वर्ष 1991 है। परिमल प्रकाशन इलाहाबाद से सन् 1992 में 'प्रेमचन्द: पत्र प्रसंग' छपा है। इसके संपादक मंगलमूर्ति हैं। कन्हैया लाल फूलफगर ने 'दिनकर के पत्र' का संपादन किया है जो कि 1981 में दिनकर शोध-संस्थान कलकत्ता से छपी है। 'महाराजा रघुबीर सिंह के पत्र राजकमल बोरा के नाम' सन् 1996 में छपा है। इसके संपादक राजकमल बोरा हैं। 'प्रेमचन्द के नाम पत्र' का संपादन कमल किशोर गोयनका ने किया है। इसका प्रकाशन वर्ष 2002 है जो अनिल प्रकाशन नई सड़क से छपी है। 'इन खतों से खुशबू आती है' का संपादन शंकर दयाल सिंह ने किया है। इसको सन् 1999 में प्रभात प्रकाशन, दिल्ली ने छपा है। डॉ. बिन्दु अग्रवाल ने 'पत्राचार' (भारत भूषण अग्रवाल और उनके समकालीन लेखकों एवं परिवारजनों के बीच पत्राचार) को संपादित किया है। इसे सन् 2001 में भारतीय ज्ञानपीठ ने छपा है। 'प्रतिनाद' नरेन्द्र कोहली द्वारा संपादित पत्रों का संकलन है। इसे वाणी प्रकाशन ने छपा है। इसका प्रथम संस्करण 1996 का है। 'चिट्ठिया हो तो हर को बाँचे' फणीश्वर नाथ रेणु से संबंधित पत्र-संग्रह है। इसके संकलन-संपादन कर्ता भारत यायावार हैं। इसका प्रकाशन वर्ष 1999 है। 'तीन महारथियों के पत्र' के संपादक डॉ. रामविलास शर्मा हैं इसका प्रकाशनवर्ष 1997 है। 'कवियों के पत्र' का प्रकाशन वर्ष 2000 है। 'कवियों के पत्र' में भी संवाद रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल के बीच ही होता है। शेष के बीच पत्र-व्यवहार।

'कवियों के पत्र' में शिवमंगल सिंह सुमन अवधी में पत्र लिखते हैं, "आखिर 'युग का मोल' ढूँढिही लीन्ह्यो, तुम्हारि चिट्ठी अउर युग का मोल पायके फूल के कुप्पा होई गयन, जानि परत है हमारि रही-सही सबै इच्छा पूरी करि डरिहौ। बिगरिउ बनाय दइहौ। साथ में मां डांगे के भाषण 'जन-जीवन और साहित्य' क्यारौ पता लगाई लीन्ह्यौ। वहिमा अनुवादक की जगा हमार नामु नहीं तो का भा? हमारु काम तो होइगा। एक बात अउर जानि लेव इन कवितन का फिर से पढा तौ ई हमका तनिको बासी नाहीं लागी। हमारु मन राई-रतिउ भर दृप्त नहीं भा। ऐस लाग कि जउब सोवियत व्यवस्था के संघर्ष का हम जय जयकार कीन्हेन अबै वहु संघर्ष जारी है अउर जारी रही जब तक सारी दुनिया मां सच्ची सोवियत व्यवस्था न स्थापित होइ जाय। अब मास्को अउर लाल सेना प्रतीक बनिये हैं। जैसे कुसन की जडमा माठा डारि-डारि के चाणक्य वहि का मूल भसम करि दीन्हिन तै वैसे ई हमारि कवितौ तब तक तनिकौ बेअसर न होई। यही तै हम 'कलकत्ते का अकाल' 1943 के अंत में लिखि दीन्ह रहे कि-

मानवता की शपथ ले रहे हैं यह कहकर आज

एक-एक दाने का बदला ले लेंगे मय ब्याज

उलट तुम्हारी सड़ी व्यवस्था डालेंगे यह नींव
 फिर न बिसुर-बिसुर कर मरे नरतन धारी जीव।।
 वर्ग भेद शोषक शोषित के फिर न पड़ेंगे देख
 आगे के कवि को न पड़ेगा लिखना ऐसा लेख।।

मानौ चाहे न मानौ 'कलकत्ते के अकाल' वाली कविता हम रोय-रोय के लिखा रहै। उन दिनन रोजु-रोजु अखबार मा अकाल का दिल दहलावै वाली खबरि पढिकै अइस मन खराब होइ जात रहा कि ग्वालियार मा हमरे घर के पासै जउन माझे की माता नाम पहडिया रहै हुआ जाय के पचास-पचास, साठ-साठ छंद मनै मा लिखि कैया गुनगुनाय कै घर मा आपकै उनका कागज मा उतार ल्यात रहन अउर एकौ अच्छर या मात्रा का राई-रत्तिउ अंतर नहीं परत रहा। अब केहि ते बताई कि हमरिउ कविता का कबहूँ वहै दौरु रहि चुका है। यहि ते जब रूस का सोवियत ढाँचा ढहा तब हम तनिकौ निराश नहीं भयना, काहे कि जउन ढाँचा चरमरायगा वहु तौ fanaticism वाला घोर कट्टरपंथी, विवेकहीन, अंधविश्वास वाला अंशु रहै। मार्क्स तो पहिले हि कहि दीन्हैनि रहै कि द्वंद्वात्मक भौतिकवाद तो वैज्ञानिक ऐतिहासिक विवेचन क्यार स्वस्थ हथियार है, जउन अपने-अपने देश के वातावरण, परिस्थिति अउर आर्थिक ढाँचा का देखि के प्रयोग कहै के बरे ईजाद कीन्हगा है। यही ते आज जब केरि युग का मोल पढ़ा तौ लाग कि वाणी प्रकाशन वाले हमार थ्वाड़-म्वाड जउन साहित्य उनके हाथ मां परा है वहिका — 'सुमन समग्र' के नाम से छापि रहे हैं, अउर पौंच खंड छापिउ चुके हैं, वहिमा अउर, 'मई दिवस', बर्लिन अब नजदीक है।, 'चुनौती' आदि यहिमा छपी कविताएँ न छपि पउतीं तौ कुछ कमी जरूर रहि जाति।²⁶ इसके बाद उक्त पत्र में ही शिव मंगल सिंह 'सुमन' लिखते हैं, "अब पानी मूडे तक अइहीगा है तो यही सुन लेव, हमरि आस्था मार्क्सवाद के प्रति आजौ अडिग है। हम अपनी रचनन मा आजौ वहै आस्था बनाए राखै का प्रयत्न पूरे जिउ-जांगर ते करै का प्रयत्न कीन्हन हैं।"²⁷ जिस प्रकार शिव मंगल सिंह 'सुमन' जीवन के अंतिम क्षण तक मार्क्सवाद के प्रति प्रतिबद्धता की बात करते हैं उसी प्रकार रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल की आस्था मार्क्सवाद के प्रति रही।

रामविलास शर्मा अपने समकालीनों को किस कदर प्रभावित करते थे, उसे 20.10.1997 के पत्र मे देखा जा सकता है। शिव मंगल सिंह 'सुमन' लिखते हैं, "तुम्हारी 23.9.97 कै चिट्ठी पाय के गदगदाय गयन। तुम ते तिनुक बतियाय लीन्हैते जिउ कुछ हलुकाम जात है। वहि मां तुम गुणहीन ब्राह्मण का गुणवान शूद्र से बढ़िके हवाय वाले उद्धरण का तु संदर्भ पूछये रहै। अब तुमने का बताई। ख्वाजत-ख्वाजत बहु पराशर स्मृति के आठवें अध्याय के 33वें श्लोक मा मिला। यानी कौटिल्य शास्त्र मा होयवाली बात झूठि निकरी। जहाँ तक हमका याद आवत है गोस्वामी जी पर कौने आलेख मा वहि क्यार उल्लेख हमका मिला रहै। मुला वहि के पीछे भटकत-भटकत कुछ लाभौ हाथ लगिगा। एक तो वदिका पाठ 'पतितोपि द्विज श्रेष्ठो' के स्थान पर 'दुःशीलोपि द्विज पूज्यो' निकरि आवा जउन पूजिय विप्रशील गुणहीन के ज्यादा नगीच है। यहि के अलावा अउरौ तमाम मिलत जुलत उद्धरण मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, गौतम धर्मसूत्र आदि मा. निकारि आए। पुरखौ कुछ सो चिट्ठी के लिखिन है हवै हैं पै जिउ तो खराब हैव्ही जात है। थ्वाड़ा यहै सौँचि के तसल्ली मिलि जाती है कि गौतम बुद्ध वहि जमाना मा बड़ी हिम्मत बाधिर कै कहि डारेन कि 'श्रेष्ठता जनम ते नहीं करम ते हवाति है।'²⁸ इस छोटे से पत्र में परंपरा का अवलोकन उत्कृष्ट कोटि का है। श्रेष्ठता जन्म से नहीं कर्म से होती है। इस पत्र का सार है कि आज भी समाज में

श्रेष्ठता जन्म से मानी जाती है। व्यक्ति की सामाजिक स्थिति की पहचान ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्यान्य जातियों से होती है। आजादी के 55 वर्षों के बाद भी स्थिति बहुत अधिक नहीं बदली है। शूद्रों का उत्पीड़न अब भी जारी है। गांधी जी के 'हरिजन' से वर्तमान परिवेश में 'दलित' तक का सफर तय कर चुके शूद्रों की स्थिति आज भी चिंताजनक है। उनमें भी दो वर्ग हो चुके हैं। एक तो प्रशासनिक अधिकारी तथा पदप्रतिष्ठा में उच्च और दूसरा निम्न मजदूर तबका जिसे सिर्फ दो वक्त की रोटी भी बड़े मेहनत से मिलती है। लेकिन पूरा लाभ सामाजिक स्तरीकरण में ऊँचे उठ चुके लोग ही ले जाते हैं। मजदूरों और गरीब किसानों (दलितों) को लाभ कहाँ मिल पाता है? आरक्षण हो या अन्यान्य सुविधाएँ सभी का लाभ दलित (क्रीमीलेयर में सम्मिलित) ही ले जाते हैं। मजदूरों को उनका हक नहीं मिलता। ठीक यही स्थिति सवर्ण तबके के साथ है। गरीब ब्राह्मणों और क्षत्रियों में भी हैं, लेकिन उन्हें कोई सुविधा नहीं। आर्थिक रूप से जर्जर सवर्णों की चिंता किसी को नहीं। सामाजिक-संस्कृति में सभी चीजें अर्थ से प्रभावित होती हैं, जिनके पास अर्थ नहीं वह नकारा है। निराला गरीब थे, गरीब क्या, हालात ने उन्हें गरीब कर दिया था। आर्थिक रूप से जर्जर किन्तु साहित्य उत्कृष्ट कोटि का है। गरीब होते हुए भी उनका साहित्य उत्कृष्ट कोटि का है। उन्हें कोई आरक्षण नहीं मिला था। आरक्षण की जरूरत क्या?

तुलसी तो रामविलास शर्मा के बेहद पसन्दीदा कवि हैं। शायद इसका कारण तुलसी का समाज को एक सुव्यवस्थित स्वरूप प्रदान करना है और तुलसी-साहित्य में वर्णित किसान-जीवन की चिंता। मध्यकाल के तुलसी और सूर ऐसे कवि हैं जिनके यहाँ किसान-जीवन, ग्रामीण जीवन झॉकता है। आधुनिक युग में केदारनाथ अग्रवाल।

"किसान खेती करता है, वही उसकी जिंदगी है। वह किसान नहीं जो हल को हाथ न लगाए और खेती मजदूरों से ही कराए। ऐसे लोगों को जमींदार या जागीरदार कहना अधिक वाज़िब होगा। असली किसानों में से कुछ किसानों के पास जमीन है और कुछ के पास नहीं। जिन किसानों के पास जमीन नहीं है वे खेतिहर मजदूर हैं। जाहिर है खेती करने वाले सभी किसान गाँव में रहते हैं। इसलिए उनकी हालत गाँव की हालत से ही जुड़ी हुई है।"²⁹ तुलसीदास जी के यहाँ 'जनक', हल चलाते हैं। सूखा पड़ने की स्थिति में सामान्य जनता के साथ होते हैं। रामविलास शर्मा जब किसानों पर लिखते हैं तो उनके जेहन में यही दृष्टि रहती है। असल में भारत किसानों का देश है। भारत की आजादी के समय अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित थी।

"आजादी की लड़ाई में बड़ी उम्मीद बंधी थी। यह लड़ाई लड़ी भी थी किसानों ने ही। बैरिस्टर मोहनदास करमचन्द गांधी ने अपना वकीली चोंगा, कोट और टाई उतार कर घुटनों तक की धोती और सिर पर मुंडेठा बांध कर किसानों के बाने में किसानों की अगुवाई की थी। रामराज्य का सपना देखा था किसान ने। आजादी आई मगर वह सपना पूरा नहीं हुआ शुरू में बड़े-बड़े एलान हुए। कुछ काम भी हुए। जागीरदारी, जमीनदारी खत्म हुई खेती और गाँव के विकास की योजनाएँ, सरकारी अफसरों और कर्मचारियों का रेला, तरह-तरह के कार्यक्रम, कर्ज, अनुदान और क्या न क्या। आजादी के समय खेती-किसानी वगैरह से सौ में सत्तर लोग पलते थे। बाकी तीस लोग दूसरे कामों में लगे थे- कारखाने के मजदूर, व्यापारी, ठेकेदार, बाबूसाहब, वकील, डॉक्टर, वगैरह। मगर आजादी के समय देश के कुल आमदनी में गाँव के सत्तर फीसदी लोगों का हिस्सा रुपये में पैंसठ पैसे था। बाकि तीस फीसदी लोगों का पैंतीस पैसे। और, आज

गाँव के सत्तर फीसदी लोगों का हिस्सा सत्ताइस पैसा रह गया है। और यह है सरकारी हिसाब सफेद धन का। इस समय शहरों में सफेद धन की बात कम, काले धन का रेला है रेला। इसलिए अगर हम इस हिसाब में काले धन को भी जोड़ दें तो कुल आमदनी में गाँव के सत्तर फीसदी लोगों का हिस्सा पंद्रह हद से हद बीस पैसे से ज्यादा नहीं बैठेगा। इस तरह शहर के तीस फीसदी शहरुआ डकार रहे हैं। 80 से 81 पैसे और सत्तर फीसदी गाँव के लिए बच रहते हैं 15-20 पैसे।³⁰ आज भूमंडलीकरण की संस्कृति है। किसान भूखा मर रहा है। किसान संस्कृति और किसानी जीवन नष्ट हो रहा है। 'मित्र-संवाद' में दोनों मित्रों की दृष्टि किसान-जीवन की जटिलताओं को उद्घाटित करती है। "आधुनिक भारत के प्रत्येक भाषाई क्षेत्र में सैकड़ों जातियाँ अथवा अंतर्गामी समूह हैं। चार या पाँच वर्ण केवल मोटी-मोटी अखिल भारतीय श्रेणियाँ सूचित करते हैं कि जिनमें असंख्य जातियों को कुछ अत्यंत सीमित उद्देश्यों के लिए ही समूहित किया जा सकता है। वर्ण आदर्श (मॉडल) के अनुसार, हरिजन या अछूत जाति-व्यवस्था के बाहर है और हरिजनों से संपर्क अन्य चार वर्णों के सदस्यों को अपवित्र करता है। पर यदि किसी प्रदेश की जातियों के बीच आर्थिक, सामाजिक ही नहीं, कर्मकांडीय संबंधों को भी देखा जाय तो हरिजन उस व्यवस्था के अभिन्न अंग हैं, वे कृषि में कुछ आवश्यक आर्थिक कार्य पूरा करते हैं, प्रायः गाँव के सेवकों, हरकारों और मेहतरों का कार्य करते हैं, और गाँव के उत्सवों-त्यौहारों पर ढोल पीटते हैं।"³¹ कहने का अभिप्राय यह है कि कृषि व्यवस्था और सामाजिक-व्यवस्था को सुदृढ़ करने में सभी का बराबर का योगदान है।

भारत का किसान-जीवन गाँवों से अधिक सम्बद्ध है। एक दूसरे में दोनों अनुस्यूत है। ग्रामीण और नगरीय की संस्कृति में बहुत अंतर होता है। आज गाँवों की संस्कृति भी बदल रही है। पारंपरिक अर्थों में ग्राम की अवधारणा ही बदल गयी है। हर गाँव की अपनी एक अलग संस्कृति है। एम.एन. श्रीनिवास लिखते हैं, "गाँव एक-दूसरे से भिन्न होते हैं, खासतौर पर देश के दूर-दूर के हिस्सों के गाँवों में बहुत अंतर दिखते हैं। मलाणा का 'संन्यासी' गाँव राजस्थान के दिलवाडा या तंजौर के कुम्बपेट्टै या मैसूर के हट्टरहल्ली से बहुत अलग है। मलाणा के भौतिक, सामाजिक और भाषाई पार्थक्य ने इसे लगभग पूरी तरह स्वायत्त बनाया है, इसलिए स्वाभाविक ही है कि डॉ. रॉसर ने अपने अध्ययन को इस पक्ष पर केन्द्रित रखा कि राज्य या केन्द्रीय सरकार की सत्ता के हस्तक्षेप से मुक्त, कानून और व्यवस्था की स्थानीय शक्तियाँ वहाँ कैसे काम करती हैं, जबकि दिलवाडा में जो बात तुरन्त ध्यान खींचती है वह है जमींदारी उन्मूलन का अचानक पड़ा प्रभाव और हट्टरहल्ली में, एक बड़े औद्योगिक शहर से उसकी नजदीकी का प्रभाव। गाँवों में पाये जाने वाले अंतर का एकमात्र कारण नगरीकरण, औद्योगिकीकरण और पश्चिमीकरण की शक्तियों से निकटता नहीं कही जा सकती है। हर गाँव की जीवनपद्धति कुछ हद तक अनूठी होती है। पास-पास बसे गाँवों में भी काफी अंतर पाये जाते हैं, ग्रामीणजन इस बात को अच्छी तरह जानते हैं।"³² बावजूद इसके देश की एक राष्ट्रीय संस्कृति है। देश के लोगों में एकाकी भावना है। दरअसल जब दोनों मित्र तुलसी, सूर आदि के ग्रामीण जीवन पर दृष्टि डालते हैं तो दोनों का आशय इन्हीं सब से होता है। छायावादी कवि सुमित्रानन्दन पंत 'ग्राम' का चित्र कुछ इस प्रकार खींचते हैं—

"बृहद् ग्रंथ मानव जीवन का, काल ध्वंस से कवलित,
ग्राम आज है पृष्ठ जनों का करुण कथा का जीवित।

युग-युग का इतिहास सभ्यताओं का इसमें संचित,
 संस्कृतियों की हास वृद्धि जन शोषण से रेखांकित।
 हिंसा विजेताओं, भूषों के आक्रमणों की निर्दय,
 जीर्ण हस्तलिपि यह नृशंस गृह संघर्षों की निश्चय!
 धर्मों का उत्पात, जातियों, वर्गों का उत्पीडन,
 इसमें चिर संकलित रूढ़ि, विश्वास, विचार, सनातन!
 घर घर के बिखरे पन्नों में नग्न, सुधार्ट कहानी,
 जन मन के दयनीय भाव कर सकती प्रकट न वाणी।
 मानव दुर्गति की गाथा से ओतप्रोत मर्मांतक
 सदियों के अत्याचारों की सूची यह रोमांचक
 मनुष्यत्व के मूलतत्त्व ग्रामों ही में अंतर्हित,
 उपादान भावी संस्कृति के भरे यहाँ हैं अविकृत।
 शिक्षा के सत्याभासों से ग्राम नहीं है पीड़ित,
 जीवन के संस्कार अविधा-तम में जन के रक्षित।³³

मनुष्यत्व का मूलतत्त्व गाँवों में ही समाविष्ट है। गाँवों की मूल सत्ता है खेत। खेत से ही किसान जीवन यापन करता है। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं, “खेत केदार की अमरता के साधन भी है। हम न रहेंगे तब भी तो ये खेत रहेंगे। वस्तुतः केदार जब नागार्जुन के विषय में लिख रहे थे कि नागार्जुन में मिथिला, मिथिला की फसल, वहाँ का चावल, धान पर्याप्त हैं— ऐसा चावल, धान, अन्न जो कभी चुकता नहीं, कम नहीं होता, तो वे नागार्जुन के व्यक्तित्व को ही अमरता नहीं प्रदान कर रहे थे अपने कवि-व्यक्तित्व की अमरता की भी घोषणा कर रहे थे। नागार्जुन पर लिखी हुई उक्त पंक्तियों और इन पंक्तियों का आशय समान है—

हम न रहेंगे तब भी तो ये खेत रहेंगे।
 इन खेतों पर धन लहराते शेष रहेंगे।
 जीवन देते प्यास बुझाते माटी को मदमस्त बनाते।
 श्याम बदरिया के लहराते केश रहेंगे।

केदार ने अपने व्यक्तित्व को प्रकृति एवं वाह्य जगत के अनेक रूपों में लीन कर दिया है— धूप में, नदी में, जंगल में, हवा में, प्रिय में, खेत में, पेड़ में, चिड़िया में— ये सब खत्म नहीं होंगे। तो इनमें लीन केदार का व्यक्तित्व भी खत्म नहीं होगा। अमरता का यही साधन है और तर्क है। खेत रहेंगे और खेत रहेंगे तो केदार रहेंगे। केदार गेहूँ बनकर खेत में उपजेंगे:

गेहूँ की मुट्ठी बाँधे मैं खेतों-खेतों में छा जाऊँगा।

गेहूँ को मुट्ठी बाँधे कहना जन संघर्ष के प्रवक्ता कवि को शोभा देता है।³⁴

जन संघर्ष के प्रवक्ता कवि इतना तो कहते ही हैं साथ निराला की इस कविता से सीख भी लेते हैं—

“ऐसे बाह-बाह की वीणा बजी सुहाई

पौधों की रागिनी सजीव सजी सुखदाई
 सुख के आँसू दुःखी किसानों की जाया के
 भर आये आँखों में खेती की माया से
 हरी-भरी खेतों की सरस्वती लहराई
 भग्न किसानों के घर बजी बधाई।³⁵

निराला पर लिखते हुए डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी का स्वर कुछ इस तरह से मुखरित होता है, "उन्होंने सरस्वती को कृषि-संस्कृति की देवी बनाकर उसे कविता, श्रम, सौंदर्य एवं करुणा की देवी बना दिया।"³⁶ पुनः डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं, "केदारनाथ अग्रवाल के यहाँ इस कृषि फल को श्रम-सौंदर्य के साथ विशेष रूप से जोड़ा गया है। धरती में रूपांतरण होता है कृषक के श्रम से। सौंदर्य श्रम की सार्थकता है। और श्रम सौंदर्य का आधार। कृषक केवल श्रमिक नहीं वह सुंदर भी है। वह धरती राधा का सौवरिया है। वसंत में जिस राग-रंग से पूरा दृश्य स्पंदित निनादित है उसमें धरती और कृषक के श्रम की भूमिका है। धरती ने फसल की घघरिया पहन रखी है। घघरिया धानी रंग की है।

"आसमान की ओढ़नी ओढ़े/धानी पहने फसल घघरिया
 राधा बनकर धरती नाची नाचा हँसमुख कृषक सँवरिया।"³⁷

किसान जीवन पर केदार ने कई कविताएँ लिखी हैं और लिखें भी क्यों न? जो जनसंघर्ष के प्रवक्ता कवि ठहरे। देखिए—

"हल चलते हैं फिर खेतों में
 फटती है फिर काली मिट्टी
 बोते हैं फिर बिया किसान
 कल के जीवन के वरदान
 फिर उपजेगा उन्नत-मस्तक सिंह अयाली नाज
 फिर गरजेगी कष्ट विदारक धरती की आवाज।"³⁸

केदार की कृषि संस्कृति और सभ्यता पर डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं— "केदार निंदक खलों को फिराक की ये पंक्तियाँ याद कर लेनी चाहिए—

हर साज से होती नहीं ये धुन पैदा
 होता है बड़े जतन से ये गुन पैदा।

केदारनाथ अग्रवाल की 'वसंती हवा' और 'चंद्र गहना' उनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध कविताओं में से हैं। वस्तुतः ये दोनों कविताएँ कृषि-संस्कृति के सहज सौंदर्य को उद्घाटित करती हैं। इनमें प्रकृति, फसल, मनुष्य, सब मिलकर एक सहज लय में स्पंदित हैं। इन दोनों कविताओं में वस्तु लय में समाहित है। प्रकृति (जिसमें कृषि फल भी लीन है) और द्रष्टा मनुष्य की जो चेष्टाएँ चित्रित हैं वे एक साथ मिलकर जिस लय की सृष्टि करती हैं, वही कविता का मुख्य स्वर है,

कथ्य भी। यह वह लय है जो नागार्जुन, केदार को अमरत्व प्रदान करती है। इसी में लीन होना अमर होना है।³⁹

‘मित्र संवाद’ के पत्रों में ‘परिवार’ की व्यापक चिंता दिखलाई पड़ती है। पत्नी का स्थान उच्चतम है। दोनों मित्र अपनी-अपनी पत्नी को बेहद सम्मान देते हैं। उन्हें ‘चाहते’ भी हैं। परिवार में मित्रों का स्थान भी अन्यतम हैं। “एंगेल्स ने परिवार के उद्भव और विकास के बारे में लिखा है कि संयम और सहिष्णुता के बगैर परिवार की संस्था स्थापित नहीं हो सकती थी। सहिष्णुता और संयम की जरूरत सामाजिकता या अंतस्संबंधता के लिए है। पशु-पक्षियों की अपेक्षा मनुष्य की भाव-परिधि का विस्तार कहीं अधिक होता है। संतान से प्रेम पशु-पक्षियों में भी होता है। किन्तु पशु-पक्षी समूह में होते हैं, समाज में नहीं। समाज समूह की अपेक्षा कहीं अधिक जटिल एवं अंतस्संबंधित होता है। पशु-पक्षियों में नर-मादा होते हैं, पति-पत्नी, भाई-बहन, माँ-बेटा, प्रेमी-प्रेमिका नहीं। उनकी चेष्टाएँ अधिकांशतः इंद्रिय-बोध या ऐंद्रित जरूरतों से संचालित होती हैं। मनुष्य अपनी इच्छा से दूसरों की इच्छाओं और दूसरों की इच्छा से अपनी इच्छाओं को अनुकूलित करने का प्रयास करता है। इच्छाओं-विचारों के अनुकूलन, प्रतिकूलन की प्रक्रिया मानव-समाज में निरंतर चलती रहती है। उसका सुख-दुःख दूसरों के सुख-दुःख से संदर्भित रहता है। यह अंतर्संबंध एवं अंतर्प्रवाह विकसित मानव के भाव-बोध का निर्णायक लक्षण है। मानवीय व्यवहार में यह परिलक्षित होता है। सुखी संतुष्ट रहना, होना अनैतिक नहीं बल्कि उच्च नैतिकता है। सवाल यह है कि आपका सुख कितने लोगों को सुखी या दुःखी बनाता है।⁴⁰ दोनों मित्रों का सुख वैयक्तिक सुख नहीं बल्कि सामाजिक है। समाज के दुःख से वे दोनों मित्र दुःखी होते हैं। अकाल की पीड़ा देखकर द्रवित होते हैं। सोवियत व्यवस्था के विखंडित होने पर चिंतित होते हैं।

“मार्क्स ने पूँजीवादी समाज-व्यवस्था में मानव मूल्यों की भयानक क्षति की बात अनेक स्थानों पर की है। उनका यह भी कहना है कि पिछली व्यवस्थाओं के शोषणमूलक चरित्र के बावजूद उनमें मानव-मूल्य बचे हुए थे। उनका सर्वथा क्षरण नहीं हुआ था। पूँजीवादी व्यवस्था में खंडित और आहत मनुष्य की अस्मिता और उसके व्यक्तित्व की बहाली की बात करते हुए उन्होंने उन मानव-मूल्यों की बहाली, रक्षा के संवर्द्धन की बात भी की है। पूँजीवादी व्यवस्था में जिनका तेजी से लोप हुआ है। परिणामतः आदमी की अपनी शिनाख्त के खो जाने का संकट पैदा हो गया है। निराला ने कभी लिखा था— “भर गया है जहर से संसार जैसे हार खाकर, देखते हैं लोग, लोगों का सही परिचय न पाकर।” निराला की यह पंक्ति इसी स्थिति का साक्ष्य देती है।⁴¹ ‘मित्र-संवाद’ के पत्र भी इसी स्थिति के साक्ष्य हैं। आदमी स्वयं की पहचान और अस्मिता को खोता चला जा रहा है। “मार्क्स ने प्रकृति पर महत्वपूर्ण विचार किया है। उसने गैर-मानवीय प्रकृति और मानव-प्रकृति के संबंधों पर गहराई से विचार किया है। मनुष्य जो व्यवहार प्रकृति के साथ करता है वह मनुष्य के साथ भी करता है। मनुष्य पेड़ काटता है, पशु पक्षी को मारता है तो मनुष्य को भी। अभी कुछ वर्षों पूर्व एक व्यक्ति ने अपनी पत्नी को तंदूरी चिकन की तरह भून दिया था। प्रकृति पशु-पक्षी का नाश खुद प्रकृति पशु-पक्षी भी करते हैं, मनुष्य भी करता है। प्रकृति-पशु भी मनुष्य का नाश करते हैं। जीवन की निरंतरता की प्रक्रिया नाश पर भी आधारित है। किंतु मानव ने जड़ या पाशविक प्रकृति से भिन्न एक और प्रकृति का निर्माण और विकास किया है। वह प्रकृति के ही आधार पर अपनी इच्छा और आवश्यकता के अनुसार समानांतर प्रकृति के निर्माण एवं विकास में तत्पर है जिसे ‘संस्कृति’ कहते हैं। सभ्यता इसी संस्कृति का भौतिक या

बादल अंश है। वह भी मानवीय प्रकृति या संस्कृति के विकास के बिना संभव नहीं। प्रकृति ने पेड़, कपास, दिए, मनुष्य ने मेज, चौकी वस्त्र करघा आदि बनाया। सब में मनुष्य का श्रम लगा। सभ्यता और संस्कृति मनुष्य के श्रम के बिना संभव नहीं। लेकिन यह सब भी संभव नहीं जड़ और पाशविक प्रकृति से भिन्न मानवीय प्रकृति या संस्कृति के विकास के बिना।⁴² सभ्यता और संस्कृति का विकास हुआ है। "पूँजीवादियों का पूँजी पर जबर्दस्त कब्जा है। आज की संस्कृति बुर्जुवा संस्कृति का पर्याय हो चुकी है। शोषण-उत्पीड़न और दमन के कुचक्र में फँसी आम जनता का जीवन त्रस्त हो रहा है। जीवन की जटिलताएँ बढ़ी हैं। छप्पन वर्षों में 'किसान संस्कृति' ने पूँजीवादी और सामंती संस्कृति के समक्ष दम तोड़ा है। दोनों मित्रों की बेचैनी को 'मित्र-संवाद' के पत्र उद्घाटित करते हैं।

हिन्दी में पत्रों की परंपरा अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित होती रही है। पत्रों के संकलन की प्रक्रिया चलती रही है। किन्तु पत्रों के संवाद बन जाने की प्रक्रिया में 'मित्र-संवाद' उत्कृष्ट है। "इस संवाद में संवादी हैं हिन्दी के मूर्धन्य (मार्क्सवादी) समीक्षक डॉ. रामविलास शर्मा और हिन्दी के शिखर (प्रगतिशील) कवियों में एक – बाबू केदारनाथ अग्रवाल। दोनों ही उम्र के नवें दशक में भी कर्मठ और क्रिएटिव, आगे की पीढ़ियों के लिए एक मिसाल, रचना और विचार की नयी जमीनें अब भी तलाशने और तोड़ने के लिए आतुर और सचेष्ट, गुजर गए के साक्ष्य को सामने लाने के आगे की मंजिलों पर निगाह गड़ाए, अपने वर्तमान और विद्यमान के साथ हाथापाई और मुठभेड़ करते हुए। कुछ के लिए उपेक्षित, चुके हुए, विवादास्पद, दूसरे कुछ के लिए प्रेरक और मार्गदर्शक। अपनी धुन में मस्त और बेपरवाह, परंतु लक्ष्य को निगाह के दायरे में लिए हुए, "लांछना-ईधन हृदय-तल जले अनल" के बावजूद तमाम कुछ की अवज्ञा कर काफी कुछ का ईंट का जवाब पत्थर से देने का हौसला रखने वाले, देने वाले और फिर अपनी रचना, विचार तथा जीवन-यात्रा में आश्वस्त और उत्साह के साथ आगे बढ़ते हुए।⁴³ दोनों मित्र एक-दूसरे को समझते हैं। उन दोनों का अंतिम समय तक पत्र-व्यवहार –संवाद– चलता रहा।

'मित्र-संवाद' में रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल का यथार्थपरक वर्णन चलता है। आजादी के बाद की आर्थिक सच्चाई को दोनों मित्र बड़े सलीके से चित्रित करते हैं। युग की सच्चाई को यथार्थपरक ढंग से उद्घाटित करना दोनों का लक्ष्य है। संवाद को युग का संवाद बनाते हुए दोनों मित्र भाव-विभोर हो उठते हैं। "कुछ भारतीय इतिहासकारों ने मंत्रमुग्ध होकर गुप्त शासनकाल का वर्णन किया है और उसे भारतीय इतिहास का स्वर्णकाल कहा है। लेकिन एक विशाल ग्रंथ में उस काल का स्मरण करते हुए घोर दुःख व्यक्त किया गया है— लोग तनिक भी सुखी नहीं थे 'फिर भी यह बात अवश्य ही कही जाएगी कि गुप्त शासन-काल में देश के कुछ भागों में दास प्रथा के प्रचलन के कारण किसान आर्थिक गुलामी के बंधनों में जकड़ दिए गए। महिलाओं को संपत्ति के दर्जे में रख दिया गया और यह मान लिया गया कि उन्हें हमेशा पुरुषों के संरक्षण में रहना चाहिए, लेकिन दूसरी ओर कला और साहित्य में बड़े भव्य रूप में उनका चित्रण किया गया। जातिवादी कट्टरता और जातिभेद पहले से भी अधिक तीव्र हो गये तथा कानून और न्याय के माध्यम से उच्चवर्गों के हितों की रक्षा की जाने लगी।"⁴⁴ यह उच्चवर्ग कौन थे? आर्थिक रूप से सुदृढ़ लोग ही उच्च वर्ग के अंतर्गत परिगणित किये जा सकते थे। आज भी वर्ग दो ही हैं— सर्वहारा और बुर्जुवा। आजादी के बाद की भारत की असली तस्वीर को 'मित्र संवाद' के पत्र उद्घाटित करते हैं। चेहरे की कुरूपता और भयानकता की झंझनाहट को 'मित्र-संवाद' के आइने में दर-ब-दर देखा जा सकता है। आर्थिक रूप से जर्जर भारत पर

पूँजीवादी अमरीका किस तरह से काबिज हो रहा है, और किस तरह उसको पूँजी के स्तर पर गुलाम बना रहा है, 'मित्र-संवाद' में दिखा जा सकता है।

"फाहियान नामक चीनी विद्वान बौद्ध यात्री ने, जो चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन-काल में भारत आया था, कहा कि सामान्य रूप से लोग सुखी थे। हाँ, इसमें संदेह नहीं कि उच्च वर्गों के लोग सुखी और समृद्ध थे तथा वे भोग-विलास का जीवन व्यतीत करते थे, जैसे कि तत्कालीन कला और साहित्य में प्रतिबिम्बित होता है। लेकिन यही बात निम्न श्रेणियों के लोगों के बारे में नहीं कही जाएगी। चीनी यात्री ने चाण्डालों की दुर्दशा का जिक्र किया है। सामाजिक स्तर पर समग्र रूप से अछूतों को और भी हेय दृष्टि से देखा जाने लगा था। सामाजिक तनाव जारी रहे। वर्ण-विभक्त समाज को कायम रखने के लिए एक हथियार के रूप में धर्म का उपयोग किया जाने लगा। उच्च वर्गों के लिए इतिहास के सभी युग स्वर्ण युग ही रहे हैं, लेकिन आम जनता के लिए वे कभी स्वर्ण युग नहीं रहे।"⁴⁵ आज जब सामाजिक तनाव जारी है, लोगों के बीच की खाई चौड़ी होती चली जा रही है, ऐसे में 'मित्र-संवाद' के पत्र उपयोगी साबित हो सकते हैं। उनका महत्व इस परिप्रेक्ष्य में बढ़ जाता है। भारत की मूल संस्कृति कृषि संस्कृति है। किसान की कोई जाति नहीं होती। वह पसीना बहाता है तब उसे दो वक्त की रोटी नसीब होती है। श्रम को महत्ता का 'मित्र संवाद' के पत्र उद्घाटित करते हैं।

पत्र लिखते हुए रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल के मस्तिष्क में मार्क्स और एंगेल्स की मित्रता का प्रमाण रहा है। मैनचेस्टर में एंगेल्स को मार्क्स लिखते हैं, "प्रिय एंगेल्स, मैं तुम्हें आज इसलिए लिख रहा हूँ कि तुम्हारे सामने एक छोटा-सा सैद्धांतिक प्रश्न, बेशक राजनीतिक आर्थिक स्वरूप का प्रश्न रख सकूँ।

"शुरु से बात आरंभ करें। तुम जानते हो कि रिकार्डों के सिद्धांत के अनुसार लगान केवल उत्पादन लागत और भूमि की उपज की कीमत का अंतर अथवा, जैसे कि इस विचार को उन्होंने दूसरे ढंग से भी व्यक्त किया, लागत (लागत में असामी काश्तकार के मुनाफों और ब्याज को हमेशा शामिल करते हुए) को पूरा करने के लिए जिस कीमत पर सबसे खराब भूमि की उपज अनिवार्यतः बेची जानी चाहिए उसके, और उस कीमत के बीच का अंतर है, जिस पर सर्वश्रेष्ठ भूमि की उपज बेजी जा सकती है।...

तुम जानते हो कि लगान के बारे में मुख्य बात यह है कि लगान ऐसे उत्पादों की कीमतों को एक समान बनाने की प्रक्रिया में उत्पन्न होता है, जिनकी उत्पादन लागतें भिन्न होती हैं। लेकिन बाजार कीमत का यह नियम बुर्जुवा प्रतियोगिता के एक नियम के अलावा और कुछ नहीं है। लेकिन यदि बुर्जुवा उत्पादन को समाप्त कर दिया जाए, तो भी कठिनाई बनी रहेगी कि भूमि अपेक्षाकृत कम उर्वर होती जाती है और यह कि श्रम की वही मात्रा क्रमशः कम उत्पादन करती है, हालांकि तब, बुर्जुवा प्रणाली के विपरीत सर्वश्रेष्ठ भूमि की उपज उतनी मंहगी नहीं होगी, जितनी कि सबसे खराब भूमि की उपज।"⁴⁶ इस प्रकार भिन्न-भिन्न विषयों पर 'मित्र संवाद' में बहस है। उस पर सहमति है। रायशुमारी है।

एक स्तर पर 'मित्र संवाद' के पत्र डॉ. रामविलासशर्मा की आलोचना-दृष्टि का उत्कृष्टतम प्रमाण हैं। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं, "केदारनाथ अग्रवाल को लिखे गए अनेक पत्रों में डॉ. रामविलास शर्मा की आलोचना का उत्कृष्ट रूप प्रकट होता है। पाठक के रूप में उनकी

(रसग्राहिणी क्षमता का ऐसा रूप उद्घाटित होता है जो उनकी बाजाप्ता आलोचनात्मक कृतियों में सर्वत्र नहीं दिखलाई पड़ता। शायद पत्र के आत्मीय एवं अनौपचारिक विधा होने के कारण। उनकी पाठकीय रुचि की व्याप्ति ज्ञान विज्ञान के अनेक क्षेत्रों को समेटती है। लेकिन इस व्याप्ति में उनकी जातीय दीप्ति सर्वत्र विद्यमान है। यह आज की बात नहीं। स्वतंत्रता के पूर्व भी जब हिन्दी वालों को शास्त्री जी... पंडित वशिष्ठ जाना माना और संबोधित किया जाता था तब लखनऊ विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग के सर्वप्रथम पी-एच.डी डॉ. शर्मा निराला को शेली, कीट्स, बायरन और वर्ड्सवर्थ से बड़ा कवि मानते थे। वे एक ओर अपनी मातृभाषा पर थूकने वाले हिन्दी भाषी अंग्रेजीदाओं को ललकारते थे और दूसरी ओर संकीर्णतावादी हिन्दी वालों को, साथ में फिराक जैसे हिन्दी तिरस्कारकों को, इस मारपीट में उनकी छवि मल्ल की बन गई हो तो आश्चर्य नहीं। उनकी अंतर्विद्या भेदिनी ज्ञान राशि और अपूर्व रसग्राहिणी क्षमता का उद्घाटन होने में समय लगा। इन पत्रों में उनका ज्ञानी एवं रसग्राही रूप सुरक्षित है। डॉ. शर्मा को हिन्दी भाषी अंग्रेजीदाओं से शिकायत यह रही कि वे अंग्रेजों की बहुत नकल करते हैं सिर्फ यह नहीं सीख पाते कि अंग्रेजीदा अपनी भाषा को प्यार कितना करता है और दूसरी भाषाएँ सीखकर अपने भाषा साहित्य को समृद्ध कितना करता है।⁴⁷ रामविलास शर्मा का चिंतन सदैव हिन्दी की समृद्धि के लिए प्रयासरत रहा।

विचारधारात्मक, अनौपचारिक विधा के रूप में 'मित्र संवाद' सृजन-प्रक्रिया का उत्कृष्टतम प्रमाण है। सृजन-प्रक्रिया में विचारधारात्मक कल्पना से बचना अत्यंत दुरुह है। वास्तविक जगत में जो कुछ कटु, अप्रिय और घृणास्पद है, लेखक उसे समाप्त करना चाहता है और इसके लिए वह 'यूटोपिया' की सृष्टि करता है जैसे 'रामराज्य' या वर्गहीन समाज की कल्पना। इन मनोराज्यों का लक्ष्य होता है मानव-समूह को एक विशेष दिशा में अग्रसर करना। तीव्र और व्यापक परिवर्तन बिना किसी मनोराज्यपरक मानसिक स्थिति और विचारधारा के संभव नहीं है। किंतु 'मित्र-संवाद' सायास नहीं बल्कि अनायास लिखी हुई रचना है। मित्र को लिखा हुआ हृदय-संवाद है तभी पाठक को आह्लादित करता है। विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध दोनों मित्रों की महानतम सृष्टि है- 'मित्र-संवाद'। यदि किसी विचारधारा को केवल सीधे-सादे स्पष्ट उपदेशात्मक अथवा विचारात्मक ढंग से वर्णित किया जाएगा तब वह रचना साहित्यिक नहीं रह जाएगी। इसके विपरीत यदि विचारों को कलात्मक एवं भावात्मक अभिव्यक्ति मिलती है तो निश्चय ही वह कृति साहित्यिक बन जाती है। 'मित्र संवाद' इस अर्थ में विशिष्ट साहित्यिक कृति है।

लेनिन के शब्दों में "कला जनता की वस्तु है, इसकी जड़ें दूर तक श्रमिकों के अंदर फैलनी चाहिए। यह श्रमिकों द्वारा समझी और पसंद की जानी चाहिए। कोई कलाकार तभी महान हो सकता है जबकि उसने अपनी रचना में क्रांति के कुछ न कुछ पहलुओं का अवश्य चित्रण किया हो।"⁴⁸ रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल की रचना का विस्तृत फलक है, 'मित्र-संवाद' उसका सूक्ष्म निदर्शक है। सूत्रात्मक शैली 'मित्र-संवाद' को गहराई प्रदान करती है।

रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल में बहुत कुछ समानता भी है। तभी तो दोनों का हृदय-संवाद इतने लम्बे समय तक चलता है। रामविलास शर्मा लिखते हैं, "केदार के और मेरे स्वभाव में बहुत कुछ बातें समान हैं और कुछ भिन्न हैं। मैं योजना बनाकर काम करता हूँ, केदार योजनाओं से दूर रहते हैं।"

“सब कुछ स्कीम बनाकर लिखा जाता। अपनी-अपनी क्षमता होती है। मेरी क्षमता जो है, वही मुझसे लिखवा लेती है।”

“यहाँ क्षमता का अर्थ है स्वतः स्फूर्त प्रतिभा। कविता अपने आप फूटनी चाहिए। योजना बनाकर कविता नहीं लिखी जाती। वैसे कविता लिखने के लिए छोटी-मोटी योजना वह बना ही लेते हैं— “एक दिन शाम हो गई थी तब सागर तट पर गया था। अब किसी दिन फिर जाऊँगा सवेरे, सूर्योदय देखने। शायद कोई कविता पकड़ जाऊँ। (18.3.78)”

“मुझे कैसे लिखना चाहिए, कम-से-कम उन्हें पत्र कैसे लिखना चाहिए, इसकी सलाह वह देते हैं।”⁴⁹ पत्र लेखन की कला में वह उस्ताद हैं।

5.11.78 के पत्र में केदार बाबू नंदकिशोर नवल को लिखते हैं, “लोकप्रियता का संबंध कविता में अंतर्निहित वस्तुवत्ता और आत्मवत्ता से है और उसमें घनिष्ठ रूप से विद्यमान रहता है। दोनों वत्ताओं की सृष्टि ही काव्य की सृष्टि होती है। यह सृष्टि सबको प्रिय लगे, ऐसा आवश्यक नहीं है। रुचि-वैचित्र्य की वजह से सभी कविताएँ सभी को प्रिय नहीं लग सकतीं। वर्गभेद वाले हमारे समाज में लोकप्रियता भी वर्गभेदीय स्वभाव की होती है। कवि सम्मेलन मुख्यतया मनबहलाव के उद्देश्य से एवं भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए ही वे लोग आयोजित करते हैं जो पारंपरिक मानसिकता की सार्थकता एवं सामर्थ्य के पक्षधर होते हैं और अधिकांश श्रोता भी उसी मानसिकता के समर्थक और पोषक होते हैं। इसीलिए समाजवादी मानसिकता के कवियों की कविताएँ इन सम्मेलनों में सराहनीय नहीं हो पाती। और पूर्व अवधारणाओं की अभिव्यक्तियों के चमत्कार प्रयोगों से ही जनता भाव-विभोर होती रहती है। अच्छी कविताएँ कभी भी लोकमंचीय प्रियता नहीं पा सकतीं और निकट भविष्य में भी न पा सकेंगी। समाजवादी मानसिकता के कवियों को इससे हताश न होना चाहिए। जनता की जड़ता (मानसिकता) को तोड़ना पड़ेगा चाहे देर हो। संस्कार बनने का काम समय लेगा। कविता को नीचे गिराकर उसे अवैज्ञानिक रूढ़िवादी मानसिकता के क्षेत्र में जीने के लिए नहीं छोड़ा जा सकता।”⁵⁰ जनता की जड़ता को तोड़ने के लिए केदारनाथ अग्रवाल प्रतिबद्ध हैं। यह है जनकवि का उठाया हुआ बीड़ा। कवि सम्मेलनों में जमने के लिए कवियों को क्या-क्या जुगत करनी पड़ती है, उसे उक्त पत्र में देखा जा सकता है। जनकवि केदार ने संस्कार बनाने का भी बीड़ा उठाया है। उक्त पत्र को समझने के लिए पूरी परंपरा का अवगाहन करना ही होगा। जिसे परंपरा की समझ नहीं होगी वह वर्गभेद, वस्तुसत्ता और आत्मवत्ता को क्या समझेगा?

केदार गद्य लिखने की कला में माहिर हैं। ‘मित्र-संवाद’ के अलावा उन्होंने जहाँ भी लिखा है, वह अभिभूत करने वाली होती है। 23.3.81 के पत्र में वह नवल को लिखते हैं, “20.2.81 का पत्र मिला कहाँ मार्क्स-कहाँ मैं। उन्होंने भी तो अपनी पत्नी-प्रेयसी पर कविताएँ लिखी थीं। वह परम सुंदरी थी। सौंदर्य मार्क्स को भी अभिभूत कर चुका था। हृदय में सौंदर्य भर गया था। चेहरे पर सघन दाढ़ी में और केशों में ‘पूँजी’ साकार हो गई थी। मेरी कविता को बधाई जो आपने दी मैंने वह अपने आंगन के गुलाबों को सुना दी। वे खिलखिला उठे।”⁵¹ बड़ा कवि ऐसे ही पेड़-पौधों और फूलों से बात करता है, करे भी क्यों न जो कि उनमें जान होती है। बड़ा कवि प्रकृति की धड़कन को आवाज देता है।

केदारनाथ अग्रवाल के मनःमस्तिष्क में रामविलास शर्मा किस कदर छाये हुए हैं, 12.3.81 के पत्र में देखा जा सकता है—

“एक पत्र में कविता लिखकर भेज चुका हूँ। उसके विषय में कहना यह है कि वह नीचे लिखे रूप में ही रहेगी। देखें

“फूलों की बौछार से
रंग बिरंगे प्यार से
हार गया करतार कलाकार
अपने ही दरबार में
अपना मुकुट उतार के
मुक्त हुआ भव-भार से

“मैंने उसमें जो पाठांतर किया था वह सही नहीं है। डॉ. शर्मा से मैंने पत्र में इस संबंध में विवेचन मांगा और उन्होंने सही बात लिखी। मैंने मान ली है। अब आप भी इस रूप को ही मूल कविता समझें। कभी-कभी बाद को किया गया सुधार कविता को चौपट कर देता है।”⁵² रामविलास शर्मा से केदारनाथ अग्रवाल सीखते हैं। एक बढ़िया और आलोचक मित्र की तरह रामविलास शर्मा केदार को सलाह देते हैं और कविता क्या होनी चाहिए; सिखाते हैं तभी तो 25.2.81 के पत्र में केदार लिखते हैं,

“कविता लिखना कठिन काम है। जो लिख जाता है वह भी टिक नहीं पाता। वैसे इसकी चिंता मैंने कभी की नहीं। मैं तो कविता अपना दायित्व समझकर लिखता हूँ। न यश की कामना करता हूँ, न आनंद की न, न द्रव्य की। मेरी मानसिकता लोकमानसिकता का प्रतिबिम्बन कर सके बस यही सोचता हूँ। कभी ऐसा कर पाता हूँ – कभी नहीं। लिखने में हर हमेशा सीधी लकीर पर ही नहीं चल पाता – भटकाव भी– भ्रम पंक्तियों में भरभरा पड़ते हैं। यहीं लेखक लाचार होता है। दिमाग तो कम्प्यूटर है। जो भर गया वही व्यक्तित्व का सम्मिश्रण पा लेता है और वही बाहर निकल आता है। वैसे अच्छा लिखने की धारणा बराबर बनी रहती है। कलापक्ष भी उपेक्षित न हो, बल्कि प्रबल और प्रखर होकर उददीप्त हो तो सोने में सुहागा। सब कुछ सचेत रूप से होने पर भी बहुत कुछ अचेत रूपायित हो जाता है। इसे कवि की विवशता ही कहा जा सकता है। श्रम के सामने सब कुछ स्पष्ट हो जाता है। कवि के सामने अनेकानेक अजान छोर अपने आप भी छलक पड़ा करते हैं।

वह कविता है:
रंग बिरंगे रंगों की बौछार से
गंध-गमक की मादक मीठी मार से
हार गया करतार कलाकर
अपने ही दरबार में
अपना मुकुट उतारके
मुक्त हुआ भव-भार से।

फूलों के अन्यतम रंग-रूप और गंध का संसार है। सृष्टिकर्ता की यह सृष्टि इतनी सुंदर होती है कि स्वयं वह उस पर न्यौछावर होकर अपनी प्रभुसत्ता-मुकुट उतारकर अपने ही

राजदरबार में फूलों के पदतल पर समर्पित कर देता है और महसूस करता है कि संसार के भार से मुक्त हो गया। फूलों से सुंदर-अन्यतम सृष्टि— अब वह नहीं बना सकता। यही व्यंजना है जो पुष्पों के सर्वोपरि अस्तित्व को उजागर करती है। फूलों पर विश्वसाहित्य में बहुत कुछ सुंदर और प्रिय लिखा गया है। पर यह छवि किसी ने इस तरह न देखी— न व्यक्त की है। मुझे ऐसा लिखकर पूर्ण संतोष हुआ। कविता छोटी है पर कहती और संप्रेषित करती अत्यधिक अनकही है। शब्द सीधे-सरल हैं। कोई घुमाव-फेराव नहीं है। न बौद्धिकता के दौंव-पेंच हैं — न पांडित्य-प्रदर्शन है। तन्मयता और तृप्ति दोनों हैं। सृष्टिकर्ता का अपनी सृष्टि के प्रति यह आत्मसमर्पण कला की पराकाष्ठा व्यक्त करती है, ऐसा मेरा विचार है। लोग मुझे रूपवादी होने का दोष ठहराते हैं। वे आंखें खोलें। निहारें। फूलों पर इस तरह मुग्ध हों तो जानूं। यही साम्यवाद के युग में संभव होगा। हमें फूलों से— अपनी सृष्टि से प्रगाढ़ प्रेम करना पड़ेगा। तब हम सुंदर सृष्टि के निर्माण की ओर अग्रसर होंगे। फूल सुन सकते — समझ सकते तो निहाल हो जाते। मेरे आंगन में हँस-हँस उठते और फिर कभी न मुरझाते। मुझे गंध-गमक से विभोर किये रहते। मरता तब भी मेरे साथ श्मशान तक जाते।”⁵³

‘मित्र-संवाद’ में दो मित्रों की बेतकल्लुफी है। एक की चिट्ठी न आने पर दूसरे को बेचैनी स्वाभाविक है। उनमें आपसी प्रेम है, सौहार्द्र है। केदारनाथ अग्रवाल बांदा में रहे हों या रामविलास शर्मा दिल्ली या कि आगरा में सभी जगह उनके ‘संवाद’ में निरंतरता है। उनकी चिट्ठी पहुँच ही जाती है। उनकी मित्रता पर शायद जसवीर त्यागी की निम्नंकित पंक्तियाँ सटीक बैठती हैं—

“थिरकने लगता है पोर-पोर मृदंग की ताल पर
जैसे प्रेम फैल जाता है, प्रेमी की शिराओं में
जैसे सहसा आ जाती है
कोई चिट्ठी दूर-दराज के गाँवों में
मैं भी चला जाऊँगा चुपचाप
आप घर के आंगन में बैठ
पढ़ रहे होंगे कोई किताब
या लिख रहे होंगे घर गृहस्थी की बातें
माप रहे होंगे मौसम की बारीकियाँ
और मैं पीछे से आकर चुपचाप
ढांप लूँगा आपकी आँखें
जोर से कहूँगा, धप्पा’
आप धक से पूछेंगे
कौन.....?”⁵⁴

आप धक से पूछेंगे — कौन — चिट्ठी या कि साक्षात् मित्र। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी इस बात को बार-बार कहते हैं कि ‘पाती आधा मिलन नहीं बल्कि पूरा मिलन’ है। ‘मित्र-संवाद’ के

पत्र वस्तुतः पूरा मिलन हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि दो मित्र आमने-सामने बैठकर बातचीत कर रहे हों। “संवाद यूँ तो बराबरी के स्तर का है, जैसा कि एक-दूसरे से लगभग अभिन्न दो मित्रों में होना चाहिए। दोनों एक-दूसरे के स्वाभिमान तथा अस्मिता के प्रति जागरूक हैं, एक-दूसरे की प्रतिभा का सम्मान करने वाले हैं, उसकी संभावनाओं के प्रति आश्वस्त, किन्तु केदार पर रामविलास की आलोचनात्मक प्रतिभा और वैदुष्य का रोब ज्यादा है। विशिष्ट अपवादों को छोड़कर केदार प्रायः रामविलास के तर्कों के आगे हथियार डाल देते हैं, आश्वस्त, प्रसन्न और कृतज्ञ होते हुए, उनके निष्कर्षों और स्थापनाओं को मान लेते हैं। अपने बारे में भी, दूसरों के बारे में भी, सामान्यतः अधिकांश मुद्दों पर। रामविलास में गुरुडम नहीं, मित्र को और भी उठान पर पहुँचाने की आकांक्षा है, किन्तु दो-दूकपन या खरापन ज्यादा है। खरापन केदार में भी है, परन्तु उनमें एक निश्छल भोलापन है, जो पत्रों के भीतर से छलक-छलक जाता है। जिन्हें हमने अपवाद कहा है वहाँ केदार आसानी से अपनी जमीन नहीं छोड़ते, ठेठ बुन्देलखण्डी अक्खडता से उस पर डटे रहते हैं, रामविलास के तर्कों की सटीक काट करते हुए, उनकी बात को विनम्रता, किन्तु दृढता से अमान्य करते हुए, अंततः रामविलास को पलायन के लिए विवश करते हुए। रामविलास चाहें तो बात को आगे खींच सकते हैं, परन्तु वे इन पर फिर कभी बात करेंगे, कहते हुए या तो उसे खत्म कर देते हैं या मुलतवी कर देते हैं। केदार की अपनी ही कुछ रचनाओं का मुद्दा हो, दिनकर की उर्वशी का मुद्दा हो, फ्रवीर्स का मुद्दा हो या फिर निराला की ‘राम की शक्ति पूजा’ का मुद्दा हो। लंबे और रोचक हैं ये पत्र ज्ञानवर्धक भी। एक आलोचक की पैनी बुद्धि के साथ अपने पक्ष को रखता हुआ, दूसरा वकील की तरह जिरह करते हुए अपने पक्ष को पुष्ट और अकाट्य बनाता हुआ।”⁵⁵ इस प्रकार मित्र-संवाद आलोचना की संभावना को खारिज नहीं करता।

आलोचना के सूत्र मित्र-संवाद की रचनात्मकता को बरकरार रखते हैं। आलोचना के बिन्दुओं पर शिवकुमार मिश्र लिखते हैं, “इन स्थलों पर केदार दिखाई पड़ते हैं, जो प्रायः अपवाद हैं, किन्तु जहाँ रामविलास ने केदार की कविताओं की रगड़ाई की है उनकी असंगतियों गिनाई हैं, वहाँ केदार उनके लाख डिफेन्स के बावजूद उखड़ गये हैं या उखाड़ दिए गए हैं। ऐसे स्थल पर रामविलास की अतर्दृष्टि, कविता के रंग-रेशे की उनकी पकड़, उनकी लाजिकल सूझबूझ, उनकी विश्लेषणात्मक क्षमता अद्भुत रूप में सामने आती है। वस्तुतः आलोचकीय प्रतिभा की पहचान व्यावहारिक विवेचन में ही होती है। सिद्धांत तो सब बूक लेते हैं। आलोचकीय अंतर्दृष्टि की कसौटी है रचना से साक्षात्कार, उसके भीतर प्रवेश और उसके मर्म को उद्घाटित करना, उसकी असंगतियों का खुलासा, उसके कमजोर और सवल अंशों को पहचानते हुए उनकी पहचान पाठक को कराना, आदि-आदि। आचार्य शुक्ल में यह माददा था। और रामविलास में यह माददा है, उनके बाद। तथाकथित ध्वंसात्मक मानी जाने वाली आलोचना में भी उनकी मर्मभेदी दृष्टि और बारीक पकड़ को देखा जा सकता है।... केदार की कविताओं की उनकी आलोचना में उनकी काव्य-मर्मज्ञता, उनकी दृष्टि की पहुँच और पकड़ का कायल होना पड़ता है, प्रायः केदार भी हुए हैं।”⁵⁶

केदार और रामविलास शर्मा के जेहन में मार्क्स और ऍंगेल्स की दोस्ती घर कर गई थी। ‘मित्र-संवाद’ में ठीक उसी तरह का रोजनामचा है जिस तरह का मार्क्स-ऍंगेल्स के पत्रों में है। शिव कुमार मिश्र लिखते हैं, “केदार की स्कूलिंग कविताई के क्षेत्र में ही नहीं हुई है, विचारधारा के क्षेत्र में भी हुई है। पत्रों में मार्क्स-ऍंगेल्स की चर्चा है, खासतौर से ऍंगेल्स की। उनके दर्शन

और चिंतन पर लंबी चर्चाएँ हैं। उन किताबों की चर्चा है, जो रामविलास बराबर केदार को भेजते-भिजवाते रहे हैं। सोवियत साहित्य भी, खासतौर से पास्तरनाक, चर्चा में आए हैं, अपने डॉ. जिवागों के संदर्भ में। रामविलास और केदार की कविताओं तथा निबंधों में उनका जो विश्व-बोध है, उसका बहुत बड़ा श्रेय उपर्युक्त मनीषियों को है। आजीवन विद्यार्थी रहकर ही रचना तथा विचार की वे मंजिलें शिखर उपलब्धियों को हासिल करते हुए तय की जा सकती हैं, जैसा कि इन संवादी मित्रों ने अपने तर्क किया है। दूसरों के लिए इसे मिसाल माना जा सकता है।⁵⁷

मित्र-संवाद का फलक विस्तृत है। जीवन के सभी बुनियादी सरोकारों पर मित्रों की चिंता बराबर नई समझ को पाठक के समक्ष रखती है। "चूँकि संवाद छः दशकों को समेटे हुए है, अतएव शताब्दी के इन छः दशकों में राष्ट्रीय-अंतराष्ट्रीय स्तर पर, घर-परिवार के स्तर पर, दोस्त-मित्रों, परिजनों-प्रियजनों के स्तर पर घटने वाला काफी कुछ अपने हर्ष-उल्लास, ताप और त्रास के साथ इन पत्रों में मौजूद है। दोनों मित्र निहायत संवेदनशील हैं, इस नाते प्रियजनों की साधारण सी तकलीफें और समस्याएँ भी उनकी चिंता के दायरे में आई हैं। बहुतों से बहुत-कुछ पाकर इस अवधि में वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, साहित्यिक और विश्व-स्तर पर उन्होंने बहुत कुछ खोया भी है, जिसका दंश अपनी समूची चुभन के साथ इन पत्रों में उभरा है।"⁵⁸

'मित्र-संवाद' में नाटकीयता का भी गुण है। जिस प्रकार नाटक में पात्रों की उपस्थिति होती है, घटनाएँ घटती हैं, परिवेश होता है, उसी प्रकार दो मित्रों के संवाद में कई लोगों की उपस्थिति 'मित्र-संवाद' की नाटकीयता को व्याख्यायित करती है। नामवर सिंह लिखते हैं, "कहने के लिए तो संवाद सिर्फ दो के बीच ही चलता है किंतु बातचीत के बीच निराला का जिक्र अक्सर आता है और प्रसंगवश अमृतलाल नागर, नरोत्तम नागर, शमशेर, नागार्जुन और त्रिलोचन भी आते रहते हैं। सिर्फ नाम से नहीं, बल्कि ये सभी लोग इस अंदाज से आते हैं जैसे रंगमंच पर एक-एक करके नाटक के चरित्र आते हैं, जीते-जागते अपनी अलग-अलग अदा के साथ। इस दृष्टि से 'मित्र-संवाद' का 'निराला-मंडल' एक जीता-जागता खुला 'रंग-मंडल' भी है। रामविलास शर्मा भी मानते हैं कि "दूसरों के पत्र पढ़ना एक तरह से नाटक पढ़ने की तरह है...। पत्र संग्रह ऐसा नाटक है जो योजना बनाकर किसी कलाकार द्वारा नहीं रचा गया। शायद इसीलिए वह अनेक नाटकों से अधिक महत्वपूर्ण, अधिक आकर्षक भी है। (निराला की साहित्य साधना, खंड-3, भूमिका, पृष्ठ1-2)"⁵⁹

आगे नामवर सिंह लिखते हैं, "वैसे, यह बात कही तो गई है निराला के पत्रों के प्रसंग में लेकिन पत्र-व्यवहार से निर्मित नाटक की बेहतर मिसाल तो 'मित्र-संवाद' ही है, क्योंकि वह हृदय संवाद है।"⁶⁰ वस्तुतः 'मित्र-संवाद' में दोनों मित्रों के हृदय की निर्मलता पाठक को अभिभूत करती है। "अमृत लाल नागर, नरोत्तम नागर, नरेन्द्र शर्मा इसी अवधि में उनसे छूटते हैं। राहुल, रांगेय राघव, यशपाल उनकी आत्मीयता के दायरे में नहीं, पर उनकी मृत्यु भी दोनों को क्लेश देती है। राष्ट्रीय स्तर पर जवाहरलाल नेहरू का निधन दोनों को अखरता है। उनकी अपनी जीवन संगनिर्याँ, उनकी प्रेरणाएँ, (मालकिन- रामविलास की धर्मपत्नी और श्रीमती पार्वती देवी- केदार की धर्म पत्नी) अपने लंबे समर्पित साहचर्य के बाद दोनों को उनकी उठान के शीर्ष पर पहुँचाकर, तथा उनका पहुँचना देखकर उनसे विदा लेती हैं। वज्र की छाती बनाकर दोनों इस

आघात को सहते हैं, एक-दूसरे को ढाँढस बँधाते हैं। मार्मिक हैं ये पत्र। पूर्वी यूरोप के समाजवादी देशों और सोवियत रूस में समाजवाद का पराभव इसी अवधि में दोनों देखते हैं। आहत होते हुए पराभव के कारणों का विश्लेषण भी करते हैं। 'संवाद' में इस सबका साक्ष्य है। आधी शताब्दी से अधिक के सब कुछ को तो नहीं, पर काफी कुछ को ये पत्र समेटते हैं। हिन्दी जगत की आपसी उठा-पटक, गति अगति का काफी कुछ विवरण इन पत्रों से मिलता है। दस्तावेज हैं ये पत्र, दो मित्रों के बीच छः दशकों से लगातार चलने वाले एक अतिशय निर्मल, आह्लादक, विचारोत्तेजक और प्रेरक संवाद के। शतायु हों ये दोनों मित्र अचल रहे इनका सौहार्द। जीवन में इनसे मुझे जो मिला उसको कृतज्ञता के साथ स्मरण करते हुए इन्हें मेरे शतशः प्रणाम।⁶¹ शिव कुमार मिश्र ने जब लिखा था तब दोनों मित्र जीवित थे किंतु आज उनकी स्मृतियाँ ही शेष हैं जो हिन्दी साहित्य के लोगों के लिए एक नये मार्ग के प्रेरणास्रोत हैं। 'मित्र-संवाद' जीवन की गति को बढ़ाने वाला मार्गदर्शक है।

'मित्र-संवाद' में गद्य की अपूर्व छटा है। "मित्र-संवाद अंततः जीवन का गद्य है। ग़ालिब ने अगर अपने पत्रों के जरिए उर्दू गद्य की नींव डाली और उसे परवान चढ़ाया तो रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल के पत्रों ने हिन्दी की 'गद्य की विलुप्त कला' को बचा लिया।"⁶² नामवर सिंह पुनः लिखते हैं, "संचार क्रांति के इस युग में पत्र-लेखन वैसे भी विलुप्त हो चला है और हाथ से पत्र लिखने की प्रथा तो और भी पहले से उठ चली है। ऐसे जमाने में 'मित्र-संवाद' के अंदर यह पढ़ना अपने आप में एक रोमांचकारी अनुभव है :

"प्रिय केदार, देखो कितने बढ़िया पेपर पर तुम्हें पत्र लिख रहा हूँ। गुलाब के फूल के नीचे उसकी लाजभरी गुलाबी में मैंने तुम्हारा नाम लिखा है। पर तुम कहोगे, कितने दिनों बाद! वास्तव में प्रायः एक महीने बाद। कारण यही, कभी उचित अवकाश न था, कभी टिकट को पैसे न थे। अब भी निब टेढ़ा है। पर अधिक विलंब उचित न था। पारकर फाउंटेन पेन से मोती-से अक्षर चुनने के बजाय इस पेपर पर मेरा रेडिंक निब और नीले रंग का यह गोदना ही सही। वास्तव में सफेद लिफाफे रहे नहीं, इसलिए प्रिया को पत्र लिखने को दिए मित्र के तोहफे का प्रयोग तुम्हारे लिए।" (12.3.36)⁶³ आज ऐसा अपनापन, ऐसी अनौपचारिकता कहाँ है। आज तो ईर्ष्या-द्वेष, एक-दूसरे को नष्ट करने की होड़ है। कुरूपता की संस्कृति सामाजिक विद्रूपताओं को बढ़ावा देती है। ऐसे में 'मित्र-संवाद' का बोध सामाजिक दिशा को तय कर सकता है। आज जब दूसरे के प्रति जहर, हिंसा और सांप्रदायिकता का रथ गुजरात से चल निकला है तो 'मित्र-संवाद' की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है। 'मित्र-संवाद' भाई चारे का सांस्कृतिक आख्यान है। एक गाथा है।

'मित्र संवाद' जीवन की कथा है। इसका संबंध खुलेपन से है, निजता से है। नामवर सिंह लिखते हैं, "पत्र लेखन में गद्य का सर्वोत्तम रूप प्रकट होता है - बशर्ते लिखने वाले में खुलापन हो और जिसे लिखा जा रहा हो उससे एकदम बेतकल्लुफी हो। 'मित्र संवाद' में बहुत दूर तक ये सभी शर्तें पूरी होती हैं। इसलिए वह निश्चित रूप से गद्य की एक मिशाल है। संभवतः आत्म प्रशंसा के आरोप से बचने के लिए रामविलास जी ने सिर्फ केदार जी के गद्य की प्रशंसा की है किंतु केदार जी के गद्य की अनेक विशेषताएँ स्वयं रामविलास जी के गद्य में भी मिल जाती हैं। इसके अतिरिक्त रामविलास जी के गद्य में भावोच्छ्वास की कमी और आत्मसजगता की अधिकता के कारण कुछ अन्य विशेषताएँ जुड़ जाती हैं। इसीलिए केदार जी ने रामविलास जी के गद्य के

बारे में ये लिखा है कि, "इतना सधा सतुलित, तार्किक, परिपुष्ट और दृढ़ होता है कि तुम्हारा गद्य कि दूसरे लिख ही नहीं सकते। (8488) "यह राय है उस कवि की जिसका गद्य रामविलास जी के शब्दों में

ऐसा गद्य है जो अपनी गद्य की जमीन नहीं छोड़ता, फिर भी कविता बन जाता है। (भूमिका पृ 12) इसी पर कहते हैं, 'मेरे नुक्त ने बोसे मेरी जुबों के लिए।' जुबान से ऐसे लफ्ज निकले तो अपनी ही वाणी उसे क्यों न चूम ले। 'मित्र सवाद' में इन्हें ढूँढने के लिए अधिक परिश्रम न करना पड़ेगा। गरज की रामविलास जी और केदार जी के पत्रों के गद्य के रंग मित्र सवाद के सगम में भी अलग-अलग पहचाने जा सकते हैं। 'मित्र सवाद' के गद्य का यह अतिरिक्त सौंदर्य है।

'तीन महारथियों के पत्र' (कथाकार वृन्दावन लाल वर्मा, पत्रकार बनारसी दास चतुर्वेदी और भाषा विज्ञानी किशोरी दास वाजपेयी) के पत्रों का विश्लेषण करते हुए रामविलास शर्मा लिखते हैं, "सयोग की बात है कि मुझ पर इन तीनों विद्वानों की कृपा थी। उसी के फलस्वरूप इनसे अनेक पत्र प्राप्त हुए। इन पत्रों से इन महानुभावों के जीवन और साहित्य के बारे में बहुत सी बातें जानी जा सकती हैं। इसके सिवा हिन्दी भाषा व साहित्य की बहुत सी बातें उनके पत्रों में मिलेंगी। अपने-अपने ढंग से ये लेखक अच्छे शैलीकार भी हैं। ऐतिहासिक महत्व के अलावा अपनी शैली के कारण ये पत्र पढ़ने वालों को रूचिकर लगेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।"⁶⁴ ठीक यही बात रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल के 'मित्र सवाद' के बारे में कही जा सकती है। ऐतिहासिक महत्व के अलावा ये पत्र अपनी शैली के कारण पाठकों को रूचिकर लगेंगे, ऐसा मेरा भी विश्वास है।

आज जब लोकतंत्र खतरे में है। ऐसे में 'मित्र सवाद' की लोकतांत्रिक रचना प्रक्रिया हमें आकृष्ट करती है। नामवर सिंह लिखते हैं, "कुछ-कुछ ऐसे ही 'भोड़े युद्ध' का मजर आज हमारे सामने भी है और लोकतंत्र के साथ गद्य भी खतरे में है। इस लड़ाई में रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल का यह मित्र सवाद एक कारगर हथियार बन सकता है। क्योंकि यह स्वयं भी सुंदर और सजीव गद्य है। ऐसा प्राणवान गद्य ही गद्य की रक्षा कर सकता है। इस दृष्टि से मित्र सवाद' उस गद्य की विलुप्त कला का अप्रतिम दस्तावेज है।"⁶⁵ गद्य की विलुप्त कला का संरक्षक है।

'मित्र सवाद' रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल की साझे की तराशी हुई फसल है। इसके हरे-भरे पन्नों से जीवन की हरियाली लहलहा रही है। "अतः 'मित्र सवाद' रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल का संयुक्त वसीयतनामा है। इस वसीयतनामे में कुछ ख्वाहिशें भी हैं— खासतौर से वे जीवन में पूरी न हो सकी। वसीयत लिखने वाले स्वभाव से लेखक थे इसलिए उन ख्वाहिशों में से ज्यादातर का रिश्ता लेखन से ही है।"⁶⁶ उनके जीवन में जो ख्वाहिशें पूरी न हो सकी अब उसे पूरा करने के लिए साहित्यिक मण्डली को सामने आना चाहिए। कुछ हद तक इसकी पूर्ति हो रही है। और भविष्य में इस वसीयतनामे में जाहिर ख्वाहिश को पूरा करने के लिए प्रयत्न होता रहेगा। जब भी समाज में हमारी पारंपरिक संस्कृति क्षतिग्रस्त होगी। मित्र सवाद की उपयोगिता सार्थक व प्रमाणिक सिद्ध होगी। अस्तु।

संदर्भ

- 1 फ्रात्स काफका – पिता को पत्र, अनुवाद-महेश दत्त, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 1997, पृ स 77-78।
- 2 कमल पुजाणी – हिन्दी का पत्र-साहित्य, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर, (प्राक्कथन) संस्करण 1983, पृ 1।
- 3 संपादक – डॉ जय नारायण – कल के लिए, रामविलास शर्मा स्मृति अंक-9, अनुभूति विकास भवन बहराइच, संस्करण जनवरी-मार्च, 2002, अंक 37, लेखक डॉ विश्वनाथ त्रिपाठी, (सदाचार के प्रतीक पुरुष रामविलास शर्मा), पृ 11
- 4 वही, पृ स 9।
- 5 वही, पृ स 10।
- 6 संपादक- अकिचन, गूँज, अंक 9-11, श्रीनिवासपुरी, नई दिल्ली पृ. सं. 55 ।
- 7 वही, पृ स 55।
- 8 वही, पृ स 56। (4593 का पत्र)
- 9 वही, पृ स 56।
- 10 रामविलास शर्मा- भाषा और समाज, राज कमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण, 1977, पृ स 31।
- 11 संपादक रामविलास शर्मा – कवियों के पत्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2000, पृ स 41-42।
- 12 संपादक अकिचन, गूँज, पृ स 15, (भूमण्डलीकरण के साथ जो संस्कृति आ रही है- रामविलास शर्मा की अकिचन से बातचीत)।
- 13 वही, पृ स 15-16।
- 14 वही, पृ स 5। (ऋषि मार्क्सवादी लेख से)
- 15 वही, पृ स 55।
- 16 संपादक रामविलास शर्मा – कवियों के पत्र, पृ स 170। (29597 का पत्र)
- 17 विष्णु चन्द्र शर्मा- गालिब और निराला (मेरा काव्यानुमान), स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2000, पृ स 219।
- 18 संपादक रामविलास शर्मा – कवियों के पत्र, पृ स 172-173।
- 19 गजानन माधव मुक्तिबोध – चोंद का मुँह टेढ़ा है, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 11वाँ संस्करण, 1998, पृ स 254।
- 20 संपादक – निर्मला जैन, अतस्तल का पूरा विप्लव अँधेरे में, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 1994, पहली आवृत्ति 1999 (लेखक प्रभाकर श्रोतिय- मुक्तिबोध अँधेरे में गहरी छानबीन) पृ स 31।
- 21 संपादक रामविलास शर्मा – राग-विराग, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 1999, पृ स 31
- 22 कमल पुजाणी – हिन्दी का पत्र-साहित्य, पृ स 3।
- 23 वही पृ स 6।
- 24 वही, पृ स 4।
- 25 वही पृ स 4।
- 26 संपादक रामविलास शर्मा – कवियों के पत्र, पृ स 260-261। (18997 का पत्र)

-
- 27 वही, पृ स 261 ।
 - 28 वही पृ स 263 ।
 - 29 ब्रह्मदेव शर्मा— किसान की गरीबी का राज, प्रकाशन, सरथान नई दिल्ली, संस्करण 1997, पृ स 3 ।
 - 30 वही, पृ स भूमिका से ।
 - 31 एम एन श्रीनिवास — आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, राज कमल प्रकाशन, नई दिल्ली पटना, पहला हिन्दी संस्करण, 1967 आवृत्ति, 1998, पृ स 19 ।
 - 32 एम एन श्रीनिवास — (अनुवाद— मधु बी जोशी) -- भारत के गांव, राज कमल प्रकाशन, नई दिल्ली पटना, पहला संस्करण, 2000, पृ स 9-10 ।
 - 33 सुमित्रानन्दन पंत — ग्राम्या, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 12वाँ संस्करण, 2001, पृ स 14 ।
 - 34 विश्वनाथ त्रिपाठी— पेड़ का हाथ, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2002, पृ स 55 ।
 - 35 वही, पृ स 54 ।
 - 36 वही, पृ स 54 ।
 - 37 वही, पृ स 55 ।
 - 38 वही, पृ स 57 ।
 - 39 वही, पृ स 57 ।
 - 40 वही, पृ स 37 ।
 - 41 संपादक— मार्कण्डेय— कथा, अंक-8, मार्च 1997, 2-डी, मिंटो रोड, इलाहाबाद, पृ स 104 ।
 - 42 विश्वनाथ त्रिपाठी— पेड़ का हाथ, पृ स 39 ।
 - 43 संपादक— मार्कण्डेय— कथा, अंक-8, मार्च 1997, 2-डी, मिंटो रोड, इलाहाबाद, पृ स 103-104 ।
 - 44 डी एन झा — प्राचीन भारत एक रूपरेखा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस प्रा लि, नई दिल्ली, 13वाँ मुद्रण 2000 ।
 - 45 वही, पृ स 123-124 ।
 - 46 मार्क्स एगोल्स, संकलित पत्र—व्यवहार, पृ स 55, 58, 59 ।
 - 47 विश्वनाथ त्रिपाठी— पेड़ का हाथ, पृ स 13 ।
 - 48 कृष्ण मोहन अग्रवाल— पाश्चात्य काव्यशास्त्र—मीमांसा, रीगल बुक डिपो, नई दिल्ली, संस्करण 1996, पृ स 127 ।
 - 49 संपादक रामविलास शर्मा — कवियों के पत्र, पृ स 39-40 ।
 - 50 नन्द किशोर नवल, मैं पढ़ा जा चुका पत्र, आधार प्रकाशन, पंचकुला, हरियाणा, प्रथम संस्करण, 1997 पृ स 142-143 ।
 - 51 वही, पृ स 150 ।
 - 52 वही पृ स 149-150 ।
 - 53 वही, पृ स 147-148 ।
 - 54 संपादक— जयनारायण, कल के लिए, स्मृति अंक, वर्ष 10, अंक-37, जनवरी-मार्च 2002, पृ स आवरण पृष्ठ से ।
 - 55 संपादक— मार्कण्डेय— कथा, अंक-8, मार्च 1997, इलाहाबाद, पृ स 107 । लेखक— शिवकुमार मिश्र ।
 - 56 वही, पृ स 107-108 ।
 - 57 वही, पृ स 111 ।

-
- 58 वही, पृ स 111 ।
- 59 सपादक— नामवर सिंह, आलोचना त्रैमासिक, जुलाई—सितंबर 2000, पृ स 8 ।
- 60 वही, पृ स 8 ।
- 61 सपादक— मार्कण्डेय— कथा, पृ स 112, लेखक— शिवकुमार मिश्र ।
- 62 सपादक— नामवर सिंह, आलोचना त्रैमासिक, जुलाई—सितंबर 2000, पृ स 13 ।
- 63 वही, पृ स 13—14 ।
- 64 सपादक अकिचन 'गूज', अक—9—11, श्रीनिवासपुरी, नई दिल्ली, पृ स 31 ।
- 65 सपादक— नामवर सिंह, आलोचना त्रैमासिक, जुलाई—सितंबर 2000, पृ स 15 ।
- 66 वही, पृ स 15 ।

उपसंहार

पत्र दो व्यक्तियों के बीच सूचनाओं के आदान-प्रदान और संप्रेषण का माध्यम है। लेकिन यदि पत्र लिखने वालों में आत्मीयता हो तो पत्रों की औपचारिकता समाप्त हो जाती है। पत्र अनौपचारिक हो जाते हैं। नितांत वैयक्तिक। अब प्रश्न यह उठता है कि यदि दो आत्मीय पत्र लिख रहे हैं तो हमारा उनसे क्या सरोकार हो सकता है? हमारा उनसे गहरा सरोकार है। जब पत्र लिखने वाले दोनों मित्र साहित्यिक क्षेत्र के हों तो हमारा उनसे तादात्म्य हो सकता है। हम उनके निर्माण के दौरान आयी चीजों से 'सीख' ले सकते हैं। साहित्यिकार का निर्माण किस तरह होता है? वह कहाँ से सीखता है? कहाँ से चीजों को उठाता है? अपने परिवेश से किस प्रकार उसकी अंतरंगता होती है? इन सभी चीजों पर हम तभी जान सकते हैं, जब कोई अनौपचारिक माध्यम हो।

साहित्य की अन्यान्य विधाएँ सोची-समझी रणनीति के तहत लिखी जाती हैं, लेकिन पत्रों में कोई दुराव-छिपाव नहीं होता। यहाँ तो सिर्फ हृदय सवाद होता है। इस हृदय सवाद के जरिये व्यक्ति अपने निजी जीवन पर 'अनौपचारिक' रूप से बात करता है। यदि किसी व्यक्ति या साहित्यिकार के संपूर्ण जीवन को जानना व समझना है तो उसके द्वारा लिखे हुए पत्रों को तो पढ़ना ही चाहिए। चूँकि पत्र साहित्य साहित्यिकारों के साहित्य, जीवन और उनकी परिस्थितियों को जानने व समझने का सर्वाधिक सीधा माध्यम है इसलिए साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा यह सबसे उपयोगी विधा है।

गालिब के जीवन को समझने के लिए उनके पत्रों को पढ़ना चाहिए। उनके पत्रों से न कि उनके जीवन को ही समझा जा सकता है बल्कि उनके कविताओं की व्याख्या भी की जा सकती है। गालिब के पत्रों और उनकी शायरी को मिलाकर पढ़ा जाय तो अपूर्व आनंद की अनुभूति होती है।

ऐसा नहीं है कि दो साहित्यिक-प्रवृत्ति के मित्र सिर्फ व्यक्तिगत मुद्दों पर ही बातचीत करते हैं। कभी-कभी बातचीत का दौर समय व समाज की अन्यान्य गतिविधियों पर भी केन्द्रित हो जाता है। यह बातचीत 'सवेदनात्मक' और ज्ञानात्मक होती है। 'सवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक सवेदना' से उद्भूत रहे हुए पत्र कालांतर में पाठकों को आकृष्ट करते हैं। पाठकों को कुछ 'सीखने' के लिए उद्बुध करते हैं।

वैसे तो पत्रों का उल्लेख भारतेन्दु से पूर्व भी मिल जाता है। लेकिन विधा के रूप में इसकी शुरुआत भारतेन्दु से ही मानी जानी चाहिए। 'शिवशम्भु के चिट्ठे' में अंग्रेजी राज की आलोचना है। तत्कालीन युग में उक्त पत्रों के लेखकों का नाम जगजाहिर नहीं था लेकिन जीवत होकर पत्रों ने जो क्षमता प्रदर्शित की थी उसकी स्मृतियाँ आज भी ताजा हैं। लार्ड कर्जन के अंग्रेजी-राज की आलोचना का उत्कृष्टतम प्रमाण 'शिवशम्भु के चिट्ठे' है।

द्विवेदी युग में बहुत अधिक पत्रों का संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ, लेकिन इस युग का पत्रों के इतिहास में महत्व इस बात के लिए है कि इस काल में प्रथम 'पत्र संग्रह' प्रकाशित हुआ। इसके पूर्व भारतेन्दु युग में विभिन्न पत्रिकाओं में पत्रों का प्रकाशन फुटकल ढंग से होता था। कहना न होगा कि मित्रों का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विधा के रूप में शुरुआत इसी युग से हुई। कालांतर में विभिन्न पत्रों का संग्रह लगातार प्रकाशित होता रहा है। सन् 2000 तक पहुँचते-पहुँचते पत्रों की पहचान एक सशक्त विधा के रूप में बन गई। इस बात को कहने में कोई संकोच नहीं कि हिन्दी में पत्रों को सशक्त विधा के रूप में स्थापित करने में डॉ. रामविलास शर्मा का बहुत बड़ा योगदान है।

पत्रों का लिखना एक बात है और पत्रों को सुरक्षित रखकर उसे पुस्तक का रूप देना दूसरी बात है। रामविलास शर्मा ने 'तीन पत्रों का संग्रह' संपादित किया। 'मित्र संवाद', 'कवियों के पत्र' और 'तीन महारथियों के पत्र' नाम से तीन ग्रंथों का संपादन व प्रकाशन हिन्दी साहित्य के इतिहास में महत्वपूर्ण घटना है। 'मित्र संवाद' सन् 1992 में प्रकाशित हुआ। डॉ. रामविलास शर्मा और अशोक त्रिपाठी ने इसका संपादन किया है।

सन् 1992 में 'मित्र संवाद' का प्रकाशन पत्रों के इतिहास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना थी। महत्वपूर्ण इस अर्थ में कि इसके पूर्व जितने भी पत्र संग्रह प्रकाशित हुए थे, उनमें संवाद की रोचकता नहीं थी। उनमें सिर्फ एकतरफा 'हाल-ए-बयों' था। 'मित्र संवाद' में दो मित्रों की बेतकल्लुफी है। संवाद की सी रोचकता हाले दिल बयों है। हाले-दिल तो गालिब के पत्रों में भी है। गालिब के पत्र कितने मार्मिक हैं इसे उनके पत्रों को पढ़कर जाना जा सकता है। गालिब के पत्र तत्पुगीन समाज की सांस्कृतिक व्याख्या हैं।

साहित्यकार सामाजिक प्रगति का प्रयास करता है। वैसे तो समाज को प्रगति के पथ पर ले जाने वाले अनेकानेक साधन हो सकते हैं, परंतु जो साधन सीधे अपने लक्ष्य पर चोट करता है, वह साहित्य ही है। साहित्यकार ही चोट पहुँचाकर समाज को गढ़ने का प्रयास करता है। शब्दों की संस्कृति साहित्य के निर्माण की प्रक्रिया में सहायक होती है। नवीन विधाएँ साहित्यकारों की शब्द-साधना का परिणाम होती हैं। शैली का रचाव-बसाव रचनाकारों के व्यक्तित्व का बोध कराता है। रामविलास शर्मा की अलग शैली है तो केदारनाथ अग्रवाल की भी अपनी स्वतंत्र अस्मिता है। एक आलोचक के रूप में प्रसिद्ध हैं तो दूसरे कवि के रूप में सबसे बड़ी बात है कि रूचियों के भिन्न होने पर भी दोनों गहरे मित्र हैं।

'मित्र संवाद' दोनों मित्रों की 56 वर्षों की दोस्ती का ऐतिहासिक साहित्य दस्तावेज है। पत्रों के माध्यम से दोनों एक-दूसरे के जीवन और रचना-कर्म पर नजर रखते हैं। एक-दूसरे को सलाह देते हैं। एक-दूसरे से सीखते हैं। दुनिया-जहान की घटनाओं पर दृष्टि रखते हैं। पारिवारिक खुशियों को मिलकर बाँटते हैं। दुःख में एक-दूसरे को ढाँढस बँधाते हैं। समाज में व्याप्त असमानताओं पर दुःखी होते हैं। अपने विचारों को तर्कपूर्ण ढंग से रखते हैं।

साहित्य के जनतन्त्रीकरण की प्रक्रिया में पत्र, साहित्य की स्वतंत्र विधा के रूप में सशक्त हुआ। आधुनिक युग में चित्तवृत्ति बदली। कविता की परंपरा के बरक्स साहित्य में अन्यान्य

विधाओं की भी प्रतिष्ठा हुई। अर्थात् गद्य की परंपरा समृद्ध हुई। गद्य की भाषा साधारण जन समाज की भाषा होती है। बोलचाल की भाषा होती है। पत्र बोलचाल की भाषा में होने के परिणामस्वरूप ही 'संवाद' का स्वरूप ग्रहण करता है। 'मित्र संवाद' के पत्र 'जीवंत भाषा' में लिखे हुए पत्र हैं। जीवंत भाषा बोलचाल की भाषा होती है। जीवंत भाषा में ग़ालिब के पत्र भी हैं। असल में 'मित्र संवाद' के पत्र ग़ालिब की परंपरा को समृद्ध करते हैं, ग़ालिब के पत्र उनके जीवन की व्याख्या हैं। उनके कविताओं की व्याख्या हैं। रामविलास शर्मा के पत्र उनकी आलोचना और रचना को पुनर्व्याख्यायित करते हैं और केदार नाथ अग्रवाल के पत्र उनके संस्कारों को पुनर्रचित। पुनर्रचना और पुनर्व्याख्या मिलकर 'मित्र संवाद' को आधुनिक हिन्दी पत्र साहित्य की महानतम रचना बना देती है। संपूर्ण हिन्दी साहित्य की परंपराओं में ग़ालिब के पत्रों के बाद 'मित्र संवाद' का स्थान है।

मार्क्सवादी साहित्य चिंतन की शुरुआत मार्क्स एवं एंगेल्स संबंधी विचारों से होती है। प्रायः मार्क्स और एंगेल्स की आत्मीयता की चर्चा की जाती है, जैसे दोनों एक ही हों। स्वयं मार्क्स ने भी इस प्रसंग में एंगेल्स को लिखा— "हम दोनों का एक साथ एक वचन के रूप में प्रयोग हो रहा है।" ध्यान देने की बात है कि मार्क्स कृत 'पूँजी (Capital)' का प्रथम खंड जीवन काल में ही प्रकाशित होता है, परंतु बाद के दोनों खंडों को संपादित कर प्रकाशित कराने का काम एंगेल्स ने किया। पुनः मार्क्स पर होने वाले आक्षेपों का भी जवाब एंगेल्स ने ही दिया। उन्होंने अधिकांश कृतियाँ एक साथ लिखीं विचारों के इतिहास में वैचारिक मित्रता का ऐसा सुंदर उदाहरण कभी-कभी मिलता है। उन्नीसवीं सदी में मार्क्स और एंगेल्स की 'वैचारिक मित्रता' का उदाहरण मिलता है और बीसवीं सदी में विचारों की टोह लेने में राम विलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल सबसे आगे हैं। यहाँ दोनों की मित्रता आने वाले युग के लिए सांस्कृतिक घटना बन जाती है।

वैचारिक मित्रता के बावजूद, दोनों में वैयक्तिक स्तर पर कुछ वैचारिक भिन्नता भी थी। वास्तव में मार्क्स ने अगर एंगेल्स को इस ओर ध्यान दिलाया कि 'हम दोनों का एक साथ एक वचन' के रूप में प्रयोग हो रहा है, तो जाहिर है कि मार्क्स की मान्यता थी कि कहीं न कहीं हम दोनों में फर्क भी है। जहाँ तक साहित्य का सवाल है तो मार्क्स का साहित्य संबंधी ज्ञान एंगेल्स के साहित्यिक ज्ञान से व्यापक था। अतएव मार्क्स का दृष्टिकोण भी व्यापक था। मार्क्स यूनानी प्राचीन साहित्य से गहरे रूप से जुड़े थे और वे प्राचीन साहित्य के गहरे अध्येता थे। फलतः उनके विचारों में गहरी दार्शनिकता थी। जबकि एंगेल्स समकालीन साहित्य से अधिक जुड़े थे। अतएव उनमें राजनीतिक चेतना अधिक थी। आधुनिक युग में डॉ. रामविलास शर्मा का भी साहित्यिक ज्ञान अधिक व्यापक था। प्राचीन साहित्य से लेकर आधुनिक साहित्य तक सभी पर उनकी गहरी पकड़ थी। वह साहित्य के मर्मज्ञ थे जबकि केदारनाथ अग्रवाल का अध्ययन रामविलास शर्मा की तुलना में कम था, लेकिन केदार, रामविलास शर्मा से लगातार सीखते हैं। उन्हें मित्र से सीखने में कोई परहेज भी नहीं है। उनमें अकुंठ स्वर है। रामविलास शर्मा केदार की दिलचस्पी कविता की परंपरा के प्रति करते हैं। रामविलास शर्मा के विचारों में गहरी दार्शनिकता है और केदारनाथ अग्रवाल के स्वर में प्रगतिशीलता रची पगी होती है। रामविलास शर्मा भी अपने ज्ञान का आतंक मित्र पर नहीं जगाते। इसीलिए इन पत्रों में कहीं-कहीं केदार की बहस के तर्क और उनकी आलोचना-शक्ति विस्मित कर देने वाली हैं। वहाँ पर पाठक उनके निष्कर्षों को

विश्वसनीय पाते हैं और उनसे सहमत होते हैं। ऐसे निष्कर्ष वे मित्र पर भरोसा किए बिना नहीं दे सकते थे। आज तो अधजल गगरी से छलकता हुआ ज्ञान का आतंक न तो मित्रों को सीखने देता है और न ही छात्रों को। आज बस लोग ज्ञान के थोथे भंडार पर 'खीस निपोर' सकते हैं। बने रहिए 'टैलेण्टेड' कौन आपकी 'नोटिस' लेता है? जब तक व्यवहार में 'बड़प्पन' नहीं होगा तब तक न तो कोई किसी से सीखना चाहता है और न ही कोई किसी को सिखा सकता है। तो व्यवहार में बड़प्पन रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल के यहाँ है। साहित्य के इतने बड़े अध्येता, आलोचना की उत्कृष्टता के पर्याय और प्रगतिशील कविता की परंपरा के इन प्रमुख स्तंभ का मित्र संस्कृति में जो जिन्दादिली है, उससे हमें 'सीख' लेनी चाहिए। आपसी कटुता, वैमनस्यता को छोड़कर 'मित्र परक' संवाद का माहौल बनाना चाहिए।

माक्स कला को मनुष्य को मनुष्य बनाने की प्रक्रिया का अंग मानते हैं। माक्स ने कही लिखा है, "मनुष्य की श्रम-प्रक्रिया उसकी मानवता की बुनियादी प्रक्रिया है।" अगर हम मधुमक्खी के छत्ते या एक मकड़ी के जाल को ध्यान से देखेंगे तो उसके बारीक बनावट पर वस्तु-शिल्पी भी आश्चर्य चकित होंगे। पर मानवीय-निर्माण एवं जन्तुओं के निर्माण में बुनियादी अंतर यह है कि जंतु हमेशा एक जैसे ही चीज का निर्माण करते हैं। परंतु मनुष्य के लिए किसी भी कलात्मक सृजन में तरह-तरह का परिवर्तन होता रहता है।

मनुष्य कुछ भी बनने के पहले मस्तिष्क में उसका चित्र बनाता है। श्रम की प्रक्रिया में जो कुछ भी मौजूद होता है, वह पहले ही कलाकार की कल्पना में मौजूद होता है। प्रत्येक मानवीय-सृजन के पीछे एक प्रयोजन भी होता है। और वह प्रयोजन उस धारणा को मूर्तरूप देने की प्रक्रिया का स्वरूप निर्धारित करता है। अर्थात् अपने प्रयोजन के अनुसार प्रकृति को जिस तरह निर्मित करता है, उसी से संस्कृति बनती है। मनुष्य प्रकृति में जीता है, परंतु संस्कृति को निर्मित करता है और सभ्यता को पुनर्रचित। रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल का 'मित्र संवाद' सांस्कृतिक निर्माण को पुनर्व्याख्यायित करते हुए 'सभ्यता-समीक्षा' का उत्कृष्टतम स्वरूप ग्रहण कर लेता है।

माक्स सौंदर्य चेतना के एक नैतिक पहलू को स्वीकार करते थे। हालांकि वे कला में नैतिक उपदेश बधारने की प्रवृत्ति की आलोचना करते हैं। परंतु नैतिक चेतना का अर्थ— उनका लोक-कल्याण की चेतना से है। रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल की दृष्टि भी लोक-कल्याण की चेतना में अंतर्निहित है। जब रामविलास शर्मा प्राचीन कवियों से लेकर तत्कालीन कवियों पर बातचीत करते हैं तो उनके मस्तिष्क में लोक-कल्याण की चेतना ही है। लोक-कल्याण अर्थात् जनता का हित। 'मित्र संवाद' में तुलसी की जनता है, कबीर का लोक है और वृहद स्तर पर निराला का संपूर्ण परिवेश।

तुलसी की रचनाओं में उनका परिवेश, देशकाल, वातावरण जीवंत हो उठता है। कबीर समाज में व्याप्त कुरीतियों पर कुठाराघात कर रहे थे। सूर अपने समय से आगे के कवि हैं। विद्रोही प्रेम रचनात्मक स्तर पर उनके यहाँ लोहा मनवाती है। कबीर, सूर और तुलसी पर विचार करते हुए रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल एक क्रमबद्ध आलोचनात्मक इतिहास प्रस्तुत करते हैं। वैसे भी रामविलास शर्मा भारतेन्दु, महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,

प्रेमचन्द और निराला पर स्वतंत्र आलोचनात्मक पुस्तक लिख चुके थे। रामविलास शर्मा की प्राचीन साहित्य से लेकर समकालीन साहित्य तक गहरी पकड थी। आलोचनात्मक पुस्तक लिखने के बावजूद 'मित्र सवाद' में उन पर सवादात्मक टिप्पणी है। असल में 'मित्र सवाद' 56 वर्षों तक लगातार चलने वाला विमर्श है। इन्हीं 56 वर्षों में दोनों का साहित्यिक सस्कार और परिष्कार होता है। साहित्य के सस्कार-परिष्कार के बीच दोनों का पत्र व्यवहार होता रहता है। यह पत्र ऐसे है जिससे उस युग का सच आसानी से प्रतिध्वनि होता है।

भक्तिकालीन कवियों की व्याख्या 'मित्र सवाद' के पत्रों में है। भक्तिकाल हिन्दी साहित्य के इतिहास में स्वर्ण युग माना जाता है। यह सही भी है, लेकिन स्वातंत्र्योत्तर भारत में 'भक्तिकाल और भक्तिकालीन' कवियों का गलत तरीके से इस्तेमाल हो रहा है। 'राम चरित मानस' की व्याख्या सघ वाले अपन तरह से कर रहे हैं तो दलित साहित्यकार अपनी तरह से इसकी व्याख्या कर रहे हैं। कबीर में जबर्दस्त काव्य प्रतिभा थी। सूर कविता की परंपरा में प्रेम का क्रांतिकारी पक्ष लेकर उपस्थित होते हैं। तुलसी ग्रामीण जीवन से उद्भूत किसान जीवन के कवि हैं। समग्रता में तीनों गहरे अर्थों में समाज से साक्षात्कार करने वाले कवि हैं। ऐसा समाज जहाँ पर 'जनता' विस्तृत अर्थों में उपस्थित होती है। आज वर्तमान भारत की तस्वीर धुंधली है। तोड़ मरोड़कर की जाने वाली आलोचना, आलोचनात्मक-संस्कृति पर धब्बा है। धर्म को 'राजनीतिक हथियार' के रूप में तराशने की प्रवृत्ति बढ़ी है। धर्म की राजनीति का वर्चस्व आज समाज का सच है। क्या बढ़िया होता कि राजनीति का धर्म होता।

समाज का विकास, सभ्यता में परिलक्षित होता है। सभ्यता संस्कृति का भौतिक रूप है। संस्कृति में समाज के सभी दृश्य-अदृश्य तत्व समाहित हैं। दृश्य तत्व है मानव सृजित वो सारी वस्तुएँ एवं आकृतियाँ, जो इंद्रियों द्वारा अनुभवित की जा सकें। जैसे मकान इत्यादी। और अदृश्य तत्वों के अंतर्गत हम नियम, कानून अतर्संबंधी आदि को शामिल कर सकते हैं। प्रकृति का संस्कृति से गहरा सरोकार है। मनुष्य की सोच उसके संस्कृति की निर्मात्री है। संस्कृति व्यक्ति का संस्कार करती है और संस्कार के स्तर पर ही व्यक्ति महत्वपूर्ण हो जाता है। व्यक्ति बड़प्पन प्राप्त करता है। सांस्कृतिक व्यक्ति का समाज में सम्मान होता है और लोग उसी से सीखने का कार्य करते हैं। मित्र सवाद के मित्र अथवा निराला। मंडल के सभी सदस्य एक-दूसरे से सीखने का कार्य करते हैं, आज ऐसी संस्कृति कहाँ? आज जब एक-दूसरे को दबोचने की अप-संस्कृति विकसित हो रही है तो ऐसे में 'मित्र सवाद' से सीख लेनी चाहिए। उसकी उपयोगिता सार्थक सिद्ध हो सकती है।

'मित्र सवाद' की बहस यथार्थपरक है। यथार्थपरक मार्क्सवादी साहित्य सिद्धांत एवं सौंदर्यशास्त्र की केन्द्रीय धारणा है। मार्क्स तथा एंगेल्स ने न केवल साहित्य के सभी रूपों के मूल्यांकन के लिए यथार्थवाद को महत्व दिया, वरन् चित्रकला में भी यथार्थवाद का समर्थन किया था। परंतु, उन्होंने साहित्य के विभिन्न रूपों में बार-बार यथार्थवाद की चर्चा उपन्यास के प्रसंग में की है। उसके बाद नाटक में और सबसे कम कविता में की है। रामविलास शर्मा और कंदानाथ अग्रवाल ने 'मित्र सवाद' में यथार्थवादी दृष्टि सर्वाधिक कविता में अपनायी है। असल में 'मित्र सवाद' की पूरी बहस यथार्थ की सच्चाई से रू-ब-रू है।

यथार्थवाद का मूल अभिप्राय “यथार्थ की कला में प्रामाणिक अभिव्यक्ति और उसका चित्रण है। वस्तुतः जब भी यथार्थवाद कहा जाता है तब उसका अर्थ समाज के इतिहास से जुड़ा होता है। समाज के इतिहास के साथ जुड़े होने के कारण वह गतिशील भी होता है। अतएव किसी एक आदमी के यथार्थ को दूसरे रचनाकार के यथार्थ का प्रतिमान नहीं बनाया जा सकता। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार प्रेमचंद की कसौटी पर कसकर रेणु को खारिज नहीं किया जा सकता।

वस्तुतः यथार्थवाद में एक समाज की ऐतिहासिक अवस्था में वास्तविकता का प्रामाणिक चित्रण होता है। उसमें जो प्रतिनिधि पात्र होता है वह कुछ स्थितियों का और कुछ प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करता है। वस्तुतः प्रतिनिधि चरित्र का आधार है – प्रतिनिधि स्थिति, इन दोनों को विश्वसनीय बनाने के लिए बौरे की सच्चाई आवश्यक है। भाषा, संवेदना और इतिहास का गहरा संबंध है। ‘मित्र सवाद’ में इस संबंध का आद्यन्त विश्लेषण है।

यथार्थवाद का लेखक के दृष्टिकोण से भी संबंध होता है। असल में रचना एक सामाजिक और सांस्कृतिक कर्म है, जो व्यक्तिगत रूप में पूरी होती है। इस प्रकार उस व्यक्तिगत रूप और सामाजिक संबंध के बीच रचना एक सत्प्रयोजन कर्म है। रचना में लेखक की मानसिकता की अभिव्यक्ति होती है। मानसिकता का संबंध लेखक के अभिप्राय और प्रयोजन से होता है। परंतु अभिप्राय कुछ भी हो, अनुभव की जटिलताएँ भी रचना के निर्माण में सहायक होती हैं। उत्कृष्ट रचना में अभिप्राय और अनुभवों का द्वन्द्वात्मक संबंध होता है। ‘मित्र सवाद’ में दोनों मित्रों की निगाह दुनिया-जहान की घटनाओं को इसी द्वन्द्वात्मक संबंध के जरिए परत-दर-परत उकेरती हैं।

किसी भी रचना में समाज का सच विभिन्न अवयवों द्वारा प्रदर्शित होता है। राजनीति परिवार, अर्थ, प्रकृति को संपूर्णता में ही किसी रचना में समझा जा सकता है। असल में परिवार समाज की सबसे छोटी इकाई है। राजनीति किसी भी राज्य की अवधारणा को गहराई से प्रभावित करती है। ‘अर्थ’ समाज का क्रूरतम सच है। अर्थ के कारण ही वुर्जुवा और सर्वहारा की चौहद्दी का निर्धारण हुआ है। अर्थ के कारण ही मजदूर शोषण की चक्की में पिसने को अभिशप्त है। अर्थ के कारण ही किसी राज्य, परिवार, व्यक्ति की स्थिति सुदृढ़ होती है।

भारत कृषक परिवारों का देश है। किसानों यहाँ का मुख्य पेशा है। अधिकांश भारतीय जनता स्वभावतः किसान है। किसानों की स्थिति स्वतंत्रता के पूर्व अच्छी नहीं थी। स्वतंत्र भारत में भी अच्छी नहीं है। स्वतंत्र भारत में किसानों की भयावह स्थिति है। किसान मरने के लिए अभिशप्त है। कभी तो वह आत्महत्या कर लेता है और कभी समाज की ‘पूँजी’ पर कब्जा किये हुए लोगों के शोषण से मरता है। सरकार कई दावे कर सकती है लेकिन सच यही है कि किसानों का शोषण बढ़ा है। किसान ‘गरीब’ हो गया है। उसने मजदूरी को अपना लिया है। यही भयावह सच है।

‘मित्र सवाद’ का सवाद 1935 से शुरू होता है। उन्नीस सौ छत्तीस में ‘गोदान’ की रचना प्रेमचंद करते हैं। प्रेमचंद गाँव की कहानी कहने में तटस्थ कलाकार है। उनके यहाँ गाँव की

कहानी अखंडित रूप में चलती रहती है। इस कहानी में एक सूत्रता है। 'गोदान' का नायक होरी असफल है। नायक असफल हो जाने से ही त्रासदी नहीं बनती बल्कि त्रासदी बनाने हेतु और कई चीजों की आवश्यकता होती है। बार-बार प्रयत्न करने के बावजूद व्यक्ति असफल हो जाए तो वहाँ पर त्रासदी उभरती है। सच्चे प्रयत्नों के बावजूद असफलता हाथ लगे तो वहाँ पर त्रासदी उभरती है। त्रासदी वहाँ भी उभरती है जब किसी ऐसी चीज के लिए प्रयत्न किया जाए जिसे प्राप्त करना असंभव हो। लेकिन क्या भारतीय किसान किसी ऐसी चीज के लिए प्रयत्न करता है जिसे प्राप्त करना असंभव हो। वह तो दो वक्त की रोटी के लिए प्रयत्न करता है, जिसे प्राप्त करना संभव है। तब त्रासदी क्यों होती है? त्रासदी का कारण बाजारवाद है। आज समाज में बाजारवादी, उपभोक्तावादी संस्कृति का वर्चस्व है। आप को कहीं भी खरीद-फरोख्त मिल जाएगी। गोदान का होरी एक निम्न मध्यमवर्गीय किसान है। होरी का पूरा परिवार अपना पसीना खेतों में बहाता है फिर भी उसे खाने के लिए कुछ नहीं बचता। वह अपनी साधारण आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं कर पाता। यह उसकी असफलता है। इसका जिम्मेदार औपनिवेशिक कृषि तंत्र है। दरअसल प्रेमचंद की समझ ऊँचे दर्जे की थी। ब्रिटिश तंत्र में खेती क्या थी, किसानों के पैसों की बेड़ी थी। वह उसके पेट भरने की चीज नहीं बल्कि कुछ और थी, यह भारतीय गरीब किसानों की त्रासदी थी। स्वतंत्र भारत में 'उदारीकरण' और 'बाजारवाद' ने किसानों को त्रासदी स्थिति में पहुँचाया है।

'मित्र सवाद' हमारे समाज की सांस्कृतिक आलोचना है। आलोचक है — रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल। जब रामविलास शर्मा मध्यकालीन कवि कबीर, सूर और तुलसी की चर्चा करते हैं तो उनके जेहन में 'भारत का गाँव' होता है। गाँव की चिंता, किसानों की चिंता, समाज के सर्वहारा वर्ग की चिंता 'मित्र सवाद' की प्रमुख चिंताएँ हैं। 'गोदान' में झूठे 'मरजाद' की रक्षा हेतु होरी ऋण लेता है, आज लोग झूठे शान की रक्षा हेतु ऋण लेते हैं। विवाह के अवसर पर धन-दौलत को खर्च करके तबाही को आमंत्रित करते हैं। यदि झूठे मरजाद की रक्षा, किसानों की चिंता है तो झूठी 'शान शौकत' विशाल मध्य वर्ग की चिंता है। सामंती समाज में मुख्य शब्द मरजाद है तो पूँजीवादी समाज में सबसे प्रधान शब्द 'शान-शौकत' है। क्या गाँव, क्या शहर संपूर्ण भारतीय समाज ने अपनी 'मर्यादा' बना रखी है। आज समाज से इस प्रकार की प्रवृत्ति और मानसिकता को समाप्त करने की जरूरत है। मिथ्या मर्यादा और झूठी शान-शौकत के पीछे असली मर्यादा और यथार्थ को गवाने की जरूरत नहीं है।

'मित्र सवाद' में राम विलास शर्मा शुरू से आखीर तक केदार नाथ अग्रवाल को किसानों के लिए कविता लिखने को प्रेरित करते हैं। उन्हें सलाह देते हैं। उस सलाह पर केदार अमल भी करते हैं और शोषित, उत्पीड़ित और सर्वहारा समाज के लिए कविता लिखते हैं। दोनों मित्रों की चर्चा के दायरे में वही अधिक समय तक रहता है, जिसमें किसान जीवन की व्याख्या भी है। रामविलास शर्मा अपने व्यापक काव्य-चिंतन में स्थापित काव्य-सिद्धांतों का परिष्कार करते हुए उसे युगीन सवाल से टकराने के लिए तैयार करते हैं। युगीन सवाल के केन्द्र में किसान था। मजदूर था। शोषित जन-समाज था।

युगीन परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ समाज का सच भी बदलता है। मानवीय आवश्यकताएँ परिवर्तित होती हैं। भावबोध बदलते हैं। मूल्य और प्रतिमान बदलते हैं। ऐसे में यह

अनिवार्य हो जाता है कि रचनाकार और आलोचक अपेक्षाओं के अनुरूप निष्कर्ष और प्रतिमानों को पुनर्व्याख्यायित करे। नये सवाल और नई परिस्थितियों के समक्ष स्वयं को खड़ा करे। नये सवाल और नई परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से जो सच बयान होगा, वही समाज को व्याख्यायित करेगा और साहित्य को विश्लेषित भी करेगा। राम विलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल का कविता सबधी विश्लेषण समकालीन कवियों के लिए दिशा-निर्धारक साबित हो सकता है।

कविता की परंपरा पर बातचीत करते हुए प्राचीन और मध्यकालीन कवियों से 'सीखने' की सलाह 'मित्र सवाद' में है। राम विलास शर्मा की 'सिखावन कला' अद्भुत है। पत्रों के द्वारा सिर्फ केदार को ही नहीं सिखलाते बल्कि आगे के कवियों को भी सिखलाते हैं, तब जबकि कोई उनसे 'सीखना' चाहे। 'मित्र सवाद' कविता सबधी बहस को आगे बढ़ाता है। पहले तो दोनों मित्र कविता पर बहस खड़ा करते हैं और बाद में कविता क्या है और कैसी होनी चाहिए, इस पर लम्बा विश्लेषण है।

56 वर्षों के दौरान सभी घटनाओं पर दोनों मित्रों की दृष्टि रहती है। कही उन पर सक्षिप्त चर्चा है तो कही उन पर लम्बी बहस। जितनी भी चीजों का सरोकार समाज से होता है अथवा जितनी भी चीजे संस्कृति को प्रभावित कर सकती हैं सभी पर दोनों मित्रों की बहस है। इन पर बहस के दौरान कही स्नेह है, कही प्रेम है तो कही तकरार, लेकिन सबधों की प्रगाढ़ता उनमें बनी रहती है। यही चीज महत्वपूर्ण है। और इसी के कारण 'मित्र सवाद' कालजयी कृति साबित होती है।

अपनी-अपनी क्षेत्रीय अस्मिता और संस्कृति को लिए हुए हैं। उनके पत्रों में क्षेत्रीय बोली की प्रवृत्तियाँ और देशी रंग हैं। भाषा मुहावरे हैं, लोकोक्तियों का सहज संप्रेषण है। उनके गद्य का विधान आत्मीयता और अंतरंगता से प्रेरित है।

आज साहित्यकारों में खेमेबाजी बढ़ी है। एक-दूसरे की छीछालेदर करने के लिए साहित्यकार उत्सुक रहते हैं। कौन कब किसका मित्र हो जाएगा और कब शत्रु, समझ से परे है। यदि आप मित्रता करें तो उसे जीवन भर निबाहे। सामने वाले को सम्मान दें। बातों को तर्कपरक ढंग से कहें, अपनी अलग गाड़ी मत हाके। जिस भी साहित्यकार में उक्त चीजे होगी, उसका सम्मान होगा। आज जब 'मित्रता' को निबाहने की प्रवृत्ति समाप्त होती जा रही है तो ऐसे में 'मित्र सवाद' को पढ़ने की सलाह देना बेमानी न होगा।

अनुक्रमणिका

आधार ग्रंथ

‘मित्र संवाद’, रामविलास शर्मा अशोक त्रिपाठी (सं.), परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 1992

संदर्भ ग्रंथ तथा सहायक ग्रंथ

- | | | |
|--------------------------|---|--|
| अग्रवाल, केदारनाथ | — | अपूर्वा
परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 1984 |
| अग्रवाल, केदारनाथ | — | कहें केदार खरी-खरी
परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 1983 |
| अग्रवाल, केदारनाथ | — | गुल मेंहदी
परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 1978 |
| अग्रवाल, केदारनाथ | — | जो शिलाएँ तोड़ता है
परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 1986 |
| अग्रवाल, केदारनाथ | — | पंख और पतवार
परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 1979 |
| अग्रवाल, केदारनाथ | — | फूल नहीं रंग बोलते हैं
परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण अगस्त 1977 |
| अग्रवाल, केदारनाथ | — | समय-समय पर
परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 1970 |
| अग्रवाल, कृष्ण मोहन | — | पाश्चात्य काव्यशास्त्र मीमांसा,
रीगल बुक डिपो, नई दिल्ली, संस्करण 1996 |
| अवस्थी, कमलेश (सं.) | — | हमको लिख्यो है कहा
भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2001 |
| आचार्य, नन्द किशोर (सं.) | — | पत्थर और बहता पानी-संस्कृत चिंतन,
वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, प्रथम संस्करण 2000 |
| उपाध्याय, मंजुल | — | अथातो काव्य जिज्ञासा,
वर्णी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1996 |

- ग्रेवाल, ओम प्रकाश – साहित्य और विचारधारा ,
आधार प्रकाशन, पंचकुला हरियाणा, प्रथम संस्करण 1994
- गौड, डॉ मनोहर लाल – विद्यापति (कीर्तिलता और पदावली का सकलन),
प्रकाशन विद्यार्मर, वाराणसी, संशोधित संस्करण 1976
- चतुर्वेदी, रामस्वरूप – हिन्दी गद्य विन्यास और विकास
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 1996
- चतुर्वेदी, रामस्वरूप – हिन्दी साहित्य और सवेदना का विकास
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 1991
- जैन, एस एल दोषी, पी सी – सामाजिक विचारक
रावत पब्लिकेशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 1997,
पुनर्संस्करण 2002
- जैन, डॉ निर्मला – अंतस्तल का पूरा विप्लव अधरे मे
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 1994
- जैन, डॉ निर्मला, कुसुम बाठिया – पाश्चात्य साहित्य चिंतन
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण
1990, दूसरी आवृत्ति 1994
- जैन, डॉ निर्मला – साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन
हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली
विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण
- जैन, डॉ निर्मला – हिन्दी आलोचना की बीसवीं सदी
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण
1992, पहली आवृत्ति 1998
- जैन, नेमिचन्द्र (स) – पाया पत्र तुम्हारा: मुक्तिबोध और नेमिचन्द्र जैन के
बीच का पत्र-व्यवहार
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998
- झा डी एन – प्राचीन भारत एक रूपरेखा
पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस प्रा लि, नई दिल्ली, 13वाँ
मुद्रण 2000
- त्रिपाठी, विश्वनाथ – देश के इस दौर मे: परसाई के व्यंग्य निबधो की
विवेचना
परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1989
- त्रिपाठी, विश्वनाथ – पेड का हाथ
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002

त्रिपाठी, विश्वनाथ	— लोकवादी तुलसीदास राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1974, दूसरा 1991
त्रिपाठी, विश्वनाथ	— हिन्दी आलोचना राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999
तिवारी, गोपीनाथ	— विनय पत्रिका संक्षिप्त रंजन प्रकाशन, आगरा, संस्करण 1972
तिवारी, नित्यानंद	— साहित्य का स्वरूप एन.सी.ई.आर.टी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1985 भाद्र 1907
तिवारी, विश्वनाथ प्रसाद	— आधुनिक हिन्दी कविता राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1977
दुबे, श्यामाचरण	— समय और संस्कृति वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1996
द्विवेदी, मुकुन्द	— हजारी प्रसाद द्विवेदी के पत्र, प्रथम खंड इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, नई दिल्ली, एव राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, संस्करण 1993
द्विवेदी, हजारी प्रसाद	— कबीर राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, छात्र संस्करण 1990, पुनर्मुद्रित 1998
द्विवेदी, हजारी प्रसाद	— साहित्य सहचर लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 1994
नवल, नन्द किशोर	— निराला और मुक्तिबोध: चार लम्बी कविताएं राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 1993, 2001
नवल, नन्द किशोर (सं.)	— मैं पढ़ा जा चुका पत्र आधार प्रकाशन, पंचकुला, हरियाणा, प्रथम संस्करण 1997
नगेन्द्र	— हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, प्रथम संस्करण 1973, संस्करण 1983
नगेन्द्र, तारकनाथ बाली	— भारतीय काव्य सिद्धांत हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली, संस्करण 1990

नागार्जुन	— हजार—हजार बाहों वाली वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1994
निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी	— अनामिका राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला छात्र संस्करण 1993, आवृत्ति 1994, 1998
निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी	— परिमल राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1978, पुनरावृत्ति 1993, 1997
पंत, सुमित्रानन्दन	— ग्राम्य लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 12वाँ संस्करण 2001,
प्रसाद, कमला	— आंखिन देखी वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1981
प्रसाद, जयशंकर	— आँसू लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1988,
प्रसाद, जयशंकर	— कामायनी राजकमल पेपरबैक्स, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1996, 1998
प्रसाद, ज्ञानरंजन व कमला (सं.)	— नामवर सिंह: व्यक्ति और आलोचक परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1988
परसाई, हरिशंकर	— पगडंडियों का जमाना राजकमल पेपरबैक्स, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 1997, पहली आवृत्ति 1998
पाण्डेय, मैनेजर	— भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1993, द्वितीय संस्करण 1997
पाण्डेय, मैनेजर	— शब्द और कर्म वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997
पाण्डेय, मैनेजर	— साहित्य और इतिहास दृष्टि वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1981, द्वितीय संस्करण 2001
पाण्डेय, मैनेजर	— साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़, प्रथम संस्करण 1989

पाण्डेय, सुधाकर	— हिन्दी साहित्य का वृहत् (सोलह भाग में), नवम् भाग, हिन्दी साहित्य का परिष्कार द्विवेदी काल, संवत् 1950 – 1975 विक्रमी नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी
पुंजाणी कमल	— हिन्दी का पत्र-साहित्य (शोध-प्रबंध) कृष्णा ब्रदरर्स, महात्मा गांधी मार्ग अजमेर, संस्करण 1983
भाटिया, कैलाशचंद्र, रचना	— साहित्य में गद्य की नई विविध विधाएँ तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1996
मलयज	— संवाद और एकालाप
मलसियानी, अर्श	— ग़ालिब के पत्र प्रकाशन विभाग, सूचना प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, तृतीय संस्करण शक् 1921 (1993)
मलसियानी, अर्श	— ग़ालिब: काव्य और मानव प्रकाशन विभाग, सूचना प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार,
माक्सर्स, एंगेल्स	— साहित्य तथा कला प्रगति प्रकाशन, मास्को, सन् 1923
मिश्र, डॉ. राम दरश	— हिन्दी उपन्यास के सौ वर्ष पिलानी प्रकाशन, महेसाना, गुजरात, प्रथम संस्करण 1964
मिश्र, विश्वनाथ प्रसाद (सं.)	— सूरदास (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल) नागरिप्रचारिणी सभा, वाराणसी, संवत् 2054
मिश्र, शिव कुमार	— प्रेमचन्द विरासत का सवाल पिपुल्स लिटरेसी, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1981
मिश्र, शिव कुमार	— भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 1996, पुनर्मुद्रण 1998
मुक्तिबोध, गजानन माधव	— चांद का मुख टेढ़ा है भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 11वाँ, संस्करण 1998

मुक्तिबोध, गजानन माधव	— नये साहित्य का सौंदर्य शास्त्र राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 1993
राजाराम, कल्पना (सं.)	— भारतीय संस्कृति स्पेक्ट्रम बुक प्रा. लि., नई दिल्ली, संस्करण, 2002
राय अमृत	— विचारधारा और साहित्य हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, अगस्त 1984
रेणु, फणीश्वरनाथ	— मैला आंचल राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1984, सातवीं आवृत्ति 2001
वर्मा, द्वारका प्रसाद	— हरिशंकर परसाई का व्यंग्य लेखन एम.फिल. जे.एन.यू. नई दिल्ली की उपाधि हेतु लघु शोध प्रबंध, 1983
शर्मा, ब्रह्मदेव	— किसान की गरीबी का राज प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, संस्करण 1997
शर्मा, रामविलास	— कवियों के पत्र वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2001
शर्मा, रामविलास	— आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला बेपरबैक संस्करण 1993
शर्मा, रामविलास	— भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नौजवानों की समस्याएं राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 1953, पांचवां 1999
शर्मा, रामविलास	— प्रेमचन्द और उनका युग राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला छात्र संस्करण 1993, आवृत्ति 1995, 1998
शर्मा, रामविलास	— निराला की साहित्य साधना, भाग-3 राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1969
शर्मा, रामविलास	— मेरे साक्षात्कार किताब घर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1994
शर्मा, रामविलास	— प्रगतिशील काव्यधारा और केदनाथ अग्रवाल परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1986

शर्मा, रामविलास	— घर की बात राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1983
शर्मा, रामविलास	— नयी कविता और अस्तित्ववाद राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1978, पुनर्मुद्रण 1989
शर्मा, रामविलास	— बड़े भाई वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1986
शर्मा, रामविलास	— भारतीय सौंदर्यबोध और तुलसीदास साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2001
शर्मा, रामविलास	— आस्था और सौंदर्य राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990
शर्मा, रामविलास	— भाषा और समाज राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 1977
शर्मा, रामविलास	— मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,
शर्मा, रामविलास	— रूप तरंग और प्रगतिशील कविता वैचारिक पृष्ठभूमि वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990
शर्मा, रामविलास	— सदियों से सोये जाग उठे वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1980
शर्मा, रामविलास	— परंपरा का मूल्यांकन राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996
शर्मा, रामविलास (सं.)	— राग—विराग लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2001
शर्मा, विष्णु चंद	— ग़ालिब और निराला (मेरा काव्यानुमान) स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2000
शास्त्री, डॉ. रामचन्द्र वर्मा	— हिन्दी साहित्य प्रवृत्तियाँ एवं विकास अनीता प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1992, 1993
शुक्ल, रामचन्द्र	— त्रिवेणी (तीन समालोचनात्मक प्रबंधों के विशिष्ट अंशों का संग्रह), सं. कृष्णानंद नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, अड़तीसवां संस्करण संवत् 2043 विक्रमी

- शुक्ल, रामचन्द्र – रस मीमांसा (स. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र)
नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, सवत् 2048 विक्रमी षष्ठ
संस्करण
- शुक्ल, रामचन्द्र – हिन्दी साहित्य का इतिहास
(हिन्दी शब्दसागर की भूमिका के रूप में प्रकाशित)
- शुक्ल, रामचन्द्र – गोस्वामी तुलसीदास
नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, चतुर्दश संस्करण सवत्
2053 विक्रमी
- शुक्ल, रामचन्द्र – चिन्तामणि, पहला भाग
इडियन प्रेस पब्लिकेशन्स प्रा लि, इलाहाबाद संस्करण
1994
- सिंह, बच्चन – हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास
राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण
1996, पहली आवृत्ति 1997
- सिंह नामवर (स) – नागार्जुन प्रतिनिधि कविताएँ
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण
1984, पुनर्मुद्रित 1993, 95, 96
- सिंह नामवर – आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, नवीन संस्करण
1998
- सिंह नामवर – कविता के नये प्रतिमान
राजकमल प्रकाशन, पटना, नई दिल्ली, प्रथम
संस्करण 1968, आवृत्ति 1997
- सिंह नामवर – इतिहास और आलोचना
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण
1978
- सिंह नामवर – वाद-विवाद सवाद
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण
1989, द्वितीय 1991
- श्री राम चरित मानस (मूल गुटका) – बालकाण्ड
गीता प्रेस गुरोखपुर, 61वाँ संस्करण सवत् 2030
- श्रीनिवास एम एम – आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहली हिन्दी
संस्करण 1967, आवृत्ति 1998

अंग्रेजी ग्रन्थः

Editor Nagendra (Foreword). Tulsidas: His mind and Art, National Publishing House, 23, Delhi, First Published: 1977.

Haralambos M. with R.M. Heald. Sociology Themes and Perspectives, Oxford University Press, New Delhi, 110001. First Published, 1980.

अनूदित ग्रन्थः

काफ़्का फ़ांत्स— पिता को पत्र, अनुवाद — महेश दत्त, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्राईवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 1997.

दत्त, रजनीपाम— आज का भारत, अनुवादः आनन्द स्वरूप वर्मा, पीपुल्स लिटरेसी, नई दिल्ली, प्रथम हिन्दी संस्करण, 1977, पुनर्मुद्रित 1985, 91, 96, 2001।

मार्क्स—एंगेल्स सकलित पत्र व्यवहार, अनुवाद — वदन उपाध्याय, हिन्दी अनुवादः प्रगति प्रकाशन मास्को, 1982।

राय, एम.एन. — हमारा सांस्कृतिक दर्पः संस्कृति दर्शन, अनुवाद— आर.के.भट्ट, वाग्देवी पॉकेट बुक्स, बीकानेर, प्रथम संस्करण 1998

रिल्के, राइनेर मारिया— पत्र युवा कवि के नाम, अनुवाद राजी सेठ

श्रीनिवास, एम.एन.— भारत के गांव, अनुवाद— मधु बी०जोशी, राजकमल प्रकाशन,
नई दिल्ली 2000 ।

पत्रिकाएं:

आजकल, संपादक प्रताप सिंह बिष्ट, अंक—दिसम्बर 1997, प्रकाशन विभाग,
पटियाला हाउस, दिल्ली ।

आलोचना, प्रधान संपादक, नामवर सिंह अंक— जुलाई—सितम्बर 2000, अप्रैल 2001,
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली ।

अक्षर पर्व, संपादक— आलोक प्रकाश पुत्तू, जनवरी 1999 ।

कथा, संपादक— मार्कण्डेय, अंक—8, मार्च 1997, इलाहाबाद ।

कथन, संपादक— रमेश उपाध्याय, संज्ञा उपाध्याय, फरवरी—मार्च, 2002, नई
दिल्ली ।

कल के लिए, रामविलास शर्मा, संपादक डा० जय नारायण स्मृति अंक 9,
जनवरी—मार्च 2002, बहराईच ।

गूंज, संपादक— अकिंचन अंक 9—11, श्रीनिवासपुरी, नई दिल्ली ।

तद्भव, संपादक—अखिलेश, अंक—4, अप्रैल 2000, अक्टूबर 2000, लखनऊ ।

दस्तावेज, संपादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, अंक—91, कैक्सटन प्रेस, इलाहाबाद ।

वागर्थ-संपादक- प्रभाकर श्रोतिय, अप्रैल 1999, भारतीय भाषा परिषद, कलकत्ता ।

वागर्थ-संपादक- विनोद दास- अंक 83, जून 2002, भारतीय भाषा परिषद,
कलकत्ता ।

समरलोक, संपादक- मेहरुन्निसा परवेज, वर्ष- 4, अंक 2, जुलाई-सितम्बर 2002,
भोपाल ।

सवेद-11, संपादक-किशन वाजपेयी, फरवरी 2002, दिल्ली ।

समाचार पत्र:

जनसत्ता-संपादक प्रभाष जोशी, 9 सितम्बर 2001, 9 मार्च 2002, 25 अगस्त 2002,
नई दिल्ली ।

राष्ट्रीय सहारा, दैनिक समाचार पत्र, संपादक गोविन्द दीक्षित, सस्करण नई
दिल्ली ।

परिशिष्टः

- 1 डॉ० विश्वनाथ त्रिपाठी जी का मेरे द्वारा लिया गया साक्षात्कार।
- 2 डॉ० रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल के एक-एक पत्र।

वरिष्ठ आलोचक डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी जी से
विनय कांत मिश्र की बातचीत के कुछ अंश:

- 1 विनय कांत – क्या पत्र साहित्यिक विधा है?
डॉ विश्वनाथ त्रिपाठी – हाँ और नहीं भी। यदि हम पत्रों में यह लिख दें कि कल ये इलाहाबाद जायेगा, वहाँ से इन्हें कोई स्टेशन पर आकर लिवा जाय, अर्थात् बात को सीधे-सीधे सपाट बयानी के अदाज में कह दें तो वह पत्र साहित्य नहीं होगा। लेकिन यदि पत्र में यह लिखें कि अमुक व्यक्ति बीमार है, उसे जाकर स्टेशन पर कोई व्यक्ति ले आये अर्थात् पत्र सिर्फ सूचनात्मक न होकर सवेदना को जगा देने की रोचकता को बरकरार रखे तो पत्र साहित्य है। लेकिन अगर आप मुझसे पूछेंगे कि पत्र साहित्य है तो मैं कहूँगा हाँ। पत्र साहित्य है इसका प्रमाण गालिब के पत्र हैं।
- 2 विनय कांत – पत्र-साहित्य का पत्र साहित्य की अन्य विधाओं से क्या संबंध है?
डॉ विश्वनाथ त्रिपाठी – पत्र-साहित्य का साहित्य की अन्य विधाओं से इस प्रकार संबंध है कि यदि पत्रों में हम यह लिख दें कि मैं देवी पाटन में गया था और देवी पाटन के मेले के माध्यम से निबंध के शक्ल में दें दें तब वह निबंध हो जाएगा और इस प्रकार यदि हम किसी मित्र को पत्र लिखें कि सुबह की भोर में ठंडी हवा बह रही थी, ठंडी हवा का स्पर्श बहुत सुखद था। चिड़िया चहक रही थी, प्रकृति के उस दृश्य को देखकर मेरे भीतर एक कविता ने जन्म लिया जो मैं तुम्हें लिखकर भेज रहा हूँ तब इस तरह पत्र का संबंध कविता से भी हो जायेगा। पत्रों का उपयोग उपन्यास और कहानियों के वस्तु के साथ भी जुड़ा होता है। इसीलिए यह कहा जा सकता है कि पत्रों का संबंध अन्य साहित्यिक विधाओं से काफी गहरा होता है।
- 3 विनय कांत – अन्य साहित्यिक विधाओं से पत्र साहित्य कहाँ अलग है?
डॉ विश्वनाथ त्रिपाठी – कभी-कभी पत्र बहुत आत्मीय होते हैं, जिस आत्मीयता से लिखे जाते हैं, उसी आत्मीयता के साथ पढ़े भी जाते हैं। सामने वाला जो कुछ देखता है, भोगता है उनका वह सजीव वर्णन करता है। पत्र में एक ही पाठक का ध्यान रहता है, जबकि साहित्य की अन्य विधाओं में अनाम पाठकों का ध्यान रहता है। पत्रों में व्यक्ति अपने हृदय को खोलकर रख देता है।
- 4 विनय कांत – विश्व साहित्य या भारतीय भाषाओं में पत्र-साहित्य की क्या स्थिति है?

डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी — विश्व साहित्य के बारे में मुझे बहुत अधिक जानकारी नहीं है। हॉ अंग्रेजी साहित्य में कीट्स के लेटर्स और ऑस्कर वाइल्ड के पत्र अत्यंत महत्वपूर्ण हैं और उस समय के अंग्रेजी साहित्य और उस वक्त के साहित्यिक परिवेश पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं। जहाँ तक भारतीय भाषाओं का सवाल है तो उसमें सर्वोत्तम पत्र मिर्जा ग़ालिब के हैं। रवीन्द्र नाथ टैगोर की 'रसार् चिट्ठी' (रूस की चिट्ठी) भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। जवाहर लाल नेहरू द्वारा अपनी बेटी इंदिरा गांधी को लिखे गये पत्रों का संकलन 'लेटर्स टू डॉटर' भी इतिहास की और उस वक्त की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिवेश को जान सकने की समझ विकसित करता है।

5. विनय कांत — आप स्वयं एक लेखक हैं। आपके पास भी पाठकों व रचनाकारों के पत्र आते होंगे। पत्र पाकर आपको कैसी अनुभूति होती है? उन पत्रों का आपके जीवन और साहित्य में क्या महत्व है?

डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी — मेरे पास सबसे ज्यादा पत्र मेरे पिता के हैं और मेरे मित्रों के हैं। साथ ही मेरी पत्नी के पत्र मेरे पास बहुत हैं। साहित्यिकारों के पत्र मेरे पास कम हैं। साहित्यिकारों को पत्र लिखने की आदत मेरी स्वयं नहीं है। वैसे साहित्यिकारों में सबसे अधिक पत्र राम विलास शर्मा, हरिशंकर परसाई और शेखर जोशी के हैं। हालांकि ये पत्र भी साहित्यिकार की उपेक्षा मित्रों के पत्र अधिक हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के भी दो-तीन पत्र मेरे पास हैं। दरअसल वे मेरे गुरु थे। उनको पत्र लिखने में संकोच होता था। उन्होंने संबोधनों का जिक्र किया था। कहा कि "तुम पत्र लिखने से पूर्व एकाध-घंटे तक संबोधन की तलाश करते रहोगे।" नामवर सिंह के भी एकाध पत्र मेरे पास सुरक्षित हैं। वास्तव में मेरे पास मेरे पिता, मेरे स्कूल के सहपाठियों, मित्रों, बिस्कोहर और बलरामपुर के मित्रों से पत्रों का आदान-प्रदान बड़ी संख्या में होता रहा। पत्नी के भी बहुत पत्र हैं। केदार नाथ अग्रवाल के भी कुछ पत्र हैं। पुराने जमाने में एक कहावत थी — 'पाती आधा मिलन' है। लेकिन वस्तु स्थिति यह है कि पाती आधी मिलन नहीं बल्कि पूरा मिलन है।

6. विनय कांत — किन लेखकों — कवियों के पत्रों ने आपको प्रभावित किया है?

डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी — ग़ालिब के पत्र जो कि मैं हिन्दी का ही मनाता हूँ उसने सबसे अधिक प्रभावित किया है। इसके बाद राम विलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल के पत्रों के संग्रह 'मित्र संवाद' का स्थान है। उसमें लंबे दौर के साहित्य, राजनीति, कविता, आलोचना के बिन्दुओं का व्यवस्थित विश्लेषण हुआ है। उन पत्रों में व्यक्त दर्शन

और राजनीति पर भी दोनों व्यक्तियों के विचार अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। और उनके द्वारा हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि भी होती है। इसलिए वे मुझे अच्छे लगते हैं। हालांकि वे साहित्यिक दृष्टि से गालिब के पत्रों जितने महत्वपूर्ण तो नहीं हैं पर उसमें 30-35 वर्षों का व्यापक इतिहास प्रकट है।

7. विनय कांत — मीडिया ने साहित्य को काफी हद तक प्रभावित किया है? क्या आपकी दृष्टि में मीडिया ने लोगों को पत्र लिखने की परंपरा से पीछे हटाया है?

डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी — हाँ टेलीफोन के कारण पत्र तो निस्संदेह कम हो गये हैं। अब कोई भी व्यक्ति टेलीफोन पर ही सूचनात्मक बात कर लेता है। हालांकि इससे ऐसा लगता है कि कहीं पत्र सिर्फ साहित्य बनकर ही न रह जाय। अब तो दूरदराज के क्षेत्रों में भी टेलीफोन की सुविधाएँ हो गई हैं। फर्क तो काफी पड़ा है। पत्र-लेखन निश्चय ही कम हुआ है। अब अगर कोई अपनी स्मृति को या अपने किसी व्यापक अनुभव को दूसरे के सामने अभिव्यक्त करना चाहे, पत्र की जरूरत तभी पड़ती है। अन्यथा सूचनाएँ या हल्की-फुल्की बातें टेलीफोन या संचार माध्यमों के द्वारा ही प्रकट कर ली जाती हैं।

8. विनय कांत — मित्र संवाद डॉ. राम विलास शर्मा और केदार नाथ अग्रवाल का छप्पन वर्षों का नियमित पत्र — व्यवहार, हिन्दी साहित्य में यह अपने तरह का अकेला दस्तावेज है। आप मित्र संवाद के बारे में क्या सोचते हैं?

डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी — पहले मैं कह चुका हूँ, "मैं हिन्दी और उर्दू भाषा साहित्य में गालिब के बाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण 'मित्र संवाद' को मानता हूँ। यह संग्रह हमारे दो अत्यंत महत्वपूर्ण रचनाकारों के विचार-विनिमय, भाव-विनिमय, वैयक्तिक संबंधों, सामाजिक संबंधों की जानकारी के लिए प्रामाणिक व महत्वपूर्ण स्रोत है। उदाहरण स्वरूप उस काल में वामपंथी राजनीति की दिशा, उसके अंतर्विरोध, उसके भटकाव पर व्यापक चर्चा हुई है। निराला की राम की शक्ति पूजा, कीट्स का हारयेरियन और Saturin दोनों की तुलना और दोनों के मतभेद पर महत्वपूर्ण विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इसके अलावा दिनकर की उर्वशी और सूरदास के पदों का भी 'तर्कबद्ध' विवेचन उस संग्रह में प्राप्त होता है। इस तरह से मित्र संवाद खनिज भंडार है। मुझे प्रसन्नता है कि आप इस पर काम कर रहे हैं और लोगों को इसके महत्व से परिचित करवा रहे हैं। मैं यहाँ राम विलास शर्मा और केदार नाथ अग्रवाल के साथ-साथ अशोक त्रिपाठी के योगदान को भी महत्वपूर्ण मानता हूँ, जिन्होंने इस किताब को संपादित किया है।

- 2 विनय कात — 'मित्र सवाद' मे लोगो की रचनाकारो की मृत्यु का जिक्र है। रोगो का जिक्र है। आर्थिक कठिनाई का जिक्र है। रजनीतिक उलझाव की चर्चा है। पजाब की हत्याओ पर बहस है। महाराष्ट्र मे दिन-दहाडे लडकी के स्कूल मे जिन्दा जलाये जाने की टीस है। देश मे व्याप्त अपसस्कृति पर क्षोभ है। क्या ये सारी घटनाएँ मिलकर 'ट्रैजिक' का निर्माण नही करती है?
- डॉ विश्वनाथ त्रिपाठी — हाँ, सही बात है। वे इन दुखद घटनाओ को उनके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य से संपृक्त करके देखती है। यह गालिब के पत्रो मे भी है। जहाँ एक औपन्यासिक विषय वस्तु का निर्वहन हो सकता है। मित्र सवाद भी ऐसा ही है।
- 10 विनय कात — मित्र सवाद मे केदार नाथ अग्रवाल की आलोचना शक्ति और डॉ राम विलास शर्मा की काव्य प्रतिभा पर आप किस तरह विचार करते है जबकि केदारनाथ मूलत कवि है और डॉ राम विलास शर्मा कवि से बडे आलोचक है?
- डॉ विश्वनाथ त्रिपाठी — ऐसा है कि आज हिन्दी साहित्य मे केदार नाथ अग्रवाल कवि है और राम विलास शर्मा आलोचक के रूप मे महत्व रखते है। पर राम विलास शर्मा भी कवि थे। उनकी कविता संग्रह 'ऋतिगंध रूपतरंग' आदि है। वे तारसप्तक के कवि भी थे। इस तरह हर कवि आलोचक है और हर आलोचक कवि है। केदारनाथ अग्रवाल मे आलोचना के 'पैसेज' है। पर आलोचक के रूप मे उन्हे बहुत महत्वपूर्ण नही माना जा सकता। हालाकि कही-कही उनके यहाँ सूक्ष्म आलोचना के दर्शन होते है, किंतु उनकी आलोचना उतनी विश्वसनीय और प्रामाणिक नही है। राम विलास शर्मा की शुरुआत तो कविता से हुई थी पर बाद मे उन्होने कविता को छोडकर आलोचना कर्म मे ही अपने आप को व्यवस्थित कर लिया है। इसलिए राम विलास शर्मा आलोचक है और केदार नाथ अग्रवाल कवि। यह सत्य है। केदार नाथ अग्रवाल पाठक तो बहुत अच्छे है लेकिन आलोचक की साधना सा एकाग्र उनके यहाँ नही है। हालाकि उन्होने मेरी पुस्तक 'लोकवादी तुलसीदास' की बहुत प्रशंसा रामविलास शर्मा को पत्र मे लिखी थी, जो 'मित्र सवाद' मे है।
- 11 विनय कात — 'तुलसीदास' पर 'मित्र सवाद' 26 10 74 के पत्र मे केदार नाथ अग्रवाल को कुछ असहमतियाँ थी। 'लोकवादी तुलसीदास' पढने के बाद भी उनकी असहमतियाँ दूर नही हुई। उस असहमति के बारे मे बतायेगे?

डॉ विश्वनाथ त्रिपाठी – केदारनाथ अग्रवाल तुलसीदास को प्रतिक्रियावादी मानते हैं। प्रतिक्रियावादी जैसे तुलसी वर्णाश्रम व्यवस्था के पोषक और पिछड़े कवि हैं। मेरा भी यही मानना है— तुलसीदास अशत प्रतिक्रियावादी थे।

12 विनय कात – नामवर सिंह जी के अनुसार, “जैसे रंगमंच पर एक-एक करके नाटक के चरित्र आते हैं, जीते-जागते अपनी अलग अदा के साथ” वैसे मित्र सवाद में आप कहाँ हैं?

डॉ विश्वनाथ त्रिपाठी – ‘मित्र सवाद’ में मेरा जिक्र केदारनाथ अग्रवाल की सदाशयता, उनका स्नेह था। नहीं तो वे बहुत बड़े हैं। मेरी पुस्तक ‘लोकवादी तुलसीदास’ पर उन्होंने राम विलास शर्मा को लिखे गये पत्र में चर्चा की। वस्तुतः मैं जब राम विलास शर्मा को यह पुस्तक देने आगरा गया था तो बहुत देर तक मेरी हिम्मत नहीं पड़ी— उनको जाकरके यह पुस्तक देने की। उन्होंने मुझसे कहा कि “तुमने तुलसीदास पर कोई पुस्तक लिखी है।” मैंने कहा, ‘हाँ’। उन्होंने कहा, ‘मुझे नहीं दिखलाया।’ इस पर मैंने कहा, “मेरी हिम्मत नहीं पड़ी इसलिए नहीं दिया।” इस बात पर राम विलास जी ने कहा ‘लाओ देखूँ तो तुमने मेरा क्या-क्या चुराया है?’ हालांकि यह बात उन्होंने विनोदी स्वभाव में कही थी। लेकिन मैं तमतमा कर बोला ‘नहीं, मैंने यह सब स्वयं लिखा है।’ इस पर उन्होंने कहा, ‘हाँ जब आत्मविश्वास हो तभी लिखना चाहिए।’ फिर मैंने उनसे पूछा ‘इस पुस्तक के बारे में आपको कैसे पता चला।’ राम विलास जी ने तब कहा, ‘केदार जी का एक पत्र आया था। जिसमें उन्होंने तुम्हारी इस पुस्तक का जिक्र किया था।’

तो यह देखो दोनों दिग्गजों में किस कदर बड़प्पन था। मेरी पुस्तक केदारनाथ अग्रवाल को पसन्द आयी तो उन्होंने इसकी प्रशंसा स्वयं मुझसे नहीं की बल्कि राम विलास जी को लिखे गये पत्र में इस किताब की चर्चा की। तो यह उस जमाने के लोगों के ‘वैल्यूज’ थे। वे लोग आज के लोगों की तरह नहीं थे। आज लोग मुँह पर प्रशंसा तो करते हैं लेकिन पीठ-पीछे गाली देते हैं। वे बड़े लोग थे। महत्वपूर्ण लोग थे। लगातार छप्पन वर्षों तक उन लोगों की मित्रता रही। आज तो इतने दिनों तक किसी की मित्रता ही नहीं रहती। लोगों में आमने-सामने नमस्कार तक नहीं होता। छप्पन वर्षों तक मित्रता और पत्र-व्यवहार और उन पत्रों को सुरक्षित रखना अत्यंत महत्वपूर्ण है। ऐसे लोगों से ही हिन्दी साहित्य समृद्ध हुआ।

पोस्ट कार्ड post card

पिन PIN

8	1	0	0	1	1
---	---	---	---	---	---

१२३४५६७८९१०१११२१३१४१५१६१७१८१९२०२१२२२३२४२५२६२७२८२९३०३१३२३३३४३५३६३७३८३९४०४१४२४३४४४५४६४७४८४९५०५१५२५३५४५५५६५७५८५९६०६१६२६३६४६५६६६७६८६९७०७१७२७३७४७५७६७७७८७९८०८१८२८३८४८५८६८७८८८९९०९१९२९३९४९५९६९७९८९९



नं. दि. ११००/८
२. २. २३.

INDIAN SOCIETY OF ROCK MECHANICS & TUNNELLING TECHNOLOGY

President - D.G.Kadkade
Secretary - V.M. Sharma

REGISTRATION NO. S/22877 DT 04 05 92

प्रिय केदार,
बसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी; कविता पढ़ कर हम भी प्रसन्न
हुए। देर तक चाबी का स्पर्श पहले के मंदिर जमान केदार को साँप रहा।
मंदिर में गंधवाली कविताओं में नारी की। (आशा है, श्रीमती केदार का
ही) खिल बरसा हुई है। मंदिर चांदर से उड़ जाने को आनंद का पाठ लेते
उत्तम, उत्तम सद्भावना की स्मृति भी रोमांचक करी है। (182)
चिड़िया की ठोकी से टपकते रसखंडों में उड़ें कविताई से प्राप्त सद्भावना
की स्मृति में डूबी देती है; (233) दिन में भी गरम और धुंधला
होता है, इसलिए कि प्रकृति का कवि के चिड़िया का रोना या सिसया
हुआ है। (273) यह बात तो कविताई भी कह सकते थे लेकिन चिड़िया
का साथ रोना सदैव चलते चलते - तले हमारे मूलों के बहाल हो गये -
यह है पृथ्वी, लिख सकते थे। (235)
गंध के चलकर लगाने हुए पृथ्वी की चिड़िया चिंतित है पर खंडों के
कांदर रहती है, कुरिया में बीता तपस्वी का है। (26) मादों के
पाँच उग रहे हैं उसकी चिंतित छोटी कभी दूर है। (49) अंधियार
कांदर धूप की चांदर को रेंगे - मंदिर कलजना है। (49) अंधियार
उदयो लगाने फिर प्रकृति में मूलों - पृथ्वी चिंतित सद्भावना कविताओं
में है, पृथ्वी की कविता से कविता कविताओं का रस लिखे हुए है। (29)
मंथि में अंधे गंधाये, फूल फल-पान से बड़ा मंदिर विटप पृथ्वी
कविता की तरह सदा बहता है। (64) कांशु ने मोर के पंखों पर
उपकारी मारी, कौशल है, मोर उसको छीने पृथ्वी करारी तक
साँप! (131) जो खाल में खंड होते हैं उन्हें हरा हरा धूमना है
जिसकी आँखें कांशु में खुलती हैं उन्हें रात में भी करार दिखाये
देती है। (166) रेत में उगने अंधेरा, रात बिरंग, अंधी गंधा लेते -
भाकाश का हीरक मंदिर से मंदिर, कड़ी बात कहते रहे सद्भाव
से कहें गंधी है। (258) रेत का रेत, जैन पर सुर से का सोना
कठोरी औरतें, गंधा सी हैं माली हुई धकी मंदी
छातियां में दूध, नेह में मंद
करवी का मंदी कोश मूड मंदिर -
कांदर की ओड़ें मंदिर, मात है। (315)

इनमें कुछ सवाल हटकर कुलहाड़ी खला ला कहें (१),
 जिसकी मंजी की ६ सुझ की लपटों में खलती है (१),
 कीड़े की छात में दीवार से चिपकी चिपकली (५),
 लीस साल से छुँझती दीकड़े (७), चाननिस साल से एक
 ही मोह देखती मयूनि कि है बिटी की लखदेम जो को मोको
 होकर खाने सोनही कचा फाली (८), चालीस साल पहले कुछ
 क्या क्या देखने रहे, वह सब दुखिदुखि सब से भी देख गया,
 बी. पी. बुझाने के लिए पैसे न होने पर - रिश्ता दया करने
 में से से को चुका ! (११) कोई काल नहीं, भुगत-भुगतो से यदसे
 है, उसी से कष्टदुर दो कचने मोत का किला मीठ लिया (१४०)
 नकी। सिककड़ा करती पढ़ने तो दंतों तले भी भं दवा लेली।

संग्रह में बहुत सी दामनी तिक के विलाह हैं,
 हमें खोला गिक कांति की वह कविता कुदने से चली लगी जिसमें
 युवली का प्रेमी अपने सोरियों की मदद से पति की सद्भुत
 काके उसे मुक्त कर देता है। (५८) कविता पर, कवियों पर
 जो भी कविताएं हैं, बहुत से चली हैं, का विवास, तुलसीदास,
 निराला सभी हैं, इसी परंपरा हमारे साथ है,

एक निराला किला दुखद नहीं मिलेगा।

ऐसा सुनजमुकी दुखद नहीं मिलेगा। (८१)

सिच है। यह भी सच है।

मुझे माल है कि मैं उन सबका कविमित्र हूँ जो निराला हैं
 ऐसे कविमित्र पर मुझे भी माल है। (२६३)

सन्नेह

र. वि.

(३. ११. ६५)